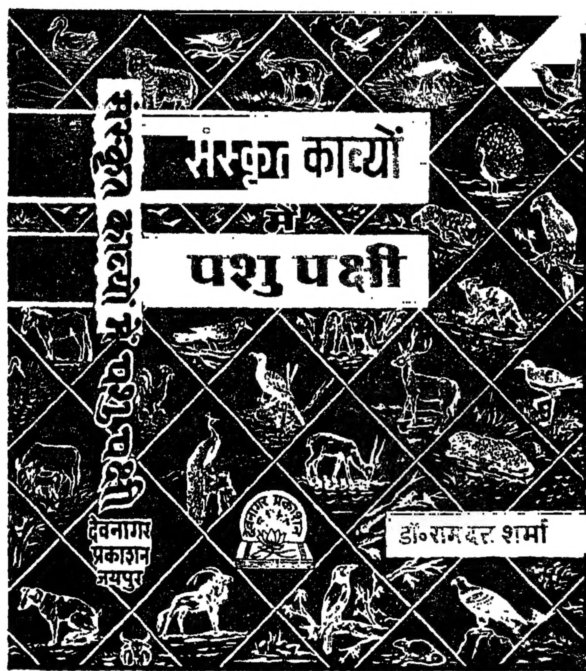

संस्कृत काव्यों
में
पशु पक्षी
संस्कृत काव्यों में पशु पक्षी
देवनागर प्रकाशन जयपुर
डॉ॰ राम दत्त शर्मा


देवनागर प्रकाशन

संस्कृत काव्य

में

पशु पक्षी



संस्कृत काव्यों में पशु-पक्षी

[कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में पशु-पक्षी]



डा० रामदत्त शर्मा
एम०ए०, पी-एच०डी०

देव नागर प्रकाशन, जयपुर

☐ राजस्थान-विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिये स्वीकृत शोध-प्रबन्ध.

☐ शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त.

१९७१

प्रकाशक : देव नागर प्रकाशन,
चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

आवरण : आर्टिस्ट: विजय नारायण शुक्ल, एवं

मुद्रण : जुबली ब्लाक वर्क्स, जयपुर

मूल्य : ३२) रुपये मात्र..

मुद्रक : एलोरा प्रिण्टर्स,
जयपुर-३.

सर्वे भवन्तु सुखिनः

सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,

मा कश्चिद् दुखभाग्भवेत् ॥

समर्पण



डॉ० श्री पुरुषोत्तम लाल भार्गव

परमादरणीय गुरुवर !

जिस महा सघन स्निग्ध वटवृक्ष की वात्सल्यमयी दीर्घछाया में
ज्ञान- पीयूष का पान करता हुआ संघर्ष के अभिक्रमण में भी
प्रकाश-किरण से पंथ की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा
प्रसाद रूप मे प्राप्त करता रहा—उस आशीर्वाद
के सहज भावों के प्रणेता आपके गौरवमय
व्यक्तित्व को आत्मिक श्रद्धा के साथ
अकिंचन की समर्पण
सुमनाञ्जलि !

भवतां :

रामदत्त

डॉ० रामदत्त शर्मा

लेखक-परिचय



जन्म :

१२ अक्टूबर, १९४१; मंढा-भीमसिंह (राजस्थान)

निवास :

दधीचि-कुटीर, पीरामलनगर, पो० बगड़ (BAGAR)
जिला-झुंझुनू (राजस्थान)

शिक्षा :

एम० ए० संस्कृत (राजस्थान) १९६५.
साहित्य शास्त्री (राजस्थान) १९६५.
साहित्याचार्य (राजस्थान) १९६८.
साहित्य रत्न (प्रयाग) १९६९.
पी-एच० डी० (राजस्थान) १९७०.

सम्पादन :

सम्पादक—'मरुस्काउटिंग' पत्रिका
सदस्य—सम्पादक-मण्डल, "सस्कृत—सुधा."

स्काउटिंग :

दस वर्ष से स्काउटिंग के कब-स्काउट रोवर सभी सोपानों में सेवा; भारत-स्काउट; (सर्वोच्च-अलंकार) सहायक-रोवर स्काउट लीडर.

लेखन :

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनाओं का प्रकाशन.
प्रकाशित पुस्तकें:—

आपत्ति में स्वरक्षा.
राजस्थान शिक्षा नियम.
अनुशासनिक कार्यवाही
मरुधरा.

Editor "Desert Scouting in Action"

वर्तमान में :

राजस्थान विश्वविद्यालय में संस्कृत के वरिष्ठ अनुसंधाता

दो शब्द

"कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में पशुपक्षी" शीर्षक यह शोध-प्रबन्ध पाठकों एवं विद्वानों को भेंट करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है. अभी तक काव्यों में पशु पक्षियों का वर्णन एक ग्रंथाकार में उपलब्ध नहीं था अतः मैंने प्रकृति के सानिध्य में पशु पक्षियों के वर्णन को काव्यों में ढूंढने का प्रयास किया. परिणाम स्वरूप प्रस्तुत शोधप्रबन्ध तैयार किया गया, जिसे राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पी० एच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकार किया गया है.

अनुसंधान-कार्य गवेषणात्मक व विश्लेषणात्मक होने से दुरुह होता है. फिर भी लगन, अध्ययन व सहयोग के सम्बल से इस पथ पर मै आगे बढ़ सका हूं. मेरे इस शोधकार्य में समय–समय पर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूपेण मुझे अनेक विद्वानों एवं प्रतिष्ठानों से मार्गदर्शन व सहयोग मिला, उन सबके प्रति मैं श्रद्धावनत हूं। मेरे आदरणीय गुरुवर डा० पुरुषोत्तमलाल भार्गव (अधिष्ठाता, संस्कृत संकाय तथा आचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) की छत्रछाया व प्रेरणा ने मेरा मार्गदर्शन किया। उनके पाण्डित्यपूर्ण मार्ग निर्देशन में ही यह शोधकार्य सम्पन्न हो सका है। मैं उनके प्रति श्रद्धावनत एवं आभारी हूं। आदरणीय डा० सुधीरकुमार गुप्त (प्रवाचक, राजस्थान विश्वविद्यालय), डा० फतेहसिंह (तत्कालीन—निदेशक, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर) व मेरे अग्रज श्री श्रीकृष्णदत्त शर्मा (राजस्थान-प्रशासनिक-सेवा) ने अनुसंधान ग्रंथ को परिमार्जित करने एवं आगे बढ़ाने में अविस्मरणीय सहयोग प्रदान किया है; मैं इन सबका आभारी हूं।

मैं, विश्वम्भरा (बीकानेर), शोध-पत्रिका (उदयपुर), गुरुकुल-पत्रिका (हरिद्वार), अन्वेषणा (उदयपुर), वरदा (बिसाऊ), वीणा

(इन्दौर), राष्ट्रदूत (जयपुर) व नवभारत-टाइम्स (नई दिल्ली) के सम्पादकों एवं राजस्थान-विश्वविद्यालय-पुस्तकालय (जयपुर), प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान (जोधपुर) व शासकीय महाविद्यालय-पुस्तकालय (टौंक) के अधिकारी-गण का ऋणी हूं जिन्होंने मुझे समय-समय पर लेखों को प्रकाशित करवाने व ग्रंथों का अवलोकन करने का अवसर प्रदान किया.

मैं, आचार्य श्री उमेश शास्त्री महोदय का अत्यन्त-आभारी हूं, जिन्होंने व्यस्तता के बावजूद इस कृति का गहन अवलोकन कर प्राक्कथन लेखन का महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन किया.

इस शोध-ग्रंथ की साज-सज्जा व प्रकाशन में **श्री एल. आर. शर्मा** (राज० विश्व-विद्यालय), **श्री ओमदत्त शर्मा** (हिन्द साइकिल्स, बम्बई) **श्री पवनचन्द सिंघवी** एवं **श्री मनमोहनराज** का सक्रिय योग-दान रहा है. इनके अतिरिक्त जिन व्यक्तियों का अल्पाधिक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग रहा है, वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं.

अन्त में मैं परमपिता परमेश्वर का आभारी हूं, जिनकी कृपा से यह कार्य निर्विघ्न समाप्त हुआ. मानव प्रमादों का पुतला है, अतः मानव द्वारा प्रमाद होना स्वाभाविक है, यदि प्रमादवश प्रस्तुत ग्रंथ में कोई त्रुटि रह गयी हो, तो विद्वद्गण क्षमा करेंगे. इतिशम् ।

बी० १११, तिलकनगर
जयपुर –४

रामदत्त

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन



वर्तमान में सर्वत्र संस्कृत भाषा के प्रति नानाविध भ्रांतियों से परिपूर्ण नैराश्य का साम्राज्य छाया हुआ है. संस्कृत के अध्येता भी इस संदर्भ में उद्विग्न से दिखाई देते हैं. हमारे कुछ भारतीय समालोचक इस भाषा के प्रति 'मृत भाषा', पडितों की भाषा, अथवा 'संस्कारों की साधिका' मात्र कहकर अंधकार फैलाने का षड्यन्त्र कर रहे हैं--वे इसके गरिमामय अस्तित्व एवं विकास की प्रवृत्तियों से परिचय करने का प्रयास भी नहीं करते— अपितु यह कहा जाय तो उचित है कि अपनी संस्कृति एवं समृद्धि के मूलोच्छेदन करने के लिये दुराग्रह के पथ पर पांव बढ़ा रहे हैं. जिस महातिमिर के आवरण में अमित नैराश्य की भावना को जन्म दिया जा रहा है—वह संस्कृत-ज्ञान-शून्यों का केवल छद्म भरा कुचक्र मात्र है.

आज भी इस महासंक्रमण-काल में अमर-भारती के वरदपुत्र संस्कृत विशारद अपने भौतिक सुखों का परित्याग करते हुये इस भाषा के वाङ्मय की सुरक्षा करने में तत्पर हैं अपितु अपने सीमित साधनों के माध्यम से संस्कृत-साहित्य के सृजन में प्रगतिशील हैं. वर्तमान समय में केन्द्रीय प्रशासन एवं प्रान्तीय शासन, सहस्त्रों विद्वान्, कविगण, लेखक, साहित्यकार, विश्वविद्यालय एवं अनुसंधानशालायें भारतीय संस्कृति की मूलाधार संस्कृत भाषा के विकास जन्य सृजन के महायज्ञ में दत्तचित्त हैं.

विश्वविद्यालयों के माध्यम से संस्कृत भाषा को अत्यधिक बल प्राप्त हुआ है. अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों में संस्कृत-विभाग सक्रिय हैं—जहां इस भाषा की विविध विधाओं का शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक अध्ययन-अध्यापन हो रहा है. विश्वविद्यालय हमारे गौरवमय स्वर्णिम अतीत को वर्तमान के साथ सम्पृक्त करते हुये संस्कृत भाषा की विभिन्न प्रवृत्तियों में मानवीय संवेगों की अनुभूति के साथ वेद, पुराण, उपनिषद्, दर्शन आदि को नूतन परिप्रेक्ष्य में समाज के समक्ष प्रस्तुत करने में गतिशील हैं

"संस्कृत वाङ्मय केवल विलास का केन्द्र है शृंगार का सुमनोहर प्रसाद मात्र है"—यह कहना भी केवल भ्रांति को जन्म देना है. संस्कृत साहित्य में समाज के पूर्ण दर्शन हैं, तत्कालीन युगबोध के साथ-साथ मानवीय संवेगों का परिशीलन है एवं दिशाबोध के लिये मंगलमय पंथ प्रशस्त हैं. हमारे संस्कृत साहित्य को अभिनव परिवेश के साथ प्रस्तुत करने में विश्वविद्यालयों का महान् योगदान है, जो अविस्मरणीय रहेगा.

राजस्थान विश्वविद्यालय में अनेक शोधकर्त्ताओं ने ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषयक आधारों पर संस्कृत-साहित्य का पूर्ण अनुशीलन करते हुये मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक स्थितियों का विश्लेषण करते हुये संस्कृत-विज्ञान का परिचय सामाजिकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है. इस प्रकार अनुसधान के माध्यम से संस्कृत वाङ्मय को स्फूर्त चेतना प्राप्त हुई तथा भारतीय संस्कृति को जीवट मिला है. संस्कृत वाङ्मय गम्भीर अतल पाथोधि है—जिसमें निमज्जित होकर युग-युगों तक मोतियों का अन्वेषण करते रहो, हर समय दिव्य मौक्तिक प्रदान करता रहेगा.

संस्कृत साहित्यकारों ने अपने काव्यों में प्रकृति-चित्रण को सर्वाधिक महत्व दिया है. सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्राकृतिक भावों को मनोवैज्ञानिकता के संदर्भ में संयोजित करते हुए चित्रात्मक दृश्य उपस्थित किये हैं.

प्रकृति-चित्रों में पशु-पक्षियों के प्रति मानवीय-संवेगों का चित्रण वैज्ञानिकता से परिपूर्ण है. पशु—पक्षियों के अभाव में मानवीय जीवन असहाय-सा प्रतीत होता है, संस्कृत साहित्यकारों ने मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम भी पशु—पक्षियों को ही बनाया है. पशु—पक्षियों के संदर्भ में तो सामान्य जन मानस को परिचय प्राप्त है किन्तु इनके संदर्भ में वैज्ञानिक अन्वेषण एवं मानवीय दृष्टि से साहित्यिक उपस्थिति से हर कोई परिचित नहीं हो सकता.

संस्कृत-साहित्य में पशु—पक्षियों का क्या स्थान है ? प्रकृति-चित्रण में इनका क्या महत्व है ? संस्कृतज्ञ इनकी वैज्ञानिकता के प्रति कितने सजग थे ? मानवीय सम्बन्धों के संदर्भ में इनका क्या मूल्यांकन है, कालिदास एवं कालिदासोत्तर प्रमुख कवियों ने पशु—पक्षि जगत् को किस दृष्टि से देखा है तथा प्रकृति चित्रण अथवा अपनी अनुभूतियों की इनके माध्यम से कहां तक साहित्यिक वृद्धि की है ? किस कवि को किस पशु अथवा पक्षी के प्रति अत्यधिक निष्ठा थी ? क्या इस निष्ठा का साहित्यकार की सामाजिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों से सम्बन्ध था ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर डा० रामदत्त शर्मा के प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध 'कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में पशु-पक्षी' से प्राप्त हो

जाता है. डा० शर्मा ने इस विषय का चयन कर वस्तुतः अपनी मौलिक सूझ का परिचय प्रस्तुत किया है. यह शोध-प्रबन्ध संस्कृत वाङ्मय के बिखरे हुए पशु-पक्षियों का संग्रह अथवा नाम गणना ही नहीं है अपितु पशु पक्षियों का वैज्ञानिक अध्ययन है, अथवा यों कहना चाहिये कि एक प्रयोगशाला है जिसमें पशु-पक्षियों के स्वभाव, मूल उद्गम, उनकी दैनिक-चर्या, उनकी आदतों का परीक्षण आदि का सम्यक् अध्ययन किया गया है. मानव-जगत् के साथ उनके सम्बन्धों का अध्ययन, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनका परिशीलन, साहित्यकारों की अनुभूतियों के साथ अभिव्यक्तिकरण आदि का पूर्ण परिचय एवं विशिष्ट ज्ञान हमें इस ग्रंथ के माध्यम से सुलभ हो जाता है. संस्कृत-साहित्य में पशु-पक्षियों के वर्णन तो प्रचुर मात्र में उपलब्ध होते हैं, किन्तु किसी एक ग्रंथ के माध्यम से हम पशु-पक्षि-जगत् का सम्पूर्ण अध्ययन अथवा परिचय प्राप्त नहीं कर पाते. इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से हमें इस जगत् का सम्पूर्ण परिचय मिल जाता है—यह संस्कृत वाङ्मय की श्रीवृद्धि में एक सफल कड़ी है.

लेखक ने 'कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों' तक ही अपने शोध-प्रबन्ध को सीमित रखा है. यद्यपि सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में प्रकृति-चित्रणों के साथ पशु-पक्षियों के विविध दृश्य उपस्थित होते हैं, किन्तु समग्र साहित्य के साथ लेकर चलने से विषय अत्यन्त विस्तृत होने की सम्भावना थी—साथ ही पिष्ट पेषण की आशंका भी बन सकती थी. इस दृष्टि से लेखक ने महाकवि कालिदास, अश्वघोष, भारवि, दण्डी, माघ, बाणभट्ट, श्रीहर्ष, सुबन्धु आदि प्रमुख संस्कृत साहित्यकारों का चयन कर इनके वाङ्मय से पशु-पक्षियों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है. ये सभी कवि संस्कृत साहित्य के प्रतिनिधि कवि हैं तथा समस्त संस्कृत वाङ्मय के आधिकारिक व्यक्तित्व हैं.

यह शोध प्रबन्ध ५ अध्यायों में विभक्त है. लेखक का मूल प्रतिपाद्य "काव्यों में पशु-पक्षी" है. अतः सर्वप्रथम लेखक ने 'काव्य' शब्द का सम्यक् विश्लेषण किया है. प्राचीन एवं अर्वाचीन मनीषियों की काव्य–मान्यतायें प्रस्तुत करते हुये डा० शर्मा ने आचार्य मम्मट के काव्य लक्षण की प्रशंसा करते हुये लिखा है—**"मम्मट के काव्य लक्षण को उत्तम स्वीकारने में कोई बाधा प्रतीत नहीं होती."** वस्तुतः आचार्य मम्मट की काव्य-परिभाषा अलंकारवाही होते हुए भी अत्यधिक सुलझी हुयी है. इस लक्षण में कुछ परिवर्तन करने हुये अनेक आचार्यों ने अपने-अपने पृथक्-पृथक् मत प्रस्तुत किये हैं. कुछ ने मम्मट का खण्डन किया है और कुछ ने मण्डन. आचार्य जगन्नाथ का काव्य लक्षण– 'रमणीयार्थः प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' संस्कृत काव्य–समीक्षकों का अन्तिम अभिमत है—जो आचार्य

मम्मट से परोक्ष रूप से किसी सीमा तक सम्पृक्त है. लेखक ने काव्य लक्षण के विश्लेषण के साथ ही कवियों के काल निर्धारण पर भी अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षकों एवं इतिहासविदों के अभिमत प्रस्तुत करते हुये अपना मत निर्धारित किया है. डा० शर्मा ने महाकवि कालिदास का समय प्रथम शताब्दी सिद्ध किया है. इस मत की पुष्टि के लिये श्री के. एस. रामास्वामी, श्री बनर्जी व श्री बलदेव उपाध्याय प्रभृति विद्वानों के अभिमत प्रस्तुत किये है. **अश्वघोष कालिदास के अनुवर्ती कवि थे न कि पूववर्ती.** डा० शर्मा ने यह भी सिद्ध किया है कि अश्वघोष कालिदास से पूर्ण प्रभावित थे तथा उनके साहित्य पर कालिदास की स्पष्ट छाप अंकित है. इस संदर्भ में डा० शर्मा ने अपना तर्क प्रस्तुत करते हुये लिखा है—"**अश्वघोष एक दार्शनिक थे एवं उनके द्वारा कालिदास का अनुकरण संभव है. चीनी-सूचियों में अश्वघोष कनिष्क कालीन एक धार्मिक विचारक माने गये है जो 78 ई. में हुये हैं. अतः यह स्पष्ट है कि अश्वघोष कालिदास से पूर्व प्रथम शताब्दी में हुये हैं.**"

यद्यपि यह विषय विवादास्पद ही है. हम सर्वसम्मत रूप से यह नहीं कह सकते हैं कि अश्वघोष पूर्ववर्ती थे अथवा कालिदास, क्योंकि विद्वानों के विभिन्न मत उपलब्ध होते हैं. इस प्रकार लेखक ने कालिदासोत्तर कवियों के तर्कों की शृंखला के साथ अपनी मान्यतायें प्रस्तुत की हैं.

पशु-पक्षी के संदर्भ में प्रकृति-चित्रण पर विचार करना भी अनिवार्य है, क्योंकि प्रकृति चित्रण के साथ ही पशु-पक्षी गण काव्यों में सम्बद्ध है. मानव प्रकृति के साथ सनातन रूप से सम्पृक्त है और भावनाओं का अभिसार केन्द्र प्रकृति को ही स्वीकारता आया है. सुख दुःख की समस्त अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम प्रकृति ही रही है एवं मानवीय संवेगों में जीवट या उत्पीडन प्रदान करने वाली शक्तिमय प्रकृति ही मूलाधार है. मानव का प्रकृति से विलग हो जाना असांसारिकता एवं कुण्ठाओं का श्रीगणेश है. प्रकृति वह रहस्यमयी नियति वधू है जिसके लास्य में विश्व का मधुमय लास्य है, जिसके कटाक्षों में वैभवमय विलास है, जिसके अधर चषक में अविरल मदिर-पीयूष छलकता रहता है, जिसके नयनों में राग द्वेष, उद्भव व विकास, सृजन तथा प्रलय का वातावरण प्रतिपल नृत्य करता रहता है. मानव का निराशा से आपूरित मन प्रकृति की गोद में 'आशा' के स्वप्न देखने लगता है. गूंगापन चंचल चंचरीक की तरह उन्मत्त होकर समद गुञ्जन करने लगता है. मानव संवेदनशील प्राणी है, वह अपनी भावनाओं को प्रकृति के साथ सम्पृक्त कर अनिर्वचनीय आनन्द में आत्मविभोर हो जाता है, अतः प्रकृति मानवीय समस्त भावों की केन्द्र भूमि, अनुभावों की प्रेरक एवं संचारी

भावों की संप्रेषिका है। प्रकृति के संदर्भ में डा० शर्मा ने कहा है—**प्रकृति मानव की प्रारम्भिक सहचरी रही है. जब से मानव ने इस भूपटल पर जन्म लिया है तभी से वह प्रकृति के साहचर्य में आया है. वह सूर्य चन्द्रादि से प्रकाशित हुआ है, वृक्षों ने उसे छाया प्रदान की है, भूमि ने उसे अन्न दिया है, झरनों ने उसे शीतल जल प्रदान किया है एवं नीरधि ने उसे रत्न प्रदान किये हैं. अतः मानव व प्रकृति का निरन्तर संयोग रहा है."**

"इस प्रकार मानव प्रकृति का साहचर्य प्राचीन साहचर्य है, जिसकी अविरल धारा आज तक प्रभावित हो रही है. इस साहचर्य एवं सौन्दर्य प्रदर्शन ने मानव को काव्यों में भी प्रकृति वर्णन करने की एक प्रेरणा दी हैं. इस प्रेरणा से प्रेरित होकर ही मानव ने काव्यों में पशु–पक्षी, जीवजन्तु व फल–फूलों के सुन्दर वर्णनों को उपस्थित किया है."

लेखक ने अपने उपजीव्य विषय की प्रस्तावना को विस्तृत रूप से समझाते हुये गवेषणा का श्री गणेश किया है. वस्तुतः यह सत्य भी है कि साहचर्य एवं सौन्दर्य प्रदर्शन ने ही कवियों को प्रकृति-चित्रण करने की क्षमता दी है. कवि अपने काव्य में अभिव्यक्ति के लिये प्रतीक एवं रूपक योजना के लिये प्रकृति का चिर ऋणी रहा है. उपमानों की स्पर्धा में कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब सभी के समक्ष रख दिया है. साहचर्य एवं सौन्दर्य प्रदर्शन तो प्रकृति चित्रण के मूलधार है ही, किन्तु प्रतीक योजना एवं उपमानों की स्पर्धा ने भी प्रकृति चित्रण के लिये महत्वपूर्ण प्रेरणा दी है. आज भी प्रतीक योजना नित नये उपमानों के अन्वेषण में प्रतिस्पर्धी है. मानव जिस वातावरण में जीता है उसका चित्रण सहज रूप से उसकी अभिव्यक्ति में झलक पड़ता है.

संस्कृत-साहित्य का सृजन वैभवमय वेला में हुआ है, अत: उसके काव्यों में प्रकृति का मनोरम चित्रण ही प्रायः उपलब्ध होता है. संस्कृत–साहित्य की एक यह भी विशेषता रही है कि कवि दृष्टि सदा—"सत्यं शिवं सुन्दरम्" की परिपोषक रही है. यही कारण है कि संस्कृत वाङ्मय के प्रकृति चित्रण में विरूपता का नितान्ताभाव है. प्रकृति चित्रण में पशु-पक्षियों का जो वर्णन हुआ है वह रमणीयता की ही सहज परिणिति है.

काव्यों में पशु-पक्षी वर्णन के संदर्भ में लेखक ने हेतु-जन्य प्रमाण प्रस्तुत किये हैं—

१. मानव व पशु-पक्षियों का निरन्तर संयोग.
२. प्राचीन समय में मानव का पशु-पक्षियों के प्रति प्रेमाधिक्य.
३. कवियों की पैनी अवलोकन शक्ति.

मानव का प्रारम्भ से ही सामाजिक अथवा आत्मिक सम्बन्धों के रूप में पशु-पक्षियों के साथ सम्बन्ध बना रहा है. घर का वातावरण या समराङ्गण

यात्रा अथवा आखेट स्थलों पर पशु-जगत् का किसी न किसी रूप में सहयोग बना रहा है, इसी प्रकार पक्षियों के पालने एवं उनके माध्यम से संदेश-प्रेषण के हमें कई उदाहरण सुलभ होते हैं. इन भोले भाले पशु-पक्षियों का गूंगा मन मानव का सहज विश्वास पाकर अपने विश्वास को सम्पृक्त कर लेता है.

पशु-पक्षियों के शोध-संदर्भ में लेखक ने दो मत अभिव्यक्त किये हैं:—

१. साहित्यिक दृष्टि.

२. वैज्ञानिक दृष्टि.

साहित्यिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि का अन्तर स्पष्ट करते हुये डा० शर्मा ने कहा है, "सौंदर्य का भावात्मक विश्लेषण करने वाला विचारक साहित्यकार एवं किसी वस्तु का विश्लेषणात्मक विवेचन करने वाला विचारक वैज्ञानिक कहा जाता है. वैज्ञानिक वह विचारक है जो पशु या पक्षी का वाङ्मय प्रदर्शित करता है एवं सत्य की खोज में तत्पर रहता है. वह आकृति, गुण, स्वभाव, योग, क्रिया, विश्लेषण व विभाजन के आधार पर सत्यान्वेषण के लिये लालायित रहता है." डा० शर्मा ने इस संदर्भ में उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया है:—

"यदि कवि को किसी पुष्प का वर्णन करने को कहा जाय तो उसे कलि में नारी का रूप दिखलाई देगा, एक प्रफुल्लित पुष्प को देखकर उसका मन रोमांच कर उठगा, तो पददलित पुष्प को देखकर वह कराहने लगेगा और उसकी सहानुभूति में लेखिनी चल पड़ेगी. काव्यकार नग्न सत्य का उपासक नहीं होता है. साहित्यकार को हाथी की सूंड में नारी की जांघ के दर्शन होते हैं............परन्तु वैज्ञानिक को न तो कलि में नारी के दर्शन ही होते हैं एवं न पुष्प को देखकर रोमांचित ही होता है. अतः वैज्ञानिक हर वस्तु को सत्यता की कसौटी पर कसता है, उसे कोरी कल्पना अपेक्षित नहीं."

लेखक के कहने का तात्पर्य यह है कि वह वैज्ञानिकता के माध्यम से पशु-पक्षियों के शोध-विश्लेषण की ओर अग्रसर है. पशु-पक्षियों में मूल उद्भव, प्रजनन-क्रिया, आकृति, प्रकृति आदि भी जानकारी प्रस्तुत करना चाहता है. इस प्रकार हम देखते हैं कि लेखक वैज्ञानिक स्वरूपावस्थिति को सिद्ध करने के लिये प्रतिपल प्रयत्नशील रहा है. वह कल्पना को यथार्थ की कसौटी पर उतारते हुये परीक्षण करना चाहता है. संस्कृत वाङ्मय में कवियों ने पशु-पक्षियों की कल्पना में कौन सी भूलें की है, इसकी पकड़ भी लेखक की कलम ने की है. लेखक का मन्तव्य है कि काव्यकारों ने जितने पशुओं का वर्णन किया है उनके रूप-रंग, आहार-विहार एवं आकार-प्रकार में कोई मतभेद नहीं है और यदि है तो उनका भेद स्पष्ट-सा है कल्पनात्मक भ्रान्तियों के संदर्भ में शोध-प्रबंध का उद्धरण इस प्रकार है:—

"बाणभट्ट ने कादम्बरी में गज की पूंछ की तुलना करते हुये लिखा है:–"
"महाकविभारविप्रलम्ब बालपल्लव स्पृष्ट-भूतल." (कादम्बरी पृ० ३८७ चौखम्बा)
यहां गज की समता पेड़ की लटकती हुई उस शाखा से की है जो पृथ्वी को छूती है, परन्तु हाथी की पूंछ इतनी छोटी होती है कि वह पृथ्वीतल को कदापि नहीं छू सकती है; अतः ऐसे विद्वान् द्वारा ऐसी भूल किया जाना वास्तव में विस्मयकारक है. इसी प्रकार घोड़ों की लार से अस्तबल का गीला हो जाना एवं मिट्टी का शांत हो जाना, हंस का क्षीर-नीर-विवेकी होना, चक्रवाक का नैशविरही होना, चातक द्वारा केवल वर्षा जल पीना एवं गिद्ध का मानववत् व्यवहार करना यह सब कल्पनायें इतनी परे हैं कि उनको स्वीकार करना संभव नहीं."

लेखक ने काव्यकारों की कल्पना में यथार्थ दृष्टिकोण से दोषों का अन्वेषण किया है जिनका वैज्ञानिक महत्त्व है. क्या कविगण वस्तुत: अनुभव शून्य थे, ऐसी मान्यता स्थापित करना दुर्व्यवहार सिद्ध होगा. गज की लटकती हुई पूंछ के संदर्भ में शाखा की उपमा देते हुये भूतल-का स्पर्श कराना असंगत सा अवश्य प्रतीत होता है, किन्तु कल्पना जगत् में क्षम्य है. घोड़ों की लार से अस्तबल का गीला हो जाना राजकुल में हजारों की संख्या में अश्वों की बहुतायत सिद्ध करना है. हंस का नीर-क्षीर-विवेकी होना, चक्रवाक का नैश-विरही होना आदि परम्परागत जन श्रुतियाँ हैं. इन जन श्रुतियों का निश्चित ही कोई आधार रहा होगा. साथ ही अर्थ प्राप्ति के लिये अभिधा से हटकर अन्य शब्द शक्तियों के माध्यम से अर्थ के धरातल का स्पर्श करना चाहिये. इस संदर्भ में लेखक ने अनेक पाश्चात्य पशु-पक्षी विज्ञान के सफल लेखकों के मत देते हुये काव्यकारों की भूलें स्पष्ट की हैं. यह स्वयं लेखक को भी मानना होगा कि उसके द्वारा किसी प्रयोग शाला की स्थापना करना संभव नहीं था, अपितु अद्यतन उपलब्ध वैज्ञानिक वक्तव्यों, अभिमतों एवं व्यक्तिगत निरीक्षणों के आधार पर वैज्ञानिकता के धरातल पर यथार्थ को स्पष्ट किया है. यहाँ हम यह कह सकते हैं कि कवियों ने यदा-कदा अतिशयोक्ति जन्य प्रयोग कर दिये हैं जो वैज्ञानिक धरातल पर अपना यथार्थवादी दृष्टिकोण रखने में अक्षरश: असमर्थ हैं. हमें वैज्ञानिकता को भी साहित्यिक दृष्टि से पृथक् करते समय कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्रों पर विचार करना आवश्यक होगा. क्या विज्ञान का साहित्य से कोई सम्बन्ध ही नहीं है? क्या साहित्य व विज्ञान एक नदी के दो किनारे हैं, जिनका समन्वय होना असंभव है. इस संदर्भ में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि दोनों धारायें एक ही सतह पर बहती हुयी सत्यान्वेषण के लिये कटिबद्ध है, किंतु माध्यम भिन्न-भिन्न हैं. सृजनशील साहित्य सत्य के अधिक निकट है—वह परोक्ष मे बैठा हुआ भवितव्य की मूर्त

रेखाओं को उभार देता है, वह मानसिक संवेगों में जन्म लेने वाले हर सत्य को उद्घाटित करता हुआ अपने शब्दों में पिरोकर धर देता है. इस प्रकार हम देखते है कि बिना प्रयोगशाला के ही साहित्यकार अपनी सूझ रूपी दूरबीन से कल्पना की परख नली में अनेक अनुभूतियों को जन्म देता हुआ सत्य के सन्निकट रहता है. उसकी सम्प्रेषण शक्ति इतनी तीव्र होती है कि वह यथार्थ की स्थिति की सहज ही थाह पा लेता है. विज्ञान भी इसी थाह अथवा रहस्य की अवाप्ति के लिए सतत यत्नशील है—वह आदर्श एवं कल्पनाओं का त्याग करता हुआ यथार्थ स्थिति के उद्घाटन के लिये संघर्षशील रहता है. यदि कविगण कल्पनायें इस वैज्ञानिक धरातल के स्पर्श करने में यत्रतत्र पहुंच पाने में असमर्थ हों, तो हम उसे काव्यकारों की भूल या अज्ञान का परिचायक नहीं कह सकते; अपितु सवेगों की गतिशीलता में प्रवाहजन्य अभिव्यक्तिकरण के कारण अतिशयोक्ति सिद्ध हो सकती है और ये वैज्ञानिक दृष्टि में भूलें कही जा सकती है.

लेखक ने सूकर के संदर्भ में लिखा है:—"**एक बात अवश्य है कि कतिपय पशु-पक्षियों का वर्णन करते समय काव्यकारों ने भी उनके साथ पक्षपात किया है. सूकर को सभी ने गंदा एवं भद्दा पशु माना है, जबकि वह सबसे साफ पशु है. खर को घृणा की दृष्टि से देखा है, तो उल्लू को बुद्धिहीन माना है, परन्तु ये सब वर्णन पक्षपात के कारण हैं.**"

संस्कृत-साहित्य में सूकर को 'वराह' से अभिसंज्ञित किया गया है. दशावतार में सूकर को भी अवतार माना गया है—यथा—

यस्यालीयत शल्कसीम्नि जलधि पृष्ठ जगन्मण्डलम्,
दंष्ट्रायां धरणिः नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी.
क्रोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो
ध्याने विश्वमसावधार्मिक कुलं कस्मै चिदस्मै नमः ।।

पौराणिक उपाख्यानों में सूकर को विशिष्ट महत्त्व दिया है. वैदिक वाङ्मय में भी सूकर के अनेक वर्णन उपलब्ध होते हैं, किन्तु लौकिक संस्कृत में सूकर के वर्णनों में जो उसे गंदा एवं भद्दा कहा गया है—उसे हम पक्षपात अवश्य कह सकते हैं किन्तु इस पक्षपात के पीछे साहित्यकार की 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की मंत्रणा है. यह सर्वविदित है कि सूकर गंदगी में रहने वाला एवं विष्ठादि का भक्षण करने वाला पशु है.

भारतीय संस्कृति का चिरपोषक सौंदर्य एवं सद्वृत्ति का उपासक साहित्यकार इस सामाजिक घृणा को कैसे अस्वीकार कर सकता है? साहित्य समाज की सत्याभिव्यक्ति है, समाज का प्रतिबिम्ब है, दर्पण है. सामाजिक सत्य एवं मिथ्या से वह सदा सम्पृक्त रहता है. यहां यह विचारना भी अनिवार्य है कि सांस्कृतिक

महत्त्व भी साहित्यकार को अभिव्यक्तिकरण के लिए प्रेरित करता है. योरोपीय संस्कृति में शूकर का पालना उसकी अभिवृद्धि के लिए एक स्पर्धा है— उसका व्यवसायिक महत्त्व, है पुनरपि वह उनकी संस्कृति का एक अंग बन चुका है, उनके समाज का एक स्तम्भ बन चुका है, अतः उनके साहित्य में इसका वर्णन सुन्दरतम किया जा सकता है. हमारे संस्कृत काव्यकारों ने भी यथा सम्भव वर्णन करते हुए इसके क्रिया कलापों का उल्लेख किया है. महाकवि कालिदास ने अपने अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक के द्वितीयअंक में आरण्यक पशुओं के संदर्भ में 'गाहन्तां महिषाः निपान सलिलैः.' इत्यादि श्लोक में सूकर की कितनी मनोरम अभिव्यक्ति की है

इसी प्रकार गर्दभ एवं उलूक की स्थिति है. उनके स्वभावों का यथा स्थिति चित्रण किया गया है. लेखक का यह कहना सत्य है कि इनके साथ पक्षपात हुआ है, अन्य पशु-पक्षियों की तुलना में इनका वर्णन अत्यधिक कम मिलता है किन्तु इनके चित्रण के पीछे कोई दुराग्रह हो—ऐसी बात नहीं है, क्योंकि जो समाज के द्वारा परिहार्य हो; उसे साहित्यकार अपनी कलम के माध्यम से अपरिहार्य नहीं कह सकता. हमारा धार्मिक दृष्टिकोण हमारे समाज व साहित्य से सदा सम्पृक्त रहता है—यह देखना आवश्यक है. पाश्चात्य दृष्टिकोण से हम विचार करें तो यह भी सत्य है कि इनके साथ घृणास्पद व्यवहार किया गया है— लेखक सम्भवतः इसी विचारधारा से सहमत रहा होगा.

लेखक का संस्कृत काव्यकारों में दोष अथवा भूलों की समीक्षा करना ही - उद्देश्य नहीं रहा है, उसने काव्यकारों की मौलिक सूझ-बूझ की, जो वैज्ञानिक सत्य हैं; भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुये कहा है:—

"काव्यकारों ने वास्तव में ऐसे वर्णन किये हैं जो वैज्ञानिक सत्य है. इसका सबसे सुन्दर प्रमाण है–हाथी की जीभ का उल्टा होना–जो वैज्ञानिक सत्य है एवं बाणभट्ट ने इसका उल्लेख किया है. वानर का चंचल होना, शुक द्वारा फलों का निरन्तर काट-काट कर डालना, हाथियों व सूकरों का पंक्तिबद्ध होकर चलना इत्यादि ऐसे वर्णन हैं जिनका बड़ा ही सही-सही वर्णन काव्यकारों ने किया है."

"काव्यकारों की वैशम्पायन-शुक, कुम्भोदार-सिंह एवं कालिन्दी सारिका की कल्पना बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है. कवियों ने पशु-पक्षियों केजो स्वाभाविक वर्णन किये हैं वे शायद ही किसी विश्व साहित्य में मिलें."

हमारे संस्कृत काव्यकारों ने पशु-पक्षियों का जो वर्णन भावात्मक स्थितियों के संदर्भ में किया गया है, उनमें साहित्यिक सौन्दर्य के साथ-साथ वैज्ञानिक सत्य भी स्पष्ट झलकता है. महाकवि कालिदास ने मेघदूत काव्य में बलाका पंक्ति का सहज चित्रण किया है, जो यथार्थ स्थिति में स्पष्ट सत्य है:–

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथात्वां,
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं भवन्तं खे बलाकाः॥

गजयूथ की कण्डूकता का ध्यान भी कवियों को सदा रहा हैः—

"कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टिकानां सरलद्रुमाणाम्।
यत्र सुतक्षीरतयाप्रसूतः सानूनिगंधः सुरभी करोति॥"

पशु-पक्षियों की स्वाभाविक आदतों का जितना सूक्ष्म अध्ययन संस्कृत कवियों ने किया है. सम्भवतः विश्व के किसी अन्य साहित्य में उपलब्ध हो—ऐसी सम्भावना नहीं की जा सकती है. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यदि देखा जाये तो निस्संदेह हम यह कह सकते हैं कि संस्कृत कवियों की सूक्ष्म दृष्टि वे पशु-पक्षियों के मानस से मानवीकरण का सम्बन्ध सूत्र सयोजित करते हुये उनकी भावनाओं को सहज रूप से उभारा है। संस्कृत वाङ्मय में प्रायः सभी पशु-पक्षियों के वर्णन समुपलब्ध हैं—ये मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर सजीवता के साथ पाठकों के समक्ष आये हैं। मृग के मानस-पटल पर उभरे संवेगों की परिणीति का इतना सहज एवं सजीव चित्र सम्भवतः ही किसी अन्य भाषा के साहित्य में सुलभ हो। महाकवि कालिदास ने भयत्रस्त मृग की संत्रासस्थिति का नैसर्गिक चित्रण कितना रमणीय किया हैः—

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः,
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्,
दर्भैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा,
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।

आश्रम में रहने वाले शुक की सहज स्थिति के दर्शन स्वतः हो जाते हैंः—

"नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः ।

शाकुन्तलम्. १।१४

चातक के जल ग्रहण की स्थिति भी नैसर्गिक रूप से कमनीयता के साथ प्रस्तुत की गई हैः—

"अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः।"

मेघ० १।२३

डा० शर्मा ने पशु पक्षियों के संदर्भ में उनकी वैज्ञानिक स्थितियों का सर्वाधिक सुलझे हुए ढंग के साथ प्रस्तुतीकरण किया है। भारतीय पशु पक्षियों को विश्व के पशु पक्षियों के साथ आकृतिमूलक एवं प्रकृतिजनित दृष्टि से उनकी

प्रकृति एवं प्रवृत्तियों का सूक्ष्मतम विश्लेषण किया है। पशु-पक्षी सामाजिक दृष्टि से कितने उपयोगी हैं ? इस संदर्भ में सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा व्यवसायिक दृष्टि से गहन अध्ययन किया गया है.

गज की क्रोधजन्य क्या स्थिति है ? इस संदर्भ में लेखक ने शाकुन्तल से बहुत सुन्दर पद्य प्रस्तुत किया है :—

तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदंतः,

पादाकृष्ट व्रततिवलया संग संजात पाशः ।।

कालिदास ने 'वप्रक्रीड़ा' के संदर्भ में कहा है, जैसे :—

'वप्रक्रीड़ापरिणतिगजःप्रेक्षणीयं ददर्श ।"

इस वप्रक्रीड़ा को लेखक ने बहुत अच्छी तरह समझाते हुए कहा है:- **"वप्रक्रीड़ा गज की सामान्य आदतों में से है, यह नदियों के तट गिरा देता है. यह पर्वत एवं कन्दराओं पर सिर पटकता है."**

इस प्रकार गजमद, प्रजनन, गज का चिंग्घाड़ना, गज-नियन्त्रण आदि सभी स्थितियों पर विशद विवेचन किया गया है—जो वस्तुतः लेखक की तीव्र एवं गहन जिज्ञासा वृत्ति का परिचायक है. लेखक ने काव्यों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि गीर्वाण-वाङ्मय में गज का सर्वाधिक वर्णन सुलभ है—जिसका मूलहेतु राज्याश्रय रहा होगा. इसी प्रकार आरण्यक पशुओं के वर्णन भी सम्प्राप्य है। गंडक का वर्णन देवगिरा-वाङ्मय में उपलब्ध है, वह अन्यत्र सम्भवतया ही मिल सके. खर जैसे उपेक्षित पशु के संदर्भ में डा० शर्मा का कहना है :— **सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में खर का गौण स्थान रहा है, यह मेरुदण्डीय उप-जगत् के अन्तर्गत अश्व परिवार का सदस्य है.** क्रमेलक, अश्व, धेनु, श्वान आदि सभी पशुओं की मूल उत्पत्ति, आकृति विज्ञान, जाति-वर्गीकरण, क्रिया-कलाप, आहार-विहार, काम-केलि एवं उनकी सामाजिक महत्ता एवं उपयोगिता आदि सभी वैज्ञानिक रीति के साथ प्रस्तुत किये गये हैं, जो लेखक के विशद् ज्ञान के सूचक हैं

मृग के भेदोपभेद का वैज्ञानिक वर्गीकरण संस्कृत साहित्य से अन्वेषित कर यह सिद्ध कर दिया है कि हमारे सुरभारती-समुपासक कितने अनुभवी थे— जो केवल कल्पना में नहीं जीते थे, अपितु सहज अनुभूतियों के माध्यम से अभि-व्यक्तिकरण किया करते थे। गज के पश्चात् मृग का सर्वाधिक वर्णन प्राप्त होता है. पशुओं की तरह पक्षियों का भी वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ वर्गीकरण एवं विवरण प्रस्तुत किया गया है. हारीत एवं कुररी के संदर्भ में लेखक ने अपनी गवेषणात्मक दृष्टि से यह सिद्ध किया है कि हारीत कपोत उपवर्ग का पक्षी तथा

कुररी चटका उपवर्ग का पक्षी है। इनकी स्वाभाविक वृत्तियों का परीक्षण करते हुए अमर भारती भंडार के पक्षी-विज्ञान की महत्ता को गौरव के साथ प्रतिपादित किया है. इस शोध प्रबन्ध में लेखक की महान् भूमिका यह रही है कि प्रत्येक पशु-पक्षी के संदर्भ में महत्वपूर्ण आधुनिक रीति से तालिकायें संयुक्त की हैं–जिनके माध्यम से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि अमुक पशु अथवा पक्षी का कितने बार उल्लेख हुआ है तथा किस कवि ने किस काव्य में पशु अथवा पक्षी को कितना महत्व दिया है। यह सांख्यिकी आज तक कहीं भी उपलब्ध नहीं है और न यह ही जानकारी उपलब्ध है कि किस कवि ने किन किन पशु-पक्षियों का चित्रण किया है।

यह शोध प्रबन्ध वस्तुतः संस्कृत वाङ्मय के लिए महत्वपूर्ण गवेषणात्मक उपलब्धि है. इस ग्रंथ के माध्यम से श्री शर्मा ने समालोचकों की भ्रांतियों को चुनौती देते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि संस्कृत के विद्वान् केवल रुढ़िग्रस्त नहीं हैं और वर्तमान में वैज्ञानिक-स्पर्धा में भी पीछे नहीं हैं, अपितु वैज्ञानिक-स्थितियों को भी पूर्ण रूप से स्पष्ट करने में सशक्त हैं. साथ ही संस्कृत-समाज के अन्य विवेकशील व्यक्तियों के लिए प्रेरणात्मक पंथ अभिप्रेरित किया है, जो वस्तुतः अनुकरणीय एवं गौरव के साथ अभिनन्दनीय है. श्री शर्मा ने अपनी मौलिक सूझ, गवेषणा की रीति एवं सुलझे हुए तर्कों के माध्यम से पशु-पक्षियों की प्रकृतिका विशद् चित्रण चित्रित किया है. यह ग्रंथ केवल संकलन मात्र नहीं है, अपितु पशु-पक्षी विज्ञान एवं संस्कृत-कवियों के योगदान से सम्बद्धित विशद् विवेचना एवं कुतूहलमय जिज्ञासावृत्ति से आपूरित है. संस्कृत साहित्य की शोध-परम्परा में यह प्रथम प्रबन्ध है, जो अपने आप में विषय से सम्बन्धित सकल विज्ञान से परिपूर्ण है. इस प्रबन्ध की शैली सजीव एवं सुबोध है, केवल पांडित्य-प्रदर्शन की लालसा अथवा दुरुहता से मुक्त है.

मेरी मान्यता है कि विद्वान् लेखक का यह शोध-प्रबन्ध अनायास ही संस्कृत एवं अन्य विद्वानों के मध्य समादरणीय व अभिनन्दनीय होगा. मैं लेखक को संस्कृत वाङ्मय में महान् योगदान प्रस्तुत करने के लिये हार्दिक बधाई देता हुआ आशा करता हूं कि वे इसी प्रकार अविरल गति से साहित्य सेवा करते हुए सारस्वत-यश प्राप्त करेंगे.

—आचार्य उमेश शास्त्री
प्राचार्य,
चमड़िया-संस्कृत-कालेज,
फतेहपुर (सीकर)
राजस्थान

सम्मतियाँ व उद्गार

पद्मभूषण आचार्य डा० विश्वबंधु
आदरी-संचालक
विश्वेश्वरानंद-वैदिकशोध-संस्थान
होशिआरपुर (पंजाब)

२४-२-७१

प्रिय डा० शर्मा,

आपका अमूल्य शोध-प्रबन्ध छप रहा है, इस पर हमारे संचालक-महोदय आचार्य विश्वबंधु जी ने अपनी हार्दिक प्रसन्नता अभिव्यक्त करने का मुझे निर्देश दिया है. शुभकामनाओं सहित.

भवदीय
ह० कृ० वे० शर्मा, क्यूरेटर.

●

डा० प्रभुलाल भटनागर,
उपकुलपति

विश्वविद्यालय,
जयपुर
दिनांक १७ फरवरी ७१

प्रिय डा० शर्मा साहिब,

आपका पत्र दिनांक १.२.१९७१ का उपकुलपति जी को प्राप्त हुआ, तदर्थ धन्यवाद. वे अपनी शुभकामनायें प्रेषित करते हैं और आपके प्रयास की सफलता की आकांक्षा करते हैं.

भवदीय—
ह० एम० पी० जैन
उपकुलपति के निजी सचिव



'I have carefully examined the thesis of Dr. Shri Ram Dutt Sharma entitled "Birds and Beasts in Kalidasa and post-Kalidasa Kavyas" and it gives me pleasure to record my high appreciation of the work.

Dr. Sharma's thesis is an original and useful contribution to an important aspect of Sanskrit Kavyas.

–Dr. P. L. Bhargava,
Professor and Head of the Deptt.
Department of Sanskrit
University of Rajasthan,
JAIPUR–4.

●



'विगत कुछ वर्षों से महाकवि कालिदास के विषय में विश्वविद्यालयों और उनके बाहर बहुत कार्य हुआ है. जैसे-जैसे राष्ट्रकवि कालिदास के प्रति श्रद्धा बढ़ी, उनकी रचनाओं का मूल्य अनेक दृष्टिकोणों से आंका गया. इस शृंखला में डा० रामदत्त शर्मा का ग्रंथ 'संस्कृत काव्यों में पशु-पक्षी' आवश्यक महत्व रखता है. डा० रामदत्त जी ने अत्यन्त परिश्रम से संस्कृत के विशाल महाकाव्यों का अध्ययन किया है. इस दिशा में नवीन वैज्ञानिक अध्ययन के उपयोग ने ग्रंथ का मूल्य और अधिक बढ़ा दिया है. जहां तक मेरी जानकारी है, संस्कृत साहित्य समीक्षा में यह प्रयास नया तुलनात्मक और अधिक उपयोगी है. मेरा विश्वास है कि डा० शर्मा के ग्रन्थ से न केवल साहित्य के विद्यार्थियों, अपितु प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति के छात्रों को भी लाभ होगा.

–डा० प्रभुदयालु अग्निहोत्री,
सचालक, हिन्दी-ग्रन्थ अकादमी, मध्यप्रदेश.
भोपाल–३

डा० रामदत्त विरचित 'संस्कृत काव्यों में पशु-पक्षी' नामक शोध-प्रबन्ध उत्तम हैं, इसका विषय नवीन है और प्रतिपादन शैली सचित्र एवं प्रभावक हैं. ग्रंथ के वर्णन मार्मिक हैं और साथ ही प्रामाणिक भी. मैं कामना करता हूं कि संस्कृत-जगत् में डा० रामदत्त के इस अमूल्य एवं मौलिक ग्रंथ का स्वागत होगा।

—डा० सूर्यकान्त,
भूतपूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष
विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र.

●

डा० रामदत्त शर्मा की शोधकृति 'संस्कृत काव्यों में पशु-पक्षी' में संस्कृत-साहित्य में वर्णित पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में सूक्ष्म विवेचन उपलब्ध हो ा है. कवियों ने पशु-पक्षियों की जिन स्वाभाविक क्रियाओं का उपनिबन्धन किया है, उन्हें शोधकर्ता ने पहचाना है और उनके वैशिष्ठ्य को प्रामाणिक विधाओं में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है. साहित्यिक चित्रण को विज्ञान की आधार शिला पर प्रतिष्ठापित करके सत्परीक्षण किया है, अतः यह कहा जा सकता है कि शोधकार ने पशु-पक्षियों को प्राचीन तथा नवीन दृग्बिन्दुओं से देखा है.

शोधकृति पाँच अध्यायों में विभक्त है विषय की सीमा और विस्तार के प्रति जागरूक लेखक ने अभिप्रेत परिप्रेक्ष्यों में चिन्तन-मनन किया हैं और प्रकृति-चित्रण के परिवेश में पशु-पक्षियों की कमनीयता का आकलन किया है. मानव और प्रकृति का अविच्छिन्न सम्बन्ध चिरकाल से कवियों के दर्शन-परीक्षण-सामुन्मीलन का विषय रहा है. मानव की विभिन्न व्यापार परम्पराओं की भूमिका की निर्मिति में पशु-पक्षियों का योगदान स्पष्ट है. शोधकर्ता ने इस सदर्भ में भी सूक्ष्म गवेषणा प्रस्तुत की है. उपसंहार में डा० शर्मा ने पशु-पक्षियों के महत्त्व पर प्रकाश डाला है.

डा० शर्मा का शोध-कार्य प्रशंसनीय है एवं शोधकृति उपादेय है.

—डा० अमरनाथ पाण्डेय,
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी.

डा० रामदत्त शर्मा के शोध-ग्रंथ 'संस्कृत काव्यों में पशु-पक्षी' के कुछ अंश मैंने ध्यान से पढ़े हैं. भारतीय काव्य प्रकृति के निःश्वसित से सप्राण है. आदि काव्य वाल्मीकि-रामायण की उत्पत्ति की प्रेरणा 'क्रौंचवध' में सन्निहित है, जन्तु कथाओं का मूल स्थान भारत है. संस्कृत का शायद ही कोई कवि हो जिसने हंस का वर्णन न किया हो. हंस साहित्य, समालोचना एवं दर्शन तीनों के लिये ही अपने नीर-क्षीर-विवेक और आत्मा के औपम्य के कारण, समान रूप से प्रेरणादायक रहा है.

डा० शर्मा के शोध-ग्रन्थ में कालिदास तथा परवर्ती कवियों द्वारा पशु-पक्षियों के वर्णन का विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन है. मुझे विश्वास है कि उनके ग्रंथ का स्वागत होगा.

—डा० रामचन्द्र द्विवेदी
आचार्य एवं अध्यक्ष
संस्कृत-विभाग, विश्वविद्यालय,
उदयपुर

●

"पशु-पक्षी मुझे प्रिय हैं. संस्कृत-साहित्य में उनका स्थान उदात्त है. आपने उन पर जो कार्य किया है, वह रमणीय है. प्रकाशन पर बधाई !

—डा० रामजी उपाध्याय
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
विश्वविद्यालय, सागर (म०प्र०)

●

आप अपने पी.एच० डी० के शोध प्रबन्ध को प्रकाशित कर रहे हैं, यह जानकर प्रसन्नता हुयी. इस शोध प्रबन्ध के कई अंश समय-समय पर "गुरुकुल-पत्रिका" में प्रकाशित होते रहे हैं. आपका यह ग्रंथ भारी परिश्रम तथा योग्यता का सूचक है, स्तुत्य है, अभिनन्दनीय है.

—भगवद्दत्त वेदालङ्कार
सम्पादक, "गुरुकुल-पत्रिका"
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय.

डा० रामदत्त ने संस्कृत-साहित्य का अवगाहन कर कालिदास की रचनाओं में पशु-पक्षियों का जो गहरा और मनोरञ्जक अध्ययन किया है, वह संस्कृत-साहित्य के प्रेमियों के लिये एक अच्छा संदर्भ कोष सिद्ध होगा.

–डा० प्रभाकर माचवे, नई दिल्ली

●

प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत पशु-पक्षियों का स्थान होने के कारण काव्य के ये अपरिहार्य तत्व हैं. आपका कार्य अपने ढंग का निराला है. इससे महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं.

–डा० ब्रह्मानंद शर्मा
संस्कृत-विभागाध्यक्ष,
गवर्नमेंट कालेज, अजमेर (राज०)

●



मैंने राजस्थान के सृजनशील शोधकर्त्ता डा० रामदत्त शर्मा का शोध ग्रंथ 'संस्कृत काव्यों में पशु-पक्षी' का पूर्ण अवलोकन किया. इस शोध ग्रंथ में विद्वान् लेखक श्री शर्मा ने काव्य-जगत् में प्रकृति-चित्रण की उपादेयता को सिद्ध करते हुये "पशु-पक्षियों" पर वैज्ञानिक एवं साहित्यिक विधाओं के संदर्भ में पूर्ण रूपेण अन्वेषण कर सस्कृत वाङ्मय में एक अभिनव दिशा बोध को जन्म दिया है—जो वस्तुतः श्लाघ्य है. यह शोध-ग्रंथ वस्तुतः भारतीय साहित्य के गौरव का प्रतीक है.

–रामजीलाल शास्त्री
महामंत्री
राजस्थान-संस्कृत संसद्,
जयपुर

डा० शर्मा का यह प्रबन्ध संस्कृत-साहित्य का पशु-पक्षी विषयक प्रथम ग्रंथ है."

नवभारत टाइम्स (१४.३.७०)
नई दिल्ली

*   *   *

"डा० शर्मा का यह प्रबन्ध संस्कृत-साहित्य को एक नई देन है."

राष्ट्रदूत (१६.१.७०) जयपुर

*   *   *

"......"वास्तव में यह ग्रंथ संस्कृत—साहित्य को एक अमूल्य देन है."

जयगुरुदेव (११. ३. ७०) जयपुर

*   *   *

"ग्रंथ केवल तथ्यों का संग्रह मात्र ही नहीं, अपितु अत्यन्त मौलिक एवं संस्कृत-साहित्य शोध—परम्परा का पशु—पक्षी विषयक उत्तम ग्रंथहै ."

चिठ्ठी (६.२.७०) नवलगढ़ (राज०)



संकेतिका

१.	अमर०	....	अमरकोष
२.	अ० वे०	....	अथर्ववेद
३.	अ० ब्रा०	....	अद्‌भुत ब्राह्मण
४.	अ० का०	....	अरण्यकाण्ड
५.	अ० पु०	....	अग्निपुराण
६.	अर०	....	अरण्यकाण्ड
७.	आदि०	....	आदिपर्व
८.	ए० ब्रा०	....	एतरेय ब्राह्मण
९.	ऋक्०	....	ऋग्वेद संहिता
१०.	ऋतु०	....	ऋतुसंहार
११.	का० के० पक्षी०	....	कालिदास के पक्षी
१२.	का० सं०	....	काठक संहिता
१३.	किरात०	....	किरातार्जुनीयम्
१४.	कुमार०	....	कुमारसम्भवम्
१५.	तै० सं०	....	तैत्तिरीय संहिता
१६.	द० च०	....	दशकुमार चरित
१७.	ना० शा०	....	नाट्यशास्त्र
१८.	बु० च०	....	बुद्धचरित
१९.	भा०	....	भाग
२०.	भा० का० अ०	....	भारविकाव्य म अर्थान्तरन्यास
२१.	भीष्म०	....	भीष्मपर्व
२२.	महा०	....	महाभारत
२३.	मै० सं०	....	मैत्रायणी संहिता
२४.	मालविका०	....	मालविकाग्निमित्र
२५.	मेघ०	....	मेघदूत
२६.	यु०	....	युद्धकाण्ड (वाल्मीकि-रामायण)
२७.	रघु०	....	रघुवंश
२८.	विक्रम०	....	विक्रमोर्वशीयम्
२९.	वन०	....	वनपर्व (महाभारत)

३०.	वा० रा०	....	वाल्मीकि रामायण
३१.	वा० स०	....	वाजसनेयी संहिता
३२.	वै० को०	....	वजयन्ती कोश
३३.	वै० मा०	....	वैदिक माइथोलोजी
३४.	श० ब्रा०	....	शतपथ ब्राह्मण
३५.	शाकु०	....	शाकुन्तलम्
३६.	शिशु०	....	शिशुपालवधम्
३७.	सं० सा० इ०	....	संस्कृत-साहित्य का इतिहास
३८.	सा० सं०	....	सामवेद संहिता
३९.	सौ० नं०	....	सौन्दरनन्दम्
४०.	ह० च०	....	हर्षचरितम्
४१.	हि० वि० को०	....	हिन्दी-विश्व-कोश
English—			
४२.	वै० इ०	....	Vedic Index
४३.	इन० ब्रि०	....	Encyclopaedia Britannica
४४.	इन० चेम्बर०	....	Encyclopaedia Chambers
४५.	इन० वर्ड०	....	World Book Encyclopaedia
४६.	सं० इ० डि०	....	Sanskrit-English-Dictionary
४७.	इ० सं० डि०	....	English Sanskrit-Dictionary
४८.	द० स० ए०	....	The Story of Animal Life
४९.	ए० किंग०	....	Animal Kingdom
५०.	पा० हैण्ड	....	Pioneer Hand Book of Indian Birds
५१.	ब० ओ० सौ०	....	Birds of Saurashtra
५२.	दि० इ० बर्ड्स	....	The Book of Indian Birds
५३.	द० ब० ट्रा० को०	....	The Birds of Travancore & Cochin
५४.	का०हि०प०प०प०	....	Kalidasa: his Period, Personality & Poetry

* * *

काव्य एवं काव्यकार

१ | काव्य एवं काव्यकार

काव्य क्या है ?

काव्य क्या है ? यह एक बड़ा ही विवादास्पद एवं समस्यापूर्ण प्रश्न है, जिस पर विभिन्न विद्वानों ने अपनी लेखनी चलाई है. अतः काव्य के बारे में अब कुछ कहना पिष्टपेषणमात्र सा लगता है किन्तु फिर भी काव्यों के विषय में विचार करते समय काव्य की परिभाषा पर विचार करना यहाँ औचित्यपूर्ण होगा, अतः उसी को कहते हैं.

'काव्य' शब्द का अर्थ कवि की रचना है अर्थात् कवि द्वारा जो कार्य किया जावे उसे काव्य कहते हैं.[1] अतः कवि जिस किसी विषय का चमत्कारी सामाजिकों का हृदयहारी वर्णन जिन शब्दों में करता है, वे शब्द ही काव्य हैं.

काव्य की चर्चा करते समय 'कवि' के लक्षण पर विचार करना भी यहाँ आवश्यक है. 'कवि' शब्द साहित्य में एक प्राचीन शब्द है जिसे विद्वानों ने 'कवृवर्णे' एवं 'कुङ्' धातुओं से व्युत्पन्न किया है.[2] शब्दकल्पद्रुम व अमरकोष में सर्वज्ञ एवं सम्पूर्ण विषयों के वर्णन करने वाले को कवि कहा है.[3] कवि शब्द का अर्थ इतना व्यापक होने के कारण इसे प्रारम्भ से ही बड़ा उच्च स्थान प्राप्त हो गया था. शुक्ल-यजुर्वेद में कवि शब्द का प्रयोग

---

1. 'कमनीयं काव्यम्'—ध्वन्यालोक (लोचन), कवयतीति कविः तस्य कर्मः काव्यम्'— एकावली (विद्याधर), कवेरिदं कार्यभावो वा'—
मेदिनीकोशः
2. 'कविशब्दस्य कवृवर्णे इत्यस्य धातोः काव्यः कर्मणो रूपम्'
—काव्यमीमांसा
3. 'कवते सर्वं जानाति सर्ववर्णयतीति कविः'—शब्दकल्पद्रुम.
'कवते श्लोकान् प्रथते वर्णयति वा कविः'—इत्यमरः ।

मिलता है.[4] बाद में श्रीमद्भागवत् रामायण व महाभारत में तो कवि शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होने लगा.[5] वाल्मीकि रामायण के प्रणेता 'आदि-कवि' एवं काव्य 'आदि काव्य' कहा जाने लगा.[6] महाभारत के प्रणेता ने 'कृतं येदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्'–वाक्य कहकर कवि एवं काव्य की चर्चा की है.[7] वेदव्यास जी ने कवि को उच्च स्थान देते हुये लिखा है कि काव्यरूपी अपार विश्व में कवि ही प्रजापति है एवं उसे यह विश्व जिस रूप में रुचिकर लगता है वह उसी प्रकार परिवर्तित हो जाता है,[8] अतः 'कवि' शब्द प्रतिभा सम्पन्न विशिष्ट असाधारण रचना करने वाले विद्वान् के अर्थ में लिया गया है.

काव्य एवं कवि के सामान्य लक्षण पर विचार करने के पश्चात् अब हम विभिन्न विचारकों द्वारा दिये गये काव्य–लक्षण पर विचार करेंगे. काव्य लक्षणकारों में निम्नलिखित आचार्य प्रमुख हैं : —

१. भरत २. वेदव्यास (अग्निपुराणकार) ३. भामह ४. दण्डी ५. वामन ६. रुद्रट ७. आनन्दवर्धन ८. कुन्तक ९. भोज १०.मम्मट ११. हेमचन्द्राचार्य १२. विद्यानाथ १३. वाग्भट्ट-प्रथम. १४. वाग्भट्ट-द्वितीय १५. जयदेव १६. विश्वनाथ १७. गोविन्दठक्कुर एवं १८. पण्डितराज जगन्नाथ.

१. **नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरत**—काव्य का लक्षण प्रस्तुत करने वालों में महामुनि भरत का प्रथम स्थान है. नाट्य शास्त्र के १६वें अध्याय के ११८वें श्लोक में महामुनि ने काव्य की सात विशेषताओं पर प्रकाश डाला है.[9]

---

4. 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयं भूः ।'—यजुर्वेद 40/8.
5. 'तेन ब्रह्म हृदाय आदि कवये' - भागवत 1/1/1.
6. महाभारत० 1/61.
7. 'इत्यार्षे आदिकाव्ये'—वा० रा० (प्रत्येक संर्गान्त में) ।
8. अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः ।
   यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।।
   —अग्निपुराण 339/10.
9. मृदुललितपदाढ्यं गूढ़ शब्दार्थहीनं,
   जनपदसुखबोधं युक्तिमन्नृत्ययोग्यम् ।

वह उत्तम काव्य है.—

१. जो कोमल व मनोहर पदों से युक्त हो

२. गूढ़ शब्द एवं गूढार्थ से हीन हो.

३. सामान्य लोगों के समझने योग्य हो.

४. युक्ति–युक्त हो.

५. नृत्य में उपयोग करने योग्य हो.

६. अनेक रसों का स्रोत हो एवं

७. सन्धियों के सन्धान सहित हो.

महामुनि भरत के इस काव्य लक्षण में प्रथम व द्वितीय विशेषणों में शब्द व अर्थ का ग्रहण है. प्रथम तीन विशेषताओं में माधुर्यादि गुणों का समावेश है. छठे विशेषण में रस, चतुर्थ में सम्भवतः अलङ्कारादि एवं पञ्चम व सप्तम विशेषताओं में नाटक इत्यादि का ग्रहण है. अतः उक्त लक्षण में शब्दार्थ गुण, रस, अलङ्कार व नाटकादि का ग्रहण हैं.

२. अग्निपुराणकार वेदव्यास—वेदव्यासजी ने काव्य की परिभाषा देते हुये विषय को सुन्दर ढंग से प्रतिपादन करने वाले सुव्यवस्थित पद समूहात्मक वाक्य को जो दोष रहित, गुण सहित एवं अलंकार युक्त हो, काव्य कहा है. [10]इस प्रकार व्यासजी ने अर्थ, गुण एवं अलङ्कारों की काव्य में उपस्थिति तो बतलाई ही है साथ ही दोषी साहित्य की भी चर्चा उन्होंने की है.

३. भामह —भामह ने उस रचना को काव्य कहा है जो शब्द व अर्थ से युक्त हो अर्थात् उनके मन में शब्द और अर्थ दोनों ही काव्य हैं.[11]

बहुकृतरसमार्गं सन्धिसन्धानयुक्तम्,
स भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेक्षकाणाम् ॥

ना० शा० 16/118

10. 'संक्षेपपादवाक्यमिष्टार्थं व्यवच्छिन्नापदावली ।
काव्यं स्फुरदलङ्कार गुणवद्दोषवर्जितम् ॥

—अ० पु० पृ० 337/6–7

11. 'शब्दार्थो सहितौ काव्यम्'—काव्यालङ्कार 1 16

४. दण्डी–काव्यादर्श के प्रणेता दण्डी ने मनोरम अर्थ से विभूषित अर्थ को काव्य का शरीर माना है.[12] काव्यादर्श में दण्डी ने गुण व अलंकार युक्त शब्दार्थ को ही काव्य माना है. ये काव्य में अल्प मात्र भी दोष स्वीकार नहीं करते.[13]

५. वामन—वामन दण्डी के उत्तरवर्ती काव्य लक्षणकार माने गये हैं. उन्होंने काव्य को अलङ्कार के योग से ही उपादेय कहा है.[14] उनके अनुसार सौन्दर्य के आधायक तत्त्व का नाम ही अलङ्कार है.[15] ये दोषों से रहित गुण व अलङ्कारों से सुसज्जित काव्य को सौन्दर्य का कारण मानते हैं.[16] इस प्रकार वामन ने शब्द, गुण एवं अलङ्कार युक्त शब्दार्थ समूह को काव्य कहा है. वामन ने ही आगे चलकर 'रीतिरात्मा काव्यस्य" कहकर रीति को काव्य का शरीर माना है.[17] इस प्रकार रीति की चर्चा यहां पूर्ववर्ती आचार्यों की अपेक्षा वैशिष्ठ्य रखती है.

६. रुद्रटः—वामन का अनुकरण करते हुये रुद्रट ने 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्' लिखकर शंका की है.[18] अतः वे भी दोष रहित और अलङ्कार युक्त शब्दार्थ को काव्य कहते हैं, उन्होंने काव्य में इस की स्थिति को परमावश्यक माना है.[19]

७. आनन्दवर्धनः—ध्वनिमार्ग के प्रवर्तक आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है.[20] यद्यपि आनन्दवर्धन ने काव्य

---

12. 'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ।' —काव्यादर्श० 1/10
13. 'तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथंचन स्याद्वपुः सुन्दरमपि ।' —वही० 1/7
14. 'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्'—काव्यालङ्कार सूत्र ।
15. 'सौंदर्यमलङ्कारः ।' —वही० 1/1/2
16. स दोष गुणालङ्कारहानादानाभ्याम् ।' —वही० 1/1/3
17. यथोपरि० 1/2/6.
18. काव्यालंकार 2/1.
19. तस्मातत्कर्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम् ।' —यथोपरि० 12/2 पृ० 150
20. 'काव्यस्यात्माध्वनिरिति ।' —ध्वन्यालोक 1/1

लक्षण का विस्तृत उल्लेख नहीं किया है किन्तु उन्होंने भी शब्दार्थ युगल को ही काव्य स्वीकार किया है. [21]

८. कुन्तक:—ध्वन्यालोक के पश्चात् 'वक्रोक्तिजीवितम्' के प्रणेता कुन्तक ने शब्द एवं अर्थ दोनों को 'काव्य' स्वीकार किया है एवं भामहादि का अनुकरण किया है, [22] परन्तु कुन्तक ने उक्ति वैचित्र्यवाले शब्द एवं अर्थ को ही काव्य माना है. [23] अत: उनके मत में उक्ति वैचित्र्य का स्थान प्रमुख है. उक्ति वैचित्र्य से रहित शब्दार्थ मात्र काव्य नहीं कहा जा सकता.

९. भोज:—धाराधिपति भोज ने काव्य का कोई स्पष्ट लक्षण प्रस्तुत नहीं किया है किन्तु वे दोषरहित, गुणयुक्त, अलंकृत एवं रसात्मक काव्य को स्वीकार करते हैं, जिसका उल्लेख उन्होंने कवि की कीर्ति पर प्रकाश डालते हुए किया है. उनके अनुसार वह कवि जो निर्दोष, गुणयुक्त, अलंकृत एवं रसपूर्ण रचना का निर्माण करता है, कीर्ति को प्राप्त होता है. [24]

१०. मम्मट:—काव्य प्रकाश के प्रणेता मम्मटाचार्य ने पूर्ववर्ती काव्य-कारों के लक्षणों को ध्यान में रखते हुये एक ऐसी परिभाषा प्रस्तुत की है जिसमें सभी काव्य लक्षणों का समावेश सा प्रतीत होता है. उन्होंने दोष रहित, गुण एवं अलंकार युक्त एवं कहीं स्फुट अलङ्कार न भी हो ऐसे शब्दार्थ को काव्य माना है. मम्मट काव्य में अलङ्कार की अनुपस्थिति में भी काव्यत्व स्वीकारते हैं. अलङ्कार के विषय में उनका मत है कि अलङ्कारों का काव्य में उपस्थित होना आवश्यक है किन्तु किसी स्थल पर स्पष्टालंकार की अनुपस्थिति से भी काव्यत्व में कमी नहीं आती. [25]

---

21. 'शब्दार्थ शरीरन्तावद् काव्यम् ।'—यथोपरि० पृ. 5
22. 'न शब्दस्यैव रमणीयताविशिष्टस्य केवलस्य काव्यत्वं नाप्यर्थस्येति ।'
—वक्रोक्ति जीवितम् पृ० 24 ।
25. 'शब्दार्थौ सहितो वक्रकविव्यापारशालिनि
बन्धे व्यवस्थितो काव्यं तत्विदाह्लादकारिणी 1 वक्रोक्ति जीवितम् 1/7
24. 'निर्दोषं गुणतत्काव्यलङ्कारैरलंकृतम् ।
रसन्वितं कवि कुर्वं कीर्ति प्रीति च विन्दति । सरस्वती कण्ठाभरण 1/2
25. 'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वपि ।'
—काव्यप्रकाश सूत्र 1/1

११. हेमचन्द्राचार्यः—आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन के प्रथमोध्याय में दोष रहित, गुणयुक्त, अलंकृत शब्द एवं अर्थ को काव्य कहा है.[26] अतः हेमचन्द्राचार्य ने भी युगल को स्वीकार किया है.

१२. विद्यानाथः—प्रतापरुद्र यशोभूषण के प्रणेता विद्यानाथ ने भी हेमचन्द्राचार्य के काव्य लक्षण से साम्य रखने वाला काव्य लक्षण देते हुये गुण एवं अलङ्कार सहित एवं दोषरहित शब्दार्थ को काव्य कहा है.[27]

१३. वाग्भट्ट-प्रथमः—प्रथम वाग्भट्ट ने ऐसे शब्दार्थ को, जो गुण एवं अलङ्कार से भूषित और रीति एवं रस से युक्त ही काव्य कहा है.[28] इस प्रकार वाग्भट्ट ऐसे आचार्य है जिन्होंने मम्मट एवं वामन के काव्य लक्षण को ही एक परिवर्तित रूप से हमारे सम्मुख रखा है.

१४. वाग्भट्ट-द्वितीयः—आचार्य वाग्भट्ट द्वितीय का लक्षण मम्मट का अनुसरण मात्र प्रतीत होता है उनके मत से दोषरहित, गुणयुक्त एवं प्रायः अलङ्कार युक्त शब्दार्थ युगल ही काव्य है.[29] उन्होंने मम्मट की भाँति "प्रायः सालङ्कारौ" कहकर आवश्यक तो माना है परन्तु परमावश्यक नहीं माना है.[30]

१५. जयदेवः—चन्द्रालोक के प्रणेता जयदेव ने—

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता ।
सालङ्कार रसानेकवृत्तिवाक्काव्य नामभाक् ।।

—कहकर काव्य में सभी विषयों को समावेश कर दिया है क्योंकि

---

26. 'अदोषौ सगुणौ सालङ्कारो च शब्दार्थो काव्य'

—काव्यानुशासन 1/6

27. गुणालंकार सहितौ शब्दार्थो दोषवर्जितो काव्यम् ।'

—प्रतापरुद्र यशोभूषणे.

28. साधुशब्दार्थ सन्दर्भं गुणालङ्कार भूषितम् ।
स्फुटरीतिरसोपेतं काव्यं कुर्वीत कीर्तये ।।

—वाग्भटालंकार 1/2

29. 'शब्दार्थो निर्दोषौ सगुणौः प्रायः सालंकारौ काव्यम्

—काव्यानुशासने.

30. चन्द्रालोके 1/7

उन्होंने 'वृत्ति' को माना है.

१६. विश्वनाथ:—साहित्य दर्पण के प्रणेता आचार्य विश्वनाथ काव्य शास्त्र के प्रमुख आचार्यों में से एक हैं. आचार्य विश्वनाथ ने पूर्ववर्ती काव्यलक्षणकारों के मतों का सम्यक् अध्ययन कर काव्य की एक संक्षिप्त परिभाषा दी है. उन्होंने केवल रसभाव आदि असंलक्ष्य क्रम व्यंग्यार्थों की उपस्थिति को काव्य में आवश्यक माना है. अलङ्कारों को उन्होंने स्वरूपाधायक न मानते हुये केवल उत्कर्ष के कारण माना है. विश्वनाथ रसात्मक वाक्य को काव्य मानते है.[31] उनका यह लक्षण सुद्योदनि की 'काव्यरसादिमद् काव्यम्' कारिका पर निर्भर करती है.[32] उस कारिका में 'रसादि' में अलङ्कारादि का ग्रहण किया गया है किन्तु विश्वनाथ केवल रसात्मक वाक्य को ही काव्य मानते है. उनके रस में 'रस्यते इति रसः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार रूप शब्द का जो आस्वादित हो, इस यौगिक अर्थ के अनुसार भाव एवं भावाभास का भी ग्रहण हो जाता है.

१७. गोविन्द ठक्कुर:—गोविन्द ठक्कुर मूलकार नहीं, उन्होंने तो मम्मट के काव्य प्रकाश की टीका लिखते हुये स्पष्ट किया है कि यद्यपि मम्मट ने सही एवं स्पष्ट अलङ्कार रहित शब्दार्थ युगल को काव्य स्वीकार किया है किन्तु उनकी यह मान्यता समुचित नहीं कही जा सकती कारण कि रस एवं अलङ्कार ही काव्य में चमत्कार के कारण होते हैं। अतः इन दन दोंनो की अनुपस्थिति में चमस्कार कैसे आ सकेगा ? यदि चमत्कार का अभाव होगा तो हम उसे काव्य कैसे कहेंगे कारण कि चमत्कार ही काव्याधार है. अतएव हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि सरस स्थल में भले ही स्पष्ट अलङ्कार न हो किन्तु अन्यत्र अलङ्कार की उपस्थिति आवश्यक है.[33]

१८. पण्डितराज जगन्नाथ:- काव्य शास्त्र के प्रमुख प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ ने अत्यन्त सुन्दर एवं तार्किक ढंग से काव्य के लक्षण पर विचार किया है. उन्होंने सभी प्राचीन विचारकों के मत पर दृष्टिपात करने के अननन्तर रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य स्वीकार किया है. पण्डितराज को शब्द व अर्थ दोनों को काव्य कहा जाना स्वीकार्य नहीं और न ही काव्य के लक्षण में दोषराहित्य, गुण व अलङ्कारादि का प्रयोग

---

31 वाक्यं रसात्मकं काव्यम्—सा० दर्पण 1/3
32. अलंकार शेखर
33. देखिये—रस गंगाधर भूमिका (चौखम्भा 1955)

किया जाना ही. वे रमणीयता का सम्पूर्ण मूलकारण केवल रस को नहीं मानते एवं वाच्य, लक्ष्य एवं व्यंग्य इन तीनों अर्थों को काव्यसौन्दर्य का समुचित कारण स्वीकार करते है.[34] कुछ भी हो फिर भी जगन्नाथ का काव्य लक्षण काव्य जगत् में अपना विशिष्ट स्थान रखता है.

पण्डितराज काव्य शास्त्र परम्परा के अन्तिम आचार्य माने गये हैं. उनके बाद काव्य लक्षण के विषय में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं कही गयी.

इस प्रकार हमने विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों के काव्य लक्षणों पर एक विचार किया. अब हमारे सम्मुख प्रमुख प्रश्न यह आता है कि इन सब काव्य लक्षणों में से कौन सा लक्षण तार्किक एवं सर्वमान्य है. अतः इसी पर विचार करेंगे.

ऊपर किये गये विवेचन में हमने देखा कि काव्य का लक्षण समय-समय पर परिवर्तित एवं परिवर्धित होता रहा है. विषय विशेष की आलोचना तो भामह के समय से ही होती रही है किन्तु काव्य लक्षण के विषय में आलोचन प्रस्तुत करने वालों में वामन का प्रथम स्थान रहा है. वामन के पूर्ववर्ती भामहादि द्वारा दिये गये काव्य लक्षण में 'शब्दार्थों' का प्रयोग किया गया है. उसे वामन ने लाक्षणिक प्रयोग बताया है एवं शब्दार्थ को काव्य का शरीर बतलाकर 'रीति' को काव्य की आत्मा कहा है. इस प्रकार वामन ने भामहादि (जो काव्य में अलङ्कार की प्रधानता दे रहे थे) के मतों को गौण मानकर रीति को प्रधान माना है, किन्तु वामन का यह मत भी कटु आलोचना का शिकार हुआ है काव्यप्रकाशकार मम्मट ने जो अपने ग्रंथ के अष्टमोल्लास में गुणों व रीतियों की चर्चा की है. इस प्रसंग में वे कहते हैं कि वामन ने काव्य-सौन्दर्य के उत्पादक धर्म गुणों एवं इसके अभिवर्धक धर्म अलङ्कारों को स्वीकार किया है, परन्तु वामन का यह कथन युक्ति संगत नहीं. वे इसके लिए दो विकल्प रखते हैं-—

(i) क्या समस्त ग्रंथों से काव्य व्यवहार हो सकता है ?

(ii) क्या कतिपय गुणों से ही काव्य व्यवहार संम्भव है ?

इन विकल्पों पर विचार करते हुये वे कहते हैं कि यदि प्रथमपक्ष के अनुसार समस्त गुणों की उपस्थिति से ही काव्य व्यवहार होता है तो समस्त गुणों से रहित गौड़ी एवं पाञ्चाली रीति काव्य की आत्मा कैसी

---

34. रमणीयार्थ प्रतिपादकशब्दः काव्यम्—यथोपरि—प्रथमानन.

मानी जा सकती है. यदि द्वितीय पक्ष अर्थात् कतिपय गुणों के होने से भी काव्य व्यवहार हो सकता है तो फिर रसविहीन काव्य लक्षण रहित काव्यों को ओज इत्यादि कतिपय गुणों के होने से ही काव्य व्यवहार होने लगेगा जो स्वीकार्य नहीं. अतः वामन का रीति को काव्य की आत्मा कहना उचित नहीं.[35] वामन के पश्चात् ध्वनिकारों ने ध्वन्यालोक के प्रारम्भ में ही काव्य के लक्षण के विषय में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के विभिन्न मतों पर विचार करके और उस पर विस्तार के साथ आलोचनात्मक विवेचन करके व्यंग्यार्थ या ध्वन्यार्थ को काव्य की आत्मा कहा है, परन्तु पुस्तक वक्रोक्ति-जीवित में ध्वनि का स्थान विशेष करने का प्रयास किया है किन्तु वे ऐसा करने में सफल नहीं हो पाये हैं.

तदनन्तर काव्यप्रकाश का काव्य लक्षण आलोचना का विषय बना. चन्द्रालोक में जयदेव ने मम्मट के 'अनलंकृती' पर 'जो विद्वान् अलङ्काररहीन शब्दार्थ को काव्य स्वीकार करते हैं वे आग को भी गर्मी रहित क्यों नहीं मानते', [36] कहकर बड़ा मजाक उड़ाया है, परन्तु यहाँ जयदेव स्वयं गलती कर गये हैं. मम्मट ने वृत्ति में स्वयं 'अस्फुट अलंकार' लिख दिया है. काव्य में सर्वत्र स्फुटालङ्कार की स्थिति तो कोई भी सिद्ध नहीं कर सकता. अतः जयदेव की आलोचना प्रलाप मात्र है.

जयदेव के बाद साहित्यदर्पण में विश्वनाथ ने काव्य प्रकाशकार के काव्य लक्षण के प्रत्येक पद में दोष निकालने का प्रयास किया है. उनके तर्क इस प्रकार हैं—(i) 'अदोषों' पर आलोचना करते हुये विश्वनाथ ने कहा है यदि दोषरहित शब्दार्थ को काव्य माना जायेगा तो काव्य का सर्वथा दोष रहित होना तो अत्यन्त दुर्लभ है.

(२) 'शब्दार्थौ' व 'सगुणौ' दोनों एक दूसरे के विशेषण है अतः ऐसे शब्द एवं अर्थ जो गुणयुक्त हों, काव्य कहे जा सकते हैं. आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि गुण रस में रहते हैं शब्द एवं अर्थ में नहीं. अतएव

35. देखिये–काव्यप्रकाश पृ० 385.
36: 'अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थवनलंकृति'
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमलंकृती. —चन्द्रालोक १/८

मम्मट का यह लक्षण निर्दोष नहीं. उनको 'सगुणौ' के स्थान पर 'सरसौ' का प्रयोग करना चाहिये था.

(३) 'अनलंकृति' के विषय में विश्वनाथ कहते हैं कि जब मम्मट अलङ्कारों को आभूषणों की भाँति वाह्यशोभाधायक मानते हैं फिर 'अनलंकृती' कहकर उन्होंने काव्य में अलङ्कारों का समावेश किया है, वह उचित नहीं.

वास्तव में विश्वनाथ ने बाल की खाल निकालने का प्रयास किया है. इन सभी समस्याओं के उत्तर मम्मट ने इस प्रकार दिये हैं—

(१) यह सत्य है कि सर्वथा निर्दुष्ट काव्य नहीं हो सकता. मम्मट ने 'न्यक्कारोह्यभेव' इत्यादि जो उत्तम काव्य का उदाहरण दिया है उसे भी आनन्दवर्धन ने उत्तम काव्य ध्वनि का उदाहरण स्वीकार किया है. अतएव इसमें काव्यत्व का अभाव स्वीकार नहीं किया जा सकता. अतः ऐसे काव्यों में काव्यप्रकाशोक्त लक्षण को 'अदोषौ' के प्रयोग द्वारा व्याप्ति होने के कारण इस लक्षण में अव्याप्ति दोष है. काव्यप्रकाश में 'न्यक्कारोह्यमेव' इस पद्य को 'अविमृष्ट विधेयांश' दोष कहा गया है. यहाँ वाक्यगत दोष बताया गया है न कि व्यंग्यार्थ में. क्योंकि व्यंग्यार्थ के चमत्कार में किसी प्रकार की बाधा नहीं है अतः इस पद्य में वाक्यगत दोष होते हुये भी व्यंग्यार्थ का वैचित्र्य होने के कारण मम्मटाचार्य के लक्षण में अव्याप्ति नहीं है अतः विश्वनाथ का आरोप निर्मूल है, निराधार है.

(२) विश्वनाथ के दूसरे आक्षेप के उत्तर में कहा गया है कि यहां 'शब्दार्थौ' का जो प्रयोग किया गया है उसके द्वारा वाच्य, लक्ष्य एवं व्यग्य तीनों प्रकार के अर्थों का ग्रहण किया गया है. जब व्यंग्यार्थ द्वारा रस का ग्रहण हो जाता है तो फिर 'सरसौ' के प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती. अतएव आचार्य विश्वनाथ का द्वितीय तर्क भी स्वीकार्य नहीं. दूसरे यदि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' विश्वनाथ के इस काव्य लक्षण पर ही विचार करें तो यहाँ बहुव्रीहि समास हो सकता है एव बहुव्रीहि में अन्य पद प्रधान होता है. अतः 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' में अन्यपद वाक्य प्रधान है. अतः लक्षण का अर्थ हुआ—'रस है आत्मा जिसकी ऐसा 'वाक्य' काव्य है, किन्तु वाक्य भी तो शब्द विशेष है. अतएव आचार्यजी भी शब्द विशेष को काव्य कहते हैं. वास्तव में शब्द तो आकाश का गुण है उसका ज्ञानस्वरूप रस के साथ कोई सम्बन्ध नहीं. यदि इसे उत्तर में यह कहा जाय कि 'शब्द में रस की स्थिति नहीं' तो फिर वाक्य को रसात्मक किस प्रकार कहा जा सकता है और वह अस्तित्व रहित वस्तु उसकी आत्मा कैसे हो सकती है. यदि शब्द के साथ रस का परम्परागत सम्बन्ध माने तो फिर मम्मट

के 'शब्दार्थों' पर छींटाकसी करना उचित नहीं. अतः विश्वनाथ स्वयं के शब्दों में ही भटक गये हैं.

(3) 'अनलंकृती' के विषय में साहित्यदर्पणकार मम्मट के कथन को समझ ही नहीं पाये हैं, मम्मट ने ही नहीं अपितु प्रायः सभी साहित्याचार्यों ने अलङ्कार से युक्त रचना को काव्य स्वीकार किया है. स्वयं विश्वनाथ ने अलङ्कारों को काव्य माना है एवं साहित्य दर्पण के दशम परिच्छेद में अङ्ककारों का निरूपण किया है. अतः विश्वनाथ मम्मट के काव्य लक्षण को दोषी ठहराने में सर्वथा असफल रहे हैं. इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि विश्वनाथ का वाच्य लक्षण भी सर्वथा निर्दुष्ट नहीं है.

रसगंगाधर के प्रणेता आचार्य जगन्नाथ मम्मट के उत्तरवर्ती साहित्याचार्य हैं. उनके मत में लोक व्यवहार के प्रमाणों द्वारा केवल शब्द विशेष का ही काव्य होना सिद्ध होता है क्योंकि लोक व्यवहार में 'काव्य से अर्थ समझा जाता है।' 'काव्य सुना तो सही पर अर्थ समझ में नहीं आया' इत्यादि वाक्यों का प्रयोग होता है. इस तथ्य के आधार पर उन्होंने मम्मट की आलोचना की है कि उन्होंने (मम्मट) अर्थ में किस प्रकार काव्यत्व माना है अर्थात् उन्होंने 'शब्दार्थों' कैसे कहा है.

पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा दिये गये इस आक्षेप का खण्डन नागेशभट्ट (रसगंगाधर के टीकाकार) ने संक्षिप्त में करते हुए कहा है कि लोक व्यवहार में 'काव्य पढा' 'काव्य सुना' इत्यादि कहा जाता है उसी प्रकार 'काव्य समझा' इस प्रकार भी लोक व्यवहार में कहा जाता है. 'समझना केवल अर्थ का ही होता है न कि शब्द का. अतः केवल शब्द को काव्य नहीं कहकर 'शब्दार्थ' को ही काव्य कहा जाता है, इसके अतिरिक्त आचार्य जगन्नाथ एक आक्षेप और करते हैं कि मम्मट ने काव्य लक्षण में गुण व अलंकार का ग्रहण क्यों किया ? किन्तु आगे चलकर रसगंगाधर ने इस बात को निर्बल समझते हुये काव्य एवं रस के धर्मों का नाम, गुण एवं काव्य के शोभाधायक का नाम अलङ्कार माना जावे तो उसका प्रयोग काव्य लक्षण में किया जा सकता है.[37] इस प्रकार हमने देखा कि विभिन्न साहित्याचार्यों ने शब्द, अर्थ, गुण, अलकार, रस, ध्वनि, वक्रोक्ति एवं रीति से युक्त कवि की रचना को जो कि दोषों से पूर्णतः या अंशतः मुक्त हो, काव्य कहा है.

---

37 : **काव्यजीवितं चमत्कारित्वं चावशिष्टमेव ।'**
गुणत्वालङ्कारत्वादेरननुगमाच्च ।'—

—रस गंगाधरे प्रथमानने

इन सभी साहित्याचार्यों की अन्य साहित्याचार्यों ने आलोचना की है एवं अपने मतको सर्वोपरि सिद्ध करने का प्रयास किया है, परन्तु ऊपर दिये विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि मम्मटाचार्य का काव्य लक्षरा इन सभी काव्य लक्षरों की साम्यावस्था है एवं आलोचना के क्षेत्र में सफलता की ओर बढ़ता प्रतीत होता है. सभी काव्य लक्षणकारों के मत का प्रतिपादन करने के पश्चात् विभिन्न आलोचनाकारों ने मम्मट के काव्य लक्षरा को अधिक सार्थक उचित एवं तार्किक कहा है. सेठ कन्हैया लाल पोद्दार द्वारा लिखित 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ के द्वितीय भाग में—'इस विवेचन द्वारा स्पष्ट है कि काव्य-प्रकाशोक्त काव्य लक्षरा ी आलोचना की कसौटी पर उत्तीर्ण होकर निर्दोष प्रमाणित हो सकता है.'—इस वाक्य में मम्मट के काव्य लक्षरा को उचित माना है.[38]

काव्य प्रकाश के प्रसिद्ध व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि ने प्रथम उल्लास में मम्मट के काव्य लक्षरा के विषय में—'इस प्रकार थोड़े शब्दों में भावगाम्भीर्य के द्वारा मम्मट ने अपने काव्य लक्षरा को अत्यन्त सुन्दर एवं उपादेय बना दिया है'—कहकर मम्मट के काव्य लक्षरा को ही उपादेय कहा है.[39] काव्यप्रकाश की भूमिका में भामह का 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यं' वाला लक्षरा और अलंकृत और अधिक परिमार्जित होकर तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृति पुनः क्वापि' के रूप में 'काव्य प्रकाश में भी मौजूद है. गत १२०० वर्षों में किये गये काव्य लक्षरों का सार मम्मट ने अपने इस काव्य लक्षरा के भीतर समाविष्ट कर दिया है—कहकर विश्वेश्वर ने मुक्तकंठ से मम्मट के काव्य लक्षरा की प्रशंसा की है.[40]

अतः मम्मट के काव्य लक्षरा को उत्तम स्वीकार करने में कोई बाधा प्रतीत नहीं होती.

काव्य के भेद

काव्य के लक्षरा के समान काव्य के भेद का प्रश्न भी विवादास्पद है। विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने स्वार्थानुसार काव्य के भेदों को प्रस्तुत किया है। काव्य शास्त्र के विद्वानों ने काव्य को अनेक प्रकार से विभाजित किया है। मम्मट

---

38. संस्कृत साहित्य का इतिहासःसेठ, भाग 2 पृ० 51.
39. काव्यप्रकाश—विश्वेश्वर पृ० 28.
40. यथोपरि. पृ० 73 भूमिका

ने काव्य के मुख्य तीन भेद माने हैं:—[41]

(i) ध्वनि-काव्य या उत्तम काव्य ।

(ii) गुणीभूत व्यंग्य या मध्यम काव्य ।

(iii) चित्र-काव्य या अधम काव्य ।

ध्वनि संप्रदाय के विचारकों ने इन तीन भेदों में से प्रथम अर्थात् ध्वनि काव्य के पुनः तीन भेद किये हैं वे हैं:—

(i) रस ध्वनि (ii) अलंकार ध्वनि (iii) वस्तु ध्वनि

अन्य विचारकों ने काव्य के अन्य कई प्रकार के भेदों का उल्लेख किया है जिनका यहां वर्णन करना संभव नहीं ।

सामान्य रूप में काव्य को तीन प्रकार का माना गया है:—

1. उपजीव्य काव्य 2. श्रव्य काव्य 3. दृश्य काव्य

(i) **उपजीव्य काव्य**:—संस्कृत-साहित्य के वे काव्य जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा लेकर अवान्तरकालीन कविगण ने अपने काव्यों को सजाया है, ऐसे काव्यों को हम व्यापक प्रभाव सम्पन्न होने के हेतु 'उपजीव्यकाव्य' के नाम से पुकार सकते हैं।'[42] संस्कृत-साहित्य में–रामायण, महाभारत एवं श्रीमद्भागवत उपजीव्य काव्य हैं ।

(ii) **श्रव्यकाव्य**: – श्रव्यकाव्य वह काव्य है जिसके सुनने से आनन्द की अनुभूति होती है ।[43] उदाहरणार्थ—रघुवंश, बुद्धचरित, कादम्बरी इत्यादि ।

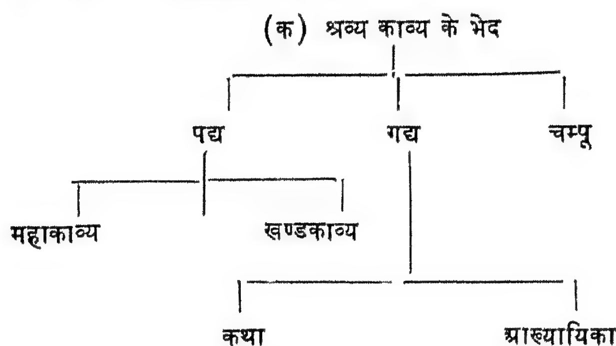
(iii) **दृश्य काव्य**:—जिसको देखने से मानव के मन के भाव जागृत हों एवं आनन्दानुभूति हो ऐसे काव्य को दृश्य काव्य की संज्ञा दी गई है ।[44] उदाहरणार्थ—अभिज्ञान शाकुन्तलम् ।

उपजीव्य काव्य के भेदों का उल्लेख नहीं मिलता है । श्रव्य एवं दृश्य काव्यों के भेदोपभेदों का वर्णन अनेक विचारकों ने किया है । श्रव्यकाव्य के प्रमुख तीन

---

41. काव्य प्रकाश आ. वि. पृ० 28–33
42. सं. सा. इ. बलदेव पृ० 64
43. श्रव्यं श्रोतव्यमात्रम् ।' सा. द. 6/3/3.
44. 'दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात् रुपकम् ।' —6/1

भेद हैं—पद्य, गद्य एवं चम्पू। पद्य काव्य के दो उपभेद हैं—महाकाव्य एवं खण्ड-काव्य। गद्य काव्य भी दो प्रकार का होता है—कथा एवं आख्यायिका। चम्पू काव्य के किसी उपभेद का उल्लेख नहीं है। दृश्य काव्य के दश भेद साहित्य दर्पण में दिये गये हैं।[45] प्रस्तुत प्रसंग में हमारा संबंध श्रव्य काव्य एवं दृश्य-काव्य के एक भेद–नाटक से है। अतः यहां हम श्रव्यकाव्य के भेदों पर संक्षिप्त विचार कर नाटक की परिभाषा मात्र पर विचार करेंगे। दृश्य काव्य के प्रकर–णादि भेदों का उल्लेख हम यहां नहीं करेंगे।



(अ) पद्य-काव्य—छन्दों में लिखी गई रचना पद्य काव्य कहलाती है।[46] उदाहरणार्थ—रघुवंश, मेघदूतादि।

पद्य काव्य के प्रमुख दो भेद होते हैं—प्रथम, महाकाव्य व द्वितीय–खण्ड काव्य।

(i) **महाकाव्य**:—महाकाव्य की परिभाषा देते हुए दण्डी एवं विश्वनाथ ने एक विस्तृत रूप रेखा प्रस्तुत की है। महाकाव्य की परिभाषा देते हुये दण्डी लिखते हैं कि—महाकाव्य में सर्ग होने चाहियें।

उसके प्रारम्भ में आशीः नमस्कार व वस्तु निर्देशक वाक्य हों। उसकी कथा इतिहास से ली गयी हो या कोई अन्य उदात्त कथा हो। महाकाव्य का फल चतु-वर्ग प्राप्ति होना चाहिये। उसके नायक चतुर एवं उदात्त हों। महाकाव्य मे नगर, जलाशय, पर्वत, ऋतु, सूर्य एवं चन्द्र के उदय, उपवन विहार, जलक्रीड़ा, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलम्भ, विवाह एवं युद्ध विषयक कार्यों के वर्णन होने चाहिये। यह

45. सा० द० 6/1–312.

46. 'छन्दोबद्धपदं पद्यम्।' यथोपरि० 6/314.

अलंक र युक्त हो एवं विस्तृत हो. रस एवं भावों का भी समावेश हो. महाकाव्य के सर्ग न ज्यादा बड़े हों न ही छोटे. यह लोकरंजन करने में समर्थ हो एवं विभिन्न प्रकार के वृत्तान्तों से युक्त हो. वह काव्य स्थायी रहता है.[47] साहित्य-दर्पकार ने भी महाकाव्य की करीब-करीब ऐसी ही परिभाषा विस्तृत रूप में प्रस्तुत की है.[48] यहां उस परिभाषा का विस्तृत वर्णन करना पिष्टपेषण मात्र होगा. अतः यहां हम उसका वर्णन नहीं करेंगे. हां एक बात अवश्य है कि दण्डी ने महाकाव्य की परिभाषा में रस व भावों की चर्चा मात्र की है. परन्तु महाकाव्य में शृंगार, वीर या शांत इन तीनों में से एक रस की प्रधानता होनी चाहिये ऐसा विश्वनाथ का मत है. अन्य बातें प्रायः दण्डीवत् ही हैं.[49]

महाकाव्य के उदाहरण हैं—

रघुवंश, शिशुपालवध—नैषधीयचरित इत्यादि।

(ii) **खण्ड काव्यः**—खण्ड -काव्य पद्य काव्य का दूसरा भेद है. इसमें विषयों का सन्निवेश महाकाव्य के समान ही होता है किंतु महाकाव्य के सभी लक्षण यहां एक साथ उपलब्ध नहीं होते.[49] यह महाकाव्य की भाँति विशाल न

---

47. "सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशो वापि तन्मुखम्।।
इतिहास-कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकम्।।
नगरार्णवशैलर्तु चन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
उद्यान सलिल क्रीड़ा मधुपान रतोत्सवैः।।
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि।।
अलंकृतमसंक्षिप्त रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृतैः सुसन्धिभिः।
सर्वत्र भिन्न वृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजकम्।
काव्याकल्पान्तर स्थायि जायते सदलं कृति।।"

—काव्यादर्श 1/14–19

48. सा० द० 6/315–324.

49. 'शृंगारवीरशांतानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।' यथोपरि० 6/317

50. 'खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैक देशानुसारिच।' यथोपरि० 6/329.

होकर जीवन के किसी एक पथ से सम्बन्धित होता है.[50] इसमें धर्म, नीति व शृंगारादि का वर्णन होता है परन्तु वर्णन विस्तृत नहीं होते. उदाहरणार्थ—ऋतुसंहार, मेघदूतादि.

(ब) **गद्यकाव्य:**—गद्य-काव्य श्रव्य-काव्य का द्वितीय भेद हैं. इसे गद्यमय काव्य भी कहा जाता है. गद्यकाव्य के प्रमुख चार भेद हैं–[51]

(१) **मुक्तक**–असमस्त पदों से रचा जाने वाला गद्य मुक्तक कहा जाता है.

(२) **वृत्तगन्धि**—जिस गद्य में वृत्तों के अंश इधर-उधर से प्रतीत हो उसे वृत्तगन्धि गद्य कहते है.

(३) **उत्कालिकाप्राय**—यह वह गद्य है जो लम्बे-लम्बे समासों से पूर्ण हो.

(४) **चूर्णक**—जिस गद्य में छोटे-छोटे समस्त पदों का उपनिबन्ध हुआ हो चूर्णक गद्य कहा गया है.

गद्यकाव्य के दो अवान्तर भेदों का भी उल्लेख मिलता है. वे दो हैं–

(i) कथा (ii) आख्यायिका

(i) **कथा**—सरस इतिवृत की रचना वाला, यदा-कदा आर्या, वक्त्र और अपवक्त्र छंदों से युक्त, आरम्भ में नमस्कारात्मक मंगलाचरण एवं खलनिंदा और सज्जनप्रशंसा से युक्त गद्य काव्य 'कथा' नाम से कहा जाता है. उदाहरणार्थ–कादम्बरी .[52]

(ii) **आख्यायिका**—गद्य काव्य का द्वितीय अवान्तर भेद है–आख्यायिका। आख्यायिका में प्रायः कथा की ही विशेषताओं का समावेश होता है. परन्तु इसमें कवि के वंश का अनुकीर्तन एवं अन्य कवियों की चर्चा भी होती है. साथ ही यत्र-तत्र पद्यसूक्तियों का भी समावेश देखा गया है. उदाहरणार्थ—हर्षचरित.[53]

(ख) दृश्यकाव्य

दृश्यकाव्य वह काव्य है. जिसे 'अभिनय' द्वारा प्रदर्शित किया जाता है.

---

51. 'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च ।
भवेदुत्कलिका प्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम् ।।
—यथोपरि॰ 6/330

52. यथोपरि॰ 6/332-33

53. यथोपरि॰ 6/334-35.

इसे 'रूपक' भी कहते हैं.[54] अभिनय आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्त्विक भेद से चार प्रकार का बतलाया गया है.

रूपक के दश भेद है:—[55]

१. नाटक	६. डिम
२. प्रकरण	७. ईहामृग
३. भाण	८. अंक
४. व्यायोग	९. वीथी एवं
५. समवकार	१०. प्रहसन

यद्यपि यहां हमें दृश्यकाव्य के दशों भेदों का संक्षिप्त परिचय देना चाहिये किन्तु हमारे प्रबन्ध का सम्बन्ध केवल रूपक के प्रथम भेद—नाटक-से है अतः उसी का विवरण करेंगे.

नाटक—नाटक की शरीर-रचना किसी प्रख्यात वृत्त से की जानी चाहिये. एवं इसमें पांच संधियों का समावेश होना चाहिये. उन चरितों के उदात्त गुणों का उपनिबन्धन होना चाहिये. नाटक में सुख व दुःखमय जीवन का उद्भव होना चाहिये. नाटक में कम से कम ५ एवं अधिक से अधिक १० अंक होने चाहिये. इसका नायक कोई प्रख्यात राजवंशी या राजर्षि हो. नायक धीर, उदात्त व प्रतापी होना चाहिये. यह नायक दिव्य, अदिव्य या दिव्यादिव्य में से किसी एक गुण से युक्त होना चाहिये. नाटक में वीर या शृंगार में से एक रस अंगी होना चाहिये एवं दूसरे रस प्रधान रस के अंगी होने चाहिये. इसका अन्त विस्मयोत्पादक होना चाहिये. इसमें उन चार-पांच प्रधान पुरुषों का चरित्र वर्णित होना चाहिये एवं यदि इसकी रचना गोपुच्छ के अग्रभाग के समान हो तो अच्छी लगती है.[56] नाटक के उदाहरण हैं—
अभिज्ञानशाकुन्तलम्, उत्तर-रामचरितम्, इत्यादि.

---

54. 'दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम।' यथोपरि० 6/1

55. नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारिडभाः।
ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनामिति रूपकाणि दश ॥
—यथोपरि० 6/3

56. नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पंचसंधिसमन्वितम्।
विलासदृध्यर्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ॥

इस प्रकार यहां हमने कतिपय मुख्य काव्य प्रकारों का उल्लेख किया. इसके पश्चात् हम प्रमुख काव्यकारों पर विचार करेंगे.

प्रमुख काव्यकार

संस्कृत साहित्य एक विशाल साहित्य है. इसमें न जाने कितने अमूल्य काव्य है और कितने प्रतिभाशाली काव्यकार, प्रस्तुत प्रबन्ध में हमने संस्कृत-साहित्य के प्रमुख काव्यकारों में से कतिपय का चयन किया है. उनमें से कुछ पद्य-कवि है एवं अन्य गद्य कवि. इस लेख में हम प्रमुख काव्यकारों के समय एवं उनकी कृतियों पर एक विचार करेंगे.

पद्य-कवि—१. कालिदास २. अश्वघोष ३. भारवि ४. माघ ५. श्रीहर्ष

गद्य-कवि—१. सुबन्धु. २. बाणभट्ट. ३. दण्डी.

पद्य-कवि

(१) कालिदास

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के प्रमुख काव्यकार है. कालिदास के व्यक्तित्व व कृतित्व पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है, लिखा जा रहा है एवं लिखा जाता रहेगा. वास्तव में महाकवि के विषय में जितना भी अधिक लिखा जाये कम हैं. प्रस्तुत प्रबन्ध में हमारा सम्बन्ध पशु-पक्षियों से है, अतः हमें यहां कालिदास के प्रकृति–चित्रण पर विचार करना चाहिये किन्तु इस अध्याय में हम कालिदास के समय व कृतियों पर ही विचार करेंगे. प्रकृति–चित्रण की चर्चा हम द्वितीय अध्याय में करेंगे.

सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।
पंचाधिका दशपरास्तत्रांका: परिकीर्तिताः ।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्त प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यदिव्यो व गुणवन्नायको मतः ।।
एक एव भवेदंगी शृंगारो वीर एव वा ।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ।।
चत्वारः पंच वा मुख्याः कार्यव्यापृतपुरुषाः ।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ।।
—यथोपरि० 7–11

समय

कवि-कुल-दीपक-कालिदास का समय संस्कृत साहित्य की प्रमुख समस्याओं में से एक है. वास्तव में कवि-कालिदास के ग्रंथों का जितना प्रचार एवं प्रसार है उतना शायद ही किसी भारतीय कवि के ग्रंथों का हो किंतु महाकवि के समय के विषय में जितनी भ्रांतियों एवं असमानताएँ हैं शायद ही किसी कवि के विषय में हों. इन समस्याओं पर विचारकों ने सम्यक् विचार किया है एवं अपने मत का प्रतिपादन किया है. यहाँ हम इन विचारों पर एक दृष्टि डालते हुए किसी परिणाम पर पहुँचने का प्रयास करेंगे.

कालिदास का समय बड़ा ही अनिश्चित है. इस अनिश्चितता के प्रमुख तीन कारण हैं. प्रथम तो यह कि महाकवि ने अपने विषय में कहीं भी कुछ भी नहीं लिखा है. द्वितीय यह कि कालिदास के नाम से अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयी हैं एवं तृतीय यह है कि महाकवि कालिदास के अतिरिक्त भी कालिदास के नाम से अनेक ग्रंथ मिलते हैं, अतः एक से अधिक कालिदास भी हो सकते हैं.

समस्या होते हुए भी विश्व के अनेकानेक विचारकों ने अपने विवेक एवं महाकवि की कृतियों के सहारे महाकवि के समय का निरुपण किया है. महाकवि की तिथि से सम्बन्धित तीन मत विशेष रूप से प्रचलित हैं: –

(१) छठी शताब्दी वाला मत.
(२) गुप्तकालीन मत, एवं
(३) प्रथम शताब्दी वाला मत.

छठी शताब्दी वाला मत

छठी शताब्दी में कालिदास को मानने वाले विचारक हैं:—डा० फर्गुसन, डा० हार्नली, डा० मेक्डोनल व म.म. श्री हरप्रसाद शास्त्री. इन विचारकों के द्वारा कालिदास को छठी शताब्दी में मानने के प्रमुख तर्क इस प्रकार हैं:—

(१) कालीदास मालवराज यशोधर्मन् के समकालीन थे. यशोधर्मन् ने छठी शताब्दी में हूणों पर विजय प्राप्त की थी एवं उक्त अवसर पर एक नया संवत् ६०० वर्ष पूर्व से अर्थात् ५८ ई. पू. से स्थापित किया था.[57]

(२) ६३४ के एहोल के शिलालेखों में कालिदास का उल्लेख है एवं महाकवि बाण ने कालिदास की प्रशंसा की है.[58]

---

57. सं. सा. इ. बलदेव पृ० 163।
58. 'निर्गतासु नवाकस्य कालिदास सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

(३) कालिदास भारवि के अनन्तर छठी सदी में विद्यमान थे.[59]

(४) कालिदास लंकाधिपति कुमारगुप्त के समय वहीं विद्यमान थे.[60]

किन्तु अन्य विद्वान् इन तथ्यों को अस्वीकार करते हुए इस मत का खण्डन करते हैं. उनके तर्क इस प्रकार हैं—

(१) राजा यशोवर्धन् ने हूणों को पराजित करने पर भी 'शकारि' [शकों का शत्रु] कहना उचित प्रतीत नहीं होता. दूसरे विक्रम संवत् यशोधर्मन् द्वारा चलाया गया संवत् नहीं अपितु मालब संवत् के नाम से पूर्व प्रचलित है.[61]

(२) एहोल के शिलालेखों में कालिदास का उल्लेख यह बात प्रमाणित नहीं करता कि वे उसी समय विद्यमान थे. यदि हो ते तो वे महाकवि कालिदास से कोई भिन्न व्यक्ति रहे होंगे. बाण द्वारा प्रशंसा किया जाना भी कालिदास को छठी शताब्दी में सिद्ध नहीं कर सकता. संभवतः बाण ने कवि की कृतियों का अवलोकन कर ही अपना मत प्रस्तुत किया हो. वैसे भी कवि की प्रतिभा की प्रसिद्धि में ३–४ शताब्दियों का समय लग सकता है. अतः यह विचार भी निरापद नहीं.

(३) कालिदास भारवि के अनन्तर छठी शताब्दी में विद्यमान थे, यह मत भी तार्किक प्रमाणों के अभाव में स्वीकार्य नहीं.[62] आधुनिक युग में इस मत को प्रायः अस्वीकार ही कर दिया गया है.

चतुर्थ शताब्दी वाला मत

चतुर्थ शताब्दी को स्वीकार करने वालों की संख्या काफी है एवं विभिन्न विचारकों ने अपनी-अपनी विचार शक्ति से इसे सिद्ध करने का प्रयास भी किया है. इस मत के प्रमुख विचारक हैं:—डा. कीथ, डॉ. जेकोबी, प्रो० पाठक, डॉ० भण्डारकर एवं श्री मजूमदार. इन विचारकों के कतिपय विचार इस प्रकार हैः—

(१) कीथ महोदय का कहना है कि महाकवि कालिदास ग्रीक शब्दों से परिचित थे जैसा कि उनके 'जामित्र' के प्रयोग से सिद्ध होता है.[63] दूसरे उनकी प्राकृत निश्चित रूप से अश्वघोष व भास की प्राकृत के बाद की है. अतः उनके

---

59. सं. सा. इ. बलदेव पृ. 163
60. का. हि. प. प. प. पृ 41, सं. सा. इ.मंगल पृ. 97
61. सं. सा. इ. बलदेव पृ० 164
62. यथोपरि पृ. 164
63. ""तिथौ च 'जामित्र' गुणान्वितायास ।—कुमार 7/1

मत में कालिदास का समय ४७२ ई. से पूर्व है, और संभवतः उससे भी पहले है, जिससे ४०० ई. के लगभग उन्हें रखना पूर्णतया न्याय संगत प्रतीत होता है.[64]

(२) डा. कीथ के समान डा. जेकोबी भी 'जामित्र' शब्द को ग्रीक शब्द मानते है.[65]

(३) पूना के प्रोफेसर के. बी. पाठक की सम्मति में कालिदास स्कन्धगुप्त 'विक्रमादित्य' के समकालीन थे.[66]

(४) बलदेव उपाध्याय ने इतिहास व श्रीयुत् मजुमदार ने कतिपय प्रमाणों के आधार पर कालिदास को कुमारगुप्त व स्कन्धगुप्त दोनों के समकालीन स्वीकार किया है.[67]

परन्तु इन बातों में भी कतिपय कमियां अन्य विद्वानों ने निकाली हैं. वे कालिदास को गुप्तकालीन मानने वालों के मतों को इस प्रकार अस्वीकार करते हैं:—

(१) डा. कीथ व जेकोबी के मत में कालिदास ने 'जामित्र' शब्द को ग्रीक से लिया माना है एवं इसका ग्रहण ३५० ई. के पूर्व नहीं माना है. उनका यह मत भी पूर्णतः तार्किक एवं स्पष्ट नहीं प्रतीत होता. इस प्रकार का कोई तर्क नहीं कि जिसके आधार पर भारतीय ज्योतिष को ग्रीक ज्योतिष पर आधारित माना जावे. भारतीयों को ग्रहों के प्रभाव का ज्ञान ग्रीक लोगों से पूर्व का है. अतः डा. कीथ व जेकोबी का मत यह सिद्ध नहीं कर सकता कि कालिदास गुप्तकालीन थे.[68]

(२) श्री पाठक कालिदास को स्कन्दगुप्त का समयकालीन मानते हैं. वे कश्मीरी टीकाकार वल्लभदेव के निम्नलिखित श्लोक को प्रमाणिक पाठ मानते हैं:—

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचैष्टनैः ।
दुधुवुर्वाजिन स्कनधांल्लग्नकुं कुम केसरान् ।।

इस पद्य में जो 'सिंधु' शब्द आया है, श्री बल्लभदेव ने उसे 'वंक्षु' शब्द

64. सं. सा. इ. मंगल पृ. 100
65. का. हि. प. प. प. पृ. 44
66. मेघदूत भूमिका-पाठक पृ. 191
67. सं. सा. इ. बलदेव पृ. 164
68. का. हि. प. प. प. पृ. 46 ।

माना है जिसका मूल रूप श्री पाठक के मत में 'आक्सस' है. इस आधार पर वे रघु के हूणों वाले युद्ध को आक्सस के किनारे मानते हुये स्कन्धगुप्त से सम्बन्धित करते हैं। परन्तु सिंधु को वंक्षु व वंक्षु को आक्सस मानना कौन से भाषा वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध होता है, स्पष्ट नहीं. अतः हम यह मत स्वीकार नहीं कर सकते.

(३) डा. भंडारकर व पं० शर्मा ने चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में रखने का जो प्रयास किया है वह पाश्चात्य परम्परा पर आधारित है. उनके मत में चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल गुप्तयुग का स्वर्णयुग था एवं कालिदास द्वारा वर्णित शांति का काल चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल से साम्य रखता है. अतः कालिदास जैसे प्रतिभाशाली कवि उसी काल से सम्बन्धित होने चाहिये. परन्तु यह मत पूर्णतः निराधार व तर्कहीन है. पाश्चात्य विद्वानों ने जब भी भारत या किसी अन्य स्थान के बारे में लिखा है, तो सर्व प्रथम उन्होंने देश के उत्तम समय को देखा है एवं फिर जितनी अच्छी घटनायें, अच्छे लोग या प्रसिद्ध कवि हुए हैं उनको उसी काल से सम्बन्धित करने का प्रयास किया है. उनके मत से गुप्तकाल का सबसे सुन्दर काल चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल था. अतः कालिदास जैसे महाकवि की उस काल से परे कैसे माना जा सकता है. परन्तु यह धारणा तार्किक व युक्तियुक्त नहीं हो सकती. यह तो किसी बात की कल्पना कर उसे अनायास सिद्ध करने का प्रयास मात्र कहा जा सकता है.

(४) श्रीमजूमदार समुद्रगुप्त के युद्ध को रघु से सम्बन्वित करते हैं एवं कालिदास को उस काल का बतलाते हैं. इनके मत में भी पुष्ट प्रमाणों का पुट नहीं, अतः इसे कैसे स्वीकार किया जा सकता है.[69]

अतः कालिदास का काल चतुर्थ शताब्दी (गुप्तकाल) भी निरापद नहीं कहा जा सकता.

प्रथम शताब्दी वाला मत

कालिदास को प्रथम शताब्दी में मानने वालों में श्री बलदेव उपाध्याय, श्री के. एस. रामास्वामी व श्री बनर्जी इत्यादि का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है. कालिदास के प्रथम शताब्दी में होने के निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं:—

(१) एतिहासिक अनुसंधान से हमें ई. पू. प्रथम शताब्दी में शकों को परास्त करने वाले विद्वान् एवं महान् दानी उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के अस्तित्व

---

69. सं. सा. इ. पृ० 164

का ज्ञान होना है. हाल की गाथा सप्तशती में भी उक्त राजा का वर्णन मिलता है.[70] रघुवंश के तृतीय सर्ग में भी अवन्तिनाथ का नाम आया है एवं उष्णतेज शब्द भी सूर्य एव विक्रम का वाचक प्रतीत होता है. [71] इसी सर्ग में 'कुमद्वती भाव' कहा गया है[72] जहाँ 'भानु' शब्द विक्रमादित्य का वाचक हो सकता है. श्री बनर्जी के मत में भानुमती विक्रम की पत्नी का नाम प्रतीत होता है. इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि महाकवि कालिदास उज्जैन के नृपति विक्रमादित्य के आश्रय में द्वितीय शताब्दी ई. पू. से अधिक बाद नहीं रहे.[73] इसी नृप ने 'मालव संवत्' चलाया था. इस राजा द्वारा विजयी होने पर भृत्यों को लाखों रुपयों का दान दिया गया था ऐसा उल्लेख मिलता है. श्री मेरुतुंगाचार्य विरचित पद्मावली, प्रबन्धकोष एवं शत्रुंजय माहात्म्य में भी लिखा है कि उज्जयिनी के नरेश गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शकों से उज्जयिनी का राज्य लौटा लिया था. इन प्रमाणों के आधार पर महाकवि कालिदास का विक्रमादित्य के राज्य में होना प्रमाणित होता है.

(२) अश्वघोष का समय प्रायः सुनिश्चित-सा है. वे कुशाण-नरेश कनिष्क के समय में विद्यमान थे. अतः उनका समय ई. सन् प्रथम शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना गया है. कालिदास व अश्वघोष के काव्यों में कथानक, शैली, अलंकार का साम्य मिलता है एवं कालिदास का प्रभाव अश्वघोष पर स्पष्ट है. रघुवंश व बुद्धचरित के कतिपय श्लोकों में भी साम्य है. कतिपय विद्वानों का मत है[74] कि कालिदास अश्वघोष के ऋणी है एवं उन्होंने जो साम्य प्रदर्शित किया है वह अश्वघोष के पूर्ववर्ती होने के ही कारण है, किन्तु यह बात बिल्कुल विपरीत है. इसके उत्तर में यही कहा जावेगा कि अश्वघोष एक दार्शनिक थे एवं उनके द्वारा कालिदास का अनुकरण करना सम्भव है. चीनी-सूचियों में अश्वघोष कनिष्क कालीन एक धार्मिक विचारक माने गये हैं जो ७८ ई. में हुए हैं. अतः यह स्पष्ट है कि कालिदास अश्वघोष से पूर्व प्रथम शताब्दी में हुए हैं.[75]

---

70. गाथा सप्तशती 5/64
71. रघुवंश 3/32
72. यथोपरि 3/33
73. का. हि. प. प. प. पृ० 79
74. विक्रमादित्य (आंग्ल) पाण्डे
75. का. हि. प. प. प. पृ० 79

(३) इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तलम् के कतिपय विवरण कालिदास को द्वितीय शतक विक्रम पूर्व यानी विक्रम संवत् के प्रथम शतक में सिद्ध करने में सहायक हैं. महाकवि कालिदास बौद्धधर्म से प्रभावित युग के कवि थे जब हिन्दू देवताओं के विषय में श्रद्धाहीन विचारों का बाहुल्य था. कालिदास ने अभिज्ञान-शाकुन्तल की नान्दी में भगवान शिव की आठमूर्तियों का वर्णन प्रस्तुत किया है.[76] इसी प्रसंग में 'प्रत्यक्षाभिः' शब्द से कवि ने तत्कालीन देवता विषयक अविश्वास को दूर करने का प्रयास किया है. शाकुन्तलम् के छठे सर्ग में कवि ने यज्ञों को ब्राह्मणों का आवश्यक कर्म बतलाया है.[77] परन्तु बौद्धविचारक तो यज्ञ को हिंसापरक होने से उचित नहीं मानते. अतः कालिदास का समय वह समय था जब बौद्धधर्म के प्रति लोगों की श्रद्धा क्षीण होने लगी थी एवं ब्राह्मण वंशों की परम्परा पनपने लगी थी. यह काल शुंग नरेशों के कुछ ही पीछे अर्थात् विक्रम संवत् के प्रथम शतक में होना चाहिये.[78]

(४) अभिज्ञानशाकुन्तल के छठे अंक में मंत्री राजा को सूचित करता है कि धनमित्र नामक वैश्य का देहान्त हो गया है एवं उसके कोई पुत्र नहीं है अतः उसकी संपत्ति को राज्य में मिला लिया जाय, किंतु राजा कहते हैं कि उसकी विधवा गर्भवती है अतः उसकी सम्पत्ति का अधिकारी उसका होने वाला बालक होगा, ऐसा उल्लेख किया गया है मनु-आपस्तम्ब, बोधायन एव वशिष्ठ के मत में विधवा को उत्तराधिकारी स्वीकार किया है. गौतम व वृहस्पति ने विधवा को सगोत्र सपिण्डक के साथ बंटवारा का अधिकारी माना है. अतः इस नाटक का निर्माण मनु, आपस्तम्ब व बोधायन के बाद एवं नारद, गौतम कात्यायनादि से पूर्व का है. बृहस्पति का समय ई. पू. प्रथम शताब्दी माना गया है अतः कालिदास उनसे पूर्व के हैं.[79]

(५) कालिदास के काव्यों में पाणिनि व्याकरण के विरुद्ध 'त्र्यंबक' के स्थान पर 'त्रियंबक' गच्छन्ती के स्थान पर 'गच्छातीव प्रसाद' एवं मन्दं मन्दं व 'मन्दमन्दं' के प्रयोग मिलते हैं.[80] अतः कालिदास के समय तक पाणिनि के प्रयोग अधिक

---

76. शाकु० 1/1
77. यथोपरि 6/1
78. स. सा. इ. बलदेव
79. का. हि. प. प. प. पृ. 75
80. विक्रम. । मेघ. 1/41

प्रचलित एवं परिमार्जित नहीं हो पाये थे कारण कि किसी भी बात को प्रचलित होने में २०० से ४०० वर्ष तक का समय तो लगता ही है. पाणिनि का समय ५ वीं शताब्दी ईसा पूर्व था अतः कालिदास को दूसरी शताब्दी ई० पू० या प्रथम शताब्दी ई० पू० मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये.

(६) कालिदास के रघुवंश काव्य के छठे सर्ग में 'अवन्तिनाथ' के वर्णन के प्रसंग में 'विक्रमादित्य' विरुद्ध का संकेत मिलता है जो कथा सरित्सागर की कथा के अनुसार शिवभक्त, दानी एवं मालव संवत् के संस्थापक थे. कालिदास के ग्रंथों में यह स्पष्ट है कि वे शैव थे. अतः एक शैव कवि का शैव राजा के आश्रित होना अधिक युक्ति युक्त प्रतीत होता है अपितु वैष्णव परंपरावलम्बी गुप्त नरेश के. अतः कालिदास प्रथम शताब्दी ई० पू० में ही रहे है.

(७) मालविकाग्निमित्र नाटक के आरम्भ में महाकवि कालिदास ने भास, सौमिल्लिक व कविपुत्र इत्यादि प्रसिद्ध कवियों के नामों का उल्लेख किया है किन्तु वहां अश्वघोष का नाम नहीं दिया है. यदि अश्वघोष कालिदास से पूर्ववर्ती कवि होने, तो कालिदास उनका उल्लेख प्रसिद्ध कवियों के संदर्भ में अवश्यमेव करते. अतः स्पष्ट है कि अश्वघोष कालिदासोत्तर काव्यकार हैं.

कालिदास का काल इन पुष्ट प्रमाणों की उपस्थिति में प्रथम शताब्दी स्वीकार करना तार्किक, न्यायिक एवं उचित है. संस्कृत साहित्य के इतिहास विषयक ग्रंथों में इस विषय में बहुत कुछ लिखा गया है, अतः उसका पिष्टपेषण मात्र करना यहां प्रासांगिक नहीं प्रतीत होता. अतः इतना ही कह कर हम कालिदास के कृतित्व पर विचार करेंगे.

कालिदास के काव्यों के विषय में भी विचारक एक मत नहीं. कतिपय विद्वान् महाकवि-कालिदास एवं नाटककार-कालिदास को अलग-अलग व्यक्ति मानते हैं किन्तु यदि हम कालिदास के काव्य एवं नाटकों का सम्यक् अवलोकन करें, तो यह भ्रांति दूर हो सकती है. कतिपय विचार इस प्रकार हैं:—

(१) दोनों (काव्यों व नाटकों) में कालिदास शिव के उपासक हैं. शाकुन्तलम् व कुमारसंम्भव में शिव पूजा को महत्व दिया गया है।[81]

---

81. कनकवलयभ्रंशरिक्त प्रकोष्ठः—मेघ. 1/2;
'कनकवलयं स्रस्तं भया प्रतिसार्यते । शाकु. 5/11

(२) दुबले होने पर कड़ा सरकने की बात मेघदूत व शाकुन्तलम् में समान है.

(३) दोनों में उपमाओं के साम्य दर्शनीय है.[82]

इन प्रमाणों के आधार पर काव्यकार व नाटककार कालिदास दो व्यक्ति नहीं एक ही है; जिन्हें हम महाकवि कालिदास कह सकते हैं जिनकी प्रमाणित रचनायें निम्नांकित हैं:—

१. रघुवंशम् २. कुमार संभवम् ३. मेघदूतम् ४. ऋतुसंहारम् ५. अभिज्ञान-शाकुन्तलम्. ६. मालविकाग्नि मित्रम् ७. विक्रमोर्वशीयम्.

२. अश्वघोष

कालिदासोत्तर काव्यकारों में अश्वघोष का प्रमुख स्थान रहा है.

समय—(i) अश्वघोष का समय प्रायः सुनिश्चित सा है. अश्वघोष को महाराज कनिष्क का समकालीन माना जाता है. यद्यपि कनिष्क का समय भी सुनिश्चित नहीं तथापि कनिष्क को सभी विचारक द्वितीय शताब्दी के द्वितीय चरण से पूर्व ही मानते रहे हैं. डा. जोस्टन के मत में अश्वघोष का प्रादुर्भाव ५० ई.पू. और १०० ई. के मध्य का है.[83]

(ii) ह्वांगत्सांग (६४५ ई०) व इत्सिंग (६७३ ई०) ने अश्वघोष एवं उनके काव्य बुद्धचरित के कतिपय पद्यों का उल्लेख किया है. बुद्ध-चरित का चीनी अनुवाद ४१४ से ४२१ ई० के मध्य माना गया है. बौद्ध-परम्परा अश्वघोष को कनिष्क का समकालीन अर्थात् ७८ ई० में मानती है. इस विषय में एक बात अवश्य है कि अश्वघोष अपने सूत्रालंकार में कनिष्क को भूतकाल में वर्णित करते हैं, परन्तु इसके दो उत्तर सम्भाव्य हैं. प्रथम तो यह कि अश्वघोष से पूर्व कनिष्क का देहावसान हो गया हो या फिर वे भाग प्रक्षिप्त हों जिनमें उन्होंने कनिष्क का भूतकाल में वर्णन किया है.[84]

(iii) कनिष्क कालीन कवि मातृचेट पर अश्वघोष का प्रबल प्रभाव रहा है. अतएव अश्वघोष को तत्कालीन मानने में कोई ऐतिहासिक विप्रतिपत्ति प्रतीत होती.[85]

---

82. **'या सृष्टि : स्रष्टुराद्या'**–अभि. शाकु. 1/1
'सृष्टिराद्येव धातु :—मेघ. 2/22

83. **बु० च० भूमिका–सूर्यनारायण चौधरी.**

84. **सं० सा० इ० स. क. गुप्त पृ० 13 अ.**

85. **सं० सा० इ० बलदेव पृ० 194.**

(iv) कनिष्क कालीन एक शिलालेख में 'अश्वघोषराज' का नाम आया है जिसे अनेक विचारकों ने बुद्धचरित के रचयिता अश्वघोष ही माना है.[86]

उपर्युक्त पुष्ट प्रमाणों की उपस्थिति में अश्वघोष को ईसा की प्रथम शताब्दी में रखने में कोई आपत्ति नहीं है.

अश्वघोष की कृतियाँ—यों तो अश्वघोष के नाम से कुल मिलाकर सात ग्रंथ मिलते हैं किन्तु काव्य परम्परा में उनके दो ही ग्रंथ आते हैं:—

(१) बुद्धचरित (महाकाव्य)

(२) सौन्दरनन्द (महाकाव्य)

३. भारवि

कालिदासोत्तर काव्यकारों में महाकवि भारवि का प्रमुख स्थान रहा है. भारवि अश्वघोष के बाद के काव्यकार हैं.

भारवि का समय—भारवि के सम्बन्ध में भी कोई प्रामाणिक जानकारी स्पष्ट रूप में नहीं मिलती परन्तु कतिपय बातें ऐसी हैं जिनके आधार पर भारवि का समय ज्ञात करने में विचारक सफल हो सके हैं एवं प्रायः एक ही निष्कर्ष पर भी पहुँचे हैं.

(i) सातवीं शताब्दी के काव्यकार बाणभट्ट ने अपने ग्रंथों में प्रसिद्ध कवियों के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित की है. उन्होंने व्यास कालिदासादि को मुख्य माना है किन्तु भारवि का नाम नहीं लिया है. अतः स्पष्ट है कि बाण भारवि से परिचित नहीं थे या उसके पूर्ववर्ती थे. या यों कहें कि भारवि की उक्त समय प्रतिष्ठा नहीं थी तो उचित होगा.[87]

(ii) ऐहोल नामक शिलालेख जो कि दक्षिणी भारत में प्राप्त हुआ है कालिदास व भारवि के नाम से युक्त हैं. इस शिलालेख में रविकीर्ति के आश्रय-दाता पुलकेशिन् द्वितीय के राज्यकाल का उल्लेख है जिसका राज्यकाल ६४२ ई. के आसपास था. अतः यह स्पष्ट होता है कि भारवि उक्त समय से पूर्व कहीं रहे होंगे. अतः भारवि छठी शताब्दी के पूर्व में रहे होंगे.[88]

(iii) महाकवि भारवि के काव्य किरातार्जुनीय का उल्लेख दक्षिण भारत

---

86. सं० सा० इ०, स० क० गुप्त पृ० 13अ

87. भा. का. अ. पृ. 4

88. वही. पृ. 5; सं. सा. इ. गुप्त. 67 अ; सं. सा. इ. बलदेव. पृ. 212.

के किसी पृथ्वीकोंगरिण नामक राजा के दानपत्र में मिलता है. प्रस्तुत दानपत्र मान्यपुर नामक शहर में ६९८ शक संवत् में लिखा गया है. इस लेख में पृथ्वीकोंगरिण नामक राजा की वंशावलि दी गयी है एवं इसी में वंशावलि में अविनीत नामक राजा के दुर्विनीत पुत्र का वर्णन किया गया है जिसने किरातार्जुनीय के पन्द्रह सर्गों की व्याख्या लिखी थी. इसी दुर्विनीत की सात पीढ़ियों के पश्चात् राजा पृथ्वीकोंगरिण हुआ था. दानपत्र का समय ७७६ ई० माना गया है अतः यदि एक पीढ़ी के लिये कम से कम २५ साल का समय माना जावे तो दुर्विनीत का काल ६०१ ई० में आता है. अतः इस आधार पर भारवि का समय ६०० ई० सिद्ध होता है.[89]

(iv) भारवि का उल्लेख पारिगनीय अष्टाध्यायी के टीकाकार श्री जयादित्य वामन ने अपनी काशिकावृत्ति में किया है. प्रो० ए. बी. कीथ इस वृत्ति का लेखन चीनी यात्री इत्सिंग से पूर्व का मानते हैं.[90] इत्सिंग ६७२ ई. में भारत आया था अतः भारवि का काल इससे पूर्व का यानी छटी शताब्दी का पूर्व भाग होना चाहिये.

(v) आचार्य दण्डी विरचित 'अवन्तिसुन्दरीकथा सार' एवं 'अवन्ति सुन्दरी कथा' नामक ग्रंथों में भारवि को दण्डी के दादा माना गया है. दण्डी काल विभिन्न विद्वानों ने छठी शताब्दी माना है.[91] अतः भारवि को छठी शताब्दी के आरम्भ में मानना उचित है, सार्थक है.

(vi) भारवि के काव्य किरातार्जुनीय का स्पष्ट अनुकरण माघ के शिशुपालवध में मिलता है जिनका काल ७ वीं शताब्दी माना गया है.[92] अतः भारवी माघ से पहले के हैं यानी भारवि छठी शताब्दी में रहे होंगे.

(vii) आचार्य वामन ने जिनका समय ८वीं शताब्दी है किरातार्जुनीय के आठवें सर्ग के ३७ वे श्लोक को अर्लान्तरन्यास के उदाहरण के रूप में दिया है. अतः उस समय तक भारवि एक प्रसिद्ध कवि हो गये थे. कवि की प्रतिभा के प्रसिद्ध होने में कम से कम २०० वर्ष का समय लगता है अतः भारवि को छठी

---

89. भा. का. अ. पृ. 6
90. सं. सा. इ. मंगल पृ. 509
91. सं. सा. इ. वेवर पृ. 232, सं. सा. इ. मेक्डोनल पृ. 434
92. सं सा. इ. मंगल पु० 152, सं सा. इ. बलदेव पृ. 212, महाकवि माघ. डा. गो. ही. ओझा; सं. सा. इ. डे, पृ० 188.

शताब्दी में माना जा सकता है.

इन प्रमाणों के अतिरिक्त जैकोबी,[93] कीथ,[94] मेक्डोनल,[95] पं० बलदेव उपाध्याय,[96] डा० सुधीरकुमार गुप्त,[97] डा० उमेश प्रसाद रस्तौगी[98] इत्यादि विचारकों ने भी भारवि का समय छठी शताब्दी के अन्तर्गत ही माना है.

भारवि के काव्य --भारवि ने केवल एक ही काव्य लिखा है.

(४) माघ

कालिदासोत्तर काव्यों में माघ का स्थान अश्वघोष व भारवि के बाद आता है. यद्यपि कतिपय विद्वानों ने माघ को भारवि से पूर्ववर्ती सिद्ध करने का प्रयास किया है परन्तु उनके विचार आधारहीन एवं अस्पष्टता के कारण विशेष महत्त्व नहीं पा सके हैं.

माघ का समय:—विभिन्न महाकवि माघ को अपने–अपने तर्कों के आधार पर ५ वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी के मध्य रखते हैं. परन्तु अधिकतर पाश्चात्य एवं भारतीय विचारक माघ को सातवीं शताब्दी में भारवि के बाद माघ का समय स्वीकार करते हैं, उनमें से प्रमुख हैं–

डा० भोलाशंकर व्यास,[99] डा० कीथ,[100] पं० बलदेव उपाध्याय,[101] म.म. डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा,[102] पं० सीताराम जयराम जोशी,[103] श्री एस. के. डे.,[104] श्री हंसराज अग्रवाल,[105] श्री भूपनारायण दीक्षित.[106]

---

93. सं० सा० इ० मंगल पृ. 133
94. यथोपरि
95. हि. सं. लि.–मेक्डोनल पृ. 277
96. सं. सा. इ. बलदेव पृ. 212
97. सं. सा. इ. सं. क. गुप्त पृ. 68 अ.
98. भा. का. अ. रस्तौगी पृ. 7
99. संस्कृत कविदर्शने
100. सं. सा. इ. कीथ (मंगल) पृ. 152
101. सं. सा. इ. बलदेव पृ. 233
102. महाकवि माघ
103. सं. सा. इ.
104. सं. सा. इ. डे. पृ. 188
105. सं. साहित्येतिहास पृ.
106. माघ–काव्य–भूमिका

व डा. सुधीरकुमार गुप्त. [107]

इससे पूर्व कि सातवीं शताब्दी में माघ के समय निरूपण पर विचार करें यह आवश्यक हो जाता है कि अन्य लोगों का क्या मत है. अतः प्रथम उसी पर विचार करते हैं.

श्रीयुत सरयूप्रसाद मित्र ने 'संस्कृत कवियों का समय निरूपण' नामक बंगला पुस्तक में माघ को भारवि से पहले का (५८४ ई०) का मानते हैं. उनका यह मत एक उत्कीर्ण लेख के आधार पर है.

श्री याकोबी ने बीयेना ओरियन्टल जनरल (त्रैमासिक पत्रिका) के द्वितीय भाग के द्वितीय-खण्ड में माघ को छठी शताब्दी के मध्य में माना है. [108]

माघ को आठवीं शताब्दी में मानने वालों में पं० तारानाथ, श्री एस. एस. भंडारे, पं० छज्जूरामजी विद्यासागर, प्रो० के. बी. पाठक व श्री चन्द्रशेखर पाण्डे का नाम मुख्य है.[109]

म. म. श्री दुर्गाप्रसाद, श्री रामावतार शर्मा, श्री एम.एम.डफ, डॉ. मेक्डोनल, डॉ. बेबर ने माघ का समय नवीं शताब्दी माना है एवं श्री पं. रमेशचन्द्र दत्त ने उनको १२ वीं शताब्दी में रखा है।[110]

यहां विस्तारभय से इन सभी विद्वानों के मतों पर विस्तृत विवेचना करना सम्भव नहीं परन्तु समष्टि रूप में उन सबके तर्कों का खण्डन सातवीं शताब्दी में माघ को स्वीकार करने वाले विद्वानों के प्रमाणों में आ जाता है अतः सातवी शताब्दी विषयक तर्कों को यहां संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करेंगे —

(i) माघ ने लिखा है कि वे सुप्रभदेव के पौत्र एवं दत्तक सर्वाश्रय के पुत्र थे। माघ के पितामह एक राजा के मन्त्री थे जिनका नाम हस्तलिखित ग्रंथों में वर्मलाख्य व वर्मलात मिलता है. एक अभिलेख मिलता है जिसमें ६२५ ई० के किसी वर्मलात नामक राजा का उल्लेख है अतः माघ का समय सातवीं शताब्दी सिद्ध होता है.

(ii) सोमदेव, जिनका समय ८५६ ई० माना गया है, अपने ग्रंथ 'यशस्ति-

---

107. सं. सा. इ. गुप्त पृ. 83 अ.

108. महाकवि माघः जी. क. कृ. पृ. 93

109. यथोपरि, पृ. 94

110. महाकवि माघ, जी. क. कृ. पृ. 95

तिलक चम्पू' में माघ का उल्लेख किया है अतः माघ उनसे पूर्व के यानी सातवीं शताब्दी के कवि हैं.

(iii) आनन्दवर्धन (८५९ ई०) ने ध्वन्यालोक में शिशुपालवधम् के दो श्लोकों (३/५३,५/५६) को उद्घृत किया है. अतः माघ को उनसे पूर्व सातवीं शताब्दी में मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये.

(iv) माघ ने भारवि का स्पष्ट अनुकरण किया है एवं वे भट्टि व कुमारदास के भी बाद के हैं. भट्टि के 'मुमुहुमुंहः' को उन्होंने किमुंमुहुमुंमुहुर्गतभर्तका:' कहकर एक पंक्ति आगे बढ़ाया है. अतः माघ को ७वीं शताब्दी में माना जा सकता है.

(v) माघ ने द्वितीय सर्ग के ११२वें श्लोक में 'न्यास' का उल्लेख किया है. डॉ० कीथ के विचार में यह न्यास जिनेन्द्रबुद्धि की रचना है. इनका समय ७०० ई. है। अतः माघ का समय भी उनसे अधिक दूर नहीं हो सकता.

(vi) कन्नड़ भाषा के 'कविराज मार्ग' नामक ग्रंथ में भी माघ का नाम मिलता है जिसकी रचना सुप्रसिद्ध दक्षिणदेशीय नृप अमोघवर्ष (८१४ ई०) के समय किसी नृपतुंज नामक कवि ने की थी. अतः माघ का समय ७वीं शताब्दी ही सिद्ध होता है।

इन पुष्ट प्रमाणों की उपस्थिति में महाकवि माघ का समय सातवीं शताब्दी ही उचित जान पड़ता है.

माघ के काव्य—'शिशुपालवधम्' (महाकाव्य) श्रीमाघ की एक मात्र कृति है.

५ श्री हर्ष

माघ के पश्चात् श्री हर्ष का संस्कृत साहित्यारण्य में विशिष्ट महत्त्व है.

समय—श्री हर्ष के समय के विषय में भी विचारक एक मत नहीं. उनके समय से सम्बन्धित कतिपय विचार इस प्रकार हैं —

(१) श्री हर्ष ने नैषधीय चरितम् में प्रत्येक सर्ग के अन्त में यह निर्देश किया है कि वे श्री हीर व मामल्लदेवी के पुत्र हैं एवं उन्होंने काव्यकुब्जेश्वर में सम्मान प्राप्त किया है.

(२) प्रबन्धकोष में राजशेखर ने श्री हर्ष को जयचन्द्र का आश्रित कहा है. जयचन्द्र का समय ११६८–९४ ई० माना गया है. जयचन्द्र के पिता का नाम

विजयचन्द्र था. नेमधीयचरित में पञ्चमः सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'विजय प्रशस्ति' इन्हीं विजयचन्द्र की प्रशंसा प्रतीत होती है. अतः श्री हर्ष का समय १२वीं शताब्दी होना चाहिये.[111]

(३) डा० फिट्ज ने सरस्वती कण्ठाभरण में नैषध के कतिपय पद्यों की उपस्थिति बतलायी है एवं श्री हर्ष का समय ११वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना है, परन्तु सरस्वतीकण्ठाभरण की उपलब्ध प्रतियों की श्लोक सूची में से कोई भी श्लोक श्री हर्षकृत नहीं है. अतः डॉ० फिट्ज का मत निस्सार है.[112]

(४) श्री काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग महोदय का मत है कि श्री हर्ष का समय ९वीं या १०वीं शताब्दी होना चाहिये क्योंकि ११वीं शताब्दी में वाचस्पति मिश्र ने श्री हर्ष के 'खण्डनखण्डखाद्य' के खण्डन में 'खण्डनोद्धार' लिखा है। परन्तु अन्य विचारकों का मत है कि—वाचस्पति मिश्र अनेक हुये हैं एवं खण्डनोद्धार का लेखक कोई अर्वाचिनीय लेखक है। अतः श्री तैलंग का मत अधिक तार्किक नहीं।

(५) श्री एफ० एस० ग्राउस महोदय का कहना है कि यदि राजशेखर के कथन को स्वीकार कर लिया जावे तो श्री हर्ष पृथ्वीराजरासो के रचयिता श्रीचन्द्र के समकालीन थे. श्रीचन्द्र के द्वारा प्रशंसित होना इस बात का कतई प्रमाण नहीं है कि श्री हर्ष उनके समय के थे. हो सकता है चन्द्रकवि श्री हर्ष के काव्य से प्रभावित हुये हों एवं उन्होंने उनके काव्य को आदर दिया हो. अतएव यह मत कोरी कल्पना है.

(६) इन विचारकों के अतिरिक्त डॉ. जी. बूलर श्री हर्ष को ११६४-११९७ ई० के मध्य, श्री एफ. एस. ग्राउस ९वीं–१०वीं शताब्दी, श्री आर. डी. सेन १० वीं–११वीं शताब्दी, श्री पुरनाया ११वीं शताब्दी व श्री चाण्डुपण्डित. १२वीं शताब्दी में स्वीकार करते हैं.

अतः पुष्ट प्रमाणों के अभाव में श्री हर्ष का समय ९वीं से १२वीं शताब्दी के मध्य माना जाना ही उचित है. वैसे अधिकतर विद्वान इन्हें ११वीं या १२वीं शताब्दी में ही मानते हैं.[113]

श्री हर्ष के काव्य—श्री हर्ष के नाम से लगभग 8 कृतियों की सूची मिलती है किन्तु उन सबमें एक ही महाकाव्य है:—नैषधीय चरितम्.

---

111. नैषध० 5/138
112. सं. सा० इ० गुप्त पृ० 97 अ.
113. सं० सा० इ० कीथ (मंगल) पृ० 172, हि० सं० लि० मेक० पृ० 78, सं० सा० इ०, स० क० गुप्त पृ० 98 अ।

गद्य कवि

संस्कृत साहित्य में गद्य कवियों की कमी रही है. गद्य-साहित्य के प्रमुख काव्यकार हैं–सुबन्धु, बाण व दण्डी. इन तीनों कवियों के समय के विषय में विचारक एक मत नहीं हैं. कतिपय विद्वान, जिनमें बलदेव उपाध्याय प्रमुख हैं, सुबन्धु, बाण व दण्डी के क्रम को मानते हैं. किन्तु डा० कीथ, पं० पाण्डेय डा० शांतिकुमार व नानूराम व्यास दण्डी, सुबन्धु व बाण इस प्रकार के क्रम को महत्त्व देते हैं तो श्री वी० वरदाचार्य ने बाण, दण्डी व सुबन्धु के क्रम को अपनाया है. अतः गद्य कवियों के समय के विषय में विद्वान् एक मत नहीं. परन्तु पुष्ट प्रमाणों की उपस्थिति में सुबन्धु, बाण व दण्डी वाला क्रम ही अधिक उचित प्रतीत होता है. कवियों के पौर्वापर्य को जानने से पूर्व उनका समय निरूपण करना आवश्यक है, अतः उसी को कहते हैं—

१. सुबन्धु

सुबन्धु का समय—सुबन्धु निश्चित रूप से बाण से पूर्ववर्ती कवि हैं. इस विषय में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं:—

(i) कविराज (१२०० ई०) ने अपने महाकाव्य में सुबन्धु, बाण व स्वयं को वक्रोक्ति में कुशल बतलाया है. सम्भवतः कविराज ने स्थितिकाल के अनुसार ही सुबन्धु का नाम सर्वप्रथम एवं स्वयं का नाम, बाद में लिया है अतः सुबन्धु बाण से पूर्व के सिद्ध होते है.[114]

(ii) वाक्पतिराज ने अपने प्राकृत-काव्य में भास, कालिदास और हरिचन्द के साथ सुबन्धु का नाम रक्खा है, किन्तु बाण का नहीं. अतः सुबन्धु बाण से पूर्व के हैं.[115]

(iii) सुबन्धु ने एक युवती का वर्णन इस प्रकार किया है—'न्यायस्थितिमिव उद्योतकरस्वरूपां बौद्धसंगतिमिव अलंकारभूषिताम्.' यहां न्यायवार्तिक के प्रणेता उद्योतकर का स्पष्ट उल्लेख है. इसी संदर्भ में आगे आने वाले उल्लेख को कीथ ने बौद्ध नैयायिक धर्म कीर्ति का माना है. धर्मकीर्ति का समय निश्चित सा

---

114. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो न विद्यते ।।
—राघवपाण्डवीयम् 1/41

115. गौडवहो 800

ही है अतः सुबन्धु को सातवीं शताब्दी के द्वितीय पाद में माना जा सकता है. डा० कीथ का कहना है कि बाण व सुबन्धु समकालीन रहे हों पर सुबन्धु की रचना बाण की कृतियों से पूर्व सम्मान प्राप्त कर चुकी थी. अतः सुबन्धु को बाण पूर्व मानना उचित है.[116]

(iv) पं० बलदेव उपाध्याय का कहना है कि उद्योतकर का समय छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं सातवीं शताब्दी का आरम्भ रहा है. बाण से पूर्ववर्ती होने के कारण सुबन्धु का समय ६०० ई0 के आसपास होना चाहिये.[117]

(v) वासवदत्ता की कथा विक्रमादित्य के बीते हुये काल से सम्बन्धित है. परन्तु विक्रमादित्य के व्यक्तित्व का निर्णय भी स्पष्ट नहीं है. अतः सुबन्धु को ६ठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध या ७वीं श० ई० के पूर्वार्द्ध में रखना ही युक्तियुक्त है.[118]

इन सभी प्रमाणों की उपस्थिति में सुबन्धु का समय ६ठी श० ई० का पूर्वार्द्ध या ७वीं श० ई० का आरम्भ ही मानना चाहिये.

सुबन्धु का काव्य—सुबन्धु का एक मात्र काव्य है:—वासवदत्ता (कथा)

२. बाणभट्ट

बाणभट्ट दण्डी से पूर्ववर्ती एवं सुबन्धु से उत्तरवर्ती काव्यकार माने गये हैं.

बाणभट्ट का समय—बाण के समय के विषय में विचारक सामान्यतः एकमत हैं.

(i) बाण ने अपनी कृति हर्षचरित के प्रारम्भ में अपने वंश का विस्तृत वर्णन किया है एवं स्वयं को महाराजा हर्षवर्धन के आश्रय में बतलाया है. हर्ष का राज्य ६०६ ई० से ६४५ ई० तक रहा है. अतः बाण का समय सातवीं शताब्दी में ही होना चाहिये.

(ii) वामन ने अपने 'काव्यालंकार-सूत्र' में कादम्बरी के एक लम्बे समास-पूर्ण भाग को उद्धृत किया है. वामन का समय ७७९–८१३ ई० में रहा है. इसीप्रकार रुय्यक (११५०) के 'काव्यालंकार सर्वस्व', क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी (१०३७ ई०) रुद्रट के काव्यालंकार की नेमिसाधु कृत टीका (१०६९ ई०), भोज

116. सं. सा. इ. कीथ (मंगल) पृ० 365
117. सं. सा. इ. बलदेव पृ० 376
118. सं. सा. इ. गुप्त पृ० 143अ

के सरस्वतीकण्ठाभरण (१००० ई०), धनंजय के दशरूपक (१००० ई०) एवं आनन्दवर्धन के धन्या लोक (८४० ई०) में बाण व उनकी कृतियों के उल्लेख मिलते हैं. [119] अतः बाण इन सबके समय में प्रसिद्धि को प्राप्त हो चुके थे. अतः इनको सातवीं शताब्दी में मानना उचित है.

(iii) चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने राजा हर्ष की बौद्ध धर्म विषयक भावनाओं का वर्णन किया है जिनसे बाणभट्ट अच्छी तरह परिचित थे. अतः बाण का समय सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये.

इन प्रमाणों के आधार पर बाणभट्ट का समय सुबन्धु के कुछ बाद सप्तम शतक में मानना तार्किक एवं उचित है.

बाण के काव्य—बाण के नाम से अनेक कृतियों का उल्लेख मिलता है किंतु काव्यरूप में उनकी दो ही रचनायें है—

(१) हर्षचरितम् (आख्यायिका)
(२) कादम्बरी (कथा)

३. दण्डी

दण्डी सुबन्धु एवं बाण के उत्तरकालीन कवि रहे हैं —

दण्डी का समय—दण्डी का समय विचारकों ने सातवीं शताब्दी का उत्तर भाग माना है. इस विषयक प्रमाण इस प्रकार हैं —

(i) दण्डी को बाण के पश्चात् मानने का सबसे बड़ा कारण यह है कि बाण ने दण्डी का कहीं उल्लेख नहीं किया है. परन्तु दण्डी ने अवन्तिसुन्दरी कथा में बाण की प्रशंसा की है. अतः दण्डी को बाण के पश्चात् यानी सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मानना चाहिये. डॉ० कीथ काव्यादर्श को भामह (७०० ई०) से पूर्व का मानते हैं। अतः दण्डी भामह से पहले के है [120]

(ii) पं० बलदेव उपाध्याय का कहना है कि हर्षवर्धन (६०६–48 ई०) के सभापण्डित होने से बाणभट्ट का समय ६३०–६४० ई. तक मानना उचित प्रतीत होता है तथा बाण के पश्चाद्वर्ती होने के कारण दण्डी का समय ६५० ई.

---

119. **शुकनासोपदेशः पृ० 6**
120. **सं. सा. इ. कीथ (मंगल) पृ०** 352

के बाद मानना उचित जान पड़ता है.[121]

(iii) डा० कीथ व डॉ० शांतिकुमार नानराम व्यास का कहना है कि दण्डी की शैली सुबोध एवं सरस है जबकि बाण व सुबन्धु की शैली दुरुह एवं कठिन. अतः दण्डी बाण व सुबन्धु के पूर्ववर्ती रहें होंगे क्योंकि गद्य धीरे धीरे समासबहुल तथा क्लिष्ट होता गया है. अतः दण्डी का समय ६०० ई. के लगभग मानना युक्तियुक्त है. परन्तु डॉ. कीथ का यह तर्क कि पहले गद्य सुबोध था एवं बाद में क्लिष्ट हो गया पुष्ट प्रमाणों के अभाव में उचित नहीं जान पड़ता. दूसरी बात यह है कि सर्वदा एक परम्परा के बाद परिवर्तन आता रहता है अतः दण्डी ने बाण व सुबन्धु की क्लिष्ट नीति का बहिष्कार कर सरल व सुबोध शैली को अपनाया हो. अतः केवल शैली के आधार पर दण्डी को पूर्ववर्ती मानना उचित नहीं जान पड़ता.

अतः सिद्ध है कि दण्डी का समय सातवीं शताब्दी का उत्तरार्ध रहा है.

दण्डी के काव्य— दण्डी की दो रचनायें बतलाई गयी है किन्तु 'दशकुमार-चरितम्' ही उनकी प्रामाणिक काव्य रचना है.

— - —

121. सं. सा. इ. बलदेव पृ० 376.

काव्यों में प्रकृति-चित्रण

२ | काव्यों में प्रकृति-चित्रण

प्रथम अध्याय में हमने काव्य एवं काव्यकारों पर विस्तृत विचार किया. प्रस्तुत अध्याय में हम काव्यों में प्रकृति-चित्रण की उपस्थिति पर विचार करेंगे.

प्रकृति मानव की प्रारम्भिक सहचरी रही है. जब से मानव ने इस भूपटल पर जन्म लिया है तभी से वह प्रकृति के साहचर्य में आया है. वह सूर्य, चन्द्रादि से प्रकाशित हुआ है, वृक्षों ने उसे छाया प्रदान की है, भूमि ने उसे अन्न दिया है, झरनों ने उसे शीतल जल प्रदान किया है एवं नीरधि ने उसे रत्न दिए हैं. अतः मानव एवं प्रकृति का निरन्तर संयोग रहा है.

इसी सुन्दर प्रकृति ने उसे यदाकदा झंझावात, उपल-वर्षा, व तिमिर से भयभीत एवं अस्थिर किया है और इन सबके कारण उसने परमेश्वर का सहारा लेकर भय व कम्पन से छुटकारा पाने का प्रयास किया है. यही कारण है कि जगत् के आदि ग्रंथों से ही हमें इन्द्र, सूर्य, वरूण, चन्द्र, वायु एवं पृथ्वी विषयक गुणगान मिलते हैं. ऋग्वेद के ही एक मंत्र में इन्द्र द्वारा पर्वतों को अचल करने, कम्पित पृथ्वी को सुस्थिर करने व गगन मण्डल को संभालने का सुन्दर वर्णन मिलता है. [122]

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंढ
यः द्यौः पर्वतान्प्रकुपितां अरम्णादः
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो
यो द्यामस्तभनात्स जनास इन्द्रः ।।

देवत्व की स्थापना के पश्चात् मानव ने अपने देव को सौन्दर्यशाली, सर्वशक्तिमान् व सर्वज्ञ कहा. इस प्रकार उसने अपने देवों को सुन्दर अश्वों के रथों पर आसीन एवं नयनाभिराम वस्त्राभूषणों से सुसज्जित माना और प्रकृति के प्रति

---

122. ऋक्० २/१२/२

अपना अनुराग प्रदर्शित किया. इस प्रकार मानव व प्रकृति का साहचर्य एक पुराना साहचर्य है जिसकी अविरल धारा आजतक प्रवाहित होती रही है. इस साहचर्य एवं सौन्दर्यप्रदर्शन ने मानव को काव्यों में भी प्रकृति वर्णन करने की एक प्रेरणा दी है. इस प्ररणा से प्रेरित होकर ही मानव ने काव्यों में पशु-पक्षी, जीव-जन्तु व फल-फूलों के सुन्दर वर्णनों को उपस्थित किया.

संस्कृत साहित्य के प्राचीनतम काव्यों में प्रकृति-चित्रण के अनेक स्थल मिलते हैं. प्रस्तुत प्रबन्ध में हमारा सम्बन्ध संस्कृत-काव्यों से है, किन्तु वीरकाव्यों के प्रकृति–चित्रण पर भी हम संक्षिप्त विचार करेंगे, ताकि प्रकृति चित्रण की प्रारम्भिक भावना से परिचित हो सकें एवं नवीन दिशा को अपना सकें.

यों तो संस्कृत-साहित्य की प्राचीनतम कृति ऋग्वेद है किन्तु काव्य परम्परा में आदिकवि को रचना वाल्मीकि–रामायण को ही आदि-काव्य स्वीकार किया गया है। रामायण एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें प्रकृति वर्णन के अनेकानेक स्थल हैं. अरण्यकाण्ड में सीताहरण से संतप्त पर्वत श्रेणियों द्वारा शिखर रूपी भुजाओं को उतिष्ठ कर प्रपात के बहाने अश्रु बहाकर रोने का उल्लेख महाकवि का एक अत्यन्त सुन्दर प्रकृति–वर्णन का उदाहरण है जिसमें सजीव प्रकृति का अभिराम बर्णन है[123] रामायण में "अरण्यकांड, किष्किन्धा काण्ड तथा सुन्दर काण्ड का विस्तार वन-भूमि में हुआ है. इस कारण रामायण के कवि को वन्यप्रकृति को उपस्थित करने का अवसर मिला है."[124] लंका प्रवेश के समय हनुमान की दृष्टि उसके अभिराम उपवनों पर जाती है. "रावण की वह स्वर्णमयी लंका अनेक उपवनों से युक्त है जिसमें सरल कर्णिकार और खजूर के वृक्ष पुष्पित हैं. असन, कोविदार, करवरि, इत्यादि के पौधे पुष्पित होकर झुक रहे हैं. वहाँ अनेक सरोवरों में हंस, कारण्डव इत्यादि पक्षी कलरव कर रहे हैं, ऐसे वर्णन उपलब्ध होते हैं[125] इसी प्रसंग में अशोकवाटिका का सुन्दर वर्णन किया गया है. 'अशोक वाटिका में कोकिल कूक रहे थे, एवं भ्रमर गुन्जार कर रहे थे, वहाँ हनुमान् ने रजतमयी, स्वर्णमयी एवं मणिमयी भूमियों को देखा.' वापियों के चारों ओर विशाल वृक्ष लगे थे और छोटी-छोटी सरितायें कलरव कर रही थीं —इत्यादि वर्णन अशोक-वाटिका के प्रकृति–वर्णन को प्रस्तुत करने में सहायक हुये हैं. महाकवि वाल्मीकि

---

123. जल प्रपातस्त्रमुखा : शृंगरुछ्रित बाहव : ।
सीतायां ह्रियमाणायां विक्रोशन्तीव पर्वता : ।।
वा. रा. अर. 52।36.

124. प्रकृति और काव्य पृ. 337.

125. वाल्मीकि रामायण. 5।2।9-12

ने अपने ग्रन्थ में चित्रकूट[126], दण्डकारण्य[127] पञ्चवटी[128] पम्पामार्ग[129] व किष्किन्धा मार्ग[130] के जो विस्तृत वर्णन किये हैं वे प्रकृति–चित्रण से परिपूर्ण हैं एवं कवि के प्रकृति–चित्रण प्रेम के परिचायक हैं.

वनों के अतिरिक्त महाकवि ने आश्रमों के भी सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किये हैं. अगस्त्याश्रम का यह वर्णन कितना सुन्दर है जिसमें पुष्पों की उपस्थिति, पक्षियों के कलरव, सरोवरों के स्वच्छ जल व पुष्पित कमलों का वर्णन किया गया है—[131].

स्थालीप्रायवनोद्देशे पिप्पलीवन शोभिते ।
बहु पुष्पफले रम्ये नानाविहग नादिते ।।
पद्मिन्यो विविधस्तत्र प्रसन्न सलिलाशयाः ।
हंसकारण्डवाकीर्णाश्चिक्रवाकोपशोभिताः ।।

इसके अतिरिक्त वशिष्ठाश्रम,[132]राम की कुटी,[133]दण्डकारण्यवनाश्रम[134] एवं सीता विहीन आश्रम के वर्णनों के प्रकृति-वर्णन की छटा दर्शनीय है. सीता विहीन आश्रम के वर्णन में कवि ने किस सुन्दर ढंग से मानवीय संवेदना से आविर्भूत प्रकृति का चित्रण किया है, अन्यत्र दुर्लभ है—

ददर्श पर्णशालां च सीतया रहितां तदा ।
श्रिया विरहितां ध्वस्तां हेमन्ते पद्मिनीमिव ।।
रुदन्तीमिव वृक्षैश्च म्लान पुष्पमृगद्विजम् ।
श्रिया विहीन विध्वस्तं संत्यक्त वनदेवतैः ।।

वन प्रदेशों के अतिरिक्त पर्वतीय प्रदेशों में ऋष्यामूक, महेन्द्र, मैनाक, अरिष्ट, सरिताओं में मन्दाकिनी व गोदावरी, सरोवरों में पम्पासर एवं सागर के विभिन्न वर्णन महाकवि वाल्मीकि के प्रकृति–चित्रण के प्रमुख विषय रहे हैं.[135]

---

126. वा. रा. 2/55/9,30-32,34.
127. यथोपरि. 3/8/13/4–15.
128. यथोपरि. 13/11–22
129. यथोपरि. 68/6–10
130. यथोपरि. 4/3/5–11
131. यथोपरि. 3/11/38.39.
132. यथोपरि. 1/51/22–25.
133. यथोपरि. 2/99/5–7,19,20
134. यथोपरि. 3/1–7.
135. देखिये प्रकृति और काव्य पृ. 348.

इन सबके अतिरिक्त प्रकृति–चित्रण में काल एवं ऋतु वर्णन का प्रमुख स्थान रहा है. आदिकवि के आदिकाव्य में सायंकाल, रात्रि, चन्द्रोदय, बसन्त, वर्षा, शरद्, एवं हेमन्त के अनेकानेक प्रकृति–चित्रण यत्र–तत्र विद्यमान हैं [136] चन्द्रोदय का एक सुन्दर उदाहरण देखिये—

"ततः कुमुदखण्डाभि निर्मलं निर्मलोदयः ।
प्रजगाय नभश्चंडो हंसो नीलभिवोद्कम् ।।

(कुमुद पुष्पों की भांति निर्मल चन्द्रमा निर्मल गगन में कुछ ऊपर चढ़कर वैसे ही शोभित हुआ जैसे नीले जलवाली झील में हंस शोभित होता है.)[137]

इसी प्रकार वर्षाऋतु का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं—

मेघाभिकाया परिसंपतन्ती समोवितापाति जलाकपंक्तिः ।
वातावधूता वरपौण्डरीकी लम्बेवमाला रुचिराम्बस्य ।।
बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन विभाति भूमिर्नव शाद्वलेन ।
गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण नारीबलाक्षौचितकम्बलेन ।।

(गर्भाधान की कामना से बादलों के मध्य में विचरण करने वाली बलाकाओं की श्रेणी, पवननिर्मित गगन की धवल कमल की माला के तुल्य सुशोभित हुयी मध्य–मध्य में छोटी–छोटी वीरबहूटियों से पूर्ण हरी घास की सुषमा ऐसी प्रतीत होती जान पड़ती है, जैसे किसी युवती ने कढ़ाई की हुयी साड़ी पहन ली हो.)

इस वर्णन में कितनी स्वाभाविकता, कितनी सुन्दरता एवं कितनी कल्पना भरी पड़ी है. वास्तव में वाल्मीकि प्रकृति–चित्रण के सिद्ध हस्त कवि हैं.

प्रकृति-चित्रण के एक प्रकार उद्दीपन को इस श्लोक में कितने सुन्दर ढंग से महाकवि ने प्रस्तुत किया है : —

'श्यामां चन्द्रमुखीं स्मृत्वा प्रियापद्मनिमेषणाम् ।
यश्य सानुश्रु चित्रेणु स्मृत्वा सहितान्मृगान् ।।
यां पुनर्मृगशावाक्ष्या वैदैक्ष्या वैदैक्ष्या विरहीकृताम् ।
व्यथयन्तीव मे चितं संचरन्तस्ततस्ततः ।।

(देखो, इन विचित्र पर्वतशिखरों पर मृग मृगियों के साथ विहार कर रहे हैं. ये मुझे श्यामा, चन्द्रवदनी एवं कमलनयनी प्रिया की याद दिलाते हैं. ये मृगशावक नयनी जानकी के विरह में मुझे व्याकुल करते हैं. इनका यत्र-तत्र भ्रमण भी

136. **यथोपरि. पृ.** 357–366.
137. **वाल्मीकि रामायण.** 5/17/1

मुझे व्यथित कर रहा है.)[138]

इस प्रकार आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण में प्रकृति-चित्रण के सभी प्रकारों का सम्यक् समावेश देखने को मिलता है एवं इससे बाद के काव्यों में भी प्रकृति-चित्रण का समावेश हो गया है.

महाकाव्य दूसरा प्रमुख काव्य माना गया है. यद्यपि महाभारत की कथा में प्रकृति-वर्णन के कम अवसर आये हैं. किन्तु वहाँ उद्दीपन की भावना व्यापक रूप से विद्यमान है. एक उदाहरण देखिये 'कहीं पर फूले हुए कनेर के फूलों के सामने दिखाई पड़ते थे. वहीं पर फूले हुये कुरवक के वृक्ष कामदेव के बाणों के समान कामियों के हृदय में वेदना उत्पन्न कर रहे थे[139]

प्रस्तुत प्रकृति के रूप में अर्जुन के मन में स्वाभाविक रति भावना को उद्दीप्त करने की स्थिति लक्षित होती है. परन्तु इस प्रकार के स्थल महाभारत में विरलतम हैं।

वीरकाव्यों में प्रकृति-चित्रण पर विचार करने के पश्चात् अब हम प्रसंगानुसार कालिदास एव कालिदासोत्तर काव्यों में प्रकृति-चित्रण पर विचार करेंगे.

१. महाकवि-कालिदास

विश्व के विस्तृत साहित्य में महाकवि कालिदास को वाह्य-जगत् का सर्वश्रेष्ठ काव्यकार स्वीकार किया गया है. कालिदास-कृत प्रकृति–वर्णन केवल संस्कृत–साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं. महाकवि ने देश, काल, वनोपवन, पर्वत, सरित, सागर, आश्रम व ऋतुवर्णन इत्यादि अनेकानेक क्षेत्रों में प्रकृति-वर्णन प्रस्तुत किये हैं. अतः कालिदास प्रकृति के सच्चे एवं अद्वितीय उपासक हैं.

महाकवि ने रघु की दिग्विजय[140] व इन्दुमति स्वयंवर के प्रसंगों में देशगत प्राकृतिक विशेषताओं का सुन्दर वर्णन किया है. अवन्ती का यह वर्णन कितना स्वाभाविक एवं मनोहारी है: —

अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु कच्चिन्मनसो रुचिस्ते ।
सिप्रातरंगानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु ॥

(कदली के स्तम्भ के समान जंघाओं वाली इन्दुमती ! क्या तुम अवन्ती के

---

138. यथोपरि. 4/102,103
139. प्रकृति और काव्य पृ. 283
140. रघु. 4/34,35,44 46,51,55,56,57,59,67,69–72,75 81.

उन उपवनों में विहार करने की कामना करती हो जिनमें अहर्निश सिप्रा नदी का शीतल वायु प्रवाहित होता रहता है.[141])

इसी प्रकार मेघदूत में कवि ने अनेकानेक प्रदेशों का उल्लेख किया है, 'जिनमें–रामगिरि,[142] , दशार्ण,[143] उज्जयिनी,[144] कनखल[145] एवं अलकापुरी[146] के वर्णन मनोहर हैं, अभिराम हैं. उज्जयिनी का यह वर्णन प्रकृति–चित्रण का एक चूडान्त उदाहरण है जिसमें कहा गया है. कि उज्जयिनी के बाजारों में मेघ को कहीं तो कोटि कोटि मुक्ताओं से निर्मित मालायें देखने को मिलेगी जिनके मध्य में विशाल रत्न जड़े होंगे, अन्यत्र करोड़ों शंख एवं सीपियां दिखलायी देंगी एवं कहीं और श्यामवर्ण घास के समान देदीप्यमान नीलम बिछे मिलेंगे. उन सबको देखकर ऐसा प्रतीत होगा मानों रत्नाकर के सभी रत्नों को लाकर वहां एकत्रित कर दियो हो एवं रत्नाकर (समुद्र) केवल जल से पूर्ण रह गया हो[147]

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शंखशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भंगाम्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्यतोयमात्रावशेषाः ।।

वन एवं उपवन वर्णन में कालिदास ने अयोध्या के ध्वस्त उपवन,[148] नन्दन-वन[149], यक्ष का उपवन,[150] प्रमदवन,[151] का सुन्दर प्राकृतिक वर्णन प्रस्तुत किया है.

महाकवि ने सर, सरिता एवं सागर के मनोहर वर्णन किये है, जिनमें पंचाप-सर, पम्पासर, ध्वस्त-अयोध्या-बावली, नन्दनवन-बावली इत्यादि सरोवरों, कावेरी, सिंधु, लौहित्य, नर्मदा, सरयू, आकाशगंगा, यमुना, गंगा, वेत्रवती, निर्विन्ध्या,

---

141. यथोपरि. 6/35
142. मेघ. 1/1
143. यथोपरि. 25
144. यथोपरि. 35
145 यथोपरि. 54
146. यथोपरि. 67
147. यथोपरि 1/34.
148. रघु. 16/19
149. यथोपरि
150. यथोपरि. 13/13
151. मेघ. 2/16-18.

शिप्रा, गम्भीरा, इत्यादि सरिताओं एवं समुद्र का एक वर्णन जिसमें, लंका से लौटते समय राम द्वारा सीता को सागर दिखलाने का वर्णन है, प्रमुख हैं[152]

सर, सागरादि के अतिरिक्त कालिदास को पर्वत वर्णनों में भी पर्याप्त रुचि है। उन्होंने रामगिरी, आम्रकूट, विन्ध्याचल, नीच, देवगिरि, हिमालय, कैलास, मलय, गन्दमादन, सुमेरू, माल्यवान एवं चित्रकूट पर्वतों का रमणीय वर्णन प्रस्तुत कर प्रकृति-चित्रण की एक अनुपम भेंट पाठकों को प्रदान की है[153] हिमालय वर्णन से प्रभावित होकर पं० करुणापति त्रिपाठी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि– "कुमार-सम्भव तो प्रकृतिनटी के ललित लास्य की रमणीय रंगशाला है प्रथम सर्ग का हिमालय वर्णन संस्कृत साहित्य में क्या, समस्त विश्व साहित्य में एक देदीप्यमान रत्न है."[154] त्रिपाठीजी का यह कथन वास्तव में सत्य है. हिमालय वर्णन की एक झलक र्शनीय है—[155]

'यश्चाप्सरो विभ्रमण्डनानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति ।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम् ॥
कपोलकाण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्त्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ॥
भागीरथीनिर्झर सीकराणां वोढा मुहुः कम्पित देवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥'

प्रकृति–चित्रण में आश्रम वर्णन का अपना स्थान है. अतः कालिदास ने अपने काव्यों एवं नाटकों में आश्रमों का सम्यक् वर्णन किया है. रघुवंश में वशिष्ट के आश्रम का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन मिलता है—

'वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहारैः ।
पूर्यमाणदृश्याग्निप्रत्युद्धातैस्तपस्विभिः ॥
आकीर्णमृजिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः ।
अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः ॥
सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् ।
विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम् ॥

---

152. शाकु. 6 गद्य, विक्रम. 2 गद्य, 4–7, मालविका. 3/9. 16.17.
153. मेघ. 1/2,12. 18-20,27, 2/17/,18 1/56–63. कुमार. 1/1,3,6, 7,9–13,15,16. 9/39,41–44 24/20–29 रघु. 13/26–28.
154. कालिदास ग्रंथावली. पृ. 51 (समीक्षा-निबन्ध)
155. कुमार. 1/4,9,15.

अभ्युत्थिताग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान् ।

पुनानं पवनोद्धूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः ।।[156]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रारम्भिक अंकों का तो सम्पूर्ण वातावरण ही आश्रम जीवन की भावना से युक्त है. चतुर्थ-अंक में महाकवि ने आश्रम में प्रकृति एवं जीवन की आत्मीयता का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है [157] अतः कालिदास का आश्रम-वर्णन अद्वितीय है. दशरथ की मृगया का जो सजीव एवं गतिशील वर्णन रघुवंश में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है [158]

कालस्थिति-वर्णन का प्रकृति-चित्रण में प्रमुख स्थान रहा है । कालिदास ने प्रातः काल[159] का वर्णन, सन्ध्याकाल[160] का वर्णन एवं चन्द्रोदय[161]का स्वाभाविक शब्दचित्र-वर्णन प्रस्तुत किया है । चन्द्रोदय वर्णन का यह उदाहरण कितना सजीव, कितना रमणीय एवं कितना भव्य है—

पश्य पक्वफलिनीफलत्विषा बिम्बलांछितवियत्सरोम्भसा ।

विप्रकृष्ट विवरं हिमांशुना चक्रवाक मिथुनं विडम्ब्यते ।।'

ऋतुवर्णन में तो महाकवि सिद्ध-हस्त हैं. अपनी रचना ऋतु-संहार में तो उन्होंने छः ऋतुओं का विस्तृत वर्णन किया ही है इसके अतिरिक्त भी रघुवंश के सोलहवें सर्ग में ग्रीष्म-वर्णन,[162] चौथे-सर्ग में शरद् वर्णन[163]एव छठे सर्ग में वसन्त वर्णन,[164] कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में वसन्तवर्णन[165] व मेघदूत के प्रारम्भ में वर्षा ऋतु के जो वर्णन किये हैं, वे साहित्यजगत् के अत्यन्त कलापूर्ण एवं चित्रात्मक वर्णन हैं. मेघदूत का यह वर्णन कितना अभिराम है—[166]

---

156. रघु. 49–51,53.
157. शाकु. 1 गद्य, 4/4,8,9,13.
158. रघु. 9/53–56,58 60–68.
159. रघु. 5/66–68.
160. कुमार. 8/29,30,32,35.
161. कुमार. 8/61.
162. रघु. 16/46,47,52,53.
163. रघु. 4/14,16,18,20–24.
164. रघु. 6/1–3,5,16,19,20,22,23–28
165. कुमार. 3/24,25,28,31.
166. मेघ. 1/10

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथात्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ।।'

और रघुवंश का यह वसन्तवर्णन भी किसी प्रकार कम नहीं—[167]

'अमदयन् मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसंगतया मनः ।
कुसुमसंभृतया नवमल्लिका स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी ।।'

इस प्रकार महाकवि-कालिदास का प्रकृति वर्णन महत्त्वपूर्ण एवं अत्यन्त रमणीय है जिसे स्वाभाविक, सजीव, एवं भव्य कहें, तो अतिशयोक्ति न होगी.

२. अश्वघोष

महाकवि कालिदास के उत्तरवर्ती काव्यों के काव्यकारों में महाकवि अश्वघोष का प्रमुख स्थान रहा है । अश्वघोष एक दार्शनिक कवि थे अतः प्रकृति का सीधा-सादा वर्णन करना उनके लिये संभव नहीं था. उन्होंने जितने भी प्रकृति वर्णन किए हैं उनमें उद्दीपन के रूप मिलते हैं. बुद्धचरित के चतुर्थ सर्ग में सांसारिक भोग विलासों का वर्णन किया गया है, जिससे कुमार का मन मोहित हो सके. इस प्रसंग में उन्होंने प्रकृति का सहारा लेकर मानव जीवन की काम प्रेरणाओं को वर्णित करते हुये लिखा है:—[168]

फुल्लं कुरबकं पश्य निर्युक्तालक्तप्रभम् ।
यो नखप्रभया स्त्रीणां निर्भर्त्सित इवानतः ।।

(निचोड़े हुये महावर के समान कांतियुक्त कुसुमित कुरबक को देखिये जो अंगनाओं की नव कांति से तिरस्कृत होकर नत हो गया है) और भी—

काचित्पद्मवनादेत्य सपद्मापद्मलोचना ।
पद्मवक्त्रस्य पार्श्वस्य पद्मश्रीरिकस्तस्थुर्षा ।।

(कोई कमलाक्षी कमल वन से कमल के साथ आकर उस कमल मुख के पास स्थित हुयी.)[169]

बुद्धचरित के चतुर्थ-सर्ग में आम एवं तिलक के आलिंगन को रति क्रीड़ा का प्रतीक स्वीकार किया गया है ।[170]

---

167. रघु. 9/42
168. बु. च. 4/47.
169. तथैव. 4/36
170. तथैव. तथैव.

इन वर्णनों के अतिरिक्त तपोवन वर्णन के प्रसंग में कतिपय प्रकृति वर्णन निकाले जा सकते हैं. उदाहरण के लिए—

'विप्राश्च गत्वा बहिरिध्महेतोः प्रातः समित्पुष्प पवित्रहस्ताः ।
तपः प्रधानाः कृत बुद्धयोऽपि तं द्रष्टुमीयुर्नमठानभीयुः ।।

वास्तव में बुद्धचरित के रचयिता महाकवि अश्वघोष को प्राकृतिक वर्णन में विशिष्ट रुचि नहीं है क्योंकि वे एक दार्शनिक कवि है एवं उनका मूल विषय दर्शन के विभिन्न पहलुओं से पूर्ण है.

३. भारवि

कालिदासोत्तर काव्यकारों में अश्वघोषोपरान्त महाकवि भारवि का विशिष्ट स्थान है । भारवि ने अपने काव्य में पर्वत, वन, जलक्रीड़ा, व ऋतुवर्णन किये हैं जिनमें प्रकृति नटी के विभिन्न नृत्य देखने को मिलते हैं । हिमालय का वर्णन करते हुये भारवि लिखते हैं कि इसमें रत्नों से शून्य एक भी शिखर नहीं था, लताओं से हीन कोई भी उपत्यका नहीं थी पंकजों से रहित कोई भी सरिता नहीं थी एवं पुष्पों से अनाच्छादित कोई भी वृक्ष न था :—

'रहित रत्नचयान्न शिलोच्चयानलताभवना न दरीमुखः ।
विपुलिनाम्बुरुहा न सरिद्वधूरकुसुमान्व धतं न महीरुहः ।।[171]

भारवि का यह प्रकृति–चित्रण कितना सुन्दर है, कितना अभिराम है । भारवि ने अपने काव्य में हिमालय के मार्ग का वर्णन करते समय वनों का भी वर्णन किया है. सन्ध्या का वर्णन करते समय कवि ने लिखा है—सूर्य की कुंकुम ताम्र किरणें चट्टानों के गव क्षों में प्रवेश करती हुयी, युवतियों को जान पड़ती थी कि पतियों द्वारा भेजी हुई दूतियां हैं और इसलिए सांयकाल के शृंगार के लिए शीघ्रता कर देती थी. [172]

कान्तदूत्य इव कुंकुमताम्रा सायमन्डलमभित्वरयन्त्यः
सादरं ददृशिरवेनिताभिः सौधजालपतिता रविभासः ।

इस वर्णन में प्रकृति का जितना सुन्दर कल्पनायुक्त चित्र है वह अन्यत्र दुर्लभ है । भारवि ऋतु–वर्णन में भी किसी से कम नहीं, उन्होंने अनेक प्रसंगों में ऋतु–वर्णन किया है. [173] वर्षा का एक वर्णन देखिये —

---

171. किरात. 5/10
172. वही. 9/6
173. वही. 4/3–6, 16, 19, 21–223, 526, 29, 31, 62.

मुकुलितमतिशय्य बन्धुजीवं घृतजल विन्दुसु शाद्वलस्थलीषु
अतिरलवपुषः सुरेन्द्र गोपा विकचपलाशचयश्रियं समीयुः ।।

(वीर–बहूटियां, जिनके शरीर मोटे ताजे हो गये थे, नीहर कणों से आच्छादित हरे–हरे तिनकों वाली भूमि पर बन्धूक पुष्प के मुकुल की कांति को तिरस्कृत कर प्रफुल्ल पलाश पुष्प की शोभा को प्राप्त हुई.)

इन वर्णनों से स्पष्ट है कि भारवि को प्रकृति–चित्रण में रुचि थी उन्होंने उस रुचि को अपने काव्य में प्रदर्शित किया.

४. माघ

भारवि के उत्तरवर्ती काव्यकार माघ को भी प्रकृति चित्रण में रुचि है, उन्होंने अपनी एक मात्र कृति शिशुपालवध में क्रमशः सागर, पर्वत, सन्ध्या, चन्द्रोदय, प्रभात एवं ऋतुओं का वर्णन किया है.

द्वारिका प्रस्थान के प्रसंग में माघ ने सागर का संक्षिप्त वर्णन किया है. 174 'पर्वतों के वर्णन में कविकृत रैवतक पर्वत' का वर्णन अत्यन्त सुन्दर है. 170

"उस पर्वत पर रज्जु के समान पड़ी हुई, उदय होते हुए सूर्य एवं अस्त होते हुए चन्द्रमा की किरणों से जान पड़ता है मानों विशाल गज के गले में दो घण्टे झूल रहे हों"

माघ का यह वर्णन सुन्दर एवं सजीव है। इसी वर्णन से प्रभावित हो विचारकों ने उसे 'घण्टामाघ' की उपाधि से विभूषित किया है। माघ ने क्रीडा-विलास प्रसंग में सन्ध्या का भी वर्णन किया है।176 महाकवि माघ ने चन्द्रोदय को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हुए लिखा है —177

उपजीवति स्म सततं दधतः परियुग्धतां वणिगिवोदुपतेः ।
धनवीथिवीथिमवीर्णयतो निधिरम्भसामुपचयाय कलाः ।।

(नीरधि रूपी वैश्य के सदृश, सुन्दरता को धारण करते हुए मेघमार्ग रूपी आपण में उतरे हुये नक्षत्र स्वामी की कलाओं को अपनी उन्नति के जल की वृद्धि के लिये सेवन करने लगा अर्थात् चन्द्रकलाओं का पान कर सागर का जल उसी प्रकार बढ़ गया जिस प्रकार बाजार में आये हुये व्यापार की कला को न जानने

---

174. शिशु. 3/70, 73, 75, 77–81.
175. यथोपरि 4/29
176. यथोपरि 9/13, 5, 6, 8, 10, 12–17,
177. यथोपरि 32.

वाले किसी व्यापारी के धन को कपट पूर्वक लेकर किसी चतुर वैश्य की सम्पत्ति बढ़ जाती है.)

चन्द्रोदय की भांति प्रभात का वर्णन भी महाकवि माघ की एक नवीन कल्पना है. [178]

महाकवि कालिदास की भांति महाकवि माघ को भी ऋतुवर्णन अत्यन्त प्रिय है. उन्होंने वसन्त, वर्षा, शरद् व हेमन्त का वर्णन किया है।[179] कवि का वसन्त वर्णन अत्यन्त सुन्दर है. [180]

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुट परागपरागतपंकजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् सुरभिसुरभिसुमनोभरैः ।।

(भगवान कृष्ण ने नवपल्लवयुक्त पलाश वन वाले, प्रफुल्लित तथा मकरन्द से से भरे हुये कमलों वाले, कोमल एवं गर्मी से कुछ म्लान पुष्पों वाले तथा पुष्पों से सुरभित बसन्त ऋतु को देखा.)

महाकवि माघ एवं महाकवि कालिदास के वर्णनों में हमें एक अन्तर देखने को मिलता है कि कालिदास ने विलास क्रीड़ाओं के सन्दर्भ में भी और सीधे सादे भी ऋतु वर्णन किया है. किन्तु माघ ने सामान्यतः विलासादि के प्रसंग में ही ऋतु वर्णन किया है.

५. श्रीहर्ष

माघ के पश्चात् प्रमुख काव्यकारों में श्रीहर्ष का विशिष्ट स्थान है. उनकी कृति नैषधीयचरितम् एक विशाल ग्रंथ है एवं अनेकानेक प्रसगों से युक्त है. श्रीहर्ष ने अपने काव्य में देश काल और ऋतुओं का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है

दमयन्ती–स्वयंवर के प्रसंग में अनेक राजाओं और उनके राज्यों के वर्णन उनके काव्यों में दर्शनीय है. जिनमें पुष्कर द्वीप, शाकद्वीप, क्रौंच देश, शल्मल द्वीप, प्लवद्वीप, जम्बूद्वीप व अवन्ती के वर्णन प्रमुख है. [171]

इन वर्णन में पुष्करद्वीप में वट वृक्षों की उपस्थिति, शाकद्वीप में शाक वृक्षों की उपस्थिति, क्रौंचदेश में हंसों की मधुर ध्वनि, शाल्मलद्वीप में शाल्मली वृक्षों की उपस्थिति, प्लव द्वीप पाकड़ वृक्षों की उपस्थिति एवं जम्बूद्वीप में जम्बू वृक्षों के बाहुल्य का उल्लेख प्रकृति नटी के विभिन्न नृत्यों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत

---

178. यथोपरि 11/21.
179. यथोपरि. 612–5, 7, 21, 27, 30.
180. यथोपरि. 612.
181. नैषध० 11/29, 30-38, 41, 43, 50, 58, 62, 69, 70, 74, 77, 84–86.

करता है. अवन्ती का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि अवन्ती में शिप्रा नदी दमयन्ती की सखी होगी. उस नदी के तटों पर तपस्वी एवं विप्रजन निवास करते हैं. यह नदी क्रीड़ा के समय तरंग रूपी करों से दमयन्ती का आलिंगन करेगी. उसका कमल के तुल्य मुख निरन्तर हास्य से रमणीय रहता है.[182]

महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग में उद्यान का वर्णन करते हुये उसे भ्रमरों के गुञ्जन, केतकी के पुष्प एवं चम्पे की कली से युक्त कहा है. कवि ने नागकेशर व पाटल के फूलों व अगस्त्य और अशोक के वृक्षों का भी सुन्दर वर्णन किया है.[183]

नल द्वारा देखे गये सरोवर का वर्णन करते हुये कवि लिखते हैं कि—वह सरोवर ऐसा प्रतीत होता था मानों बहुत समय मे पुराने रत्नों की सम्पत्ति को मन्थन के भय से लेकर समुद्र उस वन में छिप कर रहता हो.[184] इस सरोवर को कवि ने कमलों व चक्रवाकों से युक्त भी बतलाया है.[185]

प्रातःकाल का यह वर्णन कितना स्वाभाविक, सजीव एवं काल्पनिक है.[186]

> "व्रजति कुमुदे दृष्टा मोहम् दृशोरपिपावके
> भवति च नले दुरम् तारपतौ च हतौजसि ।
> लघु रघुपर्तेजायां मायामयीमिव राघेरिण
> स्तिभरधिकुरग्राहं रात्रिं हिनस्ति गभस्तिराद् ।।"

(सूर्य अंधकार रूपी बाल पकड़ कर रात्रि का शीघ्र नाश करता है. यह देखकर कुमुद संकोच को प्राप्त हो जाते हैं, महाराज आपके नयन खुल गये हैं एवं मयंक का तेज मलीन हो गया है. जैसे—रामचन्द्र की मायामयी भार्या सीता को मेघनाद ने बाल पकड़कर मारा तब कुमुद वानर को मोह हो गया था, नल वानर ने आँखे बंद करली थी, एवं सुग्रीव बलहीन हो गया था.)

महाकवि श्रीहर्ष ने अपने ग्रंथ के अन्तिम सर्ग में सायंकाल का वर्णन नल दमयन्ती के आलम्बन से करवाया है. इस प्रसंग में पश्चिम दिशा को रागवर्ण से युक्त बताया है, सूर्य को सोने का टुकड़ा व तारों को कोड़ियां बतलाते हुये सन्ध्या का वर्णन किया है. सूर्य की अनुपस्थिति में लोगों के नेत्रहीन होने व अंधकार के

---

182. यथोपरि 11/89
183. यथोपरि 1/78,79,81–84,86,87,92–96,101.
184. यथोपरि 1/107
185. यथोपरि 1/109. 111,113–116.
186 यथोपरि 19/8

छा जाने का वर्णन कवि कल्पना की अनुपम भेंट है.[187]

कवि का चन्द्रोदय वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है. सायंकाल में सूर्य की अनुपस्थिति को स्वर्ण मुद्रा के अभाव रूप में एवं चन्द्रोदय को रजत मुद्रा की उपस्थिति मानते हुये सायंकाल को धूर्त कहा है—[188]

आवत्तदीप्तं मणिमम्बरस्य दत्वा यदस्मै खलु सायधूर्तः ।
रम्यन्तुषारद्यु ति कूटहेम तत्पाण्डु जातं रजतं गणेन ।।

यद्यपि श्रीहर्ष के वर्णनों में चित्र-मयता का अभाव दृष्टिगोचर होता है किन्तु उनके वर्णनों में कल्पना की जो उड़ानें हैं वे कवि की प्रतिभा की परिचायक हैं.

इस प्रकार हमने पद्य काव्यकारों के काव्यों में प्रकृति-चित्रण पर एक विचार किया. अब हम गद्य काव्यकारों द्वारा प्रस्तुत प्रकृति वर्णन पर विचार करेंगे.

गद्य—काव्यकार

१. सुबन्धु

गद्यकारों में सुबन्धु का प्रथम स्थान रहा है. सुबन्धु की कृति वासवदत्ता एक ऐसी रचना है जिसमें प्रकृति के सभी उपमानों का यत्र-तत्र-सर्वत्र वर्णन किया गया है. क्या देश, क्या वन, क्या नदी, क्या काल और क्या ऋतु, कोई भी विषय ऐसा नहीं, जिसका अल्पाधिक वर्णन कवि ने न किया हो.

कवि ने कुसुमपुर नामक नगर का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है. वे लिखते हैं कि उस नगर के प्रासाद, उत्तम सुधा-अमृत से शुभ्रवर्ण सुधाशिलाओं से मनोहर मन्दरपर्वत के शिखरों के समान, कलई के लेप से शुभ्र वर्ण हैं. मदमत्त हाथियों से युक्त हस्थि-यूथ के समान, सुन्दर बरामदों से अलंकृत हैं, गवाक्षों से मनोहर हैं. [189]

तमसानदी के चारों ओर उपवनों की उपस्थिति को भी कवि ने प्रस्तुत किया है.[190] वासवदत्ता में समुद्रवर्णन, नदीवर्णन (शिप्रा व तमसा) व पर्वत—वर्णन (विन्ध्याचल) पर्याप्त रूप से विद्यमान हैं जो कवि के प्रकृति प्रेम का परिचय देते हैं. [191]

---

187. यथोपरि. 22/34
188. यथोपरि. 22/50.
189. वासवदत्ता. पृ. 85.
190. वही. पृ. 96.
191. वही. पृ. 17,73,96,17,63,

सुबन्धु ने प्रातःकाल का बड़ा ही मनोहारी वर्णन करते हुये लिखा है :—

'पश्चिमाचलोपधान सुखनिषण्णशिरसो राजतताटंकचक्रइव, श्यामश्यामायाः, शेषमधुभाजि चषक इव विभावरीबध्याः।'

(उस समय वह (चन्द्रमा) अस्ताचलरूपी तकिये पर सिर रखकर लेटी हुयी रात्रिरूपी युवती के रजत-निर्मित ताटंक के समान सुशोभित हो रहा था एवं रात्रिरूपी कामिनी के पीने से शेष बचे हुये मद्य परिपूर्ण पात्र–सा प्रतीत हो रहा है.)

प्रातःकाल के वर्णन के समान कवि ने सन्ध्या, रात्रि एवं चन्द्रोदय के भी विस्तृत वर्णन किये हैं.[192] सुबन्धु ऋतुवर्णन में भी किसी से कम नहीं. उन्होंने वर्षा, वसन्त व शरद् का वर्णन किया है.[193] वर्षाऋतु के वर्णन की एक झलक दर्शनीय है[194]: —

"एकदा कतिपयमासपगमे काकली गायन इव समृद्धनिम्नगानदः, सन्ध्यासमय इव नर्तितनीलकण्ठः, कुमारमयूर इव समारूढशरजन्मा, महातपस्वीव प्रशमितरजः प्रसरः, तापस इव धृतजलदकरकः, प्रलयकाल–इव दर्शितानकनरणिविभ्रमः, निरुपद्रवकाननोद्देश इव घनोत्सेकितसारंगः, रेवतीकरपल्लव इव 'हलिधृतिकरः, लंकेश्वर इव स मेघनादः, विन्ध्य इव घनश्यामः, युवतिजन इव पीनपयोधरः, समाजगामः वर्षासमयः।"

(कतिपय समय व्यतीत हो जाने पर एक समय वर्षाकाल उपस्थित हुआ, जिसमें श्रेष्ठ एवं गम्भीर गान के प्रवर्तक काकलीगायन की भांति सरितायें तथा नद जल से पूर्ण थे. जिसमें रुद्र के नृत्य से युक्त सायंकाल के समान मयूर नृत्य कर रहे थे. कार्तिकेय से अधिष्ठित कुमार के बाहनभूत मोर के सदृश सरकण्डा बहुतायत के साथ उगे हुये थे. जिसका रजो गुण शान्त हो गया है ऐसे तपस्वी के समान जिसमें धूल दबी हुयी थी. जलप्रद कमण्डलु धारण करने वाले सन्यासी के सदृश जिसने जलद एवं ओलें धारण किये हुये थे. अनेक सूर्यों की चमक प्रदर्शित करने वाले प्रलयकाल के समान जिस समय अनेक नौकायें घूम रही थीं, जिसमें हरिण मस्त होकर भ्रमण कर रहे थे, ऐसे शांत–वन प्रदेश के समान जिसने नीरदों द्वारा चातकगणों को मस्त बना दिया था. बलराम को सन्तुष्ट करने वाले रेवती के हाथ के समान जो किसानों को धैर्य दे रहा था. अपने आत्मज मेघनाद सहित

---

192. वासव दत्ता पृ. 150–153,173,175,
993. वही. पृ. 245,249,110.
194. वही. पृ. 245

दशानन के समान जिस समय मेघ गर्जना कर रहे थे. जो विन्ध्याचल की भांति श्यामवर्ण का हो चला था और पीनस्तनी युवतियों के सदृश जिसमें विशाल जलद उतिष्ठित हो रहे थे.)

इस प्रकार सुबन्धु के वर्णनों में अनेकानेक प्रकृति के उपमानों का बाहुल्य है जो उनके प्रकृति प्रेम को प्रदर्शित करते हैं.

२. बाणभट्ट

संस्कृत–साहित्य के विशाल सागर में बाणभट्ट का अपना स्थान है. वे प्रकृति के ही क्या सब कलाओं एवं विद्याओं के सच्चे पारखी है. बाणभट्ट की दोनों कृतियां, हर्षचरित एवं कादम्बरी, अनेकानेक प्राकृतिक चित्रों से युक्त है. बाण ने प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप को पाठकों के सम्मुख रखने का सफल प्रयास किया है. यहां इन सब वर्णनों को प्रस्तुत करना तो कठिन है, किन्तु उनमें से कतिपय का संक्षिप्त वर्णन मात्र प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे.

बाणभट्ट ने हर्षचरित में श्रीकण्ठ देश का विस्तृत वर्णन किया है.[195] विन्ध्य के मार्ग का वर्णन ग्राम्य प्रकृति का अनुपम वर्णन है. वे लिखते हैं—

अथ प्रविशन्दूरादेव दह्यमानषष्टिकबुसविसरविसारिभावसूनां वन्यधान्य बीज-धानीनां धूमेन धूसरिमाण मादधानैः, प्रकाश्यमानमटवीप्रायप्रान्ततया कुटुम्ब-भरणाकुलैः कुद्दालप्राय कृषिभिः कृषीवलैरबलवद्भिरुच्चभागभाषितेन भज्य-मान भूरिशालिखलक्षेत्र खण्डलकमल्पावकाशैश्चकापिलैः, कालायसैखि कृष्ण मृत्तिका कठिनैः ।'

(प्रवेश करते ही दूर से ही उन्होंने जंगली लोगों से युक्त वनग्राम देखा। जंगली धानों के खलिहानों की जलते हुए साठी के घास की अग्नियों के धुंए से बन प्रदेश धुमैले हो रहे थे। वनग्राम के चारों ओर जंगल के सिवा और कुछ भी न था. इसलिये कृषक अपना भरण-पोषण करने के लिये व्याकुल रहते थे एवं उसी चिन्ता में कृश होकर जोर जोर से आवाज करते हुए केवल कुहारी से खोद कर परती जमीन तोड़ते और खेत के टुकड़े निकाल लेते. खेत छोटे–छोटे और कहीं–कहीं पर थे. भूमि काश से भरी हुई थी. काली मिट्टी लोहे की तरह कड़ी थी.) इत्यादि, इत्यादि.[196]

वनों के वर्णनों में सबसे सुन्दर सबसे अभिराम वर्णन है–बाणकृत विन्ध्या-टवी वर्णन. वे लिखते हैं—

---

195. ह० च० पृ० 159
196. वही० पृ० 406.

'अस्ति पूर्वापर—जलनिधि-वेलावनलग्ना मध्यदेशालंकारभूता मेखलेव भुवः, वन—करिकुल—मदजल—सेक-संवर्द्धितैरतिविकचधवलकुसुमनिकरभत्युच्चतया तारा गणमिव शिखर देशलग्नमुद्भिः पादपैरुपशोभिता, मदकल कुररकुलदश्यमान मरिचपल्लवा, करिकलभकरमृदिततमालकिसलयामोदिनी.…………पुष्पवत्यापि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम ।'

(जलनिधि के पूर्वी तट से पश्चिमी किनारे तक लगी हुई मध्य प्रदेश की कांति बढ़ाने वाली विन्ध्याटवी नाम के वनों की एक पट्टी फैली हुई है. वह पृथ्वी की करधनी के सदृश प्रतीत होती है. वह मानों जंगली हाथियों के मदजल से ही सींच कर बढाये गये अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित थी, जिनके शिखरों पर खिले हुए धवल-पुष्पों के समूह ऊंचाई के कारण तारों के समान प्रतीत होते थे. कहीं कहीं मनोहर बलाकाओं के मस्त समुदाय मिर्च के पल्लव कुतर—कुतर कर खा रहे थे, कहीं हाथियों के बच्चों की सूडों से मसले गए तमाल के पत्तों से मधुर सुगन्ध निकलती थी.) इत्यादि इत्यादि [197]

विन्ध्याटवी के अतिरिक्त बाण ने जीर्णशाल्मली, शुक्र-निवास-वन व शून्याटवीं का विस्तृत वर्णन किया है.[198]

हर्षचरित में विन्ध्य वन का वर्णन वास्तव में सुन्दर बन पड़ा है. कवि लिखते हैं. [199]

'अथ क्रमेण गच्छत एव तस्य अनवकोशिनः कुड्मलिकर्णिकाराः, प्रचुरचम्पकाः स्फीतफलग्रह्यः, फलभरभरितनमेरवः नीलदलनलदनारिकेनिकराः, हरिकेसर सरल परिकराः, प्रचूरपूगफलाः, चटका संचार्यमाण—वाचाटचाटकैरक्रियमाणचाटवः, सहचरी चारणचंचुरचकोरचंचवः इत्यादयः ।'

(विन्ध्याटवी के मार्ग में हर्ष ने फले फूले अनेक वृक्षों का अवलोकन किया. चम्पक फलों से लद गए थे. सांवले पत्तों वाले सल्लकी एवं नारियल के वृक्ष समुदायों में खड़े थे. नागकेसर और सरल चारों ओर छाए हुए थे. हींग हवा से हिल रहे थे. सुपारी के फल खूब लगे थे. गौरया चूं चूं करते हुए अपने बच्चों को उड़ाना सिखा रही थीं. चकोर अपनी प्रिया को चुग्गा दे रहा था.) इत्यादि.

बाण ने पर्वतों के वर्णन भी किये हैं, किन्तु पर्वत-वर्णन बाण का अधिक

---

197. कादम्बरी० पृ० 55.
198. वही० पृ० 71, 74, 633.
199. हर्ष चरित पृ० 418.

प्रिय या मुख्य विषय नहीं रहा. उन्होंने अनेक प्रसंगों में हिमालय व विन्ध्य पर्वत का वर्णन किया है. कैलास पर्वत के वर्णन की एक छटा दर्शनीय है—

शिखर-सुत-शिला जतु-रसपिच्छिलोपलेन, टंकनहय-खुर-खण्डित-हरिताल क्षोद-पांशुलेन, आखुनखरोत्खातविल-विप्रकीर्णकांचन चूर्णेन, वनमानुषमिथुना ध्यासिततटगुहामुखेन, गन्धपाषाण-परिमलामोदिना, वेत्रलताप्रतानप्ररूढवेणुना कैलासतलेन, कंचिदध्वानं गत्वा तस्यैव कैलासशिखरिणः पूर्वोत्तरे दिग्भागे जलभारा-लसं जलधरव्यूहमिव बहुल-पक्षक्षपान्धकारमिव पुंजीकृत मत्यायतं तरुषण्डं ददर्श ।' इत्यादयः ।

(शिखर से गिरते शिलाजीत के रस से उनकी शिलाएं चिकनी हो गई हैं. पाषाण-विदारक अस्त्र के सदृश कठिन अश्वों के टापों से विदीर्ण हरिताल के रेणु से वह मलिन हो गयी है. मूषकों के नखों से खोदे बिलों के अन्दर वहां सुवर्ण रज विक्षिप्त है. पर्वत–गुफाओं के द्वार में बहुसंख्यक वन–मानुष के जोड़े रहते हैं. सुगन्धि–पाषाण का सौरभ आता है और बें। की वेलों के प्रतान में बांस उगे हैं. वहां पुंजीकृत वृक्षों का मण्डप देखा.)[200]

सर–सरिता वर्णन भी कवि ने किये हैं जिनमें पम्पासर, अच्छोद सरोवर व आकाशगंगा के वर्णन प्रमुख हैं. पम्पासर का एक वर्णन देखिये—

'अगस्त्याश्रमस्यनातिदूरे जलनिधि पान-कुपित–वरुणोत्साहितेन अगस्त्य-भत्सरात्तदाश्रमसमीपवर्त्यपरा इव वेधसा महाजलनिधिरुत्पादितः, सारसित-समद सारसम्, अम्बुरुह-मधुपान-मत्त-कलहंसकामिनी-कृत-कोलाहलम् अनेक जलचर पतंगशत-संचलन-चलित-वाचालवीचिमालाम्, अनिलोल्लासित - कल्लोल-शिशिर शीकरारब्ध दुरद्दिनम् अगाधमनन्तम प्रतिमम् अपां निधानं पम्पोभिधानं पद्मसरः इत्यादयः ।'

(उस अगस्त्याश्रम के करीब ही दूर तक अथाह, विस्तृत, अद्वितीय एवं जल का सागर सा पम्पा नामक कमलपूर्ण एक तडाग था. वह ऐसा लग रहा था मानो सागर का सम्पूर्ण जल पी लेने वाले अगस्त्य को जलाने के लिए क्रुद्ध वरुणदेव से प्रेरित ब्रह्मा ने उनके आश्रमों के करीब एक अन्य महान् समुद्र ही उत्पन्न कर दिया हो, उसमें कहीं मतवाले सारस ध्वनि करते थे, अन्यत्र कमलों के रस का पान कर मदमस्त हंसनियां कोलाहल करती थीं, कहीं सैकड़ों की संख्या में अनेक जलपक्षियों के साथ साथ तैरने से चंचल लहरों से कलकल हुआ करती थी.) इत्यादि.

---

200. कादम्बरी पृ० 370.

बाण आश्रम वर्णन में भी पीछे नहीं रहे. उनके द्वारा किये गये आश्रम वर्णनों में जाबाल्याश्रम, अगस्त्याश्रम, बौद्धाश्रम के वर्णन प्रमुख है.[201] इन आश्रमों के वर्णनों में कवि ने वन, पर्वत, फल-फूल सरसरिना-मृग-सिंह, गज इत्यादि के जो वर्णन प्रसंगानुसार किये हैं, वे अन्यत्र अत्यन्त विरल हैं. अगस्त्याश्रम का एक वर्णन देखिये —

'चिरशून्येऽद्यापि यत्र शाखनिलीन निभृत पाण्डु-कपोत पंक्त्यो लग्नतापसाग्निहोत्र धूमराजय इव लक्ष्यन्ते तरवः । बलिकर्म्म कुसुमान्युद्धरन्त्याः सीतायाःकरतला दिव संक्रातो यत्र रागः स्फुरति लताकिसलयेषु । यत्र च पीतोद्गीर्णजलनिधि जलमिव मुनिना निखिलमाश्रमोपान्तवर्त्तिषु विभक्तं महाह्रदेषु । यत्र च दशरथ सुत-निशित-शर-निकर-निपात निहत-रजनीचर-बल-बहल रुधिरसिक्तमूलय द्यापि तद्रागाविद्ध-निर्गतपलाशमिवाभाति नव किसलयमरण्यम् ।'

(मुनियों के द्वारा बसा न होने के कारण उस बीहड़ में शाखाओं पर विद्यमान धवल-कपोतों की पंक्तियों से वृक्ष ऐसे लग रहे थे जैसे अद्यपर्यन्त भी उनमें उन तपस्वियों के अग्निहोत्रों से उठे हुए धुएं की रेखाएं लगी हुई हों, जहां बेलों की नवीन से नवीन कोमल कोपलों से निकलती हुई लालिमा ऐसी लगती थी मानों अर्चनकुसुमों के चयन काल में लगी हुई जानकी के करतलों की लाली ही आज भी फूट फूट कर बिखर रही हो, जहां आश्रम के निकटवर्ती सरोवरों में बांट दिया हो.) इत्यादि.[202]

इन वर्णनों के अतिरिक्त शबरमृगया, आखेट वर्णन एवं अशुभ उत्पातों के वर्णन भी प्रकृति की विभिन्न क्रियाओं पर प्रकाश डालते हैं.[203]

काल परिवर्तन एवं ऋतु वर्णन में भी बाण भट्ट किसी से पीछे नहीं रहे हैं.

उनके काव्यों में मध्यान्ह, सन्ध्या, अंधकार, रात्रि, चन्द्रोदय, प्रातःकाल के वर्णन अनेक स्थानों पर प्रसंगानुसार फैले पड़े हैं.[204] ऋतुवर्णन के प्रसंगों में ग्रीष्म, पवन प्रवेश, दावानल प्रकोप, वर्षा, शरद्, वसन्त के वर्णन कवि ने अनेक स्थलों पर किये हैं.[205] महाकवि बाण के ये सभी वर्णन अन्य कवियों की भांति ही हैं, उनमें कोई वैशिष्टय देखने को नहीं मिलता, अतः इन वर्णनों का यहाँ विस्तृत उल्लेख करना पिष्टपेषण मात्र तो होगा ही साथ ही उबाने वाला भी

201. कादम्बरी पृ॰ 67–68
202. कादम्बरी पृ॰ 65.
203. वही॰ पृ॰ 85, 86, ह॰ च॰ पृ॰ 281.
204. वही॰ पृ॰ 81, 149, 297 517, 586.
205. वही॰ पृ॰ 414

होगा, अतः इनका विस्तृत वर्णन न करते हुये दण्डी के प्रकृति-चित्रण पर एक दृष्टि डालेंगे.

३. दण्डी

गद्य-कवि दण्डी का काव्य दशकुमारचरित्र राजनैतिक अटकलों का काव्य है. अतः हम इसमें मुक्त रूप से प्रकृति-वर्णन की उपस्थिति की आशा नहीं कर सकते, परन्तु फिर भी दण्डी के इस काव्य में कतिपय स्थल ऐसे है जिनमें प्रकृति-चित्रण की झलक देखी जा सकती है.

महाकवि ने पुष्पपुरी का वर्णन किया है.[206] ऋतुवर्णन में वसन्त व शरद् का वर्णन अभिराम बन पड़ा है. वसन्त का यह वर्णन कितना स्वाभाविक एवं सजीव है—

'अथ मीनकेतनसेनानायकेन मलयागिरिमहीरुह–निरन्तरावासि भुजंगम-भुक्तावशिष्टेनेव सूक्ष्मतरेण धृतहरिचन्दनपरिमलभरेणेव मन्दगतिना दक्षिणानिलेन वियोगिहृदयस्थं मन्मथानलमुज्ज्वलयन्, सहकारकिसलयमकरन्दा स्वादन रक्तकण्ठनां मधुकरकल कण्ठानां काकलीकलकलेन दिक्चक्रं वाचालयन्, मानिनीमानसोत्कलिकामुपनयन्, माकन्दसिन्दुवारक्ताशोकर्किशुकतिलकेषु कलिकामुपपादयन्, मदनमहोत्सवाय रसिक मनांसि समुल्लासय, वसन्त समयः समाजगाम ।'

(तदनन्तर वसन्तकाल उपस्थित हुआ. जिसका सेनाध्यक्ष स्वयं कामदेव था. मलयपर्वत पर लगे चंदन-वृक्षों पर निवास करने वाले सर्पों के पान से बची हुयी और चंदन की सुगन्धि से मिश्रित मन्द-मन्द बहती हुयी दक्षिणानिल के द्वारा वसन्त ने वियोगियों के हृदय में कामाग्नि उदीप्त कर दी । आम-मंजरी के मकरन्द का आस्वादन करने से रक्तकण्ठ वाले पिक की मीठी बोली और भ्रमरों की गुंजार के द्वारा मदन ने दसों दिशाओं को मुखिरत कर दिया । मान करने वाली कामनियों की लालसा को बढ़ा दिया. आम, निगुण्डी रक्त, अशोक, पलाश एव तिलक, इन वृक्षों में नयी-नयी कोंपलें उत्पन्न करदीं एवं मदन महोत्सव मनाने के लिये रसिकों के हृदय में एक विशिष्ट प्रकार का उल्लास भर दिया.)[207]

इस प्रकार न्यूनाधिक रूप से प्राचीन समय से ही काव्यों में प्रकृति-वर्णन की अविरल धारा प्रवाहित होती रही है, भले उसका रूप कुछ और रहा हो. हां, इतना अवश्य है कि आजकल प्रकृति-वर्णन के अनेक प्रकारों व सम्प्रदायों का

---

206. दशकुमार चरित पृ० 4.
207. वही० पृ० 97–99.

प्रचलन है किंतु वास्तव में उनका मूल संस्कृत के प्राचीन काव्य ही रहे हैं. इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता.

काव्यों में पशु-पक्षी वर्णन की उपस्थिति क्यों ?

जब हम विचार करते हैं कि काव्यों में पशु-पक्षियों के वर्णन क्यों उपलब्ध होते हैं तो हमारे सम्मुख निम्नलिखित मुख्य कारण उपस्थित होते हैं :—

(i) मानव एवं पशु-पक्षियों का निरन्तर संयोग.

(ii) प्राचीन समय में मानव का पशु-पक्षियों के प्रति प्रेमाधिक्य.

(iii) कवियों की पैनी अवलोकन शक्ति.

मानव व पशु पक्षियों का सदा-सदा का साथ रहा है और यदि यों कहे कि पशु-पक्षी मानव के पूर्व भूपटल पर विद्यमान रहे हैं, तो अतिशयोक्ति न होगी. वैज्ञानिक तो मानव को बंदर की संतान स्वीकार कर चुका है अतः मानव अर्वाचीन है, पशु या पक्षी प्राचीन. अब प्रश्न यह उठता है कि मानव ने पशु-पक्षी का संयोग कब प्राप्त किया तो इस प्रश्न का सीधा-सादा उत्तर यही होगा कि जब मानव ने भूपटल पर आगमन किया तभी से उसे पशु-पक्षियों का साहचर्य प्राप्त हो गया. अतः सिद्ध है कि मानव व पशु-पक्षियों का चोली-दामन का साथ रहा है. मानव का पशु-पक्षियों के साथ यह संयोग निरन्तर बढ़ता गया और मानव उनके नजदीक से नजदीक रहने लगा. मानव क्योंकि बुद्धिमान् जीव था उसने पशु-पक्षी को अपने वश में किया एवं उन्हें पालतू बनाया. मानव एवं पशु-पक्षी के इस संयोग की कहानी मानवता की प्रारम्भिक कहानी है. ज्यों-ज्यों मानव की बुद्धि का विकास हुआ, उसमें सोचने समझने की शक्ति आयी एवं उसने अपने विचारों को व्यक्त करना सीखा, तभी से पशु-पक्षी के वर्णन का बीजारोपण हो गया था। मानव के विचार अधिक विकसित हुये, उसने लिखना-पढ़ना सीखा एवं अपने विचारों को लेखन के माध्यम से दूसरों तक पहुँचाने की कला में प्रवीणता प्राप्त की. इस प्रकार हजारों वर्षों की अविरल तपस्या के पश्चात् मानव एक बुद्धिजीवीयुग का सदस्य बना एवं इसी बुद्धिमत्ता के कारण उसने काव्यों में पशु-पक्षियों का वर्णन किया है, कर रहा है एवं भविष्य में भी करता रहेगा. अतः सिद्ध होता है कि काव्यों में पशु-पक्षी वर्णन की उपस्थिति का एक प्रमुख कारण है—"मानव व पशु-पक्षी का निरंतर संयोग".

संयोग से गुणों का आदान-प्रदान होता है। कहा भी तो है—

'सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्' ।

अतः जब मानव का पशु-पक्षियों के साथ संपर्क हुआ तो उनके पारस्परिक संबन्ध बढ़े और मानव पशु-पक्षियों से एवं पशु-पक्षी मानव से प्रेम करने लगे.

यह प्रेम आगे चलकर इतना बढ़ गया कि वे एक दूसरे के सुख-दुःख को भली भांति समझने लगे एवं उनके हृदय में सहानुभूति व प्रेम की भावना उपस्थित हुयी. अतः काव्यों में पशु-पक्षी वर्णन की उपस्थिति का द्वितीय कारण बना — "पशु-पक्षियों के प्रति मानव का प्रेमाधिक्य."

किन्तु केवल सम्पर्क एवं प्रेम मात्र से हमें किसी वस्तु का सम्यक् ज्ञान नहीं हो सकता. किसी वस्तु का वास्तविक एवं सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसका अवलोकन आवश्यक है. अतः काव्यों में पशु-पक्षी वर्णन की उपस्थिति का तृतीय कारण हुआ —'सूक्ष्म अवलोकन'.

मानव का पशु-पक्षियों के साथ निरन्तर संयोग एवं प्रेमाधिक्य के अनेकानेक उदाहरण प्रारम्भिक ग्रंथों से ही उपलब्ध होते रहे हैं. विश्व-साहित्य की प्राचीनतम कृति ऋग्वेद में अनेक पशु-पक्षियों के वर्णन उपलब्ध होते हैं. वैदिक-साहित्य में निम्नलिखित पशु-पक्षियों के नाम मिलते हैं:—अक्र (अश्व), अज (बकरा), अश्व, इभ, उष्ट्र, ऋक्ष, एडक (कालामृग), एणी, कपि, कुक्कुर, खंग, खर, गज, गर्दभ, गवय, छाग, जाहक (बिल्ली), तरक्षु, दुखराह, द्वीपिन्, धूम्र, नग, पुरुषमृग, पुरुषहस्तिन्, पृषत्, मर्कट, माकल, रासभ, रुरु, वारण, वृक, शश, शुक्लदन्त, श्वान, सिंह, सूकर, शृगाल, हय, हरिण व हस्तिन्.[208] पशुओं की भांति अनेक पक्षियों के नाम भी वैदिक साहित्य में मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं :—उलूक, कपिंजल, कपोत, कलविंक, किकिदीवि, कुक्कुट, कुटरु, कुषीतक, कृकवाकु, क्रौंच, गृध्र, द्रविड (कठफोडवा) दूवांक्ष, पिक, बलाका, महासुपर्ण, लाव, सारि, श्येन, हंस, व मयूर.[209] इन नामों की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि प्रारम्भिक समय से ही मानव व पशु-पक्षी का संयोग रहा है. इस संयोग का फल पशु-पक्षियों के प्रति मानव का प्रेमाधिक्य है.

वैदिक साहित्योपरान्त वीर-काव्य साहित्य के आदि काव्य 'वाल्मीकि रामायण' की रचना तो कवि के हृदय में क्रौंच पक्षी के प्रति सहानुभूति के कारण ही हुयी है. एक बार वाल्मीकि वन मे विचरण कर रहे थे, उसी समय एक निषाद ने पुरुष-क्रौंच को मार डाला. उसे खून में लथपथ देखकर उसकी भार्या ने करुण क्रन्दन किया. इस प्रकार निषाद के हाथों से विनिष्ट क्रौंच को देखकर धर्मात्मा वाल्मीकि का ऋषि हृदय करुणा से भर गया और उन्होंने इस अधर्म के प्रति कहा—'हे निषाद ! तुमने काममोहित जोड़े में से एक को मारा है. अतः शाश्वत

---

208. वै० इ० भा० 2 पृ० 571.
209. यथोपरि पृ० 573

युगों तक तुम प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकोगे. शाप देने के पश्चात् ऋषि के मन में विचार आया कि एक पक्षी के लिये शोकार्त होकर उन्होंने यह क्या कर डाला ? स्नानोपरान्त उन्होंने शाप सम्बन्धी श्लोक पर पुनः पुनः विचार किया। तदनन्तर वाल्मीकि आश्रम में ब्रह्माजी आये तब ऋषि ने मन में सोचा कि उस निषाद की बुद्धि ने वैरभाव ग्रहण कर लिया था, इसी कारण तो उसने उस प्रियवादी एवं मनोहर पक्षी का अकारण वध किया. इस प्रकार मन ही मन वे मुनि अत्यन्त व्याकुल हुये. तब ब्रह्माजा ने मुनि से कहा—हे मुनि ! तुम्हारा वह वाक्य श्लोक ही था. अब इस विषय में आपको अधिक विचार नहीं करते हुये भगवान राम के चरित्र का गान करना चाहिये.[210] इस प्रकार वाल्मीकि रामायण की रचना का प्रमुख कारण पक्षी-प्रेम रहा है. अतः सिद्ध है कि प्राचीन समय में मानव को पशु-पक्षियों के प्रति प्रेम रहा है. इस वर्णन से यह भी प्रमाणित होता है कि कवि की अवलोकन शक्ति अत्यन्त तीव्र होती है, तभी तो महामुनि वाल्मीकि ने क्रौंच रुदन का इतना कारुणिक वर्णन प्रस्तुत किया. वाल्मीकि रामायण में क्रौंच के अतिरिक्त अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमे मानव व पशु-पक्षी के प्रेम के प्रमाण मिलते हैं. उन सबका वर्णन करना तो यहां सम्भव नहीं, किन्तु उनमें से कतिपय इस प्रकार हैं—

(i) ऋक्ष एवं वानरों की उत्पत्ति (ii) गीधराज के दर्शन (iii) जटायु का दाहसंस्कार (iv) सुग्रीव से मित्रता (v) राम के वन गमन पर अश्व का दुःखी होना. एवं (vi) राम व श्वान का वार्तालाप.[211]

इन सभी वर्णनों से पशु-पक्षी के प्रति अनुराग के स्पष्ट दर्शन होते हैं. आदि कवि की अवलोकन शक्ति भी अत्यन्त तीव्र थी, तभी तो उनके काव्य में निम्नलिखित पशु-पक्षियों से सम्बन्धित प्रकरण मिलते हैं—उष्ट्र, ऋक्ष, खर, गज, गवय, धेनु, गोलांगूल, चमर, बिडाल, महिष, मृग, मेष, रुरु, वानर, वृषभ, व्याघ्र, शश, शृगाल, श्वान, सिंह, उलूक, कंक, कीर, क्रौंच, गृध्र, चक्रवाक, पुंस्कोकिल, मयूर, वायस, एवं सारस.[212]

वाल्मीकि-रामायण की भांति महाभारत में भी अनेकानेक पशु-पक्षियों के वर्णन मिलते हैं. महाभारत की कथा में सीधे रूप में पशु-पक्षियों के अधिक वर्णन नहीं, किन्तु वहां विभिन्न प्रसंगों में समय समय पर अनेक पशु-पक्षियों का नामोल्लेख किया गया है. वन पर्व में कामाख्य वन के प्रसंग में व द्रोण-पर्व, कर्ण-पर्व, शल्य-पर्व

---

210. वै० इ०, भा० 2, 20-32
211. यथोपरि 17/1-37; 3/67; 68; 4/5, 2/59/1, 15; 6/2/1-3
212. वाल्मीकि रामायण कोश—वर्मा. परिशिष्ट 1.

में युद्ध के विभिन्न प्रसंगों में अनेक पशु–पक्षियों के उल्लेख मिलते हैं. अश्वमेघ पर्व तो अश्व से सम्बन्धित है ही. इसके अतिरिक्त महाभारत में निम्नलिखित पशु–पक्षियों से सम्बन्धित प्रसंग मिलते हैं: गज, अश्व, धेनु, मृग, सिंह, व्याघ्र, श्वान, सूकर, मार्जार मयूर, हंस, चक्रवाक, कोकिल, गृध, गरुड, कपोत, कुररी, शुक, उलूक, सारिका, काक व कंक. इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पशु–पक्षियों के वर्णन में रुचि रखते थे.

यहां प्राचीन काव्यों में पशु–पक्षी के उदाहरणों पर हमने विचार किया. पशु–पक्षियों के सामीप्य व प्रेमाधिक्य के अनेक वर्णन संस्कृत काव्यों में विद्यमान हैं। उन सबका विस्तृत वर्णन हम अध्याय ३ व ४ में करेंगे.

साहित्यिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि में अन्तर

विश्व में अनेक प्रकार के विद्वान है. उनमें साहित्यकार एवं वैज्ञानिक दो प्रमुख हैं. सौन्दर्य का भावात्मक विश्लेषण करने वाला विचारक साहित्यकार एवं किसी वस्तु का तथ्यात्मक विश्लेषण करने वाला विचारक वैज्ञानिक कहा जाता है.

पशु-पक्षियों के वर्णन में साहित्यकार एवं वैज्ञानिक दोनों ने अपना सहयोग दिया है और इसी कारण हमें दो प्रकार की दिशायें मिलती है:—

१. वैज्ञानिक दृष्टि

२. साहित्यिक दृष्टि

इस अध्याय में हम इन दोनों दिशाओं पर कतिपय विचार करेंगे, ताकि पशु-पक्षियों के वर्णन के वास्तविक महत्त्व पर कुछ विचार कर सकें.

वैज्ञानिक वह विचारक है जो पशु या पक्षी का वाह्यरूप प्रदर्शित करता है एवं सत्य की खोज में तत्पर रहता है . वह आकृति, गुण, स्वभाव, योग, क्रिया, विश्लेषण, व विभाजन के आधार पर सत्य को पाने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिये यदि उसे गज का वर्णन प्रस्तुत करना है, तो वह कुछ इस प्रकार लिखेगा- 'गज मेरुदण्डीय उप-जगत के मेरु-पृष्ठीय विभाग के, स्तनप्राणी श्रेणी के, गज उपवर्ग के, गज परिवार के, गज वंश के गज जाति का प्राणी है। गज उन प्राणियों में है, जो अब भी जंगलों में बहुतायत से मिलते है. गज भारत, मलाया, वर्मा व चीन में पाया जाता है। गज ८–१० फीट ऊंचा होता है. इसका रंग कलछौंह सिलेटी होता है। हाथी की उम्र सौ वर्ष तक होती है. मादा सितम्बर–नवम्बर के मध्य बच्चा देती है.' इत्यादि इत्यादि.

अतः वैज्ञानिक का वर्णन वास्तविक होता है, तथ्यों पर आधारित एवं विश्लेषणात्मक होता है.

दूसरी ओर साहित्यकार सौन्दर्य के वशीभूत होकर वस्तु का भावात्मक वर्णन प्रस्तुत करता है. स हित्यकार सत्य का भावों के साथ तदात्म्य स्थापन करता है. वह प्रकृति के किसी भी भाग को निर्जीव नहीं मानता. यदि कवि को किसी पुष्प का वर्णन करने को कहा जाय, तो उसे कली में नारी का रूप दिखलायी देगा. एक प्रफ्फुलित पुष्प को देखकर उसका मन रोमाँच कर उठेगा, तो पददलित पुष्प को देखकर कराहने लगेगा और उसकी सहानुभूति मे उसकी लेखनी चल पड़ेगी. इस प्रकार काव्यकार नग्न सत्य का उपासक नहीं होता.

साहित्यकार को हाथी की सूंड में नारी की जांघ के दर्शन होते हैं. अश्व के खुरों से निकलने वाली धूल भगवान् भास्कर के चरण से निकली गंगा की धारा प्रतीत होती है, तो मृग के टेढ़े सींगों में नदी की वक्रता. उसे कामिनी की चाल में हंस की गति एवं ध्वनि में पायल व करधनी की झंकार निकलती प्रतीत होती है और कबूतर की हुंकार में 'घु' संज्ञा.

परन्तु वैज्ञानिक को न तो कली में नारी के वर्णन ही होते हैं एवं न पुष्प को देखकर वह रोमांचित ही होता है. वह तो पुष्प को तोड़ कर उसकी अंखुड़ियां, पंखुडियां, नली, पराग–केसर, मधु व रस, को अलग अलग निकाल कर उनका विश्लेषण करता हैं कि उनमें कौन–कौन से पदार्थ के कौन कौन से तत्व विद्यमान हैं.

अतः वैज्ञानिक हर वस्तु को सत्यता की कसौटी पर कसता है. उसे कोरी कल्पना अपेक्षित नहीं. किन्तु साहित्यकार सत्यता के साथ-साथ भावात्मक विचारों को भी स्थान देता है. वह कल्पना की ऊंची उडान भरता है. यहां तक कि यदा कदा वह सत्यता से परे हटकर भी केवल भावों में बह जाता है.

इस प्रकार हमने पशु–पक्षी के प्रति मानव के प्रेमाधिक्य व काव्यों में प्रकृति चित्रण पर कुछ विचार किया. अगले दो अध्यायों में हम पशु-पक्षियों का वैज्ञानिक एवं काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत करेंगे.

———

पशु-जगत
(Animal-Kingdom)

३ | गज THE ELEPHANT

धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः
—शाकुन्तलम् ।

सम्पूर्ण-संस्कृत-साहित्य में वर्णित पशु–वर्ग में गज का प्रमुख स्थान रहा है. वैदिक-काल से लेकर काव्यों तक गज के वर्णन की अविरल धारा प्रवाहित होती रही है. वैदिक-साहित्य में इभः[1], गजः[2], नागः[3], वारणः,[4] शुक्ल दन्तः,[5] व हस्तिन्[6] शब्दों का प्रयोग गज के अर्थ से अनेकधा हुआ है. रामायण व महाभारत में गज को हस्तिन्[7] व नागः शब्दों से कहा गया है. अमरकोष[8] में गज के लिए दन्ती, दन्नावलः, हस्तिन्, द्विरदः, द्वि-अनेकयः, मतंगजः, गजः, नागः, कुंजरः, वारण,ः करिन्, इभः, स्तम्भेरभः, पद्मी, यूथनाथः व यूथपः शब्दों का उल्लेख है.[9]

वैज्ञानिक गज को मेरुदण्डीय–उप जगत् के अन्तर्गत स्तनपोषी प्राणी श्रेणी के गज–उपवर्ग के गज–परिवार का सदस्य मानते हैं.[10] गज संसार के विभिन्न भागों में पाया जाने वाला पशु है. यह मुख्यतः भारत, वर्मा, लंका, मलाया एवं अफ्रीका में पाया जाता है, यह पंकमय घास–युक्त घाटियों में रहने वाला पशु है.

भारत में हिमालय की घाटियों, मध्यप्रदेश के वनों, मैसूर व आसाम के

---

1 ऋक्० 1/84/17, तै०सं. 1/2/14/1
2 अ. ब्रा. 1/39
3 श. ब्रा. 11/2/7/12
4 ऋक्० 8/33/8, 10/40/4
5 ए. ब्रा. 8/23/3
6 ऋक्० 1/64/7
7 हस्ति हस्ते विमृंदितान्-वा० रा० अर० 11/77
8 'बलं नाग सहस्रस्यां–यथोपरि 38/1
9 दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकधो द्विपः ।
मतंगजो गजो नागः कुंरगो वारणः करी ।।
इभः स्तम्भेरमः पद्मी यूथनाथस्तु यूथपः इत्यमरः (क्षत्रवर्ग.)
10 जीव जगत पृ. 631

अतिरिक्त गज दक्षिण भारत की घाटियों और सुन्दरवन में भी देखा गया है, किन्तु आजकल गज का अभाव स्पष्ट देखने में आता है. धीरे-धीरे गज कम होते चले जा रहे हैं. इसका पालन बड़ा कठिन होता चला जा रहा है.

आज के इस वैज्ञानिक-युग में गज का मानव के कार्य-कलापों में विशेष स्थान नहीं रहा है. फिर भी अजायबघरों व प्रसिद्ध राजघरानों में गज अब भी उपलब्ध होते हैं किन्तु वे बिरल हैं. रामायण के अरण्यकाण्ड में ऐरावन की उत्पत्ति पर विचार करते हुए उसे इरावती नाम की कन्या से उत्पन्न माना गया है.[11] गज का रंग सामान्यतः कलछोंह सिलेटी होता है.इसका चर्म मटियाले रंग का होता है एवं सूक्ष्म बालों से ढका रहता है.

हर दिशा का एक गज माना गया है इसी कारण संस्कृत-साहित्य में "दिग्गज" शब्द का अनेक बार उल्लेख है. ऐरावत, पुण्डरीक वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदन्त, सार्वभौम एव सुप्रतीक-ये आठ दिग्गज माने गये हैं, जो आठों दिशाओं को रोके हुए हैं.[12] गज समूह में रहने वाला जीव है. विश्व के विशालकाय जीवों में गज का प्रमुख स्थान है. यह भूतल के शक्तिशाली पशुओं में से है. इसका शरीर मोटी चर्म से ढ़का होता है जो इसे सर्दी से बचाती है. गज सर्दी से सर्वदा अपनी रक्षा करता है. इसकी आंखों पर पाँच इन्च तक लम्बे बाल होते हैं. इसकी पूँछ एक लम्बी रस्सी के समान होती है. हाथी के कान विशाल होते हैं. हिन्दी कवियों ने हाथी के कान की सूप से तुलना की है. गज का मस्तिष्क छोटा होता है. गज के १२ दाँत काम में आते हैं. पूरे जीवन में इसके २४ दांत आते हैं जिनमें पहले दाँत दूर के होते हैं.

हाथी के दो दाँत बाहर की ओर निकले होते हैं इनकी अधिकतम लम्बाई ८ फीट होती है. सामान्यतः हाथी की ऊँचाई ६ फीट से १० फीट तक होती है. हथिनी की ऊँचाई ८ फीट ही होती है.[14] अफ्रीका के गज भारतीय गजों से अधिक ऊँचे

---

11 ततस्त्विरावती नाम जज्ञे भद्रमदासुताम् ।
तया स्वैरावतः पुत्रो लोकनाथ महागजः ।
—वा० रा० अर० 14/24–25

12 ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ।
—इत्यमरः (स्वर्ग वर्गः)

13 ए. किंग पृ० 629

होते हैं. गज की जीभ उल्टी होती है. हाथी की आंखें आकार में छोटी होती है एवं इसकी नेत्र ज्योति कमजोर होती है. गज की श्रवण-शक्ति अत्यन्त तीव्र होती है. इसकी घ्राणशक्ति भी कम तीव्र नहीं होती है.[14] गज के पैर लम्बे एवं गोल होते हैं.

गज एक समझदार जीव है वह अपने शत्रु एवं मित्र को अच्छी तरह से पहचानता है. वह अपने मित्रों का एक आदर्श मित्र है एवं शत्रु का सबसे बडा शत्रु. यह अपने सवार को वृक्ष की शाखाओं से बचाकर चलता है. गज की चाल ६ से ८ मील प्रति घंटा होती है. गज सर्वदा सीधे रास्ते पर चलता है. अफ्रीका के अनेक पक्के मार्ग गजों के चलने के मार्गों के आधार पर बनाये गये हैं. गज के शयन का ढंग विचित्र होता है. शयन–काल में यह एक स्तम्भ की तरह निश्चल खड़ा रहता है. इसके शयन का समय सामान्यतः दिन के ११ से ३ बजे तक एवं रात्रि में १० से ३ बजे तक है.

गज एक शाकाहारी जीव है. यह पेड़ों की पत्तियाँ, फल, केले, मक्का सभी अनाज एवं पके धान का भुट्टा खाना पसंद करता है। गज को दिन भर में १५० पौंड घास व ५० गैलन पानी चाहिये. गज एक कामी पशु है. वह रति क्रीड़ा के लिए हथिनी को किसी एकान्त स्थान में ले जाता है. हथिनी के कामज्वर का कोई निश्चित समय नहीं होता है. हथिनी वर्ष में किसी भी मास में गर्भवती हो सकती है. गर्भाधारण की अवधि लगभग २१ मास होती है.[15] इक्कीस मास में बच्चा परिपक्व हो जाता है. गज हथिनी के प्रति अपनी सूंड से प्यार प्रदर्शित करता है. हथिनी एक बार में एक ही गज–शावक को जन्म देती है.
गज का बच्चा जन्म के समय छोटे–छोटे काले बालों से घिरा रहता है.[16] इस समय उसका बजन करीब २०० पौंड या एक क्विण्टल एवं ऊँचाई ३ से ४ फीट के बीच होती है. यह १४ साल में जवान होता है.

गज का पालन एक कठिन कार्य है. पालने से पूर्व यह पूर्णतः भयंकर एवं जंगली होता है. इसको पकड़ने के लिए एक गड्ढा बनाया जाता है, जिसे घास–फूस से इस प्रकार ढ़क दिया जाता है कि वह हाथी को आसानी से दिखलाई न दें. जब हाथी घने वन में जाता है तो अचानक गड्ढ़े में गिर जाता है. इसके पश्चात् उसे आज्ञाकारी बनाने के लिए अनेक यातनायें दी जाती है. धीरे–धीरे गज की आदतों में

---

14 द० स० ए० भाग–2 पृष्ठ 327 ए० किग पृ० 629

15 यथोपरि०

16 ए० किग पृष्ठ 629

परिवर्तन आ जाता है और वह अत्यन्त सीधा व पालतू बन जाता है. जिस खड्डे में उन्हें पकड़ा जाता है उसे 'पेड़ा' कहते हैं. इसका व्यास २० फीट से ५० फीट तक होता है. गज को पकड़ने का एक और भी तरीका है. चतुर एवं अनुभवी महावत पालतू हथिनियों पर सवार होकर वन में जाते हैं एवं हथिनियों को गज के पास छोड़ देते हैं. हथिनी के सम्पर्क से गज को रात–दिन जागृत रखा जाता है एवं बाद में गज को हथिनी पर विश्वास हो जाता है और ज्योंही वह सोता है, उसे सांकलों से जकड़ दिया जाता है. गज के बच्चे को पकडना आसान होता है, अतः उसे बचपन ही में हथिनी से बचाकर पकड़ा जाता है. पालतू हाथी राजसी सवारी का एक उत्तम साधन है. राष्ट्रीय त्यौहारों पर हाथियों को सजाकर जुलूस में ले जाया जाता है. आसाम के वनों में हाथी लट्ठे ढोता है एवं गाड़ी खींचता है. इस प्रकार मानव–कल्याण में गज का महत्त्वपूर्ण स्थान है. मृत्यु के पश्चात् उसके दाँतों से चूड़ियाँ, कंघे, एवं आभूषण बनाये जाते हैं.

संस्कृत काव्यों में गज

संस्कृत–काव्यों में गज का सर्वदा प्रमुख स्थान रहा है. सभी काव्यकारों ने गज का विभिन्न रूपों में वर्णन किया है. अब हम गज की काव्यगत विशेषताओं का विस्तृत विवेचन करेंगे. संस्कृत काव्यों में गज को इभः [17] करीः, [18] करीन्द्रः, [19] कुंजरः, [20] गजपतिः, [21] गजेन्द्रः, [22] द्विपः [23] द्विपेन्द्रः, [24] दन्तिन्, [25] द्विरदः, [26] मातंगः, [27] नागः, [28] वारणः, [29] विधारणन् [30] व

---

17 किरात० 6/11
18 रघु० 3/57
19 कुमार० 14/14
20 कु० सं० 211
21 किरात 7/31
22 किरात० 7/37
23 रघु० 2/37
24 रघु० 3/32
25 रघु० 1/71
26 कुमार० 8/64
27 शिशु० 6/50
28 रघु० 4/23
29 किरात० 8/22
30 किरात० 15/16

हस्तिन्[31] नामों से सम्बोधित किया है. राज–भवनों के दरवाजों पर हाथी महल कि रक्षा के लिए रखे जाते थे.[32] महात्माओं के आश्रमों में भी हाथी निवास करते थे.[33] आश्रमों में राजकुमारों को गज से सम्बन्धित विद्याओं का ज्ञान करवाया जाता था. राजकुमार चन्द्रापीड़ ने भी गज के बारे में शिक्षा प्राप्त की थी.[34] इतना ही नहीं हाथियों को प्राचीन समय में धन माना जाता था एवं इनकी वृद्धि की कामना की जाती थी.[35]

संस्कृत-साहित्य के विभिन्न कवियों के वर्णनों से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन समय विभिन्न हाथियों को उनके गुण या कर्मानुसार नाम दिये जाते थे।

ऐरावतः गज विशेष—ऐरावत इन्द्र का हाथी माना गया है. ऐरावत का रंग श्वेत है एवं वह अन्य हाथियों से अधिक बलशाली माना गया है. इसके चार दांत होते हैं। इसकी उत्पत्ति समुद्र–मन्थन के समय हुई थी और यह इन्द्र को दे दिया गया था. इसी कारण इसे इन्द्रवाहन कहते हैं. कालिदास ग्रन्थावली में इन्द्र-वाहन समुद्रः तत्र धवः ऐरावतः' लिखकर ऐरावत के समुद्र से उत्पन्न होने की पुष्टि की है. रघुवंश महाकाव्य में दिलीप को ऐरावत कहा है.[36] इस प्रकार ऐरावत गजों में गजेन्द्र है. बुद्ध चरित में भी श्वेत हाथी का उल्लेख किया है जो सम्भवतः ऐरावत का ही निर्देश करता है.[37] वासवदत्ता में भी ऐरावत का वर्णन मिलता है.[38] यहां ऐरावत का जल पे सम्पर्क बताया गया है. कादम्बरी में ऐरावत के समान बलशाली गज गन्धमान्धन[39] हर्षचरित में दर्पशात[40] एवं राजपुत्रीय शास्त्र में गम्भीरवेदी गजों का उल्लेख किया गया है. हाथी मारने से चमड़ा छूट

---

31 कुमार० 8/64

32 'कपिलवस्तु हयगजस्यौघसंकुलम् । सौ० नं० 3/1

33 मातंग कुलाध्यासितमपिपवित्रम् । कादम्बरी पृ० । 125

34 हस्तिशिक्षायाम् । दन्तव्यापारे । कादम्बरी पृ० 232

35 'गजाश्वभिगे वृद्धिम् बु० च० 211

36 विद्युतेरावताविव । रघु० 1/36

37 सितं ददर्श द्विपराजमेकम् । कु० च० 1/4.
मांतग श्वेता । यथोपरि 13/2

38 ऐरावतकपोलकयणकम्पिततटगतहरिचन्दनस्पन्दमानससुरभिकसलिलाः।'
वासवदत्ता पृ० 94.

39 शनैः शनैर्गन्धमाद्नं करिणं द्रष्टुमयासीत् । कादम्बरी पृ० 604.

40 भद्र ! श्रूयते दर्पशातः ह० च० पृ० 110.

जाने, रक्त निकल जाने तथा मांस बाहर हो जाने पर भी अपने को नहीं सम्भालना, उसे 'गम्भीरवेदी' गज कहा गया है. अन्य लोगों के मत में 'गम्भीरवेदी' गज वह है, जो चिर परिचित शिक्षा को भी बहुत बिलम्ब से ग्रहण करता है. ये दोनों ही गुण एक गज में हो सकते हैं अतः दोनों ही मतों में सार्थकता है. प्रथम मत के अनुसार शारीरिक वेदना को सहन करना बतलाया गया है एवं दूसरे मत में मानसिक शक्ति की अल्पता पर विचार किया गया है. यदि लोक व्यवहार के आधार पर इन दोनों बातों पर चिन्तन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक में प्रायः बुद्धिमान जीव लड़ाकू नहीं होते एवं लड़ाकू जीव विशेष बुद्धिमान नहीं होते. अतः इन दोनों मतों में सत्यता की झलक है दशकुमार चरित में क्रोध में आकर राजा ने गज को कीट कहा है.[41] करीब करीब इसी बात की पुष्टि हर्षचरित में की गई है।[42] गज समुदाय में रहने वाला जीव हैं. पालतू गजों के अतिरिक्त यह प्रायः समुदाय में ही मिलती है.[43]

गज के क्रिया–कलाप:–गज एक समझदार जीव है. गज अनुशासनशील व आज्ञाकारी होता है. वह एक समझदार विद्यार्थी की तरह आज्ञा का पालन करता है.[44] यह सर्वदा कतार में चलता है. यह उसकी स्वाभाविक क्रिया है. हाथी समयानुसार सुख व दुःख को प्रकट करता है. दुःखी हाथी बैचेन सा होकर अपने खाद्य तक को तज देता है.[45] विक्रमोर्वशीयम् में कालिदास ने हथिनी के विरही हाथी का सुन्दर वर्णन किया है.[46] क्रोध आने पर हाथी समझदारी को तज देता है और अपने प्रतिबिम्ब को जल में देखकर उसे मारने के लिए सक्रोध दौड़ता है. एवं खूंटे को उखाड़ देता है.[47] सोये हुए गज को प्रातः हथिनी जगाती है. यह एक

---

41 अपसरतु द्विप कीट एष : । द० च० पृ० 310

42 करिकीटेषु । हृ० च० पृ० 93

43 यावद्वयगाहन्त न दन्तिनाम् । शिशु० 2/8/58

44 गजश्चाधीतसद्विद्यश्छात्र तुल्यो नताननः । कु० च० 21/66

45 क्षिप्तं पुरो न जगृहे मुहुस्तु काण्डम्
नापेक्षतेस्म निकटोपगवां करेणुम्,
सस्मार वारणपतिः परिमीलिताक्षम्
इच्छा विहारवनवास महोत्सवानाम् । शिशु० 5/50

46 गजपतिर्गहने दुःखितः भ्रमति क्षामितवदनः । विक्रम० 4/64
विचरति गजाधिपतिरैरावतनामा । यथोपरि 4/56

47 आत्मानमेव जलधेः प्रतिबिम्बतांगमूर्भोमहत्यभिमुखापतितं निरीक्ष्य । क्रोधादधावदपयोरभिहन्तुमन्यनागभियुक्त इव युक्त महो महेमः । शिशु० 5/32
नलगिरिः स्तम्भमुत्पादम् । मेघ० पृ० 35

बुद्धिमान जीव ही कर सकता है.[48] गज क्रोधावस्था में पेड़ों को तोड़ डालता है, इसका वर्णन शाकुन्तलम् में बड़ा सुन्दर किया गया है.[49]

गज का आहार—गज वृक्षों की पत्तियों को खाता है. हाथी वृक्षों को बहुत तोड़ता है. इसके मुख्य दो कारण हैं-प्रथम तो यह कि वृक्षों की कोमल पत्तियाँ इसका मुख्य खाद्य है. द्वितीय क्रोधावस्था में यह वृक्षों को तोड़ता है. शरीर को खुजलाने से भी वृक्ष टूट जाते हैं. वृक्ष तोड़ने का वर्णन काव्यों में बहुत बढा-चढ़ा कर किया गया है.[50] ऐरावत के द्वारा कमलों को क्षत-विक्षत करने का वर्णन भी मिलता है.[51] हाथी के बच्चे बड़े चंचल होते हैं. वे खाने के साथ-साथ वृक्षों को हिला भी देते हैं.[52] तराई के भागों में चन्दन के वृक्षों का बाहुल्य होता है अतः हाथियों का प्रहार इन पर भी होता है.[53] वृक्षों के तोड़े जाने से मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं एवं वृक्षों के तोड़े जाने से सिंहों की नींद में खलल पड़ती है.[54] इस प्रकार गज शाकाहारी प्राणी है. गज सूँड से खींचकर पानी पीता है. वह पहले सूँड में पानी भर लेता है एवं बाद में सूँड को मुँह में डालकर पानी को वापस छोड़ता है.

गज की वप्रक्रीड़ाः—वप्रक्रीड़ा गज की सामान्य आदतों में से है, यह नदियों

---

48. करिणी-कादम्बकप्रत्रोध्यमान । कादम्बरी पृ० 79
प्रजविनागंजेन । द० च० पृ० 151

49. तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयासंगसंजातपाशः । शाकु० 1/31

50. वृक्षात् गज भग्लाद्रसो । बु० च० 24/4; "बलाक्रान्त क्रीडद्द्विरदमथितोर्वीरुहरवेः—शिशु० 5/69; भग्नद्रुमाश्चक्रुरितस्ततो शिशु० 12/41; 'तरोर्गजेन गण्डे कभता विधूनिते । शिशु० 12/54

51. ऐरावत-दशन—मुपलखण्डितं—कुमुदषण्डम्-काद० पृ० 374
'समर समितोगजयूथलुलितकमलिनी—परिमल—काद० पृ० 83

52. इभ—कलभ—कोल्लूनवल्लववेह्यित—लवली—वलेयः । काद० पृ० 384
'करिकलभ—विमुंच-लोलताम् । ह० च० पृ० 134

53. कपोलकाधं करिणांमहारूपाहितश्याममरुतश्चन्दनाः । किरात० 8/12
'करिकराकृष्टभग्नरिचन्दनः ।—वासवदत्ता पृ० 64

54. गजपतिपातितपरिहारवक्रीकृतमार्गया । कादम्बरी पृ० 633
नवतरु भंगध्वनिखि हरिनिद्रातस्करः करिणः । ह० च० पृ० 307

के तट को गिरा देता हैं.[55] कालिदास के काव्यों में गज की वप्रक्रीड़ा पर विशेष विचार किया गया है.[56] यह पर्वत एवं कन्दराओं पर भी सिर पटकता है.[57]

गज व उसका स्नान—गज को पानी से अत्यन्त प्रेम है.[58] वह अपनी सूंड में पानी भरकर स्नान करता है.[59] अच्छोद सरोवर में गज के स्नान का वर्णन करते हुए कहा गया है कि गज वहाँ कमलनालों को तोड़ता है.[60] पानी में हाथी काफी समय तक पड़ा रहता है.[61] कभी-कभी तो यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि पानी में भौंरे हाथी के मद से आकर्षित होकर मण्डरा रहे हैं या कमलों की सुगन्ध से आकर्षित होकर.[62] गज को पानी से इतना अधिक लगाव है कि वह महावत की परवाह न कर जल में प्रवेश कर जाता है[63] हाथी एक तैराक पशु है. ऋतु संहार में गज को वर्षा का वाहन बताया गया है, जिससे गज का जल से प्रेम होना प्रदर्शित होता है.[64] कादम्बरी में गज की सूंड से निकले पानी को क्षीर सागर के

---

55. वधती क्षतीः परिणतद्विरेदकिरात० 6/7
'करिभिक्षते सभवतसिभैस्समैस्ततेः। किरात 5/7
चामीर तप्ताडनरणितरदने रदति सुस्स्वन्तीरोधांसि स्वैरमैरावत। ह० च० पृ० २५
56. इभ—कलभ—कोल्लून—पल्लवेविधत लवलीवलयैः। काद० पृ० 384
'वप्रक्रीड़ामृक्षवतस्तटेषु। रघु० 5/44
वप्रक्रीड़ापरिणतगज प्रेक्षणीयं ददर्श। मेघ० पृ० 2
57. करिकलभ विमुच्य लोलताम्। ह० च० पृ० 134
वनद्विप—दशन—दलित—काद० पृ० 361
स्फोटकुर्वद्गिरिकुंजकुंजरवृहत्कुम्भ—वासवदत्ता पृ० 80
58. स सैन्यपरिभोगेण गजदान सुगन्धिता।
कावेरी सरितां पत्युः शंकनीयमिवाकरोत्॥ रघु० 4/45
59. वनकरिकुलशीकरासार सिध्यमानतनवः। ह० च० पृ० 302
60. क्वचिद्गज भंजन—जर्जरितजरन्मृणालदण्डम्-कादम्बरी पृ० 374
61. करिमकरकरसंकुलम्। वासवदत्ता पृ० 234
62. जलदकाल सरसीवगन्धपरिसमद्भ्रमरमालानुमीयमानं जलमूलमग्नमुमुर्द-पुण्डरीकाः। वासवदत्ता पृ० 95
63. तत्पूर्वमंसव्वगसं द्विपाधिपाः क्षणं सहलाः परितो जगाहिरे। शिशु० 12/72
64. ससीकराभोधरकुंजतड़ित्पताको शनिशब्दमर्दतः।
समागतो राजव वुध्दतद्यु तिर्थानागमः कामिजनः प्रियः॥ ऋतु० 211

जल के समान शुभ्रवर्ण बताया है.[65] किन्तु यह बात सर्वदा सत्य नहीं क्योंकि कई बार उसकी सूंड में कीचड़ भी होता है. [66] गज के बच्चे भी पानी को बहुत चाहते हैं उनको पानी से बाहर निकाला जाने पर भी वे पानी में बारबार प्रवेश कर जाते हैं. [67] गज सूंड से प्राप्त जल से धरती की प्यास बुझाने का उल्लेख भी काव्यों में यत्र-तत्र प्राप्त होता है. [68] गज नदियों में उथल-पुथल मचाकर जल को गंदा करता है व सूंड में पानी भरकर पेड़ों पर फुहार छोड़ता है. [69] हाथी स्नान के बाद कीचड़ में लोटता है एवं फिर जल में प्रवेश कर जाता है. [70]

गजमदः—गज के मद के विषय में संस्कृत काव्यकारों ने अनेक बातें कही हैं. गज के शरीर के अनेक भागों से मद का निकलना बताया गया है. शिशुपालवध में मद का सात स्थानों क्रमशः सूंड, कपोलद्वय, शिश्न, गुदा, एवं नेत्रद्वय से निकलने का वर्णन किया गया है. [71] जबकि हर्षचरित में सूंड व कपोल से मद-स्रवण बताया गया है. [72] मद हाथी में शक्ति का द्योतक है. मद की उपस्थिति में गज अहंकारी हो जाता है. जिस गज के मस्तक से अधिक मद निकलता, है उस गज को उत्तम माना जाता है एवं वह अन्य गजों का नायकत्व करता है. [73] मुख्यतः मद का क्षरण कपोलों से भी

---

65. दन्तिनां दिशि-दिशि करविवरविनिसृतैः क्षरद्भिः क्षीरोद्वेदधवलैः
    शीकरासारैः—कादम्बरी पृ० 357
66. हरितपांसभिरात्मानं स स्नात इव वारणः । सौ० न० 15/14
67. कलभः करिणा खलुद्धृतो, बहुपंकादिभान्नदीतलात्.
    जलवर्षविशेन तां पुनः सरितां ग्राहवती तितीर्षति. सौ० न० 8/12
68. करेणुः शीकरजहोरेणुस्तेज शमं ययौ—शिशु० 19/36
    तृषित इव् पिवन् करिकरजलानि—कादम्बरी पृ० 351
69. पंक करापाकृत शेवलाशुंकासमुद्रगामामुदयन्निधा । शिशु० 12/59
    'मत्तभांगमण्डलकरमुक्तशोकरच्छटा इव. वासवदत्ता पृ० 168
    'अम्बुपूर्णपुष्करपुअर्वनीकरिभिरापूर्यमाण–विटपालबालकम्'–कादम्बरी
    विसर्पतागजशीकरनिकरेण—कादम्बरी पृ० 121
70. पंकभारोहत्सुकटियूथेषु—यथोपरि पृ० 564
71. मदाम्भसा परिगलितेन सप्तधाः गजाः । शिशु० 17/68
72. दिग्गजेभ्यः प्रकुपितानां विप्रसुतानां करिणां मद. हर्ष च० पृ० 7
    करि पुमदविकाराः—कादम्बरी
    'उद्दामहान्तिनि'—यथोपरि पृ० 3
73. गन्धेन जेतुः प्रमुखागतस्य प्रतिद्विपस्येथमतंगजोघः । किरात० 17/17

होता है [74] क्रोध की अवस्था में मद का क्षरण तीव्र हो जाता है. [75] क्रोध की अवस्था में गज हितकर कार्य नहीं कर सकता. ऐसे अवसरों पर वह वृक्षों को तोड़ता है या नदी को ढ़ाहने लगता है. [76] मद क्षरण के मध्य तीर लग जाने से खून मिश्रित मद लाल रंग का प्रतीत होने लगता है, मानो क्रोध से मद ही लाल हो गया हो. [77] गज में मद की उपस्थिति उसके युवा होने का प्रतीक माना गया है [78] यौवन में मद से गज में अहंकार आ जाता है एवं वह अंकुश की भी परवाह नहीं करता, भले ही उसे उससे शारीरिक क्षति हो रही हो. [79] वह अन्य गज के मद की गंध को पाकर अधिक मद बहाता है एवं युद्ध में उसका मद अधिक मात्रा में बहता है. [80] महाकवि कालिदास ने रघु की तुलना गज से करते हुए उन्हें मदी-हाथी बताया है. [81]

कादम्बरी में गज व मानव दोनों के मिश्रित रूप गणपति के गण्डस्थल से भी मद-क्षरण का वर्णन किया है. [82] वर्षा ऋतु में कामदेव व हाथी दोनों के मद में आधिक्य हो जाता है. महाकवि बाण ने हाथी को कामदेव मानते हुये यह बताने का सफल प्रयास किया है कि हाथी एक कामी पशु है.[83] गज के मदक्षरण से उसके कपोलों पर मद जल जमा होता रहता है एवं उसके कपोल काले पड़ जाते

---

74. दानच्छेदः करिकपोलेषुः । वासवदत्ता पृ० 104
75. सेव्योपि सानुनयमाकलनाय यन्त्रा नीतेन वन्यकरिदानकृताधिवासः
नागाजि केवलमवाजिगजेनशाखी नान्यस्यगंधमपिमन भृतः सहन्ते ।
—शिशु० 5/42
76. नैवात्मनीनमथवा क्रियतेमदान्धेः । —शिशु० 5/44
77. नागराजस्य जज्ञे दानस्याहो लोहितस्येवधारा । शि० 18/12
78. मदविकारमन्धमातंगे—कादम्बरी उ० पृ० 580
79. प्रयास्तः सुरसरिदोघहृदवगर्भा, सम्प्राप्तुं वनगजदानगन्धिरोधः ।
मूर्धानं निहितशितांकरां विधुन्वन् यं तारं न किरणयांवकारनागः ।।
— किरात० 7/32
80. आवायश्नतसति तृष्यतापिरोध वृत्तीरंनिहित विवृतलोचनेन । सम्पृक्तं वन-
करिणांमदाम्बु सेकैनी ये नं हिममपिवारिवारणेन. किरात 7/34
"ववृधे विवसहानं युधमाध्य विधणिभि । शिशु० 12/46
81. कटप्रभेदेन करीवपार्थिवः—रघु० 3/37
82. अवगाहावतीर्ण–गणपति–गण्डस्थल–गलित–प्रप्रवणसिक्तम् ।
—कादम्बरी पृ० 379
83. मर्वाग भोमकरध्वज कुंजरस्य । यथोपरि पृ० 379

हैं.[84] उनके कपोलों पर कीचड़ सा जमा हो जाता है जिस पर धूल व भौंरे जमा हो जाते हैं.[85] घोड़ों की टापों से पिसे हुए लौंग के बीज हाथी के मद जल के कारण कपोल पर चिपक जाते हैं. हाथी का मद अत्यन्त उत्कट होता है. एक हाथी के मद की गंध पाकर अन्य हाथी को क्रोध आता है वह और भी अधिक मद बहाता है.[86] यदि मद का पानी से सम्पर्क हो जाता है तो वह जल मद की गंध से युक्त हो जाता है.[87]

महाकवि बाण ने लक्ष्मी निन्द्रा करते हुए कहा है कि लक्ष्मी सेना में हाथियों से सम्पर्क में आती है और हाथियों के मद से मस्त होकर वह एक स्थान पर स्थिर नहीं रह सकती.[88] इस प्रकार का विचार श्रीहर्ष के नैषध में भी मिलता है. भील जाति एक जंगली जाति है एवं गजमद ही उसके लिए सुगन्धित लेप है जबकि सभ्य समाज इस मद को पसंद नहीं करता एव इससे दूर भागता है.[89] गज के मद

---

84. मदस्रुतिश्यातिगण्डलेखा। किरात० 16/2
'मदजलम चाकतगण्डकाभ मुचुकुन्दकाण्डकध्यमानानि: शंकरकरिकरटविकट-कण्डूगिता। वासवदत्ता। पृ० 232

85. गण्डस्थलाधर्मगल-मदोदक। शिशु० 12/64
'प्रतिनिवह इव चुम्बन् मदलेखाम्—कादम्बरी पृ० 352
इभभण्ड डिण्डिमानां मधुलिहां—यथोपरि पृ० 80
'मदजलमलिनेन द्वितीयेनेव कर्णचाभरेण, कपोलतलदोलाम मानेन मधु करकुलेनालह क्रियमाणेन। यथोपरि पृ० 266
'अतिवहलमद जाल शबलकरतटकटितनिभतित मधुकर कनकर विरतिरति-करम्। वासव० पृ० 243
'अथोपरिटाद्भ्रमैरर्भमद्भिः प्रावसूचितान्तः सलिलप्रवेशः—रघु० 5/43
स सज्जुदवक्षुणानामेलामुत्पतिष्णवः रघु० 5/43
तुल्यगन्धिषु मुत्त भकटेषु कलरेणवः यथोपरि 4/47

86. प्रसवैः० रघु० 4/23
रघु० 5/47

87. स सैन्य० रघु० 4/45
तस्यस्तिवते माघ० पृ० 21

88. आनन० नैषध। 13/3
विविध गन्ध० कादम्बरी पृ० 323

89. बनगज० कादम्बरी पृ० 99

कल्पना मात्र है. गज के मद के अधिक बहने मात्र को प्रकट करने के लिए कवि ने यह सब लिखा है [90] युद्ध में जाने वाले हाथियों में मद से धूल गीली हो जाती है एवं कीचड़ उत्पन्न करती है. इससे एक प्रकार की गन्दगी उत्पन्न हो जाती है.[91]

प्रजनन:—गज एक कामी पशु है; पशुओं में रीछ के बाद काम-क्रीड़ा में इसका प्रथम स्थान है. महाकवि कालीदास ने अग्निवर्ण को हाथी एवं उसकी स्त्रियों को हथिनी कहकर इनकी कामक्रीड़ा का वर्णन प्रस्तुत किया है. इससे यह ज्ञात होता है कि गज व राजा दोनों ही सामान्यत: अधिक कामुक होते हैं.[92] कामी गज जब हथिनी को देख लेता है तो वह महावत की परवाह नहीं करता.[93] गज की काम-क्रीड़ा जल में भी होती है जिसे 'जलकेलि' कहा जाता है. कामी हाथी हथिनी के साथ किसी एकान्त स्थान का चयन करता है एवं अपने समूह को छोड़कर एकान्त में रति-क्रीड़ा करता है. हथिनी के वियोग में गज रोता हुआ, विछोह की आग में जलता हुआ एवं आँसू बहाता हुआ बताया गया है.[94]

गज नियंत्रण :—गज पर नियन्त्रण करना एक सरल काम नहीं है. अत: मानव ने इस पर नियंत्रण करने के लिए अंकुश नामक लोहे के उपकरण का निर्माण लिखा है कि विशाल हाथियों का मद इतना अधिक बहता है कि उस मद के गिरने से नदी में पानी की मात्रा बढ़ जाती है और नदी में बाढ़ आ जाती है. परन्तु यह कवि की की मात्रा का सभी कवियों ने बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है. महाकवि कालिदास ने

---

90. कुमार० 14/43
91. गिरि च० कादम्बरी पृ० 368
'तमालपल्लव० किरात० 7/38
'करिकपोला० कादम्बरी पृ० 73
'मदपयासि—कादम्बरी पृ० 350
'तस्य द्विपानां० रघु० । 16/30
92. रघु० 19/11
यथोपरि 16/68
93. अन्वेतुकामो० शिशु० 12/16
94. अधिकंक दुनमानस: कानेन भ्रमति गजेन्द्र: विक्रम० 4/28
'करिणीविरहसंतापित:० यथोपरि 4/43
'प्रियतमदर्शन लालसो गजवरो विस्मितमानहा:' यथो० 4/19
'हरोत्सारित० यथोपरि 1/23

किया. अनुभवी महावत अंकुश के सहारे गजों पर नियंत्रण करते हैं.[95] हाथी को लोहे के सीकड़ों में निश्चल करने का उल्लेख भी मिलता है'[96] हाथी को विशाल वृक्षों से बाँध दिया जाता है.[97] अनेक बार अंकुश के द्वारा भी गज वश में नहीं आता, भले ही उसके मस्तक से मद के साथ-साथ रक्त भी बहने लगे. इससे यह सिद्ध होता है कि बलवान् बलात्कार से भी वश में नहीं होता.[98] अंकुश के पुराने हो जाने पर गज उससे अधिक प्रभावित नहीं होता, ऐसी अवस्था में उसे नवीन तीक्ष्ण अंकुश से आगे बढ़ने से रोका जाता है.[99] महाकवि अश्वघोष ने वचनरूपी अंकुश का वर्णन किया है किन्तु वह मनुष्य को रोकने में समर्थ है, गज को रोकने में नहीं.[100] इस प्रकार अंकुश से गज पर नियंत्रण किया जाता है. जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि गज की दृष्टि कमजोर व आँखें शरीर की तुलना में छोटी होती हैं. लोक में कहा जाना है कि आँख छोटी होने से हाथी को मनुष्य का आकार बहुत बड़ा लगता है और इस कारण वह मनुष्य से डरता है. लोक में यह भी प्रसिद्ध है कि गज के मस्तक पर किया गया अंकुश का घाव तुरन्त वापस भर जाता है। अनुभव के आधार पर केवल यही कहा जा सकता है कि घाव तुरन्त नहीं पर कम समय में ठीक हो जाता है।

गज का बोलना:—गज का बोलना 'चिग्घाड़ना' कहलाता है. हाथी सामान्यत: दो अवस्थाओं में चिग्घाड़ता है. वे अवस्थायें हैं— प्रसन्नता एवं खेद. सेना के हाथी बहुधा चिग्घाड़ते हैं.[101] हाथी के बच्चे अधिक चंचल होने के कारण अधिक चिग्घाड़ते हैं.[102] जलकेलि के समय गज चिग्घाड़ते हैं.[103] गज के चिग्घाड़न

---

95. 'वाहयन्ते गज भूताश्च बलीयांसोऽपि दुर्बलैः ।
अंकुशक्लिष्ट मूर्धानस्ताड़िताः पादपार्ष्णिभिः ।। कु० च० 14/24
96. तनुरायति शालिनी महादेर्गज मन्दुस्मिनिश्चलं चकार । शिशु० 20/51
97. एकान् विशाल शिस्सो हरिचन्दनेमूनागान् व बन्धु । शिशु० 5/45
98. शिशु० 5/41
99. ··· निस्थलं दधतान्थमंकुराम् ।
मूर्धानमूर्ध्वायितदन्तमन्डलं ध्रुव न्रधेधि द्विरदो निधादिनां । शिशु० 12/12
100. निर्वाततस्तृद चनाकुंशेन दर्पान्वितो नाग इवांकुशेन । सौ० न० 17/64
101. वृंहितैर्दन्तिनां बु० च० 28/4
'ववृंहिरे गज शतयो । शिशु० 17/31
'महागजानां गुरुभिस्तु गर्जितः । कुमार० 14/42
102. इह मुहुर्मुंहितैः० शिशु० 4/60
103. सलीलमुक्षिप्तै० ह० च० पृ० 219

को कवियों ने क्रमशः मेघ के गर्जन, वज्रपात व रथ के पहियों की ध्वनि के सदृश्य बताया है. गज का चिग्घाड़ना काल से भी भयानक कहा गया है.[104] कष्ट में हाथी का चीत्कार हृदय विदारक होता है. ऐसी दशा में गज सूंड को पटक पटक कर रोते हैं.[105] परतंत्र गज अपना दुःख प्रकट करने के लिए चिग्घाड़ता है. गज की मृत्यु पर हथिनी बच्चों सहित चीत्कार करती हैं.[106] एक गज दूसरे गज को देखकर भी चिग्घाड़ता है एवं विरोध को प्रदर्शित करता है. युद्ध में शरीर का अंग कट जाने पर गज भयंकर चीत्कार करता है. पागल हो जाने पर भी हाथी चिग्घाड़ता हुआ इधर-उधर दौड़ता रहता है.

उत्सवों में गजः—उत्सवों में गज एक आवश्यक अंग माना जाता था. राजश्री के विवाहोत्सव पर गज धन के रूप में दिये गये थे.[107] गज राजा-महाराजाओं के द्वार पर खड़े रहते थे. बड़े-बड़े उत्सवों पर हाथियों को एकत्रित किया जाता था. विवाहोत्सव पर दूल्हा गज की सवारी करता है. गज पर नगाड़े, भेरी आदि का वादन होता है एवं बरात उसके पीछे-पीछे चलती है. वर्तमान में भी स्वतंत्रता-दिवस या अन्य राष्ट्रीय दिवसो पर गज को सजाया जाता है सजाने से पूर्व घास के लम्बे गुच्छों से गज की पीठ को साफ किया जाता है एवं उस पर कमाये हुए चमड़े की खोलें डाल दी जाती है.[108] हाथियों पर घंटे लटका दिये जाते हैं जिनकी टंकार कटु होती है.[109] हाथियों को गैरिक पंक से सजाया जाता है व कानों में शंख व चमर लटकाये जाते हैं विवाहोत्सवों पर गज को स्वर्णाभूषणों से सुशोभित किया जाता

---

104. गभीरमेघ० किरात० 7/39
'वारिधरधीरवारणध्वनि हृष्टकूजितकलाः कपालिनः । शिशु० 13/5
'निर्धातवात० कादम्बरी पृ० 348
'गजेन्द्रगजानांरथमन्डल० शिशु० 12/15
'गजस्यतिरोधितम् । प्रलयान्ते करालस्य कालस्येव भयानकम् ।।
बु० च० 21/45
105. संत्रस्त-यूथनमुक्ता० कादम्बरी पृ० 85
106. पीड्यमान० ह० च० पृ० 364
107. निहर यूथपतिनां वियोगिनीनामनुगतकलभोश्च० कादम्बरी पृ० 86
'योग्यमातंगतुरे तरंगितांगनम् । ह० च० पृ० 243
108. घासधूलकप्रहार प्रमृष्ट० ह० च० पृ० 363
109. करिघटाघटमानंघटाटांकार क्रियमाणकर्ण ज्वरे—ह० च० पृ० 364
'आगच्छतो नूचि गजस्य घट्यो—शिशु० 12/34
'महाचमू स्यन्दनो० कुमार० 14/26

है. [110] गज पर चित्रकारी का उल्लेख भी मिलता है. हाथी को थपथपाने से उसका चर्म कड़ा पड़ जाता है एवं उस पर चित्रकारी करदी जाती है.[111] गज की सूंड पर अंकित बुदकियों से भोजपत्र की बुदकियों का साम्य बताया गया है. [112] भगवान् शंकर द्वारा पहना गया गज चर्म हंसों के जोड़ों से चित्रित था. [113] गज की पर्वत से तुलना करते हुए गज पर चित्रकारी का उल्लेख महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव में किया है. [114] आभूषणयुक्त हाथियों के आभूषण शाम के समय उतार लिये जाते हैं [115]

गज एक उत्तम सवारी—मानव एक विकसित मस्तिष्क का प्राणी है. इसी कारण विशालकाय गज भी उसकी सवारी का साधन बन गया है. एक छोटा बच्चा भी हाथी की सवारी करने में समर्थ हो सकता है. [116] गज एक शाही सवारी है. गज पर बैठने के लिए लकड़ी का बना 'होदा' रखा जाता है. जिसमें बैठने की व्यवस्था होती है। कुमारसम्भव में ब्रह्मचारी पार्वती के सम्मुख शंकर की निंदा करता है एवं उनके वाहन बैल को निकृष्ट बताकर हाथी की प्रशंसा करता है. [117] शंकर की अगवानी करने के लिये पर्वतराज हिमालय गज पर सवार होकर आये थे. [118] बड़े-बड़े राजा महाराजाओं के यहाँ अनेक हाथी होते थे एवं गज उनकी सर्वश्रेष्ठ सवारी माना जाता था. [119] हथिनी की सवारी का भी उल्लेख मिलता है. [120] हाथी से

---

110. शृंगारगैरिकपंकांगधसंग्रहाय। ह० च० पृ० 348
'बहुलमीधूल० कादम्बरी पृ० 355
'करिकर्णावतंसम्पटसम्पादनाय। ह० च०
'चामीरकरमय सर्वोपरकरणानां बालिनां। यथोपरि पृ० 348
111. सुग्द्विपास्फालन०। रघु० 3/55
112. न्यस्ताक्षराधातुरसेन० कुमार० 1/7
113. उपान्तभागेषु च रोचनांको गजाजिनस्येव दुकुलभावः कुमार० 7/32
114. भक्तिभिर्बहु विधारधि०। कुमार० 8/69
115. अपनीयमान-कर्ण-शंख-चामर नक्षत्रमाला मण्डनेषु। कादम्बरी पृ० 300
116. तं राजवीथ्यामधिहस्ति। रघु० 18/39
117. यद्द्या वारणराजहार्यया। कुमार० 5/70
118. तमृद्धि० कुमार०। 7/52
119. रथवाजिगजारुढा। बु० च० 16/49
'नाकपृष्ठंययो। कु० च० 10/39
'वाहनं च मवेदय०। बु० च० 19/51
'सरथगजे०—किरात० 7/2
120 गजवधु समारुढेः। दृ० च० पृ० 367

उतरने का उल्लेख भी किया गया है.[121] कामदेव भी गज पर चढ़कर आता है.[122] गज को देवराज इन्द्र व कुबेर की सवारी भी माना गया है. आजकल गज की सवारी विशेष अवसरों पर प्राप्त होती है. पर्वतीय स्थानों में लोग गज की सवारी करते हैं। राजस्थान में गनगौर व तीज के मेलों में गज की सवारी की जाती है. यह पशु विशालकाय होने से अपने आपको जीवित रखने में सफल नहीं हो रहा है. अतः गज दिनों दिन कम देखने को मिलता है. दूसरे इस भौतिक युग में गज की सवारी विशेष महत्व नहीं रखती क्योंकि अब तो सस्ते व तीव्रगामी अन्य साधन उपलब्ध होने लगे हैं.

गज सेनाङ्ग के रूप में:—सेना के चार मुख्य अंग होते हैं जिनमें गज का प्रमुख स्थान है.[123] सेना में गज के जाने का कवियों ने पुनः पुनः उल्लेख किया है. सेना में काम आने वाले गज अधिक ऊँचे व बलवान होने चाहिये. सेना में हजारों की संख्या में गज जाते थे.[124] गजों के साथ-साथ हथिनियाँ भी युद्ध में जाती थीं.[125] सेना के हाथियों को तम्बू में रखा जाता है ताकि वे स्वस्थ एवं सुखी रहें एवं सेना में

'करिणी निशाक इव० ह० च० पृ० 249

'करेणुकामारुह्येय । कादम्बरी पृ० 343

121. अथावतीर्य० सौ० न० 5/1

122. अनंगवारणशिरो–नक्षत्रमालायमानेन ।—कादम्बरी पृ० 32

123. हस्त्यश्वरथपत्तीनां । बु० च० 28/8
'बहु गज-तुरग०—कादम्बरी पृ० 302
'भिन्न पदाति० वासवदत्ता पृ० 31
'तुरगकरणी०—कादम्बरी उ० पृ० 567
'तिष्ठन्तु सर्वे एव राजानः । ह० च० पृ० 324

124. तस्योत्सृष्ट० रघु० 4/76
'अनेकसहस्रसंख्या करिणः । ह० च० पृ० 405
नागवल – नैषध० 10/8
'करिघटा संग्रह संकुलम्—कादम्बरी उ० पृ० 346
'करेणु:प्रस्थिको नैको—शिशु० 19/36
निध्वन०—शिशु० 19/34
उद्दामदानाद्द्विपवृन्दवृंहिते । कुमार० 4/41

125. करिणी समाकुलम् । शिशु० 13/17

महत्वपूर्ण कार्य कर सकें.[125-A] सेना में जाने वाले मस्त हाथी भयंकर चीत्कार करते हैं एवं लोग उनको अपने आप मार्ग देते रहते हैं क्योंकि वे बली हैं एवं बली से सब घबराते हैं.[126] सेना में महावत गज को चलाते हैं.[127] उस समय हाथियों को नियन्त्रित करने के लिये वे अनेक आवाजें करते हैं.[128] सेना के गज भड़ककर दौड़ते हैं तो सेना में भगदड़ मच जाती है एवं लोग अपने आपको बचाने के लिए इधर-उधर पनाह लेते हैं.[129] युद्ध में गज हिंसा करने को तैयार रहता है यहाँ तक कि वह अपनी परछाई से ही भिड़ जाता है क्योंकि क्रोध में उसकी बुद्धि काम नहीं करती.[130] सेना में जाने वाले हाथियों पर बड़ी-बड़ी तोपें लाद कर ले जाने का रिवाज था. गज रास्ते में आने वाले छोटे-छोटे घरों को रौंद देता है एवं मार्ग के बीच खड़ा होकर लोगों का मार्ग अवरुद्ध कर देता है.[131] एक गज एक वीर को आसानी से चीर डालता है.[132] युद्ध में गज के दाँतों का बड़ा महत्व है. दाँतों के सहारे वह अनेक कार्य करता है. वह क्रोध में आकर दाँतों से पर्वतों को पीटता है.[133] वह दाँतों से विशाल पर्वत के पत्थरों को उखाड़ सकता है फिर मनुष्य की आंतों को उखाड़ना तो उसके लिए साधारण कार्य है. वह दाँतों से वीरों पर भयंकर प्रहार करता है. शत्रु-सेना के हाथी के शरीर में वह अपने दाँत गड़ा देता है. हाथी दांतों की आपसी टक्कर आग को पैदा कर देती है एवं इससे युद्ध में भयंकरता आ जाती है.[134] हाथी के दाँत अत्यन्त मजबूत होते हैं. उन पर सैनिक चढ़ जाने पर भी वे नहीं टूटते.[135] केवल करवाल से ही गजदंत को काटा जा सकता है.[136] दांतों की टक्कर से मकानों में दरारें पड़

125–A तदानीलनागकुलसंकुल० शिशु 5/68

126. वारणानां विभावरीवार्ता—ह० च० पृ० 347

127. स्तेम्वेस्या० द० च० पृ० 20

128. शुन्काम मातंगमांगमार्गं० ह० च० पृ० 374

129. सच्छिन्न० रघु० 5/49

130. हिंसा परागजः । बु० च० 21/52

131. करिचरणदलित० ह० च० पृ० 366
     ध्रुवं गुल्मा० शिशु० 3/.9

132. कंचिमन्था० शिशु० 18/52

133. मस्ते० रघु० 4/59

134. येषां० रघु० 5/72
     ऊन विदास्या० बु० च० 2/44

135. क्रोधाद० कुमार० 16/29

136. खड्गेन मूलतो हत्वा० कुमार० ।

जाती है.[137] गज के दाँतों की आपसी टक्कर से खट्-खट् की आवाज होती है.[138] ऊँची जाति के हाथी के बच्चे द्वारा दूसरे हाथियों को पछाड़ने का उल्लेख भी मिलता है.[139] गज आपस में दांतों को इतना जोर से टकराते हैं कि उनके दाँत टूट जाते हैं. फिर भी बलवान हाथी लड़ना बंद नहीं करते, वे निरन्तर युद्ध करते हैं.[140] लड़ते-लड़ते हाथी दांतों के बल गिर जाते हैं. एवं उनके दांत ही उस समय अवलम्बन हो जाते हैं.[141] युद्ध में सैनिक एक दूसरी सेना के हाथियों को फटकारते हैं.[142] कादम्बरी में गजदन्त के उखाड़ने का वर्णन मिलता है.[143] कन्दर्पकेतु के खड्ग से हाथी के मस्तक से मुक्ता निकलने का वर्णन वासवदत्ता में उपलब्ध है.[144] चन्द्रापीड़ के गणों में गज के मस्तक को विदीर्ण करने की क्षमता थी.[145] युद्ध में विजयी गजों को थपथपाया जाता है जो उनकी वीरता व समझदारी पर प्रकाश डालता है.[146] सौन्दरनन्द में हाथियों, घोड़ों व रथों वाले शत्रुओं पर विजय पाने वालों को उच्च योद्धा नहीं माना गया है.[147]

गज एवं सिंह :— जंगल में रहने वाले गज व सिंह दोनों का प्रमुख स्थान है. शाकाहारी जीवों में गज एवं मांसाहारी जीवों में सिंह राजा माने जाते

137. दैतेयदन्त्य० कुमार० 13/38
138. अन्योन्ये० शिशु० 18/32
139. शमयति गजानन्य० विक्रम० 5/8
140. शिशुपाल० 18/33
141. लब्धायामं दन्तयोर्युग्ममेव० शिशु० 18/46
142. हत हस्तिपक० । हर्ष० च० पृ० 375
'परिक्षते वक्षसि दन्तिदन्ते । किरात० 16/11
'मातंगानांदन्तसंघटा । शिशु० 18/34
'मग्नानंगे० शिशु० 18/34
143. 'समुत्पल विधृत गजदन्ते— कादम्बरी पृ० 94
144. यस्य च निशितनारा च०—वासवदत्ता पृ० 29
145. मदकलकलभकुम्भ०—कादम्बरी पृ० 303
146. जयकुंजर कुम्भस्थला स्फालन । कादम्बरी पृ० 559
147. तथा हि वीरा:० सौ० न० 9/23

हैं. अत: गज व सिंह का द्वन्द्व सर्वदा से चला आरहा है. सिंह अवसर पाकर कभी भी गज पर आक्रमण कर देता है. कादम्बरी में सिंह के द्वारा नोंचे गये मस्तक वाले गजों के कराहने का वर्णन है.[148] सिंह गज पर आक्रमण करता है.[148-A] गज सिंह से डरकर छिप जाते हैं.[149] गज का मस्तक सिंह द्वारा नोंचे जाने पर मोती निकलते हैं.[150] एक ओर गज व शेर का सम्बन्ध शत्रुता का प्रतीत होता है किन्तु दूसरी ओर इनके शावकों में अपनत्व मिलता है. यह आश्चर्यजनक बात है. आश्रम में रहने वाले पशु-पक्षी हमेशा मानवता को अपनाते हैं. गज शावक शेर के बालों को नौंचते रहते हैं[151] जबकि सिंह उनके प्रति बिल्कुल क्रोध नहीं करता.

कवियों द्वारा उपमित गजः—संस्कृत साहित्य में हाथी के अंगों व उसके कार्यकलापों को कवियों ने कल्पना का विषय बनाकर संस्कृत-साहित्य में सादृश्यमूलक अलंकारों का महत्व बढ़ाया है. गज के अंगों की एवं कार्यों की तुलना कवियों ने सजीव एवं निर्जीव दोनों प्रकार के पदार्थों से की है. कवियों की यह सूक्ष्म अवलोकन शक्ति निस्सन्देह सराहनीय है.

गज की सूँड से निकलने वाली सूं-सूं की आवाज को कवियों ने सांप की फुंकार से सादृश्य दिया है.[152] राजा के खड्ग की तुलना रक्तरूपी जल में उतरते हुए गज की पाँव रूपी कछुवे से की गयी है.[153] एक स्थान पर गज की सूंड की तुलना अजगर से की गई है.[154] वास्तव में गज की सूंड अजगर की भाँति मोटी होती है. साथ ही गज की सूंड से निकलने वाली सूत्कार भी अजगर की सूत्कार से काफी साम्य रखती है. अत: कवि की उपमा उचित ही है. सूंड की भाँति गजदन्त को भी कवियों ने उपमित किया है. दाँतों की स्वच्छता की तुलना चांदनी से दी गई है. चांदनी की किरणों को हाथी दांत से बने पनाले की उपमा दी है.[155] दाँतों

---

148. मृगपति० कादम्बरी पृ० 84

148–A कुरुते क्रमं करि करिपतौ क्रूराकृतिः केसरी वा० द० पृ० 79

149. वु० च० 13/55

150. केसरि० वासवदत्ता पृ० 65

151. एष मृणाल० कादम्बरी पृ० 141

152. हस्तिबन्धमिव० वासवदत्ता पृ० 237

153. रक्तवासि० यथोपरि पृ० 30

154. करदण्डानु० कादम्बरी पृ० 69

155. दनामयकरमुख ह० च० पृ० 28

की आपसी रगड़ को वृक्षों की रगड़ से उपमित किया गया है क्योंकि दोनों की रगड़ों से अग्नि की उपस्थिति देखी जाती है.[156] हाथी के काले कपोल को रात के अंधकार से सम्बन्धित किया गया है.[157-158]

इसी प्रकार गज समूह को काले मेघों से उपमित किया गया है. गज का रंग बिल्कुल काला नहीं होता ठीक उसी प्रकार बादल भी गहरे काले नहीं होते अतः कवि की उपमा निस्सन्देह सार्थक है, निरर्थक नहीं.[159] वासवदत्ता में अंधकार को मस्त हाथियों के गण्डस्थल के सदृश्य व गज मस्तक सर्पों के शरीर के समान उज्जवल कहा गया है.[160]

सामान्यतः गज शाम के समय जल में अधिक निवास करता है. स्नान के साथ-साथ वह जलकेलि के समय अपनी सूंड में पानी भरकर उछालता है. हाथी की सूंड से निकले पानी से डर कर प्रकाश भाग गया, इस प्रकार की उपमा शाम के समय के लिये दी गई है.[161] युद्ध काल में गज के मस्तक पर निकले रक्त को सिन्दूर से उपमित किया है.[162] गज की आवाज की तुलना दुन्दुभि की आवाज से की गयी है.[163] अन्यत्र गज की चाल से धरती से दुन्दुभि की आवाज का उल्लेख मिलता है.[164]

हाथी के कर्णनालों की फटफट एवं भौंरों की आवाज में मिलकर दुन्दुभि की ध्वनि को तिरोहित किया-ऐसा उल्लेख एक अन्य स्थान पर किया है.[165] कदलीवनों से अलंकृत घण्टों के शब्दावली विंध्याटवी को बाण ने हाथी की गति से उपमित किया

---

156. दन्तिदन्तादिवोत्कीर्णे भुवने । कादम्बरी पृ० 589
157. शिशु० 18/35
158. अन्धकारितदिगन्तरेण० कादम्बरी पृ० 348
159. सान्द्राम्भोयश्यामले० शिशु० 18/37
160. मत्तमातंग मनोहर गजमण्डले । वासवदत्ता पृ० 165
    धनतस्यो० यथोपरि ।
161. इभ-कर० कादम्बरी पृ० 349
162. करण-वर्धवगुणा च० कादम्बरी पृ० 348.
163. आहूयमान दिक्षु दिक्कुंजरे । यथोपरि 341
    वहल कलकल० ह० च० पृ० 372
164. मद-कल-करि चरण० कादम्बरी पृ० 349
165. करिणां० ह० च० पृ० 373

है.[166] गज को एक स्थान पर रौद्र-रस कहा है.[167] हाथी को कालिदास ने विघ्न का मूर्तिरूप कहा है.[168] गज को दिशा का रूप माना है.[169] एवं उसकी तुलना धैर्य की न्यूनता से की गई है.[170] मनुष्य की जांघों की विभिन्न अंगों की गज के अंगों से तुलना की गई है. मनुष्य की जांघों व भुजाओं को हाथी की सूंड से उपमित किया गया है.[171] स्त्रियों की जांघों को भी हाथी की सूंड से सदृश्य बताया है. दमयन्ती की जांघों ने हाथी की सूंड को पराजित कर दिया ऐसा उल्लेख श्रीहर्ष ने किया है.[172] महाकवि भारवि ने सुरगंनाओं की जांघों की हाथी की सूंड के समान मोटा बताया है.[173] वास्तव में हाथी की सूंड की मनुष्य या स्त्री के साथ उपमा उचित भी है. जिस प्रकार हाथी की सूंड ऊपर से मोटी एवं क्रमशः पतली होती जाती है ठीक उसी प्रकार मानव की जांघ की स्थिति है. हाथी की सूंड भूरे–भूरे बालों से ढ़की होती है वही स्थिति मानव की जांघ या बाहु की है. काव्यकारों ने पौराणिक मनुष्य, देवता व राक्षसों को हाथी के समान बताया है देवताओं में शंकर, कामदेव, यमराज, कृष्ण को हाथी से सम्बोधित किया गया है. भगवान कृष्ण का हाथी को शत्रु कहा है.[174] कामदेव को युवतियों के हृदयों को क्षत–विक्षत करने वाला गज कहा है.[175] मदन रूपी हाथी की पूर्ववर्ती ध्वजा के चिन्ह रूप चामर के समान पुष्प मंजरी का वर्णन कादम्बरी में उपलब्ध है [176] कामदेव को दिशारूपी हाथियों के लिये लोहे की अर्गला कहा गया है.[177] यम-

---

166. मत्तमातंगत्येव०–वासवदत्ता पृ० 82
167. रौद्र एव रणे रसः–शिशु० 17/39
168. मूर्तो विघ्न तपस इव । शाकु० 1/31
169. दिगन्तदन्ति । शिशु० 1/757
170. धैर्या व सादेन० किरात० 3/38
171. उदिण्डाभ्यामुपहसन्ती० ह० च० पृ० 40
     ऐरावतकरपीवर० कादम्बरी पृ० 498
     दिक्कुंजर० ह० च० पृ० 337
172. उरूपकाण्ड० नैषध० पृ० 4/94
173. बरोभिर्वारण हस्तपीवरैश्चिराय । किरात० 8/22
174. करीरः । शिशु० 19/104
     हरिव्याक्षपुरः । शिशु० 1/39
175. वाराणव्रणित पथिक वधू हृदयतटः । वासवदत्ता पृ० 111
176. ध्वजचिन्ह० कादम्बरी पृ० 423
177. अमेघ ते० यथोपरि 30 पृ० 599

राज को गज कहा गया है.[178] इसी प्रकार के यूरक नाम के गंधर्व पुत्र की चाल की तुलना गज की चाल से की है.[179]

महर्षि दधीचि को गज के कान को शंख कहा है.[180] नारदजी को इन्द्रवाहन ऐरावत के समान सुशोभित बताया गया है.[181] गौतम को हाथियों के कौशल जानने का इच्छुक कहा है.[182] राक्षसों में रावण को गज कहा है. हाथी द्वारा किसी सैनिक को पटकने में दिव्यमूर्ति ऊपर जाती दिखाई दी वह इस प्रकार की प्रतीत हुई मानो कंस ने नंदकन्या को शिला पर पटका हो एवं वह दिव्यकन्या आसमान की ओर जा रही हो. यहाँ गज व कंस की समता प्रदर्शित की गई है.[183] यहाँ यमराज, रावण व कंस की गज से समता बताने के दो कारण सामने आते हैं. प्रथम तो यह कि ये सभी लोग काले रंग के थे एवं द्वितीय यह कि ये सभी बलवान एवं क्रोधी माने गये हैं. अतः यह समता तार्किक है. मनुष्यों में बुद्ध, चन्द्रापीड़, अर्जुन, दुष्यन्त, राजा हंस, नन्द, राज्यवर्धन, शूद्रक, व छन्दक को गज कहा गया है. महाकवि अश्वघोष की कृति बुद्ध-चरित में बुद्ध को विभिन्न क्रियाओं के आधार पर हाथी से उपमित किया गया है. बुद्ध ने हाथी के समान बाहर जाने का विचार किया, हाथी के समान जिसकी छाती से बर्छी लगी हुई थी, उस रात नहीं सोया, गज राज के समान पराक्रमी मृगराज की सी गतिवाला वह, मस्त हाथी के समान वह, इन वाक्यों में बुद्ध व गज की समानता बताई गई है.[184] बुद्ध के पिता उसी प्रकार कांपने लगे जिस प्रकार हाथी बच्चे द्वारा हिलाया गया पेड़, यहाँ बुद्ध को गज से उपमित किया गया है.[185] राजा चन्द्रापीड़ पर सामन्तों ने उसी प्रकार पुष्पवर्षा की जिस प्रकार हाथी ऐरावत पर जलकणों की वर्षा करते हैं.[86]

---

178. मृत्युरैवनेभ० ह० च० पृ० 311
179. मद रेववाल स० । कादम्बरी पृ० 519
180. मस्तमदन करिकर्ण शंवायमानेन । ह० च० पृ० 66
     नागेन्द्र भिवेन्द्र वाहनम् । शिशु० 1/8
181 जिज्ञासमाना नागेषु । सौ० न० 1/36
182. दन्तीव मनुष्य धर्मणाः शिशु 11/55
183. कंसनेव स्फेहिटताया गजेना । शिशु०18/50
184. ह० च० 3/2
     "प्रलम्ब वाहुर्मृगराज विक्रमो । ह० च० 8/53
     'न हिश्ये तां रात्रि हृदय गत शल्यो गज इव । ह० च० 4/103
     'गतः स यत्र द्विपराजविक्रम । यथोपरि 8/12
     मत्त मातंग इव । यथोपरि । 25/32
185. राजा करिणेवाभिहतो द्रुमश्चालः । यथोपरि 5/29
186. ऐरावत इव । कादम्बरी पृ० 343

यहाँ चन्द्रापीड़ को गजराज एवं सामन्तों को गज से उपमित किया गया है. हाथी के मस्तक पर मदलेखा के समान चन्द्रापीड़ की दाढ़ी के बाल थे.[187] शंकर के दोनों पगों को हाथी के कानों से उपमित किया गया है.[188] किरातार्जुनीयम् में अर्जुन को हाथी कहा गया है. जिस प्रकार एक वन-गज दरार के मध्य के पानी को पीने में अभ्यस्त किसी अन्य गज द्वारा पीये जाने पर उसे ढूँढ़ता है उसी प्रकार अर्जुन का हाथ खाली तरकस पर गया जिसके वाणों का शोषण शंकर ने कर दिया था.[189] यहाँ अर्जुन को अभ्यस्त गज व शंकर को वन्य-गज उपमित किया गया है. अन्यत्र अर्जुन को उदण्ड हाथी से उपमित किया गया है.[190] दुष्यन्त को गज से उपमित करते, हुए कहा है कि वे कमजोर होने पर भी वे कमजोर गज के समान कमजोर प्रतीत नहीं हो रहे थे.[191] दशकुमार चरित में राजवंश नामक राजा को ऐरावत कहा है.[192] नन्द वर्तमान में पकड़े गये हाथी के समान चिन्ता के वशीभूत हो गया है.[193] अन्यत्र कहा गया है कि नन्द मुनि के समीप मुक्त हाथी के समान चला.[194] शूद्रक को भी गज कहा है.[195] वासबदत्ता में कुवलयापीड़ नामक गज को कामदेव का वाहन बताते हुए राजा को कंस की उपमा दी है.[196] एक नये पकड़े हाथी से भिखारी की तुलना की गयी है.[197] बुद्ध को छोड़ने के बाद छन्दक एवं आसक्त को कीचड़ में फंसे हाथी से उपमित किया गया है.[198]

शान्तनु में भीम की अपेक्षा अधिक हाथियों का बल था.[199] राज्यवर्धन व हर्षवर्धन

---

187. गण्डमण्डलोद्भासिनी–कादम्बरी उ० पृ० 536
188. ....पार्थः । किरात० 17/25
189. किरात० 17/36
190. तत उदग्र इव द्विरदे० किरात० 18/1
191. गिरिवर इव नागः प्राणसारं विभर्ति । शाकु० 2/4
    'यूथानि संचार्य० । शाकु० 5/5
192. सुराज० द० च० 5
193. चिन्तावशो नवगृहीत इव द्विपेन्द्रः । सौ० च० 5/33
194. पार्श्वान्मुनेः प्रतिमयौ० सौ० न० 18/61
195. करिणी० कादम्बरी पृ० 46
196. कंस इव कुवलया०/वासवदत्ता पृ० 22
197. अथ पुनः प्रकीर्ण० द० च० पृ० 182
198. नदीपंक इव द्विपः । बु० च० 6/26
    यथा पंकेजरी गजः ।बु ० च० 26/62
199. भीमादने कनागायुतबलम् । ह० च० पृ० 131

को क्रमशः इन्द्र व उपेन्द्र बताते हुए हाथी पर गमन करने वाला बताया है.[200] महाराजा नल को राजाओं के कुल में हाथी के समान बताया है अर्थात वे राजाओं में प्रधान ग की भाँति हैं.[201] किरातार्जुनीयम् में द्रोपदी ने अर्जुन को दाँत टूटे हुए हाथी से उपमित किया है. जिस प्रकार दाँत टूट जाने से हाथी विरूप हो जाता है उसी प्रकार अर्जुन-मान हानि के कारण विरूप हो गये थे.[202]

स्त्रियों के गमन को हाथी की चाल से पुनः पुनः उपमित किया है. रानी कल्प सुन्दरी को गज-गामिनी कहा है.[203] दमयन्ती गति से गज को जीतने वाली थी.[204] अप्सराओं की चाल को भी गज की चाल के सदृश्य माना है.[205] दमयन्ती के शरीर में कामदेव रूपी गज का निवास बताते हुए श्रीहर्ष ने दमयन्ती की नाभि को खूंटे का स्थान, रोमों को टूटी जंजीर एवं कुचों को हाथी के सोने का उच्च स्थान बतलाया है.[206] रानी विलासवती को हाथी की मदरेखा कहा है.[207] बुद्ध चरित में गजमुखी भूत का वर्णन किया है.[208]

कादम्बरी प्रमोदवन की सौरभ को उसी प्रकार रोक रही थी जिस प्रकार हस्तिनी हाथी को रोकती है.[209] सौदरनन्द में वर्णन है कि रानी माया ने स्वप्न में छः दाँतों वाले श्वेत गज को गर्भ में प्रवेश करते देखा.[210] स्त्रियों के रोने को भी हस्तिनी के रोने से उपमित किया है. रानी पति की मृत्यु के समाचार सुनकर हृदय में विषलिप्त तीर से घायल हुई हथिनी के समान

---

200. इन्द्रोपन्द्रविव नागेन्द्रगतौ । हृ० च० पृ० 232
201. अवनि० । नैषध० 21/123
202. दन्ती० । किरात० 3/45
203. निशान्तोद्यानमगा० । व० च० पृ० 293
204. जितदन्तिनाथौ । नैषध० 7/10
     द्वीपं द्विपाधिपतिमन्दपदे । नैषध० 11/73
205. यत्र च मातंगगामिन्यः । हृ० च० पृ० 166
206. उन्मूलिता० । नैषध० 7/85
207. शिशु० 7/47
     इवकम्तुग कठिने० । शिशु० 13/16
208. मदलेखेव दिग्गजस्य । कादम्बरी पृ० 188
209. करिणामिव सम्मुखागत० कादम्बरी पृ० 620
210. स्वप्नेऽथसमये । सौ० न० 2/50

जोर से रोई. [211] बुद्ध द्वारा त्यागी गई पत्नी को गज द्वारा छोड़ी गई हस्तिनी कहा है. [212] हाथी के विषय में शिशुपालवध में एक अत्यन्त सुन्दर शृंगारिक वर्णन प्राप्त होता है. लिखा है—स्नान के कारण जल में गिरे मेरु की धूलि की लालिमा से तथा जल में लगे कमल के सम्पर्क से ऐसा ज्ञात होता है जैसे कोई नायक व नायिका सम्भोगोपरान्त वस्त्र परिवर्तित करते हों. यहाँ गज गैरक धारण करता है, एवं नदी कमल को, अतः ये वैपरीत्य हुआ. [213] गज का पर्वत से अनेकधा साम्य बताया गया है. हर्षचरित में कैलाश पर्वत को हाथी कहा गया है.[214] सेना के हाथी को पर्वत कहा गया है.[215] हाथी रास्ते को रोक देता है किन्तु सेना गमन पर हाथी के समान पर्वत ने सेना के मार्ग को नहीं रोका.[216] वह पर्वत अब भी अगस्त्य को बुला रहा है जिस प्रकार सिंह से विदीर्ण हाथी.[217] गज गंछभादन समुद्र में पर्वत के समान विद्यमान रहता था.[218] हाथी के दाँतों का हल एवं हाथी को पर्वत की उपमा शिशु-पालवध में दी है.[219]

मनुष्यों के अंगों के अतिरिक्त पेड़-पौधों से भी गज के अंगों की तुलना की गयी है. कादम्बरी में लक्ष्मी को कन्दर्प रूपी हाथी का कदलीवन कहा है.[220] एक सोयी हुयी स्त्री को गज द्वारा तोड़ी गई कार्णिकार की शाखा कहा है.[221] जिस प्रकार पेड़ों के पत्ते धरती को झुक-झुक कर छूते रहते हैं ठीक उसी प्रकार हाथी की पूंछ धरती को छूती रहती है.[222] दोनों वस्तुयें सजीव हैं एवं दोनों की क्रिया वास्तव में एक सी है.[223] अनारदाने व गजमुक्ता में सादृश्य बताया गया है.[224] गजमुक्ता भी लाल होते

---

211. सौ० न० 6/24
212. बु० च० 9/27
213. संसर्पिथः–शिशु० 5/39
214. कैलासकुंजर । ह० च० पृ० 34
215. महामतंगजैः । शिशु० 12/29
216. नगेन नागेन० शिशु० 12/48
217. अद्यापि कुम्भसम्भव० वासवदत्ता। पृ० 78
218. अन्तः प्रविष्ट०–कादम्बरी 30 पृ० 561
219. शिशु० 18/38
220. कदलिका कामकरिणः । कादम्बरी पृ० 326
221. गजभग्ना इव० । बु० च० 5/51
222. महाकरिभिखि–कादम्बरी पृ० 387.
223. हरिनखरभिन्न०–कादम्बरी पृ० 53
224. दिग्वारणकराधृत० सौ० न० 215

हैं और अनारदाने भी. आकाश से होने वाली पुष्पवर्षा का सादृश्य गज द्वारा चित्रस्थ वृक्ष को लाकर गिराये गये पुष्पों से की गई है.[224] नागवृक्ष के फूलों व हाथी दाँत से संपुट में भरे सोने में समता प्रदर्शित की गई है.[225] चट्टान पर बैठे इन्द्र की तुलना (ऐरावत) पर बैठे इन्द्र से की गई है अर्थात् चट्टान हाथी के समान है.[226] गज के मस्तक से बहने वाले रक्त की नदी से बहने वाले पानी से समता बताई गयी है.[227] तारों से भरा आकाश गज द्वारा फैंके गये जल के कणों जैसा सफेद है अर्थात् जिस प्रकार जलकण धवल होते हैं उसी प्रकार सितारे भी श्वेत एवं चमकदार होते हैं.[228] हाथियों के झुण्ड को सुन्दर बरामदों से उपमित किया है.[229] चन्द्रमा के सामने हटे बादल को शत्रु के शरीर से गजचर्म हटने के समान माना है.[230] इस प्रकार संस्कृत काव्यकारों ने गज को सजीव एवं निर्जीव वस्तुओं से उपमित किया है एवं अपनी कल्पना शक्ति का प्रदर्शन कर संस्कृत-साहित्य में कल्पना नामक एक नया अध्याय जोड़ा है.

हाथी से उपलब्ध पदार्थ – गज एक विशालकाय पशु है. अतः इसके शरीर से अनेक ऐसे पदार्थ मिलते हैं, जिनका हमारे दैनिक जीवन में बड़ा महत्त्व है. गज से उपलब्ध पदार्थों को मानव ने अपनी आवश्यकता एवं इच्छानुसार समय-समय पर परिवर्तित कर काम में लिया है. इन पदार्थों में बहुमूल्य एवं अधिक काम आने वाला पदार्थ है, गजदन्त, गजदन्त से अनेक प्रकार की वस्तुओं का निर्माण होता था ऐसा वर्णन काव्यों में मिलता है. हाथी दांत के पंखे का वर्णन दशकुमार चरित में आया है.[230] शयन स्थान के पैरों में हाथी दांत लगाया जाता था एवं हाथी दांत की डिब्बियां भी मिलती थी.[231] कानों में भी दांत के आभूषणों का पहिनना बताया गया है.[232]

---

225. पुष्पोत्कराला अपिनागवृक्षाः । सौ० न० 7/9
226. सुरधिष्ठित० शिशु० 4/13
227. हतद्विप० किरात० 15/24.
228. दिक्करि करावकीर्ण० कादम्बरी पृ० 588
229. करियूथेरिव समत्नवारभैः । वासवदत्ता पृ० 86
230. दन्तमयस्तालवृन्तः । ह० च० पृ० 281
231. दन्तपाण्डुरथाद् । ह० च० पृ० 119
    दान्तशफरक धारिव्या, कनकपुत्रिकया । ह० च० पृ० 254
232. धवलदन्त० । ह० च० पृ० 36
    एककरण–कादम्बरी पृ० 30

कादम्बरी में हाथी दांत से निर्मित चण्डिका की मूर्ति का वर्णन मिलता है.[233] चण्डिका मन्दिर के किवाड़ों में गजदन्त की कील लगी थी.[234] बाणभट्ट ने हाथी दांत की कंघी, चंवर एवं अटारी का भी उल्लेख अपने ग्रंथ में किया है.[235] हाथीदांत की पालकी एवं हाथी दांत की मूठों का वर्णन क्रमशः बुद्धचरित एवं शिशुपालवध में मिलता है.[236] गज से दूसरा मुख्य प्राप्य पदार्थ हैं—गजमुक्ता. गजमुक्ता का इधर उधर बिखरे रहने का बारबार वर्णन आया है. चण्डिका मन्दिर के पास गजमुक्ता बिखरे थे.[237] भील लोग गजमुक्ता हाथों में लिये रहते थे.[238] राजा शूद्रक की तलवार के मुक्ता लगे थे.[239] गजमुक्ता वर्तमान में गज के कुम्भ से प्राप्त नहीं होते—अतः ये केवल कवि कल्पना मात्र है. इस विषय में कालीदास ग्रंथावली के अभियान कोष में स्पष्टीकरण दिया है.[240] शिवगज चर्म धारण करते थे ऐसा वर्णन भी मिलता है अतः गजचर्म वस्त्र का काम आता था.[241] हर्षचरित में लिखा है कि चमड़े के बने हाथी की तरह बार बार प्रतिहारों के घूंसे खाकर किसी को धकेल दिया गया.[242] हर्ष चरित में एक मुहावरा भी दिया गया है कि सुमेरु से टक्कर लेने वाले हाथी कभी बांबी से नहीं मिलते.[243] इसी प्रकार किरात में कहा है कि हाथी शृगालों से मेल नहीं करते.

---

233. वनद्विरददन्त—कपाटे । कादम्बरी पृ० 636
234. हस्त-दन्त दन्डार्गलम् । कादम्बरी पृ० 639
235. दन्तपत्रम् । काद० पृ० 257
चारु—चार—नागदन्त काद० पृ० 161
कामदेव गृहदन्तवालभिकाम् । कादम्बरी पृ० 533
236. द्विरदमयी० । बु० च० 1/86
सिततरदन्त चारवः । शिशु० 17/25
237. विदलितवन—करि०—कादम्बरी पृ० 638
238, गजकुम्भ० यथोपरि पृ० 94
239. लग्नस्थूल मुक्ताफलेन । यथोपरि पृ 14.
240. द्रश्य कालिदास—ग्रन्थावलि—सीताराम चतुर्वेदः
241. गताजिन० कादम्बरी पृ० 391
242. पशुपते० । मेघ० पृ० 40
प्रालेय० शिशु० 4/64
243. करिकर्मचर्म० । ह० च० पृ० 366
भवन्ति गोमायुसखा० । कि० 14/42
न सुमेरू व० । ह० च० पृ० 326

गज का वर्णन कालिदास ने १६५ बार, अश्वघोष ने ७१ बार, भारवि ने ५५ बार, माघ ने १०३ बार, श्रीहर्ष ने १३ बार, सुबन्धु ने ३१ बार, बाण ने १३४ बार एवं दण्डी ने १० बार किया है. इस प्रकार गज-वर्णन के आधार पर कालिदास का स्थान प्रथम, बाण का द्वितीय एव माघ का तृतीय है. इस प्रकार संस्कृत काव्यों में गज का वर्णन कुल मिलाकर ५८२ बार मिलता है. प्रस्तुत तालिकाओं में गज के वर्णन का विभिन्न विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है.

———

तालिका–१

'गज' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (१६५)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
७६	रघु०	१/३६,७१ ७८.२/३७,३८.३/३,३२,३७,५५.४/४,२२,२६,३३, ३८ से ४०,४५,४७,४८,५७.५६,६६,७५,७६,८१,८३. ४/४३ से ५१,५३,५६,७२,७५.७/७,२७,५४,७३,८३.७/३७,३६,४२,४६, ४८,६/६५,७१,७३,७४.१०/५७.११/३६.१२/७३, ६३, १०२, १३/२०,७४.१५/६७.१६ /२,३,१६,२६,३०,३३,४१,६८,७८.१७/ ३२,६६,७०.१८/५,८,६.१६/११.
५०	कुमार०	१/६,७,३६.२/५०.३/२२,६७.५/७०,७८,८०. ७/३२,५२.८/६४, ६६,४/६२,१३/२२,३८,४१.१४/१४,१५,१६से २३,२६ ३३,४१से ४४,४७,१५/८,१०,१५,२३,१६/२,२१.२४,२६,से ४०३.१७/२६,
१२	मेघ०	पू०–२,१४,२०,२१,२२,३६,४०,४६,५५,६३, व ६६. उ०–२१,
६	ऋतु	१/१४,१६,२७.२/१,१५,१६.
४	शाकु०	१/३१.२/४.५/५ व ७/३१.
४	मालविका०	१/ग. ५/ग. ६४.
१३	विक्रम०	१/१७.४/१६,२३,२६,३५.४३ से ४५,५४,५६,६३,७२.५/१४.

तालिका–२

'गज' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों नें विश्लेषण (४१७)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्र घोष	५५	बु०च०	१।६०,८६,२।१,२,२२,३/२,४।२७,१०३, ५।२३,२६,२६, ५१,८२,६।२६,२६.७।१६,८।१२.५३,६।२७,१०।३६.१२। ५,११६,१३।१६,५३,१४।२४,१६।४६ १६।५१,२१।४३ से ५२,५४,५६,६१,६३,६५,६७,६६, २४।४, २५।३२, २६। ६२,१०६,२७।११,६०,६५,२८।८.
	१६	सौ०न०	१।३६,५१,२।५०,५३,३।१,४।४०.५।१,५३,६।२४,७।६,२६, ८।१७,६।२३,१२।११,१५।१४,१८।६१,
भारवि	५५	किरात०	१।१६ ३६.२।६,१८,२३,२५.३।३८,४५,५०,५।७,२६,४७, ६।७,१२,६।२,६,११,१३, २६,२४,३०,३६,८।१२,२२,६। २०,१०।५३.१२।४८,४६,१४।२२, ३५,१५।१६,२४ २६, १६।२,८,११ से १४,३८, १७।१३, १७,२५,३६,४५,५१, १८।१,
माघ	१०३	शिशु०	१।८,३६,५५,६४,३।२७, २६ ४।१३, ४६,६०, ६४,५।५, ३० से ५३,६८, ६६.६।५०,७।४७, १२।१२,१५,१६,२१, २४,२७ से २६,३४,३८ से ५०,५३ से ५५,५८ से ६०, ६२,६४,६५,७२,१३।५, १६,१७, १७।२३,२५ ,३१,५७, १८।२,४,३३ से ५१,५८,६१,१६।२५,२६,३३,३४,३६, ३७,४४ से ४६,१०४.२०।५१,५२,
श्रीहर्ष	१३	नैषध०	१।१०८,२।३३,७।८५,६४,१०१,१०।८,११।७३, १२।८२, ८५,१३।५,१५।१८,१६।६ २१/१२७,
सुबन्धु	३१	वासवदत्ता	पृ० १२,२२,३०,३१,६४ से ६६,७४, ७८, ७६, ८२,८६, ६४,६५,६८,१०४,५,११,१२,२६,३४, ६३,६५, ६६,६८, २०५.२०,३२,२५,३७,४३,
बाणभट्ट	४५	ह० च०	पृ० २५,२६,३४,३६,४०,६६,८२,६३,६४'११०,१५,१८, १६,३०,३३,३४,४२,६६,२१६,३२, ३८, ४३, ४६, ५४, ३०१,७,२०,२४,२६,३२,३७,४७,४८,६४,६६, ६७,६६, ७२ से ७५,६०,६६,४०५,५१,
	८६	कादम्बरी	पृ० १२, १४, १६, १६, २२, २८, ३०, ३२, ४०, ४६, ५३,५८,६६,७६,८०,८१,८३,८७,६४,६४,६६,१२२,२५, ४१,६१,८८, २३२, ५७,६६,७६,६३,३००,२,३,२३,२६, ४१,४३, ४३,, ४८.४८,४८,४६,४६,५० से ५२.५५,५७, ५६, ६८, ६६,७४,७४,७६,८४,८४,८४, ८७, ६१,४२३, ६८,५१६, ३३, ५६,७७,८८,८६,६०४,२०,३३,३८,३६, ६१३,५४६,६१,६१,६१,६४,६७,७३,८०,६६,६६.
दण्डी	१०	द०च०	पृ० ५,३६,१४८,५०,८१,८२,२६३,३०१,१०,११.

गंडक
THE RHINOCEROS

"प्रचलित खडग भीषणाः"

—कादम्बरी पृ० ५७

संस्कृत-साहित्य में गैंडे का स्थान गौणतम है. वैदिक साहित्य में गैंडे को खड्ग[1] खङ्गः[2] नामो से कहा गया है. अमरकोष में गंडक को खङ्गः, खड्गः व गण्डकः शब्दों से कहा गया है.[3]

गैंडा मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत गैंडा-परिवार का एक मात्र सदस्य है.[4]

गैंडा विश्व के विशालकाय जीवों में द्वितीय स्थान रखता है.[5] यों तो गैंडे अनेक प्रकार के होते हैं किन्तु उनके तीन भेद प्रमुख हैं जिनका हम यहां पर संक्षिप्त वर्णन करेंगे एवं तद्नन्तर गैंडे के सामान्य गुणों का उल्लेख करेंगे.

(१) काला गैंडा—यह गैंडा मुख्यतः अफ्रीका में पाया जाता है. इसका कंधा ५ फीट ऊंचा एवं वजन ३००० पौण्ड के करीब होता है. इसके दो सींग होते हैं. यह गैंडे दिन में किसी ठण्डे रेतीले भाग में सोते देखे गये हैं.[6] इसकी गति काफी तेज होती है. यह २८ मील प्रति घण्टा की गति से दौड़ सकता है यद्यपि इसका शरीर काफी भारी होता है. काले गैंडे का गर्भाधान काल सुनिश्चित नहीं, किन्तु गर्भा-

---

1. मै० सं० 3/14/21, वा० स० 24/40
2. वा० स० 24/40
3. 'गण्डके खड्ग खण्गिनौ' इत्यमरः (सिंहादि वर्गः)
4. 'जीवजगत'– पृ० 628
5. ए० किंग पृ० 670
6. यथोपरि पृ० 675

धान के १८ माह बाद मादा सामान्यतः एक बच्चे को जन्म देती है जिसका वजन ७५ पौण्ड होता है.

(२) सफेद गैंडा—यह गैंडा मध्य अफ्रीका में पाया जाता है. सफेद गैंडा काले गैण्डे की अपेक्षा ऊंचा होता है. इसकी ऊंचाई ६ फीट से ६½ फीट तक होती है. यह ऊंचाई कन्धे की है. इसका वजन ४ टन के करीब होता है. इस जाति के नर मादा दोनों दो–दो सींगों वाले होते हैं. गर्भाधान के १७ या १८ माह बाद मादा बच्चे को जन्म देती है.

(३) भारतीय गैंडा—यह जाति भारत, नेपाल, तिब्बत एवं प्रायः सभी एशियाई देशों में पायी जाती है. इनकी पहचान यह है कि इनके एक ही सींग होता है. भारत का यह गैण्डा बड़ा ही भयंकर होता है एवं इसका मानसिक संतुलन इतना बिगड़ा होता है कि हाथी जैसे विशालकाय जीव भी इससे असुरक्षित हैं. इसकी मादा गर्भाधान के १८ या १९ माह बाद बच्चा जनती है. बच्चे का वजन ७५ से १२० पौण्ड तक पाया गया है.

गैण्ड की थूथन पर एक सींग होता है, जो वास्तव में कोई सींग नहीं होता अपितु गैण्डे के कड़े बालों के आपस में चिपक जाने से यह सींगनुमा बन जाता है. गैंडे के शरीर का रंग काला, सफेद व ललछौं होता है. दुम व कान के अतिरिक्त कहीं भी बाल नहीं होते. इसका शरीर ऐसा लगता है मानों ढालों से ढका हो. इसके शरीर की रचना कछुए के शरीर से काफी साम्य रखती है. इसके पैरों में तीन तीन नख होते हैं. इसका सिर बड़ा, पैर शरीर के अनुपात से छोटे एवं आंखे छोटी छोटी होती हैं. दो कान होते हैं, जो बहुत छोटे होते है.

गैण्डा सामान्यतः सीधा व मस्ती में जीवनयापन करने वाला जीव है किन्तु इसकी आकृति ही कुछ डरावनी है घायलावस्था में यह आपे से बाहर हो जाता है.

संस्कृत काव्यों में गण्डक - संस्कृत काव्यों में गंडक के लिये खड्गः[7] व गण्डकः[8] शब्दों का प्रयोग हुआ है. महाकवि बाण ने वन में भ्रमण करने वाले गैंडो का उल्लेख किया है,[9] नवजात बच्चों को मादा गैण्डा भयभीत होने का वर्णन बाण ने किया है एवं भीलों द्वारा गैण्डे से खिलवाड़ की बात कही गयी है.[10] विन्ध्याटवी

7. कादम्बरी० पृ० 57–58
8. यथोपरि० पृ० 59, वासवदत्ता० पृ० 213
9. 'प्रचलित खड्ग भीषणा'—कादम्बरी. पृ० 57
10. 'कतिपय दिव्य–प्रसूतानाश्च खड्गिधेनुकानां त्रासपरिभ्रष्टपोतकान्वेषिणीनामुन्मुक्तकण्ठ०' यथोपरि० पृ० 86

को गैण्डों के घूमने से सुशोभित कहा है.[11] महाकवि सुबन्धु ने भी गैण्डों से विभूषित बन की बात कही है,[12]

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्यों में गण्डक का वर्णन कुल मिलाकर ६ बार हुआ है. महाकवि बाण ने गण्डक का वर्णन पांच बार एवं वासवदत्ता में एक बार हुआ है. अन्य सभी कवियों ने गण्डक के विषय में रुचि प्रदर्शित नहीं की है. गण्डक के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में दर्शनीय है—

तालिका (१)

'गण्डक' के वर्णन का कालीदास के काव्यों में विश्लेषण (×)

तालिका (२)

'गण्डक' के वर्णन का कालीदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (६)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
सुबन्धु	१	वासवदत्ता	पृ० २१३
बाणभट्ट	५	कादम्बरी	पृ० ५७, ५८, ५६, ८४, ८६

———

11. 'गण्डकाभरणा च'—यथोपरि० पृ० 59
12. 'अरण्येव गण्ड शोभितेन'—वासवदत्ता पृ० 213

अश्व
THE HORSE

'पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्रवाहाः"
—मेघदूत ३०/३

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में वर्णित पशु-वर्ग में अश्व का प्रमुख स्थान रहा है. गज की भांति अश्व के वर्णनों की अविरल धारा भी वैदिक काल से ही बहती रही है. वेदों में अश्व के लिये अत्कः, अश्वः, मयः, हयः, वाजिन्, सप्ति शब्दों का प्रयोग हुआ है.[1] इसके अतिरिक्त दधिका, तार्क्ष्य, पैद्व एवं एतश नामों का उल्लेख भी वैदिक साहित्य में विद्यमान है,[2] रंग के अनुसार भी अश्व के कतिपय भेद किये गये है जैसे-हरित, हरि अरुण, पिशांग, रोहित श्याम एवं श्वेत.[3]

रामायण में अश्व के लिये हयः, वाजिन्, व अश्वः शब्दों का प्रयोग देखा गया है.[4] राम-रावण युद्ध में अश्व प्रमुख पशु था ही. अमरकोष में अश्व के लिये घोटकः, पीतिः, तुरगः, अश्वः, तुरंगमः, वाजिन् वाहः, अर्वन, गन्धर्व, हयः, सैन्धवः, सप्तिः, अजानेयः. कुलीनः, विनीतः व साधुवाहिन् शब्दों का उल्लेख है.

अश्व विश्व के तीव्रतम पशुओं में से एक है. यह मेरु दण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत अश्व उपवर्ग में घोड़ा परिवार के अन्तर्गत आता है. यह गज की भांति बुद्धिमान् एवं कुत्ते की भांति स्वामिभक्त होता है. अश्व विश्व के सभी भागों में पाया जाता है. मुख्यतः मैदानी भागों में इसका अधिक निवास है. काबुल व अरब के

---

1. ऋक्० 1.4,3.7, वै० इ० पृष्ठ 42 (1), वा० सं० 17/19
   ऋक्० 5/46/1, 7/44/4 वा० सं० 7/74; वै० इ० 1 पृ० 42
2. वै० मा० पृ० 281
3. वै० इ० 1 पृ० 42
4. 'हयं क्षपति राज्यं च त्वत्सनाथमनिन्दि ते'–वा० रा० 22/8
   'हयग्रीवंचदानवम्–वही 42/28

घोड़े सब नस्लों में उत्कृष्ट होते हैं. भारत में काठियावाड़ के 'टांघन' घोड़े प्रसिद्ध हैं. सम्पूर्ण विश्व में अश्व पालतू रूप में पाया जाता है' दक्षिणी अमेरिका के कतिपय भागों में जंगली घोड़े भी पाये जाने का उल्लेख मिलता है किन्तु उनके निवास का एक सीमित क्षेत्र होता है । अतः उन्हें जंगली नहीं कहा जा सकता.

अश्व जानवरों में सबसे सुडौल प्राणी है. सुप्रसिद्ध अध्यापक हक्सले का कथन है कि घोड़ा कई दृष्टि से अभूतपूर्व जन्तु है. सबसे मुख्य बात यह है कि सजीव जगत की शरीर रूपी कलों में घोड़े के शरीर की कल सर्वोत्कृष्ट है.[5]

अश्व मानव का सबसे बड़ा साथी है. उसने मानव को अनेक कार्यों में सफल बनाया है प्राचीन राजाओं के नाम अश्व के नाम से युक्त होते थे—रोहिताश्व, पौरुषाश्व इत्यादि. संस्कृत के एक महाकवि का नाम भी 'अश्वघोष' है. सम्भवतः अश्व के समान बुद्धिमान् एवं बलवान् लोगों को इस प्रकार के नाम रखने का शौक रहा होगा.

अश्व की शरीर रचना बड़ी सुन्दर है. यह न अधिक लम्बा है न अधिक मोटा. सम्पूर्ण स्तनपोषित समुदाय में केवल घोड़ा जाति के ही जीव हैं जिनके खुर चिरे हुये नहीं होते हैं. पहले घोड़े का कद लोमड़ी जितना सा ही था. इसका वर्णन प्रस्तर विकल्पों के आधार पर किया गया है. घोड़े के कुल २४ दांत होते हैं. जिनमें १२ कृतक व १२ दाढ़ें होती हैं. घोड़े के ओठ मोटे होते हैं एवं इसमें अश्व का स्पर्श ज्ञान विद्यमान होता है. घोड़े के पांव इस भांति के बने होते हैं कि वह आसानी से दौड़ सके क्योंकि इसके पास अपने बचाव का एकमात्र साधन तेज दौड़ना ही है. घोड़े के न सींग होते हैं और न ही पन्जे, जिनसे यह अपनी रक्षा कर सके.[6] घोड़े के शरीर पर बाल होते हैं जिनको मनुष्य समय-समय पर काटता रहता है, इसकी गर्दन पर बड़े-बड़े बाल होते हैं. पूंछ के बालों को कभी जड़ से नहीं काटा जाता. घोड़े के कान नुकीले होते हैं ऐवं सदा खड़े रहते हैं, यह अश्व की जागृति का प्रमाण है. अश्व दौड़ने में सबसे तेज है.[7] अश्व एक बलवान् पशु है इसकी शक्ति के माप को 'अश्वबल' कहते हैं. आधुनिक मशीनों में भी 'अश्वबल' को शक्ति की इकाई माना है. यह मीलों आसानी से दौड़ सकता है, भले ही वह स्थान पहाड़ी हो या मैदानी, रेतीला हो या पंकयुक्त. छः साल में घोड़ा जवान हो जाता है.[8] अश्व का गर्भाधान काल ११ माह का होता है. अश्व का शिशु जन्म के समय बकरी जितना होता है. घोड़ा बड़ा उपयोगी जीव है. यह

5. जन्तु-जगत पृ० 157
6. ए० किंग० पृ० 651
7. इन० चेम्बर० मा० 7 पृ० 227
8. इन० ब्रिटे० भाग 11 पृ० 754 ब

बग्गी या तांगा खींचता है. खेल के मैदान में घुड़ दौड़ व पोलो अश्व पर आधारित मुख्य खेल हैं. युद्ध के मैदान में खेतों में एवं सर्कस में अश्व का महत्वपूर्ण स्थान है. घुड़ सवारी को प्राचीन समय में सज्जन पुरुष की शिक्षा का एक आवश्यक अंग माना जाता था.[9]

अश्व एक शाकाहारी जीव है, यह मुलायम हरी घास पसन्द करता है. इसके ओठ घास उखाड़ने में सहायक होते हैं. घास के अतिरिक्त अश्व को दालें बड़ी अच्छी लगती हैं. यह दालों को खाने से अधिक पुष्ट एवं फुर्तीला रहता है. अतः मैदानी भागों में अश्व अधिक आसानी से अपना खाद्य प्राप्त कर सकता है. पर्वतीय भागों में भी अच्छी घास मिल जाती है. प्राचीन समय में खाने के लिये अश्व का शिकार किया जाता था किन्तु बाद में इसे सवारी एवं अन्य कार्यों के लिये उपयोग में लाया जाने लगा और यह पालतू पशु के रूप में सामने आया.[10] शुक्र व रवि ने अश्व को सवारी के रूप में ग्रहण किया है.

अश्व का पालन एक कठिन कार्य है. इसे पालतू बनाने के लिये घोड़ों को शिक्षित किया जाता है. जंगली घोड़ों को पकड़ने का तरीका गज को पकड़ने के तरीके के समान ही होता है. सामान्यतः खंदे में बन्द करने के बाद कोई सवार घोड़े की पीठ पर कूद कर बैठ जाता है एवं उसे काबू में करने का प्रतिदिन प्रयास करता है. क्रमशः अश्व शिक्षित हो जाता है एवं पालतू बन जाता है, पालतू घोड़ों को कार्यकलापों के आधार पर चार भागों में विभक्त किया गया है:—

१. सवारी का घोड़ा—

सवार को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले अश्व इस श्रेणी में आते हैं, सेना व पुलिस के अश्व इसी प्रकार के हैं.

२. गाड़ी खींचने वाले घोड़े —

दूसरी प्रकार के अश्व जो गाड़ी, तांगा, बग्गी आदि को खींचते हैं, गाड़ी खींचने वाले अश्व कहे जाते हैं.

३. लद्दू घोड़े :—

जो घोड़े एक स्थान से दूसरे स्थान तक बोझा ढोते हैं, इस श्रेणी में रखे जाते हैं.

---

9. वही० —इन० बृटे० भाग ११ पृ० ७५४ व.

10. इन० चेम्बर० भाग 7 पृ० 227

४. भार खींचने वाला घोड़ाः—

ये घोड़े खेत जोतने, कुओं से पानी निकालने व भार ढोने के काम आते हैं. घोड़े में खींचने की शक्ति बहुत तीव्र होती है. इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं सिकन्दर का घोड़ा—व्यसिफेलस, नेपोलियन का अश्व मेरेंगो एवं महाराणा प्रतापसिंह का अश्व चेतक (चेटक) जिन्होंने अपनी स्वामिभक्ति को सर्वदा निभाया घोड़े की बुद्धिमत्ता पर विद्वान् एकमत नहीं. सामान्यतः इसे गज, वनमानुष व कुत्ते के बाद अर्थात् चतुर्थ माना है किन्तु कतिपय विद्वानों के मत में इसका दसवां या इससे भी नीचा स्थान स्वीकार किया गया है.[11]

अश्व के सोने का तरीका भी विचित्र है. वह तीनों टांगों पर खड़ा होकर एक टांग को ऊपर उठाकर सोता है. यही कारण है कि उसके पैरों की मांशपेशियां सर्वदा जागृत रहती हैं जिसके कारण वह तेज दौड़ सकता है. अश्व बहुत ही कम लेट कर सोता है।

अश्व का इतिहास बड़ा पुराना है. यह हजारों वर्षों से मानव जगत् की सेवा करता रहा है. बेबीलोनिया के लोगों को भी अश्व का ज्ञान था.[12]

संस्कृत काव्यों में अश्व

संस्कृत काव्यों में अश्व का प्रमुख स्थान है. काव्यों में इसे अश्वः, हयः, वाजिन्, तुरग, हरिद, तुरंग, तुरगचर एवं वाहः नामों से सम्बोधित किया गया है.[13] अब हम अश्व की काव्यगत विशेषताओं पर विचार करेंगे.

अश्व एवं मानवः—

अश्व एवं मनुष्य का सर्वदा साथ रहा है अश्व को भी गज की भांति धन माना है. कंबोज के राजा ने रघु को अश्व दिये थे यह बात इसका प्रमाण है कि अश्व सम्पत्ति के रूप में होता था.[14] अश्व का मनुष्य से इतना गहरा सम्बन्ध रहा है कि अश्व के सम्पर्क में रहने वाले लोगों के नाम भी अश्व को प्रधान मान कर रखे गये हैं.[15] अपने स्वामी के दुःख में पशु-वर्ग भी दुःखी एवं सुख में सुखी होता है. बुद्ध का

11. इन० ब्रि० भाग पृ० 754 अ०
12. ए० प्रि० पृ० 652
13. सौ० नं० 1/23, वही० 3/1, कुमार० 14/19 रघु० 7/37 वही० 3/30 बु० च० 5/79, नैषध० 2/69, रघु० 4/70
14. 'अश्वजित्' सौ० नं० 16/68
15. 'तुरगावचर' बु० च० 5/68

अश्व कन्दुक उन घोड़ों में से एक था जो बुद्ध के अभिनिष्क्रमणोपरान्त दुःखी हुआ था.[16] मनुष्य भी अश्व को अपना समझकर उसे प्यार करते हैं [17] बुद्ध ने अपने अश्व से उसके कार्य को सफल बनाने की प्रार्थना की थी.[18] उन्होंने अश्व को मित्र माना है अतः यह उनके प्रेम का परिचायक है. [19] समय के अनुसार अश्व अपनी आदतों में आमूल परिबर्तन कर लेता है.[20]

इन्द्रायुधः अश्व विशेषः —

संस्कृत-साहित्य में इन्द्रायुध एक विशेष अश्व है जो मानव योनी से अश्व योनी को प्राप्त होता है. इसका विस्तृत विवेचन महाकवि बाण ने अपने ग्रन्थ कादम्बरी में किया है. यहां यह महाराजा तारापीड़ के कनिष्ट पुत्र चन्द्रापीड़ के प्रिय अश्व के रूप में वर्णित हैं.[21] इस अश्व के अनेक गुणों का वर्णन किया गया है. इन्द्रायुध राजकुल में उत्पन्न, विनय गुण सम्पन्न, बलवान् सुन्दराकृति व शिल्पकला विशारद कहा गया है. इन्द्रायुध काफी ऊँचा अश्व था.[22] वह दुर्गा के सिंह के समान सटाओं वाला था.[23] इन्द्रायुध को इन्द्र के अश्व का अंशावतार माना है. [24] इन्द्रायुध को अश्वजाति के श्रेष्ठ छात्रों में से मानते हैं [25] वह भगवान् महादेव के वृषभ के समान था.[26] अन्य स्थान पर इसे भगवान् भास्कर के रथ का अश्व कहा है.[27] वेग में वह गरुड़ का प्रतिद्वन्द्वी एवं सांपों की तरह तैरने वाला था. [28] इस प्रकार इन्द्रायुध को एक महत्व-पूर्ण अश्व माना है

---

15. ....कन्थक स्तुरगोत्तमः ।
निह्वया लिलिहे पादौ वाष्पभुष्णं मुमोच च ।। बु० च० 6/53
17. 'मुन्च कन्थक मा वाष्पं दर्शितेन सदम्बता ।'–बु० च० 6/55
18. 'तुरगोत्तम वेदविक्रमाभ्यां प्रयतस्वाभ्भहिते जगद्धित च'–वही० 6/66
19. 'इति सुहृदमिवानुशिष्य कृत्ये'–वही० 5/79
20. वही० 5/79
21. कादम्बरी–'इन्द्रायुध वर्णना (24) पृ० 239–247
22. 'उध्वंस्पुरुष-पृष्ठ भागम्–वही पृ० 7
23. 'लोहित-सटभिव-पार्वतीसिंहम्'–वही पृ० 240
24. 'अंशावतारमिवोच्चैः श्रवसः'–वही पृ० 242
25. 'अश्वातिशयभिन्द्रायुद्यमद्राक्षीत्'–वही पृ० 243
26. 'कैलास तटाघात धातुधूलि-पाटनभिव हरवृषभम्' वही० पृ० 239
27. 'गगनतल निपतित दिवसकर रथ तुरग शंका भिलोप अनयन्तम्'–वही: पृ 241
28. 'जब प्रतिपक्षमिव गरुत्यतः'–वही पृ० 242

इन्द्राश्वः उच्चैः श्रवाः—

इन्द्रायुध की भाँति उच्चैःश्रवा भी संस्कृत साहित्य के अश्व जगत् का एक प्रमुख रत्न है. उच्चैःश्रवा को समुद्र से उत्पन्न इन्द्र का अश्व माना है. अच्छे कार्य-कलाप करने वाले अश्वों को सर्वदा 'उच्चैः श्रवा' की उपाधि से विभूषित किया गया है.[29] नैषध चरित में नल को दिये गये अश्व को 'उच्चैः श्रवा' शब्द की व्युत्पत्ति 'उच्चैः श्रवसी यस्य' की गयी है अर्थात् जिस की करणेन्द्रियां सर्वदा खड़ी रहे, उसे उच्चैःश्रवा से उपमित किया है.[30]

अश्व का निवास—

अश्व प्राचीन समय से ही मनुष्यों के साथ रहा है. इसे अश्वशाला में रखा जाता है. हर्ष चरित में अनेक अश्वों के निवास स्थानों के नाम गिनाये हैं. वहाँ वाना घाटी में उत्पन्न, वाह्रीक (पंजाब) में उत्पन्न, काम्बोज (मध्य एशिया) उत्पन्न, भारद्वाज (गढ़वाज) में उत्पन्न, सिंघ देशज एवं पारसीक (ईरान) में उत्पन्न अश्वों का नामोल्लेख किया है। अतः ये सभी स्थान अश्वों के मुख्य निवास स्थल हैं.[31]

अश्व की शरीर रचना :—

पशु-जगत् में अश्व की अपनी शरीर रचना है. यह अत्यन्त सुडौल जीव है. अश्व की शरीर रचना के विषय में महाकवि अश्वघोष ने एक सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है. कन्थक के गुणों का वर्णन करते हुये उन्होंने लिखा है कि उस अश्व की रीढ़ का निचला भाग एडी व पुच्छमूल विस्तृत थे. जिसके बाल, पुच्छ व कान छोटे एवं स्थिर थे। उसकी पीठ व बगल दबे हुये और उठे हुये थे. उसके नाक, ललाट, कमर एवं सीना विशाल थे.[32] यहां अश्व की शरीर रचना की एक हूबहू झलक प्रस्तुत की गई है. इससे यह स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि महाकवि को अश्व के बारे में काफी ज्ञान था. घोड़े के रंग के विषय में भी काव्यों में बहुत कुछ लिखा है. सूर्य के घोड़ों का रंग पीला बताया गया है. यहां माघ पर वेदों के हरित शब्द का प्रभाव प्रतीत होता है. वैसे सूर्य के घोड़े उसकी किरणें ही होती हैं जो पीली हुआ करती है. वैदिक साहित्य में हरित शब्द पीले के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो 'जरद' (पारसी) से साम्य रखता है.[33] दूसरे स्थान पर सूर्य के घोड़ों को विभिन्न वर्ण वाला

---

29. शिशु० 5/57
30. नैषध० 16/25
31. ह० च० पृ० 107
32. 'प्रततत्रिक पुच्छ मूलपार्ष्णि निभृत ह्रस्वतनूज पुच्छकर्णम्—बु० च० 5/73
33. 'हरिखि हरिवश्व—शिशु० 11/56

बतलाया है.[34] नीले रंग के अश्व का वर्णन भी मिलता है. [35] महाराज नल के घोड़े का रंग श्वेत बताया गया है. [36] शिशुपालवध में सुनहरे अश्व का वर्णन किया गया है. [37] महाकवि बाण ने विभिन्न वर्ण के अश्वों के नाम दिये हैं. उन्होंने लाल, श्याम, श्वेत समद, नीला सब्जा एवं तीतरपंखी रंगों का निर्देश किया है.[38] जगत में उपर्युक्त वर्णित सभी प्रकार के अश्व वर्तमान में उपलब्ध हैं, अतः इन सबका लिखना सत्यता के बहुत कुछ नजदीक हैं.

अश्व के कार्य-कलाप:

विश्व का कोई जीव चुपचाप नहीं बैठ सकता. वह कुछ न कुछ कार्य अवश्य करता है. अश्व तो पशु-जगत का शिरोमणि है, अतः वह अनेक कार्य करता है. अश्व का सबसे प्रमुख कार्य है—दौड़ना. तेज दौड़ना अश्व का प्रमुख गुण है. रथ में जुते अश्वों की क्रिया का वर्णन करते हुये कालिदास ने लिखा है कि अश्वों के माथे की चौंरी सीधी खड़ी करके वे घोड़े इतने वेग से दौड़ रहे हैं कि इनकी टापों से उड़ी धूल भी इन्हें नहीं छू पाती है. [39] नैषधकार ने अश्व के वेग से आँधी की तुलना की है.[40] बेलगाम अश्व बहुत तीव्र गति से दौड़ते हैं, चाहे वे रथ से बंधे हों या एकाकी. [41] नल तेज घोड़े पर चढ़ता था. [42] अश्व एक बली पशु है अतः क्रोधावस्था में वह खूंटा उखाड़कर भी दौड़ पड़ता है. [43] कादम्बरीकार ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि घोड़ों की टापों की आवाज से अंतराल बहरे हो जाते हैं.[44] वास्तव में अश्व की टापों की ध्वनि तेज होती है. नल की सेना के अश्व तो इतने तीव्र गति वाले थे कि उनके सम्मुख इन्द्र के अश्व भी नहीं टिक पाते थे. इसी प्रकार पत्ते के समान सांवले अलका-

34. शिशु० 4/14
35. ह० च० पृ० 41
36. शिशु० 5/55
37. ह० च० पृ० 107
38. वही० पृ० 107
39. शाकु० 1/8
40. नैषध० 1/73
41. द० च० 1/1
42. 'तमश्वारा जवनाश्यायिनम्'—नैषध 1/65
43 'उत्खातदर्पं चलितेन सहैव रज्ज्वा कीलं प्रयत्न परमानवदुग्रंहेण'—शिशु० 5/59
44. 'चलित-चटुल–तुरग-बल–मुखर-खुर–बधरी कृत भुवनान्तराला'—कादम्बरी० प० 186

नगरी के घोड़े अपने रंग व चाल दोनों से सूर्य के घोड़ों को परास्त करने वाले थे.[45] महाकवि माघ ने अपने काव्य में अश्व की चाल का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है. अश्व की गति अश्व रक्षकों पर आधारित होती है.[46] अश्वों की गति में भी समानता होती है. उनके चलने का भी एक विशेष तरीका होता है.[47]

जिस समय घोड़े दौड़ते हैं तो मैदानों की मिट्टी उड़ने लगती है एवं वातावरण धूलमय हो जाता है. इसका कारण यह है कि अश्वों की गति अत्यन्त तीव्र होती है एवं इसी कारण मिट्टी उड़ती है. नैषधकार ने घोड़ों के द्वारा उड़ायी धूल से समुद्र में रेत भरने का वर्णन किया है.[48] घोड़ों के द्वारा उड़ायी गयी धूल से दिशा रूपी हाथी स्नान करते हैं एवं यह धूल लोगों के ललाट पर चिपक जाती है.[49] मिट्टी ठोकर खाकर भी सर्वदा शीश पर जा चढ़ती है ऐसी मान्यता है. अश्व एक चंचल पशु है अतः वह चुप नहीं बैठ सकता. वह अपने खुरों से अस्त वल को खोद डालता है.[50] यह उसकी चंचलता एवं जागृति का प्रतीक है। संस्कृत काव्यों में एक ओर अश्व द्वारा धूल उड़ाने का वर्णन है तो दूसरी ओर धूल शांत करने का. कादम्बरी में अश्व की लार से मिट्टी शांत होने का उल्लेख है.[51] महाकवि की यह कल्पना मात्र प्रतीत होती है क्योंकि घोड़ों की लार से धूल शांत नहीं हो सकती. हाँ, यह सम्भव है कि यदि एक अश्वशाला में अनेक अश्व बन्धे हों एवं वे सब लार टपकायें तो वह सीमित स्थान गीला हो सकता है किन्तु धूल शांत नहीं हो सकती.

अश्व की बोली को 'हिनहिनाना' कहते हैं जिसका उल्लेख काव्यों में मिलता है.[53] घोड़ों का हिनहिनाना मधुर होता है.[54] अश्वों की हिनहिनाहट तीव्र होने से हाथियों की चित्कार के मध्य भी स्पष्ट सुनाई देती है. अश्व की हिनहिनाहट को सुन-

---

45. 'पत्र श्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्रवाहा'—मेघ० उ० 13
46. शिशु० 5/10
47. 'इतीव धारामधीर्य मण्डली क्रिया श्रिवामण्डि तुरंगमैस्थली'—नैषध० 1/72
48. 'वाजिभिराहतं खुरै'–कुमार० 14/19
49. नैषध० 1/57
50. नैषध० 1/57
51. कादम्बरी० पृ० 337
52. शिशु० 17/31
53. शिशु० 12/15
54. 'कृतमधुरहेषारवः'–ह० च०

कर सेना में लोगों को मूर्च्छा आने का उल्लेख मिलता है.[55] अश्व के बोलने का कोई निश्चित समय नहीं होता, किन्तु वह किसी विशेष परिस्थिति में ही बोलता है. हर्ष चरित में अश्व के रात्रि में बोलने का वर्णन मिलता है.[55-A] अश्व के प्रवेश पर राजकुमार के प्रवेश की निश्चितता मानते है.[55-B] अतः सिद्ध होता है कि बुद्ध व अश्व का अटूट सम्बन्ध था. बुद्ध का अश्व बड़ा समझदार था जो स्वामी की अनिच्छा पर नहीं हिन-हिनाता था.[56]

घोड़ा थकने पर आराम चाहता है. थकने पर घोड़े को हरी घास व शीतल जल की आवश्यकता रहती है ताकि वह फिर फुर्तीला बन जावे.[57] अश्व के सोकर उठने का उल्लेख हर्षचरित में हुआ है. वहां बताया गया है कि सोकर उठने पर अश्व पीछे के पैरों को तानता है, रीढ़ को अन्दर गढ़ाता है, अपने अङ्गों को फैलाता हैं, गर्दन को झुकाता है, मुँह को छाती से लगाता है, अपनी अयाल को झाड़ता है, घास खाने के लिए थूंथन को लचायमान बनाता है, एवं मंद मंद घुर घुरता हुआ खुरों से जमीन को कुरेदता है.[58] अश्व को स्पर्श करने से भी उसे आराम मिलता है. अश्व की सुरत क्रीड़ा का उल्लेख भी काव्यों में मिलता है. इन्द्र की घोड़ियां सूर्य के घोड़ों से रति की कामना रखती थीं[59]

अश्व की शोभा बढ़ाने के लिये उसे आभूषणों से अलंकृत किया जाता है. इनके गहने लोगों को आकर्षित करते रहते हैं, एवं ज्योति दिशाओं को मुखरित करती रहती है,[81] अस्ताचल की ओर जाते हुए अश्वों की दशा का सुन्दर वर्णन किरातार्जुनीयम् में करते हुए महाकवि भारवि ने लिखा है कि अश्वों के सिर झुक जाते हैं, कानों की चौंरियां पुनः पुनः आंखों पर गिरने लगती है एवं केशर जूड़े के लगाव से निखर जाते हैं.[61]

---

55. बु० च० 28/49, [55-A] ह० च० पृ० 36, [55-B] बु० च० 8/19
56. 'यदि हयहेषिष्यत बोधयन जनं
   खुरः क्षितो वाभ्यकरिष्यतध्वनिम् ।
   हनुस्वनं वाजिनिष्यदुत्तमं
   न चामविध्यन्मम वु खमीदृशम् ।। वही० 8/41
57. कादम्बरी० पृ० 368
58. हर्षचरित
59 'स्पर्श निस्तीर्णमित वाजिनम्' बु० च० 6/4
60. नैषध० 19/17
61. शिशु० 17/36

तीव्रतम सवारी- विश्व के पशु जगत में अश्व सबसे तीव्र सवारी है. इसीलिये काव्यकारों ने अश्व की तीव्रतम गति वाली वस्तुओं से बहुधा तुलना की है. घोड़े की सवारी करने से पूर्व उस पर जीन कसी जाती है, ताकि सवार ठीक से बैठ सके.[62] अश्व अतिशीघ्र ही लम्बे मार्ग को पार कर जाता है.[63] अश्व की तीव्रगति को देखकर लोग उसे पंख युक्त अश्व मानते हैं.[64] अश्व की तीव्रता का एक बड़ा प्रमाण यह है कि घुड़ सवारों से कुत्ते पीछे रह जाया करते थे.[65] घोड़े रथ में जुड़े होने पर भी तेज चलते हैं.[66] अश्व को तेज चलाने के लिए अश्व को चाबुक से हांका जाता है.[67] अश्व पर चढ़ने का वर्णन विभिन्न काव्यों में मिलता है.[68] चन्द्रापीड़ को अश्व पर चढ़ने व अश्व को हांकने का ज्ञान दिया गया था.[69] स्त्रियों का अश्व पर चढ़ना भी काव्यों में वर्णित है.[70] अश्व की लगाम को खींचकर उनका वेग कम किया जाता है.[71] घोड़ों को रोकने का वर्णन भी मिलता है.[72] सवारी के लिए घोड़ों को लाने का उल्लेख भी यदा कदा मिलता है.[73] अश्व से उतरने का वर्णन सभी काव्यकारों ने किया है.[74] इससे यह सिद्ध होता है कि अश्व एक लोकप्रिय सवारी रहा है.

अश्वः एक सेनाङ्ग—गज की भांति अश्व का भी युद्ध में बड़ा हाथ रहा है. अश्व की दौड़ने की शक्ति व फुर्ती युद्ध में अत्यन्त सहायक है. सेना में हाथियों की अपेक्षा घोड़ों की संख्या अधिक होती है. युद्ध में अश्व को लेकर जाने का उल्लेख

62, किरात० 8/42

63. 'वापय वाजिनः पर्याणम्'—ह० च०

64. 'प्रतूर्णतुरगो दिदृक्षुस्तं लतामण्डपेदवुश माजगाम ।'—ह० च० पृ० 43

65. 'अद्यापि सेना तुरगाः सविस्मयैरलूनपक्षा इव मेनिरे' शिशु० 12/17

66 द० च० पृ० 72

67. तुरगेषु कशाभिघातः—कादम्बरी०

67. शिशु० 18/17

69. 'नीलसिन्धुवारवर्णे वाजिनि महति समारुढम्'—ह० च० पृ० 41

70 कादम्बरी० पृ० 231

71. शिशु० 12/20

72. ह० च० पृ० 95

73. 'प्रगृह्य तां वाजिनः'—शाकु० 1 गद्य

74. बु० च० 6/11

काव्यकारों ने किया है.[75] 'सेना में जाने वाले अश्वों को लोगों न देर तक देखा'[76]—इस वाक्य के पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि घोड़ों की संख्या काफी होती थी. महा-कालिदास ने इन्दुमती स्वयंबर के समय घुड़सवारों के आपस में उलझने का उल्लेख किया है [77] युद्ध की यात्रा में अश्व के शांतिकर्म का विवरण भी मिलता हैं.[78] शिशुपालवध में श्री कृष्ण की सेना के अश्वों का वर्णन हैं.[79] वसुमित्र द्वारा सेना के अश्वों को लौटाने का उल्लेख कालिदास ने किया हैं.[80]

अश्व व गज—अश्व एवं गज का निरन्तर सम्पर्क रहा है. जहां जहां अश्व का उल्लेख आता है, सामान्यतः वहां वहां गज की उपस्थिति देखी जाती है. सेनाङ्गों में गज, अश्व, रथ एवं पैदल का अनेक स्थलों पर उल्लेख आया है. इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ·हां गज भारी भरकम वस्तुओं को हटाने में समर्थ होता है वहां अश्व तीव्रगति से बाधाओं को पारकर सेना को आगे बढ़ाने में सहायक होता है. अतः सिद्ध होता है कि गज व अश्व का चोली दामन का साथ है.

कवियों द्वारा उपमित अश्वः—संस्कृत काव्यों में अलंकारों का विशेष महत्त्व है. उनमें भी सादृश्यमूलक उपमादि अलंकारों पर काव्यों में विशेष बल दिया गया है. अश्व का सामान्य गुण चपलता अर्थात् स्फूर्ति है. अश्व की स्फूर्ति को कवियों ने इन्द्रियों व लहरों से उपमित किया है. मनेन्द्रियों एवं लहरों को वश में करना एक कठिन कार्य है, ठीक उसी प्रकार अश्वों को रोकना भी कठिन है' अतः कवियों की यह उपमायें तार्किक सार्थक हैं. बुद्ध को जितेन्द्रियाश्व कहा है.[81] उन्मार्गगामी इन्द्रियों को वश में करना अश्व को वश में करने के समान कठिन है.[82] कामीजन इन्द्रियरूपी अश्वों द्वारा बहकाये जाते हैं.[83] सौन्दरानंद में चपल इन्द्रियों को अश्व कहा है.[84] मन को रथ एवं इन्द्रियों को मन रूपी रथ के अश्व माना है' जो उसे तीव्रता से दौड़ाते रहते हैं.[85]

75. 'हयानां लक्षत्रयम्—ह० च० पृ० 1830
76. शिशु० 5/6
77. 'तुरंग सादीतुरगाधिरुढम्—रघु० 7/37
78. ह० च० पृ० 142
79. शिशु० 12/1
80. मालविका० 5/15
81. 'जितेन्द्रियाश्व'—बु० च० 5/23
82. 'क्व च दुष्टेन्द्रियवाजिवश्यता'—किरात० 2/39
83. सौ० नं० 8/58
84. लौलैरिन्द्रियमाजिभः'—वही० 12/70
85. वही० 10/41

अश्वों द्वारा उड़ाई गयी रज (धूल) जिस प्रकार आंखों को निस्तेज बना देती है, उसी प्रकार इन्द्रियों रूपी अश्वों के द्वारा मनुष्य की आँखे रजता (राग, लालिमा) को प्राप्त होती है.[86] बुद्ध ने धैर्य धारण कर इन्द्रियरूपी अश्वों का दमन किया.[87] किरातार्जुनीयम् में यक्ष अर्जुन को कहना है कि अर्जुन की इन्द्रियाँ अश्वों के समान उन्मार्गगामी नहीं हैं.[88] अश्वों की गति की समता लहरों के मचलने से की गई है अश्वों को समुद्रीय जल के सदृश भी वर्णित किया है.[89] अन्यत्र अश्वों की तुलना बाण की तीव्रगति से की है. जिस प्रकार तीव्र तीर शत्रुओं की सेना में (सैनिकों में) प्रवेश पा जाते हैं उसी प्रकार अश्व भी प्रवेश कर जाते हैं.[90] इस प्रकार अश्वों की गति की तुलना लहरों, इन्द्रियों व बाण से की गई है. वास्तव में अश्व की चाल हवा के समान होती है. यह जीवधारियों में तीव्रतम सवारी है.[91]

अनेक बार अश्व के अंगों की तुलना मानव अंगों से की जाती रही है. सन्यासी के अधरोष्ठ को घोड़े के ओठ से उपमित किया है.[92] युवक की तुलना घोड़े के बछड़े से करते हुये कवि ने लिखा है कि युवक ने घोड़े के बछड़े के समान प्रिया केस तनद्वय चपलता से छू लिया.[93] यहाँ अश्व की चपलता की युवक की चपलता से समता प्रदर्शित की गई है. रथ के दो घड़ों के साथी की तुलना दो सहोदरों से की है.[94] अश्वों के दौड़ने पर गेरु उड़ती है एवं वह ऊपर तक छा जाती है. हिमालय पर रघु की सेना के अश्वों ने दौड़ना आरम्भ किया, तो गेरु हिमालय के ऊपर तक छा गयी, जिससे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो हिमालय और भी ऊंचा हो गया है.[95] अश्व के खुरों से निकलने वाली धूल की तुलना भगवान् नारायण के चरण कमल से निकली गंगा की धारा से की है.[96] रघुवंश में अश्वों की गति की तुलना बुद्धि से की गई है. लिखा है कि जिस प्रकार सूर्य के घोड़े शीघ्र ही चारों दिशाओं को पारकर लेते हैं उसी

86. ह० च० पृ० 21
87. 'धृत्येन्द्रियाश्वाश्चापलान्विजिग्ये'—बु० च० 2/34
88. किरात० 5/50
89. 'तुरंगैस्तरंगायमाणम्'—ह० च० पृ० 99
90. किरात० 16/10
91. वही० 19/62
92. 'तुरागनूवश्लधाधरलेखम्' ह० च० पृ० 172
93. 'कुचकलशकिशोर कौ कथंचित्वरलया तरुणेन परमृशते'—शिशु० 7/73
94. 'रथाश्वाविव संग्रहितु'—मालविका० 5/14
95. रघु० 4/71
96. 'त्रिपथगाप्रवाह इव हरिचरणप्रभवः'—कादम्बरी० पृ० 351

प्रकार महाराज रघु ने बुद्धि की सहायता से शीघ्र ही चारों विद्याओं को सिख लिया.[97]

कवियों की कल्पना के अनुसार सामान्य अश्व सूर्य के रथाश्वों से ईर्ष्या करते हैं एवं स्वयं को उनके समान बनाना चाहते हैं. हर्षचरित में लिखा है कि अश्व सूर्य के रथाश्वों की ईर्ष्या से स्वयं अपनी चामरमाला को पंखों में परिवर्तित कर आसमान में उड़ जाने के इच्छुक हैं.[98] नल का अश्व सूर्य के अश्वों का अपनी श्वेतता एवं पांतों की किरणों से उपहार कर रहा था'—इस प्रकार का वर्णन महाकवि हर्ष ने किया है.[99] अश्व हिरणों का भी उपहास करते हैं.[100]

इस प्रकार अश्व को विभिन्न कवियों ने विभिन्न रूपों में उपमित करने का सफल प्रयास ही नहीं किया अपितु संस्कृत साहित्य में एक नया अध्याय भी जोड़ा है.

संस्कृत काव्यों में अश्वमेध यज्ञ का वर्णन भी मिलता है.[101] इन्द्र ने दिलीप के अश्वमेधीय अश्व को अपने रथ से बांध लिया था.[102] राजा दिलीप ने अश्वमेध यज्ञ के लिए जो अश्व छोड़ा था उसकी रक्षा का भार रघु पर था.[103]

यदि अश्व के वर्णन का हम विश्लेषणात्मक अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि अश्व का सबसे अधिक वर्णन कालिदास ने ७८ बार किया है. द्वितीय स्थान बाण एवं तृतीय अश्वघोष का है, जिन्होंने क्रमशः ६२ व ५० बार अश्व का बर्णन किया है. माघ, श्री हर्ष, भारवि, दण्डी, व सुबन्धु ने क्रमशः २३, २३, ६, ८, व ३ बार अश्व का वर्णन किया है. इस प्रकार कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में अश्व का वर्णन कुल मिलाकर २५६ बार हुआ है जो गज के वर्णन से आधे से कुछ कम है । प्रस्तुत तालिकाओं में अश्व के वर्णन का विश्लेषण दर्शनीय है.

---

97. रघु० 3/30
98. ह० च० पृ० 99
99 नैषध० 1/62
100. ह० च० पृ० 99
101. मालविका 5 गद्य
102. 'हरन्तमरवः रथरश्मिसंयतम्'—रघु० 3/42
103. 'नियुज्य तं होम तुरंग रक्षणे'—रघु० 3/38

तालिका—१

'अश्व' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (७८)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
५०	रघु०	१/४२, ४८, ५४, ३/३०, ३८, ३९ से ५५, ६३, ६४, ६५, ६७, ४/२५, ४८, ५६ ६२, ६७, ७०, ७१. ६/३३, ७/३७, ३९, ४२, ४७, ५६, ५९, ७०. ९/५०, ५२, ६६, १२/८४, १०३. १३/३, १५/५८. १६/३०. १८/२३.
१९	कुमार०	६/७५ से ७८. ८/४१, ३४, ४१, ४३. १५/१५, २३. १६/२, ८, ४१, ४२. १७/२९ से ३१.
१	मेघ०	उ० १३
४	शाकु०	१/८, गद्य, ५/४.
५	मालविका०	५/१४, १५. ५/गद्य.
१	विक्रम०	१/५.

तालिका—२

'अश्व' के वर्णन का कालीदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (१७८)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	४२	बु० च०	२/१, २२, ३४, ३७. ५/३, २२, ६८, ७१, ७२ से ८१. ६/३ से ५, ११, २९, ३१, ५३, ५५ ६६. ८/१८, १९, २३, ३८, ४०, ४१ ४४, ४५, ७४, १३/१९. १६/४९. १९/५१, २६/३६. २८/४, ८, ५२.
	८	सौ० न०	१/५२.३/१.५/१.९/२३.१०/४१.१२/२१. १६/५८, ८८.
भारवि	९	किरात०	१/१६. ५/५०. ७/११, १९. १५/१६, २४. २६/४, ८
माघ	२३	शिशु०	३/२९, ३०, ५५, ६४, ६६, ६८, ८२. ५/१०. १२/२, ६, १५, १७, २२, ३१, ७३, १६/७४. १७/३२, ६४. १८/३, ५, २२. १९/२५, ६२.
श्रीहर्ष	२३	नैषध०	१/५७, ६१, ६२, ६४ से ६६, ६९, ७० से ७३, १०९, २३. २/८०. ५/५८. १०/८. ११/१२७. १२/९९, १००. १३/२४. १६/२५. १७/२०४. १९/१७.
सुबन्धु	३	वासवदत्ता	पृ० ३१, ५५, २५६.
बाण भट्ट	१७	ह० च०	पृ० २१, ४१, ४३, ५९, ९५, ९९, १०७, १२, ४२, ५८, २१२, ६१, ३२४, ६६, ६६, ६९, ४४१.
	४५	कादम्बरी	पृ० १७, ३७, १८६, २३८ से २४८, ३०३, ४ ४८, ५०, ५१, ६४, ६६, ६८, ८०, ९४, ४४९, ५५२ ६०४, ५, ८, ९, २८, २९, ३२, ३३, ४८, ४९, ५२, ३०, २०, ४२, ६५, ६७, ११३, ४५, ७६, ९२.
दण्डी	८	द० च०	पृ० ५, १३, २१, २३, ४७, ७१, ७२, १७०.

खर
THE ASS

"यादृशी शीतलादेवी तादृशोवाहनः खरः"
—सुभाषित पद।

सम्पूर्ण-संस्कृत-साहित्यारण्य में खर का गौण स्थान रहा है. वैदिक-साहित्य में खर का यदा-कदा उल्लेख किया गया है. वीरकाव्य-साहित्य में खर का वर्णन मिलता है. खर को वेदों में परस्वन्त्[1] खरः[2] एवं गर्दभः[3] शब्दों से कहा गया है. रामायण में इसे खर शब्द से कहा गया है. रावण के रथ को खर-युक्त एवं खर के समान शब्द करने वाला कहा है.[4] अमरकोष में खर को चक्रीवन्तः, वालेयः, रासभः, गर्दभः व खरः शब्दों से कहा गया है.[5]

अश्व के वंश में खर का प्रमुख स्थान रहा है. यह मेरुदण्डीय-उप-जगत् के अन्तर्गत अश्व परिवार का सदस्य है. खर अश्व जाति की एक उपजाति है. यद्यपि खर उत्कृष्ट जाति का जीव है फिर ही इसे 'गधा' मात्र कहकर अत्यन्त निकृष्ट जीव माना जाता है. हमारे देश में तो इसे नीचता एवं मूर्खता का साक्षात् रूप मान लिया है. इसे शीतलामाता का वाहन माना है एवं कहा है जैसी शीतला माता वैसा ही उसका वाहन.'[6] इस प्रकार बेचारे गधे का बड़ा मजाक उड़ाया गया है. वास्तव में यह सीधा, परिश्रमी और सहनशील तो होता ही है, बोझ उठाने में भी अपना सानी नहीं रखता.[7] गधा सामान्यतः चार फुट लम्बा एवं तीन फुट ऊंचा प्राणी है. गधे के कान

1. ऋग्वेद 10/61/8
2. यथोपरि० 3/53/23
3. एतरेय आरण्यक 3/2/4
4. 'खरयुक्त खरस्वनः' वा० रा० 3/49/19
5. चक्रीवन्तस्तु वालेया रासभाः गर्दभाः खराः इत्यमरः (वैश्यवर्गः)
6. 'यादृशी शीतलामाता तादृशो खरवाहनः—लोकोक्ति
7. जीवजगत् पृ० 625

दीर्घ होते हैं. इसका रंग सलेटी होता है. खर की बोली बड़ी भद्दी होती है. इसकी बोली को रेंकना कहते हैं. इसका प्रमुख खाद्य घासफूस है. मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है, जो लगभग नौ माह में उत्पन्न होता है.[8] बोझा ढोना गदहे का परम कर्त्तव्य हो गया है. इसी कारण भारत में धोबी व कुम्हार का प्रमुख सहायक बन गया है. इतना उपयोगी एवं कार्यकारी होते हुये भी इसे टांगे बांधकर छोड़ दिया जाता है एवं आसानी से फिरने भी नहीं दिया जाता. किन्तु मिश्र इत्यादि देशों में खर का अत्यन्त आदर है. खर को वहां विशेष मुक्त वातावरण मिला है यही कारण है कि वहां के गधे हमारे देश के गधों से अधिक अच्छे एवं बड़े कद के होते हैं. खर भी अश्व की भाँति वर्षों से मानवता की सेवा करता रहा है.[9] प्राचीन समय में खर खेती व सिंचाई के कामों में अत्यन्त सहायक रहा है. आजकल भी खेती के कामों में खर का महत्त्वपूर्ण स्थान है. पहाड़ी भागों में गधे का उपयोग सवारी के लिये किया जाता है. इस प्रकार गधा-मानव सेवा में व्यस्त रहा है.

अश्व-परिवार के अन्तर्गत खर के अतिरिक्त एक और प्राणी आता है जिसे खच्चर कहा जाता है. यह खर और बडवा के सम्भोग से उत्पन्न होने वाला जीव है. इसमें सन्तानोत्पत्ति की क्षमता नहीं होती. प्रस्तुत लेख में हमने खर व खच्चर को एक ही समुदाय में रखा है.

संस्कृत काव्यों में खर

संस्कृत काव्यों में खर का उल्लेख विरल है, इसे चक्रीवत्,[10] बालेय[11]:, रासभः[12], गदर्भः[13], एवं खरः[14] नामों से पुकारा गया है.

खर एवं मानव—खर एवं मानव का गहरा सम्बन्ध रहा है. खर के नाम पर राक्षसों के नामों का उल्लेख मिलता है. रघुवंश महाकाव्य में 'खर' नामक राक्षस का नाम मिलता है.[15] बाण ने लम्बनदासों का उल्लेख किया है, जो गधे की

---

8. ए० किंग० पृ० 659
9. यथोपरि० पृ० 658
10. हर्षचरित पृ० 366, शिशु० 5/8
11. कादम्बरी पृ० 302
12. यथोपरि० पृ० 79 कुमार० 15/21
13. बु०च० 21/27
14. रघु० 12/42
15. 'खरादिध्वस्त तथाविधम्।'—रघु० 12/42
    यथोपरि० 12/47, 13/65

भाँति काफी बोझ उठाने वाले होते हैं.[16] 'एक मुनि ने एक बार एक खर को शिक्षित किया.'—इस प्रकार का वर्णन बुद्धचरित में मिलता है.[17]

खर के कार्य कलाप—खर भी अश्व की भाँति बुद्धिमान् जीव है. वह अनेक बातों को आसानी से सीख सकता है. गधा सवारी का भी एक उत्तम साधन है.[18] गधों पर लड़कों द्वारा सवारी करने के वर्णन मिलते हैं.[19] खच्चरों के द्वारा गाड़ी खींचने उल्लेख भी मिलते हैं.[20] खच्चरों का सेनाङ्ग के रूप में उल्लेख नैषधकार ने किया है.[21]

कवियों द्वारा उपमित खर—खर को काव्यकारों ने अनेक स्थलों पर अनेक सन्दर्भों में उपमित किया है. विशालकाय कुत्तों को गधों से उपमित किया है.[22] धुयें का रंग गधे के रंग से साम्य रखता है. अतः खर के रंग की तुलना धुएं से की है.[23] तपोवन के अग्निहोत्र की धूम-रेखाओं को भी गदहे के रोमों से उपमित किया गया है.[24] किसी-किसी प्रदेश की धूल सलेटी रंग की होती है. शिशुपालवध में वर्णन किया गया है कि गधे के रोम के समान धूल आकाश में फैल गयी.[25]

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्यों में खर का वर्णन कुल मिलाकर १८ बार हुआ है. कालिदास ने खर का ५ बार उल्लेख किया है. बाण, माघ, अश्वघोष, श्रीहर्ष एवं भारवि ने खर का वर्णन क्रमशः ५, ३, २, व १ बार किया है. निम्नांकित तालिकाओं में खर के वर्णन का विश्लेषण दिया गया है.

---

16 'लम्बित शकटे' ह० च० पृ० 375

17 'गर्दभं च मुनिश्रेष्ठो दिद्वीषे दीनवत्सलः बु० च० 21/27

18 रघु० 5/32

19 ह० च० पृ० 366

20 शिशु० 12/19

21 नैषध० 10/8

22 'अग्रतो वालेय० कादम्बरी० पृ० 302

23 'धूमं ज्वलन्तो० कुमार० 15/21

24 'रासभ–रोम–धूसरासु'–कादम्बरी० पृ० 79

26 भूरेणु० शिशु० 5/8

तालिका–१

'खर' के वर्णन का कालीदास के काव्यों में विश्लेषण (५)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
४	रघु०	५/३२. १२/४२, ४७. १३/६५.
१	कुमार०	१५/१.

तालिका–२

'खर' के वर्णन का कालीदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (१३)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्व घोष	२	बु० च०	१३/१९. २१/२७.
भारवि	१	किरात०	१६/७.
माघ	३	शिशु०	५/८. १२/१९. २४.
श्रीहर्ष	२	नैषध०	१०/८. १७/७७.
बाण भट्ट	२	ह० च०	पृ० ३६६, ७५.
	३	कादम्बरी०	पृ० ७९, ८८, ३०२.

क्रमेलक
THE CAMEL

'क्रमेलकं निन्दति कोमलेच्छुः क्रमेलकः कण्टकलम्पटस्तम्"
—नैषधचरित 6/104

संस्कृत-साहित्य में वर्णित पशु-वर्ग में ऊंट का गौण स्थान रहा है. वैदिक साहित्य में ऊंट का कहीं कहीं उल्लेख मिलता है. ऊंट को वैदिक-साहित्य में धूम्रः व उष्ट्रः नामों से एवं मादा ऊंट को उष्ट्रि नाम से कहा है, आप्टे के शब्दकोष में ऊंट के लिये क्रमेलः शब्द मिलता है.[1]

ऊंट का वंश एकाकी वंश है. यह मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत ऊंट-परिवार का ऐक सदस्य है. रेतीले टीलों वाला प्रदेश इसे अधिक प्रिय है. भारत में थार के रेगिस्तान (राजस्थान) में ऊंट मानव की सर्वोत्कृष्ट सवारी का सहारा है. राजस्थान के ऊंट प्रसिद्ध हैं.

ऊंट के शुभ लक्षणों को बताते हुये कहा गया है कि जिसका मस्तक नगाड़े जैसा और जिसके कान रत्ती की तरह छोटे-छोटे हो वह उत्तम ऊंट होता है.[2]

राजस्थानी लोक साहित्य में ऊंट को अनेक योद्धाओं एवं प्रेमियों की सवारी तो कहा ही है साथ ही इसे 'प्रेमदूत' एवं 'पथ-प्रदर्शक' भी माना है. ऊंट के शरीर की बनावट बड़ी विचित्र सी है. यह काफी लम्बा एवं ऊंचा जानवर है. सामान्यतः ऊंट की ऊंचाई ८ फीट से १० फीट तक की होती है. इसकी गर्दन काफी लम्बी होती है. जिससे वह ऊंचे वृक्षों के पत्ते खाकर अपनी जीविका निर्वाह करता है. ऊंट की टांगे काफी पतली सी एवं लम्बी होती है. पीठ पर उसके एक कूबड़ जो सामान्यतः बालों से ढ़का रहता है. ऊंट का रंग भूरा एवं कत्थई होता

---

1. तै० सं० 1/8/21/1 काठक० 15/2 ऋक्० 10/106 वा० रा० यु० 60/45, 'उष्ट्रे क्रमेलकमयमहांग'
2. 'माथा टामण जेहड़ा कान रतीह रतीह'—राजस्थानी लोकोक्ति

है. इसका अवरोष्ट लटकता सा होता है जो कि उसकी स्पर्शेन्द्रिय है. कहते हैं कि ऊंट का कूबड़ चर्बी की एक गांठ मात्र है जो उसे लम्बे सफर में काम देती है. चर्बी शरीर का पोषण करती रहती है एवं ऊंट को भोजन की अत्यावश्यकता नहीं रहती.[3] खाद्य की भांति ऊंट के पेट में जल जमा करने के लिये थैलियाँ बनी होती हैं जिनके पानी को यह लम्बे सफर में काम लेता है. कहते हैं ऊंट ३४ दिन बिना पानी के गुजार सकता है. बोझा ढोते हुये रेगिस्तानों को यह आसानी से पार कर लेता है.[4] इसके पैरों के नीचे मुलायम गद्दी लगी होती है जिससे यह टीलों पर आसानी से दौड़ सकता है. क्रमेलक एक घंटे में ८ से १० किलोमीटर की दूरी तय कर सकता है. इसकी घ्राणेन्द्रिय भी बड़ी तीव्र होती है. रेगिस्तान में जहाँ जहाँ पानी का दर्शन तक न हो एवं सब निराश हो चुके हों ऐसे समय में ऊंट की रास ढीली छोड़ देने पर यह सीधा नखलिस्तानों की ओर दौड़कर मानव की प्राण रक्षा करने में समर्थ है.

ऊंट को खाने के लिये कंटीले वृक्ष चाहिये. वे रेगिस्तानों में बहुतायत में मिल जाते हैं. इसे कड़े कुरमुरे कांटे अति प्रिय है.[5]

अपने जीवन काल में ऊंटनी अपने स्वामी को सवारी ही नहीं देती अपितु पीने के लिये पानी भी देती है एवं कपड़ों के निर्माणार्थ ऊन भी देती है. मादा ऊंट के दूध से अनेकानेक औषधियों का निर्माण भी होता है. ऊन के नमदे, कम्बल व कपड़े बनते हैं. मरणोपरान्त इसकी चर्म के जूते बनाये जाते है इस प्रकार यह मानव का परममित्र है. यह जीवन के आदि से जीवनान्तर मानव की सेवा करता है, जबकि मानव इसके नाक को चीर कर इसे परतंत्रता के बन्धन में डाल देता है. इसका परोपकार किसी महामुनि के परोपकार से किसी प्रकार न्यून नहीं. यह एक बुद्धिमान् जीव है. इसे फल व सब्जी विक्रेताओं के द्वारा मार्ग पर बिना निर्देशन के चलते हुये देखा गया है जो बस आदि को स्वतः रास्ता देकर चलते हैं.

ऊंट अपने शत्रु व मित्र को अच्छी तरह पहचानता है. यदि मालिक इसे अधिक तंग करते हैं तो अवसर पाकर यह उसका प्रतिशोध करता है.[6]

---

3. जीव जगत, पृ० ;616
4. ए० किग० पृ० 699
5. 'कारणो ऊंट कंकेडा कानी देखै'—राज० कहावत
   'दूजा दोवड़ चोबड़ा, ऊंट कटालह खाण'—ढोला मारु रा दूहा-309
6. ए० किग० पृ० 698

राजस्थान सरकार द्वारा ऊंट को आर० ए० सी० का प्रतीक माना है. राजस्थान के प्रसिद्ध स्काउट कमिश्नर एवं मरु-स्काउटिंग योजना के प्रवर्तक श्री दत्त ने ऊंट को मरु-स्काउटिंग का प्रतीक बतलाया है.

मादा ऊंट साल में किसी भी समय बच्चा दे सकती है. गर्भाधान ३१५ से ३८६ दिन बाद बच्चा पैदा होता है. ऊंट के बारे में एक मुहावरा भी अत्यन्त प्रचलित है--"ऊंट के मुँह में जीरा"—इसका अर्थ यह है कि ऊँट जैसे विशालकाय जीव को थोड़ी सी वस्तु से क्या हो, उसे तो खाने के लिये काफी चाहिये. संस्कृत उक्तियों में गधे व ऊंट दोनों के पारस्परिक सम्वन्ध को प्रदर्शित करने वाली एक उक्ति इस प्रकार है जिसमें गधे द्वारा ऊंट के रूप एवं ऊंट द्वारा गधे की ध्वनि की प्रशंसा किया जाना वर्णित है.

'उष्ट्राणां विवाहेषु गीतं गायन्ति गर्दभाः ।
परस्परं प्रशसन्ति अहोरूपमहोध्वनिः ॥

संस्कृत काव्यों में उष्ट्रः—

संस्कृत काव्यों में उष्ट्र का वर्णन न्यून है. इसे उष्ट्रः, क्रमेलकः, रवणः, दासेरः एवं शृंखलकः नामों से कहा गया है.[7]

ऊंट की शरीर रचना—ऊंट की शरीर-रचना के विषय में संस्कृत काव्यों में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता. कादम्बरी में ऊंट के बालों को पिंगलवर्ण का बतलाया है.[8]

ऊंट के क्रिया-कलाप—ऊंट का प्रमुख कार्य बोझा ढोना है. कौत्स के लिए ऊंटों पर रघु द्वारा दिया गया धन लादा गया था.[9] ऊंटों का पालन करने वाले लोग साथ-साथ भेड़ों का भी पालन करते हैं.[10] ऊंट की तेज गति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ऊंट बिना रोकटोक के अति शीघ्र चल दिये.[11]

ऊंट का भोजन—ऊंट का प्रमुख खाद्य कांटों वाली झाड़ियाँ एवं पौधे

7. रघु० 5/32, कादम्बरी पृ० 531, शिशु० 21/9. वही० 12/92, वही० 12/7, वही० 12/26, ह० च० पृ० 303.
8. क्वचित्-क्रमेलक-सटा-सन्निभिः'—कादम्बरी० पृ० 351
9. 'अथोण्ट्रवामीशतवाहितार्थम्'—रघु० 5/32
10. हर्ष चरित पृ० 161
11. 'विशृंखलं शृंखलका प्रतस्थिरे'--शिशु० 12/7

होते हैं. इसीलिए कोमल पत्ते खाने वाले ऊंट की एवं ऊंट कोमल पत्ते खाने वालों की परस्पर निंदा करते हैं. [12] नीम ऊंट का प्रिय खाद्य पदार्थ है. उसका 'रवण' नाम नीम के कटु पत्ते खाकर कटु शब्द करने के कारण ही पड़ा हो, ऐसा महाकवि माघ का मत है. [13] ऊंट पत्ते खाना पसन्द करता है तभी तो सवार की परवाह न करके वह पत्तों को खाने दौड़ पड़ता है. [14] ऊंट की गर्दन लम्बी इसीलिए बनी है कि वह आसानी से ऊंचे-ऊंचे वृक्षों के पत्ते खा सके. अतः उसकी लम्बी गर्दन का होना सार्थक हो गया है. [15] इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊंट का प्रमुख खाद्य कटीली झाड़ियाँ व पत्ते हैं. ऊंट रेगिस्तान का प्राणी है एवं रेगिस्तान में कटीले वृक्षों का बाहुल्य होता है.

सवारी का साधन ऊंट—ऊंट 'रेगिस्तान का जहाज' है. शीघ्रता से अपने भाई राज्यवर्धन को बुलाने के लिए महाराजा हर्षवर्धन ने तीव्रगामी ऊंटों को एवं दूतों को भेजा था. इससे स्पष्ट है कि ऊंट चलने में कम नहीं. [16]

ऊंट (सेनांग)—सेनाङ्ग के रूप में भी ऊंट का काफी महत्त्व है. सेना के भारी-भरकम सामान को लादने के लिए सर्वदा उसका प्रयोग होता रहा है. ऊंटों के एकत्रित होने का उल्लेख हर्षचरित में मिलता है.

कवियों द्वारा उपमित उष्ट्र—संस्कृत-साहित्य में सादृश्यमूलक अलंकारों पर विशेष जोर दिया गया है. इसी कारण कविगण प्रायः जीवों को भी उपमित करते रहे हैं. उष्ट्र विषयक कुछ उपमाएं काव्यों में इधर-उधर मिलती हैं. छोटे ऊंट के कण्ठ के रंग की तुलना रेत के पिंगल वर्ण से की गई है. [17] हर्षचरित में भैंसों के खुरों से उड़ी धूल को ऊंट के रोंगटों के समान कपिल रंग वाली कहा है. [18] वानर के गाल के रंग से ऊंट के लाल रंग को उपमित किया गया है. [19] शिशुपालवध में ब्राह्मण, ग्राम के पत्ते व ऊंट को गरुड़ से उपमित किया गया है.[20]

---

12. 'क्रमेलकं' निन्दति कोमलेच्छुः क्रमेलकः कण्टकम्पटस्तम्'—नैषध० 6/104
13. शिशु० 12/9
14. वही० 12/32
15. वही० 5/69
16. ह० च० पृ० 277
17. शिशु० 5/43
18. ह० च० पृ० 281
19. 'कपिकपोलकपिलैः क्रमेलककुलैः कपिलाय-मानम्'—ह० च० पृ० 100
20. शिशु० 5/66

बाण ने ऊंट का वर्णन सबसे अधिक किया है, उससे कम माघ ने. बाण ने ऊंट का वर्णन बारह बार किया है, जबकि माघ ने ६ बार. महाकवि कालिदास व श्रीहर्ष ने ऊंट का एक-एक बार वर्णन किया है. इस प्रकार कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में ऊंट का केवल बीस बार वर्णन आया है. इसके अतिरिक्त सभी काव्यकार इस पशु के बारे में मौन हैं.

———

तालिका–१

'उष्ट्र' के वर्णन का कालीदास के काव्यों में विश्लेषण (१)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	रघु०	५/३२.

तालिका–२

'उष्ट्र' के वर्णन का कालीदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (१९)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
माघ	६	शिशु०	५/३, ५, ६५, ६६. १२/७, ९, ३२.
श्रीहर्ष	१	नैषध०	६/१०४.
बाण भट्ट	११	ह० च०	पृ० ४८, ४६, १००, ६१, ६१, ६१, २४६, ७७, ८१, ३६४, ७४.
	१	कादम्बरी	पृ० ५५१.

———

धेनु
THE COW

"ददौ द्विजेभ्यः कृशनं च गाश्च"
—बुद्धचरितम् २/३६

संस्कृत—साहित्य में धेनु का स्थान प्रमुख रहा है. वैदिक साहित्य से काव्यों तक धेनु के उल्लेख निरन्तर उपलब्ध होते रहे हैं. वैदिक-साहित्य में गो, उस्रा, उस्रिका व कर्की शब्दों से गाय को कहा गया है.[1] गाय के बछड़े को उस्रिका कहा गया है.[2] गाय को वेदों में 'अवध्य' कहा है. अथर्ववेद व शतपथब्राह्मण में गाय को पवित्र एवं गो-मांस भक्षक को बुरा कहा गया है.[3]

रामायण में गाय के वर्णन मिलते हैं. वीर काव्यों में गो व रोहिणी शब्दों का प्रयोग मिलता है.[4] अमरकोष में गाय को माहेयी, सौरभेयी, गौ, उस्रा, माता, शृंगिणी, अर्जुनी, अवध्या एवं रोहिणी नामों से कहा गया है.[5]

धेनु मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत स्तनप्राणी श्रेणी के शफवर्ग के गो-उपपरिवार के गो परिवार के गो-उपपरिवार की सदस्य है.

भारत में गाय अत्यन्त प्रचलित पशु है. घर-घर में गाय को रखा जाता है. इसे 'माता' की उपाधि से पुकारते हुये सम्पूर्ण पशुओं में पूजनीय एवं स्तुत्य माना है. गायें संसार के सभी भागों में पायी जाती हैं. कहते हैं कि गायों के निवास के कारण ही हमारे देश को एक नदी का नाम 'गोमती' पड़ा है जो लखनऊ के पास बहती है. गाय की शरीर रचना बड़ी सुडौल होती है. यह भी अश्व, खर, गज व उष्ट्र की भाँति चार टांग का प्राणी है. इसके खुर बीच में से चिरे होते हैं. गाय

---

1. ऋक्० 1/173 श०ब्रा:० 2/4. 3/13; ऋक्० 1/3,8; ऋक्० 1/190.5, अथर्व० 4/38, 6/7;
2. ऋक्० 5/58/6
3. वै० मा० पृ० 287
4 वा० रा० कि० 28/26; वा० रा० अ० 4/12 वा० रा० अर० 14/28
5. माहेयी सौरभेयी० इत्यमरः (वैश्यवर्ग)
6. जीवजगत० पृ० 580

की लम्बाई ५ फीट व ऊँचाई ४ फीट के लगभग होती है. ऊंट की भाँति गाय की पीठ पर एक कूबड़ होता है. इसकी पूंछ पैरों के सिरे तक लम्बी होती है एवं बालों से ढ़की होती है. पूंछ की सहायता से धेनु मक्खियों और मच्छरों से अपने शरीर की रक्षा करती है. गाय के दो सींग होते हैं जो सामान्यत: अर्द्धचन्द्राकाराकृति के होते हैं. गाय के गले के नीचे गल-कदम्ब लटकती रहती है. गाय देखने में बड़ी सुन्दर लगती है, गायें सफेद, ललछौंह, काले व चितकबरे रंगों की होती हैं.[7]

गाय का प्रमुख खाद्य घास व पत्तियाँ हैं. दाना व खल भी गायों को पुष्ट बनाने के लिये दिये जाते हैं. गाय विशुद्ध शाकाहारी पशु है. कुछ गायें मैला खाती हैं किन्तु उनको हेय माना जाता है. गाय को धन मानते हुये इसे भारतीय परिवार की सम्पत्ति स्वीकार किया गया है. [8] गाय की अनेक नस्लें भारत में हैं जिनमें हरियाणवी, पवार, खैरीगढ़ एवं सांचोरी (राजस्थान) प्रमुख हैं.

गायों में 'कामधेनु' को सर्वश्रेष्ठ माना है. इसे स्वर्ग की गाय कहा है. यह इच्छानुसार कार्यों को पूरा करने वाली मानी गयी है. इसके चारों पैरों को चार वेद कहा गया है. इसके चारों स्तन अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष के रस को बहाने वाले बताये गये हैं. [9] कामधेनु की पुत्री का नाम 'नन्दिनी' कहा गया है.

गाय से प्राप्त होने वाले पदार्थों में उसका दूध मुख्य है, जो शरीर को पुष्ट बनाता है. दूध से अनेकानेक पदार्थों का निर्माण होता है. मरणोपरान्त गाय के चमड़े के जूते बनाये जाते हैं एवं सींगों से सरेस प्राप्त किया जाता है. विदेशों में लोग गाय का मांस भी खाते हैं परन्तु भारत में इसे हेय कर्म माना गया है.

इस प्रकार गाय मानव सेवा में निरन्तर व्यस्त है. जिस प्रकार माँ दूध पिलाकर बच्चे को बड़ा करती है गाय जीवन पर्यन्त दूध पिलाकर उसके स्वास्थ्य को बढ़ाती है और यही कारण है कि भारतीय समाज में इसे "माता" का सम्मान मिल पाया है.

गाय सामान्यत: एक बार में एक ही बछड़े को जन्म देती है परन्तु यदा-कदा दो बछड़े भी होते देखे गये हैं. गाय का गर्भाधान काल १० माह का है.[10]

संस्कृत काव्यों में धेनु

संस्कृत-साहित्य में गाय का स्थान प्रमुख है. गाय को काव्यों में गौ[11],

7. यथोपरि० पृ० 584
8. 'गो-धन, गजधन, वाजिधन और रतनधनखान'—हिन्दी साहित्य०
9 कालिदास-ग्रन्थावली (अभिधानकोष) पृ० 140
10. ए० किग० पृ० 771
11. नैषध० 17/177; सौं नं. 16/50; किरात० 17/20

धेनु,[12] सौरभेयी,[13] एवं रोहिणी [14] नामों से कहा है. यहाँ हम गाय की काव्यगत विशेषताओं पर दृष्टिपात करेंगे.

मानव एवं गायः—मनुष्य एवं गाय का सर्वदा अटूट सम्बन्ध रहा है. सौन्दरनन्द में गोदत्त व गवांपति नामक योगाभ्यासियों के नाम आये हैं. [15] गोदत्त का अर्थ गाय के प्रताप से उत्पन्न व्यक्ति को कहा जा सकता है. इसी प्रकार बहुत सी गायों का स्वामी (सांड) गवांपति कहा जा सकता है. अहीर जाति को भारवि ने गायों के सम्पर्क में रहने के कारण उनका कुटुम्बी कहा है. [16] गायों के चरानेवाले गोपालों का गायों व उनके बछड़ों से स्नेह हो जाता है. वे नवजात बछड़ों के साथ-साथ उछल-उछल कर मनोविनोद करते हैं. [17] भारतीय परम्परा में गाय को कष्ट देना एक हेय कर्म माना गया है. इसीलिये तो राजा कार्तवीर्य गायों के लिये ब्राह्मणों को दुःखी करने के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ.[18]

गायः एक धन—गाय को संस्कृत काव्यकारों ने भी एक धन के रूप में स्वीकार किया है. तभी तो गो-सेवक राजा दिलीप कहते हैं कि वे अपने सम्मुख अपने गुरु के धेनु रूप धन को नष्ट होते नहीं देख सकते. [19] ब्राह्मणों को गाय एवं स्वर्ण देने की परम्परा भी इसी बात की द्योतक है कि गाय भी सोने के सदृश एक सम्पत्ति है, धन है. राजा शुद्धोदन ने ब्राह्मणों को सोना व गायें दीं. [20] इसी प्रकार राजा हर्षवर्धन ने भी स्वर्णपत्र–मण्डित शफों एवं सींगों वाली गायें विप्रजनों को दान में दीं. [21]

---

12. रघु० 2/1; किरात० 4/13; बु० च. 23/15
13. रघु०2/3
14. शिशु० 12/40
15. 'गोदत्त'–सौ. नं. 16/88; 'गवांपतिश्च'–वही० 16/91
16. 'ददर्श गोपानुपधेनु पाण्डवः कृतानुकारानिवगोभिराजते'–किरात०4/13.
17. 'वत्सीश्बालकलालितललत्तरलतर्णकानि' । ह० च० पृ० 78
18. 'कार्तवीर्यो गोब्राह्मणाति पीडनेन निधनमयासीत्' । ह० च० पृ० 152/
19. 'धनमाहिताग्नेर्नश्यत्पुरस्तादनुपेक्षणीयम्'–रघु० 2/44
20. 'ददौ द्विजेभ्यः कृशनं च गाश्च'–बु० च० 2।36;
'अपि च शतसहस्रपूर्णसंख्याः
स्थिरबलवत्तनयाः सहेमशृंगीः ।
अनुपगतजराः पयस्विनीर्गाः
स्वयमददात्सुतवृद्धये द्विजेभ्यः ।।
वही० 1/84
21. 'कनकपत्रलतालंकृतशफशृङ्गशिखरा गाश्चार्बुदशः'–ह० च० पृ० 360 ।

नन्दिनी: एक गाय विशेष—नन्दिनी को वसिष्ठ मुनि की गाय कहा गया है, जिसकी सेवा इक्ष्वाकुवंशज राजा दिलीप ने की थी.[22] यह कामधेनु की पुत्री मानी गयी है एवं कामधेनु के सदृश सब फलों को देनेवाली है. स्वयं नन्दिनी के मुख से महाकवि ने दिलीप को कहलवाया है कि वह एक दूध प्रदान करनेवाली गाय मात्र नहीं, अपितु प्रसन्न होने पर सब फलों को देनेवाली है.[23] राजा दिलीप के कोई पुत्र नहीं था. इसका कारण वसिष्ठ ने बताया कि एक बार कामधेनु कल्पवृक्ष की छाया में बैठी थी.[24] उस समय दिलीप ने कामधेनु की परिक्रमा नहीं की थी.[25] इस कारण राजा दिलीप से कामधेनु ने रुष्ट होकर नन्दिनी की सेवा किये बिना पुत्र न होने का शाप दे दिया था.[26] अतः महर्षि वसिष्ठ ने दिलीप को कहा कि वह नन्दिनी को कामधेनु का प्रतिनिधि समझकर अपनी पत्नी सहित श्रद्धापूर्वक यदि उसकी सेवा करे तो उसके मनोवाञ्छित फलों की पूर्ति हो सकती है.[27] इसलिये राजा दिलीप ने ऋषि की उस गाय को वन के लिये छोड़ा.[28] राजा ने अपने अनुचरों के साथ नन्दिनी की सेवा की.[29] कालान्तर में नन्दिनी दिलीप की परीक्षा लेना चाहती है एवं एक नकली सिंह को उपस्थित करती है जो नन्दिनी को मारना चाहता है. तब दिलीप उसके रक्षार्थ कहता है कि शाम को अपने बछड़े से मिलने की इच्छुक इस ऋषि की गाय को वह मुक्त करदे.[30] पर सिंह कहता है कि उसे (राजा को) एक गाय के लिये अपने आपको समर्पित नहीं करना चाहिये.[31] वह तो काफी दूध देनेवाली अनेक गायें देकर प्रचण्ड गुरु को प्रसन्न कर सकता

---

22. 'वसिष्ठधेनोरनुयायिनम्–रघु० 2/19 ।
23. 'न केवलानां पयसा प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम्'–रघु० 2/63 ।
24. 'आसीत्कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः पथि'–वही 1/75
25. 'प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्या त्वं साधु नाचरः'–वही० 1/76
26. 'मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा' वही० 1/77
27. 'सुतां तदीयां सुरभेःकृत्वा प्रतिनिधिः शुचिः ।
आराधय सपत्नीकः प्रीता कामदुघा हि सा ।।'
—वही० 1/81 ।
28. 'यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच'—रघु० 2/1
29. व्रताय तेनानुचरेण धेनोर्न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्गः ।' रघु० 2/4
30. 'दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षे':—वही० 2/45
31. अथैकधेनोपराधचण्डाद्गुरो'— वही० 2।49

है.[32] गाय मुक्ति पाने के लिये दिलीप को कातर होकर देखती है.[33] राजा सिंह को समझाने का प्रयास करते हुए कहता है कि यह गाय कामधेनु से किसी भी प्रकार न्यून नहीं है. तुमने शंकर के प्रभाव से इसपर आक्रमण किया है. अन्यथा तुम इतने सशक्त कहाँ जो इसको कष्ट दो.[34] पर सिंह ने दिलीप की गए भी नहीं सुनता है.उसने उसेमूर्ख कहा और अज्ञानी भी. अन्त में दिलीप ने अपने प्राण देने का पूरा निश्चय कर आँखों को झपका. किंतु उस समय वह क्या देखता है कि वहां केवल नन्दिनी खड़ा है जो माता के समान श्री एवं जिसके स्तनों से दूध प्रवाहित हो रहा था.[35] इस प्रकार वह वसिष्ठ की धेनु दिलीप पर प्रसन्न हो गयी.[36] राजा ने गाय की परिक्रमा की.[37] जब रघु के अश्व को इन्द्र ने छल से चुराया तब नन्दिनी वहां उपस्थित हुयी.[38] नन्दिनी का मूत्र आंखों से लगाने पर रघु को सब वस्तुयें स्पष्ट दिखाई देने लगीं.[39]

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश काव्य के द्वितीय एवं तृतीय सर्ग में नन्दिनी के विषय में विचारों का प्रदर्शन किया है. इनमें से सभी घटनायें व्यावहारिक एवं वास्तविक नहीं किन्तु इतना अवश्य मानना होगा कि गाय की सेवा से मनुष्य को आत्मिक शांति मिलती ही है.

निवास—गाय एक पालतू पशु है अतः इसका निवास मानव के साथ का है. मनुष्य गायों को बाड़े में घेरते हैं शिशुपालवध में गोपालों द्वारा व्रज में गायों के घेरने की तुलना माहिष्मती नगरी को घेरने से की गई है.[40] भगवान् कृष्ण ने गायों के रहने के स्थान पर मण्डलाकार बैठे ग्रामवासियों देखा. जो आपस में बातचीत कर रहे थे.[41]

---

32. कृशानु प्रतिमद्बिभेषि कोटिशः स्पर्शमता घटोध्नीः' वही।
33. धेन्वा तद्ध्यासितकातराक्ष्या'—वही० 2/52
34. 'इमामनूनां सुरभेरवेहि रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वया स्याम्'—वही० 2/54
35. 'ददर्श राजा जननीमिव स्वां गामग्रतः प्रस्रविणीं न सिंहम्'—रघु० 2/61
36. 'इत्थं क्षितीशेन वसिष्टधेनुर्विज्ञापिता प्रीतितरा बभूव ।'—रघु० 2/67
37. 'धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे'—रघु० 2/71
38. 'वशिष्ठधेनुश्च यदृच्छयागता श्रुतप्रभावाददृशेऽथ नन्दिनी'—रघु० 3/40
39. 'तदंगनिस्यन्दजलेन लोचने प्रमृज्य'''' '''''''' बभूव भावेषु दिलीप नन्दनः।
—रघु० 3/41
40. 'निरुद्धविवधासारप्रसारा गा इव व्रजम्'—शिशु० 2/64
41. गोष्ठेषु गोष्ठीकृतमण्डलासनान्सनादमुत्थाय मुहुः स बल्गतः'—शिशु० 12/3

क्रिया-कलाप

गाय एक समुदाय-प्रधान जीव है. गायों के समुदाय से सुन्दर हुङ्कार कर निकलती हुयी श्रेष्ठ गाय को श्री कृष्ण ने देखा. [42] गायें शाम के समय चरागाहों से लौटते समय वेग से पृथ्वी पर दौड़ नहीं सकती थीं. क्योंकि वे अपने-अपने बच्चों का स्मरण करके उत्कण्ठित हो गई थीं जिसके कारण उनके पीन पयोधरों से क्षीर बह रहा था. [43] इन उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि गाय मनुष्य के सम्पर्क में रहने-वाला एक सामुदायिक जीव है. घास के मैदानों में गायें चर रही थीं. यह भी गायों के झुण्ड को प्रदर्शित करता है. [44] जाबालि के आश्रम में गायों का दूध निकालने के लिये स्तनस्पर्श की बात कही गई है. वह कुचमर्दन नहीं होता था यह भाव है. [45]

प्रजनन

गाय के बछड़े की उत्पत्ति सांड़ के सम्पर्क से होती है. सांड को पाने के लिये तैरनेवाली गायें नदी को तैरकर भी बैल (सांड) का अनुसरण करती हैं. [46] इसी प्रकार एक गाय, जो बैल से आसक्त थी, ने गधे को दूर भगा दिया. [47] इस प्रकार संस्कृत काव्यों में गाय के प्रजनन व कामसक्ति की ओर संकेत हैं.

उपमित धेनु

अन्य पशुओं की भांति गाय को भी काव्यकारों ने स्थान-स्थान पर उपमित किया है. गौतमी के रोने की तुलना उस गाय से की गयी है जिसका बछड़ा नष्ट हो गया हो एवं वह आर्त और करुण होकर निरंतर रो रही हो. [48] इसी प्रकार अश्रुपूर्ण नेत्रों से छन्दक और अश्व को स्वामी के बिना देखकर राजगृह की उत्तम स्त्रियों के विषण्ण वदन रोदन को सांड से परित्यक्त गाय से उपमित किया गया

---

42. वर्गाद्गवां हुंकृतिचारु निर्यतीभरिधोरैक्षत गोमतल्लिकाम्'—शिशु० 12/41

43. उपारताः पश्चिमरात्रिगोचरादपारयन्तः पतितुं जवेन गाम् ।
तमृत्सुकाश्चकुरवेक्षणोत्सुकं गवां गणाः प्रस्नुतपीवरोधसः ।।
—किरात० 4/10

44. 'सम्पन्नशालिनिचयावृतभूतलानि स्वस्थस्थितप्रचुरगोकुलशोभितानि'
—ऋतु० 3/16

45. 'स्तनस्पशो होमधेनुषु'–कादम्बरी० पृ० 125 ।

46. 'नदीं तितीर्षवो गावोऽनुगच्छन्ति गवांपतिम्—बु० च० 23/15

47. 'सा तु सौम्यवृषासक्ता खरं इरान्निरास तम्'—नैषध० 17/178

48. 'प्रनष्टवत्सामिव वत्सलां गामजस्रमार्ता करुणं रुदन्तीम्'—बु० च० 9/26

है.[49] राजा दिलीप को गाय की छाया से उपमित किया है.[50] दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा को स्मृति एवं गाय नन्दिनी को श्रुति कहा गया है. कहा है कि नन्दिनी के पीछे-पीछे चलती हुयी सुदक्षिणा श्रुति के पीछे-पीछे जाती हुयी स्मृति की भांति प्रतीत हो रही थी.[51] नन्दिनी को संध्या से उपमित किया गया है. वह दिलीप व सुदक्षिणा के मध्य इसी प्रकार विद्यमान थी जिस प्रकार दिन व रात के मध्य सन्ध्या विद्यमान रहती हैं.[52] नन्दिनी की रक्षा राजा का कर्त्तव्य था, साथ ही वे जंगली जीवों को शांत रहने की शिक्षा दे रहे थे, अतः गाय के साथ-साथ शांत वातावरण की भी सिद्धि होती है.[53]

यहां होमधेनु का अर्थ यज्ञ की क्रियाओं को सम्पन्न करने वाली गाय से है न कि यज्ञ में बलि दी जानेवाली गाय से. नन्दिनी को कालिदास ने पृथ्वी से उपमित किया है.[54] पृथ्वी जिस प्रकार मनुष्य की कामनाओं की पूरक होती है उसी प्रकार नन्दिनी भी दिलीप के लिये कामनाओं की पूरक थी. गाय को मां कहा गया है.[55] इसी प्रकार संस्कृत-साहित्य में पृथ्वी को भी अनेकधा माता कहा गया है. माता का दूध बचपन में पुत्र की पुष्टि करता है. किन्तु गाय का दूध जन्म भर. कवि ने नन्दिनी की तुलना शाम की लाली से की है. कारण कि वह लाल रंग की गाय थी.[56] किरात में सफेद गाय का उल्लेख आया है गाय को बर्फ की चट्टान के समान श्वेत बताया है.[57] सौन्दरनन्द में वाणी को गाय से उपमित करते हुये

---

49. निरीक्ष्य तां वाष्पपरीतलोचना
    निराश्रयं छन्दकमश्वमेव च ।
    विषण्णवक्त्रा रुरुदुर्वराङ्गना
    वनान्तरे गाव इवर्षभोज्झिताः ।। बु० च० 8/23
50. 'छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्'—रघु० 2/6
51. श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्'—रघु० 2/2
52. तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या'—रघु० 2/20
53. 'रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोर्वन्या—
    न्विनेष्यन्निव दुष्टसत्वान् ।
    रघु० 2/8
54. 'गोरूपधरामिवोर्वीम्'—रघु० 2/3
55. 'वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषमृषेरनुज्ञामधिगम्य मातः ।'
56. 'प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभापतङ्गस्य मुनेश्च धेनु'—रघु० 2/15
57. 'गवां हिमानी विशदैः कदम्बकैः,—किरात० 4/12

कहा गया है कि मंत्री वाणी के स्तन हैं. स्पष्ट अभिव्यक्ति गलकदम्ब है. संदर्भ दूध है एवं प्रतिमान सींग हैं, इस प्रकार की वाणी को पीकर मैं (नन्द) उसी प्रकार तृप्त हो गया हूं जिस प्रकार क्षुधाकुल बछड़ा गाय का दूध पीकर होता है.[58] बुद्धचरित में भी गाय की तुलना 'मां' से की गयी है. लिच्छवि की तुलना गाय के बछड़े से करते हुये कहा है कि दीर्घकाल के लिये वन में गमन करनेवाली, जिसके थनों से दूध प्रवाहित हो रहा हो, ऐसी अपनी मां' गाय को देखकर जिसने कभी दूध न पिया हो ऐसे बछड़े के समान वे कातर होकर विलाप करने लगे.[59] मंदाकिनी को गाय से उपमित किया है.[60] वशिष्ठ की तुलना गाय से की गई है.[61] गाय के द्वारा प्राणियों के जीवन चाटने से की गयी है.[62] जरा से व्याकुल मनुष्य की वज्र के शब्द से व्याकुल गाय से समता प्रदर्शित की है जैसे जरा को सुनकर मनुष्य व्यथित हो जाता है, उसी प्रकार समीप में महावज्र का शब्द सुनकर गाय भी संविग्न हो जाती है.[63] बाणों की भयंकर वृष्टि की तुलना मेघ गर्जन से करते हुए, शिव की आर्त सेना की समता कांपती हुई गायों के परिवार से की है. गोपाल गायों को धान्य चरने से रोकते हैं. इसका उल्लेख बुद्धचरित में किया गया है. हर्षचरित में कहा गया है कि राजा पुष्यभूति ने पृथिवी को अपनी महिषी बनाया, जैसे कि आदि राजा पृथु ने पृथिवी को धेनु बनाया था. चन्द्रमा की सफेद चांदनी जो समुद्र को श्वेत बनाती है, ऐसी प्रतीत हो रही थी. मानों हाथीदांत का पनाला गो-लोक से दूध की धार बहा हो.[64] गाय के श्वेत दूध से कवि ने आश्रमों की स्वच्छता की तुलना की है कि दिव्याश्रमों के पार्श्ववर्ती स्थान गायों के समुदाय

---

58. मैत्रीस्तनीं व्यञ्जनचारुसाम्नां
सद्धर्मदुग्धां प्रतिमानशृङ्गां ।
तवास्मि गां साधु निपीय तृप्तः
तृषेव गामुत्तमवत्सवर्गः ।।सौ. न. 18/11

59. 'दीर्घकालं वनं यान्तीं गां यथा च क्षरस्तनीम् ।
अपीतदुग्धवत्सास्ते कातराश्चुक्रुशुर्भृशम् ।। बु० च० 24/62

60. ततः क्रमेण प्रस्नुतप्रवृत्तां धर्मधेनुमिवाधोधावसानधवमपयोधराम्'–

61. 'गामधुक्षद्वसिष्ठवत्'—सौ० न० 1/3

62. 'सकललोककवलावलेहलम्पटा बहला वहंलिहालेवि लोहिताचिता चितांगारकाली कालरात्रि जिह्वाजीवतानि जीविनात्'—ह० च० पृ० 457

63. 'श्रुत्वा जरां संविविजे महात्मम महाशनेर्घोषमिवान्तिके गौः'—बु० च० 3/34

64. 'गामधर्मेणाधुक्षत्क्षीरवर्षेण गामिव'—सौ० नं० 2/19

से प्रसरित दूध से धवलता को प्राप्त हो रहे थे.[65] रघुवंश में यश की स्वच्छता की समता गाय के दूध की धवलता से की गयी है. भगवान् बुद्ध को ज्ञान रूप दूध देने वाली गाय कहा गया है.[66] असमय में किये गये योगाभ्यास की समता असमय में वत्सहीन गाय को दुहने से की गयी है.[67] इस प्रकार भिन्न-भिन्न काव्यकारों ने गाय को विभिन्न रूपों में उपमित किया है.

गाय से प्राप्त पदार्थ

प्रस्तुत काव्यों में गाय से प्राप्त वस्तुओं में गाय के दूध व मक्खन का उल्लेख मात्र किया गया है. राजा शुद्धोदन के राज्य में दूध देनेवाली गायों का वर्णन मिलता है.[68] इसी प्रकार राजा दिलीप को ग्रामीणों द्वारा ताजा मक्खन भेंट करने का उल्लेख रघुवंश में किया गया है.

इस प्रकार गाय का स्थान संस्कृत काव्यों में प्रमुख है. सम्पूर्ण काव्यों में गाय का वर्णन ८२ बार हुआ है. जिनमें सबसे अधिक वर्णन रघुवंश में, उससे कमबुद्ध चरित व हर्षचरित में एवं उससे कम सौन्दरनन्द में हैं. गाय का वर्णन रघुवंश में ४३ बार, बुद्धचरित व हर्ष चरित में १०-१० बार एवं सौन्दरनन्द में ५ बार आया है जबकि किरातार्जुनीय में ४ बार, शिशुपालवध में ३ बार एवं नैषधचरित व वासवदत्ता में २-२ बार आया है. कादम्बरी, कुमार सम्भव व ऋतुसंहार में गाय का वर्णन केवल एक-एक बार आया है जबकि मेघदूत, एवं दशकुमार चरित गाय के विषय में सर्वथा मूक हैं. गाय के वर्णन का विश्लेषण तालिकाओं में अवलोकनीय है.

---

65. प्रस्नुतमुखमाहेयीयूथक्षरत्क्षीरधाराधवलितेष्वासन्नचन्द्रोदयोद्दामक्षीरोदल—हरीक्षालितेष्विव दिव्याश्रमोपशल्येषु'—ह० च० पृ० 24
66. 'ज्ञानादुग्धवती धेनुदद्रुतम्'—बु० च० 24/51
67. 'अमावत्सां यदि गां दुहीत नैवाप्नुयात्क्षीरमकालदोही' सौ० नं० 26/50
68. 'बहुक्षीरदुहश्च गावः'—बु० च० 2/5
69. 'हैयंगवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान् रघु० 2/4

तालिका–१

'धेनु' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (४५)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
४३	रघु०	१/४५,७५ से ७७,'१६ से ८१/८३ से ६५.२/ से ४,६,८,१५, १६,२०, ४४,४५,४६, ५२,५४, ५४,६१,६३, ६७,६७,७१,७६. ३/३२, ४०,४१.
१	कुमार०	८/३८.
१	ऋतु०	३/१६.

तालिका–२

'धेनु' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों नें विश्लेषण (३७)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्व घोष	१०	बु०च०	१ ८४.२/५,३६.३/३४.८/२३ ६/२६. २३/१५. २४/५१, ६२,२४/३५
	५	सौ०न०	१/३.२/१६.१६/५०,६१.१८/४
भारवि	४	किरात०	४/१०,१२,१३.१७/२०.
माघ	३	शिशु०	२/६४.१२/३८,४१.
श्रीहर्ष	२	नैषध०	१/१७७.१७८.
सुबन्धु	२	वासवदत्ता	पृ० ८७,२६६.
बाणभट्ट	१०	ह० च०	पृ० २४,२८,३२,७८,१५२.६४,७०.३४४,६०,४५७.
	१	कादम्बरी	पृ० १२५.

वृषभ
THE BULL

विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मेर मुखो भविष्यति,
—कुमार० ५.७०

संस्कृत-साहित्य में वृषभ का स्थान गौण रहा है. गाय के समान बैल का वर्णन भी संस्कृत साहित्य में वैदिककाल से ही चला आ रहा है. वैदिक साहित्य में वृषभ को उस्रः, उस्रिकाः, उस्रि, ऋषभः गौर, दित्यवहः, पष्ठ्यवहः, महोक्षः, उस्रिः, वंसग एवं गवयः शब्दों से कहा गया है. [1] दित्यवह दो वर्ष के एवं पष्ठ्यवह चार वर्ष की आयु के बैल या सांड के लिये आया है. रामायण में वृषभ के लिये वृषः, ऋषभ, गवाक्षः व गवेन्द्रः शब्दों का प्रयोग किया गया है. [2] अमरकोष में बैल के लिये उक्षन्, भद्रः, बलीवर्दः, ऋषभः, वृषभः, वृषः व अनुडुह शब्दों का उल्लेख है. [3]

इस प्रकार नामोल्लेख पर पूर्ण विचार करने के पश्चात् इस वृषभ की काव्यगत वर्णनात्मक विशेषताओं पर सम्यक् प्रकार से विचार करने जा रहे.

वृषभ मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत गो-उपपरिवार के गाय-बैल जाति का प्राणी है.

भारतीय पशु-जगत् में बैल या सांड एक प्रचलित पशु हैं. प्रस्तुत लेख में हमने बैल व सांड को एक ही श्रेणी में रखा है क्योंकि इनके शारीरिक रचना में

---

1. वै० इ० (2) पृष्ट 105, वही० (1) पृ० 115 (2) 241 वही० पृ० 359, पृ० 511 (2) पृ० 145 (2) 236 (1) पृ० 222
2. 'गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमंतम्'—वा० रा० सु० 5/1
'जाता वृषा गोषु समान कामा'–वही० कि० 8/21
सिंह स्कन्धो महोत्साहो समदाविव गौ वृषो' यथोपरि० कि० 3/1
'ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च'—वही० यु० 41/40
'गजो गवाक्षो गवयः शरभो गंधमादन' वही० कि० 27/35
'मुदिता गवेन्द्राः ।'— यथोपरि० कि० 28/43
3. 'उक्षाभद्रो बलीवर्द ऋषभो वृषभो वृषः' इत्यमरः (वैश्यवर्गः)

अधिक अन्तर नहीं. बैल को सांड से निकृष्ट कोटि का पशु माना गया है. गाय की भांति बैल भी किसान का एक सहारा है जिसके बल पर वह हम सबके लिये अन्न उपजाता है. बैल विश्व में सभी स्थानों पर पाया जाता है. विदेशी बैलों में अनेक के कूबड़ नहीं होता. शारीरिक रचना की दृष्टि से बैल एक सुडौल प्राणी है. यह चार टांग का प्राणी है जो देखने में बड़ा सुन्दर ज्ञात होता है. इसके खुर बीच में से चिरे हुये होते हैं. पीछे की ओर गुच्छेदार बालों से ढकी पूंछ लटकती है इसके नितम्ब पुष्ट होते हैं और पीठ पर एक कूबड़ होता है. सांड का कूबड़ बैल के कूबड़ की अपेक्षा आकार में सुडौल एवं बड़ा होता है. बैल के दो सींग होते हैं जो अर्द्धचन्द्राकार एवं त्रिक्कण होते हैं. बैल के गले के नीचे खाल लटकती रहती. जो बड़ी ही सुन्दर लगती है. गायों की भाँति बैल भी सफेद, काले, ललछौंह व मकरी रंग के होते हैं.

बैल का प्रमुख खाद्य है घास-पात किन्तु इसे पुष्ट करने के लिये दाल, खल, गुड़ एवं तैल भी खिलाया जाता है. बैल को पौरुष एवं बल युक्त माना गया है.

हमारे देश में गाय बैलों की साहीवाल, हरियाना, धारपास्कर, कनकथा गंगातीरी, सिन्धी, खैरगढ़ी पवार आदि किस्में प्रचलित हैं. [4] राजस्थान के नागौरी-बैल विख्यात हैं.

वृषभ का मुख्य उपयोग खेती करने व बोझा ढोने में होता है. [5] खेती के कार्यों के अतिरिक्त बैलगाड़ी में भी बैल जोते जाते हैं. कुँओं से पानी निकाल कर सिंचाई करने में भी वृषभ का भारी हाथ रहा है. इसे शनिदेव की सवारी भी कहा गया है. इसके चमड़े के जूते बनते हैं. एवं सींगों से सरेस प्राप्त किया जाता है: इसकी हड्डियां खाद बनाने के काम आती है. वृषभ के गोबर की खाद बहुत अच्छी मानी जाती है गाय की भांति गौ-पुत्र वृषभ भी मानव सेवा में सर्वदा रत रहा है.

संस्कृत–काव्यों में वृषभ

संस्कृत काव्यों में वृषभ का स्थान मध्यम है. वृषभ को काव्यों में वृषः, वृषभः, ऋषभः, बलीवर्दः, अनुड्वह, उक्षः, ककुदमत् महोक्षः. गवयः व गोपतिः नामों से सम्बोधित किया गया है. [6] वृषभ के नामों का उल्लेख करने के पश्चात्

---

4 जीव जगत पृ० 584

5. इन० ब्रि० भाग 5 पृ० 46

6. बु० च० 23/4 रघु० 1/13 मेघ० उ० 56. कादम्बरी पृ० 374, 341

अब हम उसकी काव्यगत विशेषताओं पर विचार करने का प्रयास करते हैं.

नन्दीः एक वृषभ विशेष :—कैलासवासी भगवान् शंकर का वाहन नन्दी नाम का वृषभ है जिसका वर्णन सम्पूर्ण साहित्य में यत्र-तत्र विद्यमान है. यह वृषभ सदा शिव की सेवा में उपस्थित रहता था, जिसकी ध्वनि सिंह की गर्जना से साम्य रखती है.[7] भगवान् शंकर इस वृषभ पर बैठा करते थे. जिस पर सिंह चर्म बिछा होता था.[8] कुमार सम्भव में शिव के पाणिग्रहण का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करते हुये ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है कि शंकर की सवारी बूढ़ा बैल है जिस पर वे बैठकर आयेंगे तो लोग तालियां बजायेंगे.[9] वास्तव में दुल्हे का बैल पर बैठकर आना हास्यास्पद होता है क्योंकि दुल्हे द्वारा घोड़ी की सवारी करने का ही प्रचलन है. कुमार सम्भव के बारहवें सर्ग में नन्दी का वर्णन बड़ा ही आश्चर्यपूर्ण है क्योंकि वह अपने सोने के दण्ड को कोने में रखकर भगवान् को हाथ जोड़कर प्रणाम करता है, इन्द्रागमन की सूचना देता है और इन्द्र का स्वागत भी करता है.[10] इस वर्णन में वृषभ के पुरुषविध रूप का वर्णन किया गया है परन्तु नन्दी को सर्वदा एक वृषभ के रूप में ही वर्णित किया गया है. यहाँ जो वर्णन आया है वह कवि की कल्पना मात्र प्रतीत होता है इससे अधिक कुछ नहीं. इस प्रकार नन्दी को एक दिव्य वृषभ के रूप में काव्यों में वर्णित किया गया है.

मानव व वृषभः—मानव एव वृषभ का सर्वदा सम्बन्ध रहा है. मानव बैल को पूजनीय मानता आया है जिसका उल्लेख हर्षचरित में भी किया गया है.[11] शिशुपालवध में कृष्ण को 'बैल को मारने वाला' उपाधि से कहा गया है.[12] इसी प्रकार रघुवंश में इन्द्र ककुत्स्थ राजा के अश्व बने थे ऐसा उल्लेख मिलता

7: 'दृष्ट कथंचिदगव ये० यथोपरि० 1/56

8. 'स गोपति नन्दिगुजावलम्बी० कुमार 7/57

9. 'विलोक्य वृद्धोक्षभविष्ठितं त्वयामहाजनः स्मेरमुखो भविष्यति'—वही० 5/70

10. 'मतः स कक्षाहित हेमदण्डो नन्दी सुरेन्द्रं प्रतिपद्य सद्यः यथोपरि० 12/6

11. 'सन्ध्याबलिवृषैः'—ह० च० पृ० 171

12. 'हतवृषो'—शिशु० 15/35

13. 'महेन्द्रमास्थाय महोक्षरूपम्'—रघु० 6/72

14. 'नार्हति तात० विक्रम० 5 (गद्य)

हैं. [13] विक्रमोर्वशीयम् में राजकुमार अपने पिता के राज्य के बारे में कहते हैं कि रथ के जिस जुए को बड़ा बैल खींचता है उसे छोटे बछड़े के कंधे पर डालना उचित नहीं. [14] इन सब बातों के आधार पर यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि मानव व ऋषभ का सम्बन्ध रहा है जिसे काव्यों में यदा-कदा देखा जा सकता है. वैसे मानव एवं पशु का सम्बन्ध तो काफी प्राचीन रहा है जिसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते.

कार्यकलापः—वृषभ एक क्रियाशील प्राणी है. वह अनेकानेक क्रियायें करता देखा गया है जो निम्नलिखित प्रकार हैं:—

वप्रक्रीड़ा— गद्य की भांति वृषभ भी वप्रक्रीड़ा करता पाया गया है. कादम्बरी में कहा गया है कि कतिपय स्थानों पर बैल के द्वारा उखाड़े गये शिलाखण्ड विद्यमान थे. [15] मेघदूत में कैसास के शिखरों को साण्ड ने उखाड़ दिया ऐसा वर्णन मिलता है [16] शिशुपालवध में वर्णन करते हुये लिखा है कि नदियों के तटों को उखाड़ने से सींगों के अगले भाग में मिट्टी लगाये हुये कलंक रूपी मलयुक्त अर्द्धचन्द्र को हंसते हुये सींगों से दूसरे बैलों को तंग करते हुये गम्भीर गर्जन के साथ नदियों के किनारों को ढाहने लगे. [17] यमुना नदी को पार करते हुये बैल गरजते हुये लोगों से ऊंचे-ऊंचे यमुना के किनारों को उखाड़ने लगे थे: [18]

मालवाहकः—वृषभ प्राचीन समय से ही माल ढोने वाला प्राणी रहा है. बैल सामान को रखने में उदण्डता भी करता है और यदा-कदा सामान को आसानी से पीठ पर नहीं रखने देता. [19] सामान को लादे हुये बैल यदि किसी कारण से बिदकने लगते हैं तो व्यापारी गणों की दशा वास्तव में शोचनीय हो जाती है. [20] वृषभ की चाल काफी तीव्र होती है तभी तो भगवान् शंकर का बैल शीघ्र ही औषधिप्रथ नगर को पहुँच गया. [21] बैल खेतों में हल को खींचते हैं जिसका वर्णन बुद्धचरित में करते हुये कहा गया है कि हल चलाने के श्रम से बैल

---

15. 'क्वचिद् त्र्यम्बक-वृषभ-विषाण-कोटिखण्डित तट-शिला खण्डम्।'
—कादम्बरी पृ० 374

16. 'शैलादाशु प्रिनयन वृषोत्खात कूटानि वृत्तः'—मेघ० उ० 56

17. मृतपिण्ड० शिशु० 5/63

18. श्रृंगैरपस्कीर्णमहस्तटो० शिशु० 12/74

19. शिशु० 12/10

20. 'कलकलोपद्रवद्रवद्द्रविण बलीवर्द० ह० च० पृ० 366

21. कुमार० 7/50

विकल हो गये हैं.[22] विश्राम करते हुये बैलों का सुन्दर वर्णन करते हुये माघ ने लिखा है कि खाने से आलस्य युक्त वृषभों के समुदाय जुगाली करने से गलकदम्ब को हिलाते हुये एवं नेत्रों को बंद किये हुये विश्राम कर रहे हैं.[23] यह वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है और लोक व्यवहार के समान है.

उपमित वृषभः—तुलना संस्कृत साहित्य की प्राण है. जब तक किसी वस्तु का अन्य वस्तु के साथ सादृश्य वर्णित नहीं किया जाय तब तक काव्य में लालित्य नहीं आ सकता. अतः काव्यकारों ने वृषभ को विभिन्न प्रकार से उपमित कर परम्परा का पालन किया है. राजा दिलीप को सांड के समान ऊंचे एवं भारी कन्धों वाला एवं बुद्ध व राम को वृषभ के कन्धों के समान कन्धों वाला वर्णित किया गया है.[24] अर्जुन के वक्षस्थल की तुलना वृषभ के वक्षस्थल से की हैं.[25] महाराज शुद्धोदन एवं बुद्ध की तुलना बैल की आंखों से की गयी है.[26] तथाजत की चाल की समता वृषभ की चाल से की गयी है.[27] रघुवंश में रघु के युवा होने की समता बछड़े के बड़े होने से की गयी है.[28] बैल को मन से अधिक वेग से चलने वाला कहा है अर्थात् जिस प्रकार मन अतिशीघ्र बहुत सी दूरी तय कर लेता है उसी प्रकार बैल भी थोड़े से ही समय में अधिक दूर चला जाता है.[29] दुन्दुभि की ध्वनि की समता महादेव के अपूर्व उच्च हास्यरव की शंका से आनन्द हुंकार करते वृषभ के आलाप से की गयी है.[30] राक्षसों के प्रसन्नतापूर्वक हँसने को तुलना सांड के प्रसन्नतापूर्वक गरजने से की है.[31] शंकर के बैल से जुगाली के समय निकलने वाले फेन से धूल की समता की गयी है अर्थात् वह धूल अत्यन्त श्वेत थी.[32] अहंकार की समता गायों के राजा वृषभ के रूप में की गयी है अर्थात् दर्प

---

22. बु० चा० 5/6
23. रोमन्थ० शिशु० 5/62
24. व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः'— रघु 1/13
25. किरात० 14/40
26. 'दीर्घबाहुर्महाबलः सिंहासो वृषभेक्षणः' सौ० नं० 2/50
27. 'ससुवर्णपीन युगबाहु० यथोपरि० 3/6
28. रघु० 3/23
29. मनोति वेगेन ककुद्मता स' कुमार० 9/37
30. हुंकृतेन० कादम्बरी० पृ० 341
31. बु० चा० 13/26
32. वृषभ-रोमन्थ-फेन-पिण्ड-पाण्डु '—कादम्बरी पृ० 351

शरीर रूपी बैल के समान है.[33] मल्ले की तुलना सिंह के भय से व्याकुल वृषभ से की है.[34] रघु के बचपन के खिलवाड़ों की समता बैल के द्वारा नदियों के किनारों को ढाहने से की गयी है.[35] शंकर का बैल बादलों को अपने सींगों से बार-बार झकारता हुआ चला जा रहा था जो उसके सींगों में इस भांति लगे हुये थे मानों नदी की तीर पर से टीलों को ढाहते समय उनमें कीचड़ लग गयी हो.[36] समुद्र गृह में लेटे हुये आर्य गौतम की हाट में लेटे साड से तुलना की गयी है.[37] रघुवंश के तेरहवें सर्ग में जब राम लंका से अयोध्या को लौटाते हैं उस समय महाकबि चित्रकूट की गुफा को वृषभ के मुख चित्रकूट से निकलने वाली जल की धारा की ध्वनि का वृषभ की डकार से, पर्वत के शिखर को बैल के सींग से व त्रिकूट पर छाये बादल को वृपभ के सींग पर लगी कीचड़ से उपमित कर पूर्णोपमा का सुन्दर प्रकार प्रस्तुत किया है.[38]

इस प्रकार काव्यों में वृषभ का काव्यात्मक वर्णन बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है. कालिदास ने वृषभ का वर्णन सबसे अधिक किया है. उनके काव्यों में वृषभ का १७ बार वर्णन आया है. कालिदास के अलावा अश्वघोष, माघ, बाण एवं भारवि ने वृषभ का क्रमशः ८,५,५ व २ बार बर्णन किया है. श्री हर्ष, दण्डी एवं सुबन्धु के काव्यों में वृषभ का वर्णन उपलब्ध नहीं होता. इस प्रकार कुल मिलाकर वृषभ का वर्णन ३७ बार हो पाया है. अतः इसका स्थान संस्कृत साहित्य में वर्णित पशुओं में मध्यत्र है. वृषभ के वर्णन का विश्लेषण निम्नांकित तालिकाओं में दर्शनीय है.

— — —

33. 'ददर्श पुष्टि दधते शारदी॰ किरात॰ 4/11
34. समयं निर्यभुजेंहात्सिहार्ता वृषभा इव' —ब॰ चा॰ 25/64
35. 'मदोदुग्राः ककुदमन्तः'॰ रघु॰ 4/22
36. 'तटाभिघातामिव॰ कुमार॰ 7/49
37. 'समुद्रगृहस्य विपणि गत॰ मालविका॰ 4 (गद्य)
38. दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः'— रघु॰ 13/47

तालिका (१)

'वृषभ' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (१७)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
६	रघु०	१।१३, ३।३२, ४, २२. ६।७२, १२।३४. १३।४७.
८	कुमार०	५।७०, ७।३७, ४९, ५०. ८।३७, १२।६ ३७. ११।४३.
१	मेघ०	उ०, ५६.
१	ऋतु०	१।२७.
१	मालविका०	४।गद्य.

तालिका (२)

'वृषभ' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (२०)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	६	बु० च०	५।६. ८।५३. १३।२६. २३।४. २५।६४.
	२	सौ० न०	२।५८. ३।६.
भारवि	२	किरात०	४।११. १४।४०.
माघ	५	शिशु०	५।६२, ६३. १२।१०, ७४, १५।३५
बाण भट्ट	२	ह० च०	पृ० १७१, ३६६.
	३	कादम्बरी०	पृ० ३४१, ५१, ७४.

महिष
THE BAFFALO

'गाहन्तां महिषा निपानसलिलं श्रृङ्गैर्मुहुस्ताडितम्'
—शाकुन्तलम् २/६

संपूर्ण संस्कृत-साहित्य में वृषभ की भांति महिष का स्थान गौण रहा है किंतु महिष का उल्लेख काफी प्राचीन है. वैदिक साहित्य में महिष के लिये महिष:[1] एवं मादा के लिये महीषी[2] शब्द का प्रयोग हुआ है. महिषः शब्द का प्रयोग अधिक प्राचीन है एवं महिषी का प्रयोग अपेक्षाकृत अर्वाचीन. बाल्मीकि रामायण में भैंसे के लिए 'महिष' शब्द का ही प्रयोग हुआ है. [3]

भैंसा मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत गौ-उपपरिवार के भैंस. जाति का प्राणी है. [4] सामान्य भाषा में भैंसा एक चौपाया जाति का जीव है.

भैंसा भी मानव समाज के लिए एक उपयोगी पशु सिद्ध हुआ है. यह चौपाया जानवर देखने में बड़ा डरावना होता है. इसका शरीर भारी होता है. इसके सींग बड़े-बड़े होते हैं. जंगली भैंसा जिसे अरना भैंसा कहते हैं कि चौड़ाई ४ फीट एवं लम्बाई ११ फीट होती हैं. इसके माथे पर चन्द्राकार दो सींग होते हैं जिनकी लम्बाई २ फीट से ३ फीट तक होती है. वृषभ की भांति इसके खुर बीच में से चिरे होते हैं अत: नदियों के भागों में यह रेतीले प्रान्तों को आसानी से पार करने में समर्थ होता हैं. भैंसे का रग सामान्यतः काला या गहरा सलेटी होता है. पैरों के प्रान्त भागों में सफेद रंग भी होता है. शरीर पर छोटे-छोटे बाल होते हैं जो समय-समय पर कम ज्यादा होते रहते हैं.

भैंसा संसार के सभी देशों में पाया जाता है किन्तु इसकी कई किस्में होती हैं। तिब्बत का याक भी इसी श्रेणी से साम्य रखने वाला जीव है. मादा जिसे 'भैंस' कहते हैं दूध भी देती है. लोग भैंस का मांस भी खाते हैं. भारत, बर्मा

---

1. ऋ.क् 8/58/15.
2. का. सं. 15/6, मै. सं. 3/8/5.
3. 'महिषो दुंदुभिनीय कैलास शिखर प्रभः। वा. रा. कि 11/7.
4. लुलायोमहिषो. इत्यमर (सिंहादि वर्ग) जीव-जगत पृ. 586.

व अफ्रीका में भैंसों का बाहुल्य है. नर-भैंसा भार ढ़ोने का प्रमुख साधन है. भैंसा कम पहाड़ों वाले हल्के-हल्के जंगल वाले मैदानी भाग को अधिक पसंद करता है. पर्वतों की तराई में भैंसे दलदल पूर्ण छोटे-छोटे तालों के पास पाये जाते हैं। यह जीव पानी को बहुत पसंद करता है एवं जब मालिक से छुट्टी पा लेता है तो वह तालों में जाकर लेटा रहता है. घास-पात इसका प्रमुख खाद्य है. पालतू जीव को दाना व खली भी खिलाई जाती है. भैंसा वैसे बड़ा सीधा जानवर माना जाता है किन्तु घायल हो जाने पर यह हाथी जैसे विशालकाय जीव का भी क्रोध में आकर डटकर मुकाबला कर बैठता है.

भैंस दस माह में एक बच्चा देती है. भैंसा हल जोतने, कुओं से पानी निकालने, बोझा ढ़ोने एवं गाड़ी खींचने में वृषभ की भांति अत्यन्त सहायक है. मरणोपरान्त इसके चर्म की एवं सींगों की अनेक वस्तुयें बनती हैं. भैंसा बैल की भांति अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु इसमें दो कमियाँ हैं- प्रथम तो सुस्ती एवं द्वितीय मन्दगति. अतः यह इतना उपयोगी नहीं कहा जा सकता जितना कि बैल. हमारे देश में भैंस के लिए "काला अक्षर भैंस बराबर" एवं 'भैंस के आगे बीन बजाना" मुहावरे भी प्रचलित हैं.

संस्कृत काव्यों में महिष

सम्पूर्ण संस्कृत काव्यों में महिष का वर्णन विरल रहा है. काव्यों में भैंसे के लिए महिषः[5] , कासरः[6] एवं भैंस के लिए महिषी[7] शब्द का ही प्रयोग हुआ है. प्रस्तुत काव्यों में इसके अतिरिक्त भैंसे के किसी भी पर्यायवाची का प्रयोग नहीं हुआ है. महिष का नामोल्लेख करने के पश्चात हम भैंसे की काव्यगत विशेषताओं पर विचार करेंगे.

मानव एवं महिष :—मनुष्य व पशु का सम्बन्ध एक अति प्राचीन सम्बन्ध रहा है तभी तो मानव के जीवन में पशु का वर्णन आ पाया है. महिष को मृत्यु के देव यमराज का वाहन कहा है. कुमारसम्भव में लिखा है कि जिस समय भगवान् कार्तिकेय राक्षसों का दमन करने चले तो यमराज भी अपने नीलम के समान काले रंग के महिष पर चढ़ कर चल पड़े.[8] इस बात से स्पष्ट होता

5. शिशु. 12/75. 17/41. कादम्बरी. पृ. 57, 83, 89. ह. च. पृ. 82; 139; 157; 160; 416.
6. कुमार. 14/7; किरात. 12/50.
7. बु. च. 8/24
8. कुमार. 14/7.

है कि महिष पहले भी सवारी का साधन रहा है. महिष नाम के असुर का वर्णन जिसे 'महिषासुर' कहा है कादम्बरी में आया है. [9] रावण के द्वारा महिष के सींगों का उखाड़ कर उनका धनुष बनाने का उल्लेख भी मिलता है. [28] इस बात से यह ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में भैंसे आकार में बड़े होते रहे होंगे तभी तो उनके सींगों का धनुष बन सकता होगा. इसी प्रसंग में कहा गया है कि दूसरे से अपमानित व्यक्ति का लज्जित होकर मस्तक नीचा कर लेना उचित ही है. [10] शकुन्तला के प्रेम में राजा दुष्यन्त अपने कर्त्तव्य को भूलते हुए शिकार त्याग को महत्व देते हुए कहते हैं कि भैंसों को अपने सींगों से पानी को पीटने दिया जाय. [11] हमारे देश में बलि देने की प्रथा एक परम्परा के रूप में आज तक भी विद्यमान है. हर्षचरित व कादम्बरी में महिषबलि का वर्णन किया गया है. [12] मनुष्य मनोरञ्जन के लिए प्रतिमाओं का निर्माण करता है. इस प्रसंग में कादम्बरी में एक लौहनिर्मित महिष का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसके शरीर में हस्ताकृति रक्तचन्दन के चिन्ह लगे थे उससे ऐसा ज्ञात होता था कि मानों यमराज ने उसे चलाने के लिए रक्तार्द्र हाथ से ताड़न किया हो. [13]

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों व वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि महिष व मानव का सम्बन्ध सर्वदा रहा है और रहेगा.

कार्य कलाप :—संस्कृत काव्यों में महिष के कार्य-कलापों का यदाकदा वर्णन किया गया है. कादम्बरी में वर्णन मिलता है कि महिष समूह में रहते हैं।[14] ग्वालों का महिष पर बैठकर गायों की रक्षा करने का वर्णन भी संस्कृत काव्यों में मिलता है. [15] महिष अगरू को विदलित करते हुए आगे बढ़ते रहते हैं।[16] गज एवं वृषभ की भाँति महिष को भी वप्रक्रीड़ा करने वाला जीव माना गया है. भैंसे बांबियों को खोद डालते हैं. [17] जल के प्रेम से वह स्फटिक को

---

9. 'अचिर-मृदित–महिषासुर–रुधिर, कादम्बरी. पृ. 32.
10. 'परेतभर्तुर्महिषोऽमुना. शिशु. 1/57.
11 शिशु. पृ. 36.
12. 'गाहन्तां महिषा निपातसलिलं'. शाकु 2/6.
13. 'पवतह्लति क्वणित' कादम्बरी पृ. 87
14. 'अभिमुखप्रतिष्ठे न. कादम्बरी पृ. 637.
15. 'वनमहिषयूथम्—कादम्बरी पृ. 89.
16. 'महिष पृष्ठ प्रतिष्ठित. ह. च. पृ. 160.
'महिषलता गुरु. किरात. 12/50.

भी खोदने लगते हैं. इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि महिष एक अज्ञानी प्राणी है.[18] अपने स्नान काल में भैंसे अपने सींगों से फेने को इधर-उधर फैला देते हैं.[19] इन बातों से यह ज्ञात होता है कि भैंसे को पानी काफी प्रिय लगता है.

उपमित महिष :—संस्कृत साहित्य में महिष के कार्य-कलापों एवं शारीरिक रचनाओं को सम्मुख रखते हुए कवियों ने विभिन्न प्रकार से उपमित किया है. रोती हुई राजा की पटरानी गौतमी की तुलना नष्ट बछड़े वाली भैंस से की गई है.[20] व्याधों के द्वारा मारे गये जंगली महिषों के नखों की तुलना रक्त कमलों से की गई है.[21] शबर युवक की तुलना भैंसे के रक्त से सने त्रिशूल से की गयी है.[22] भैंसें से भरे हुए जंगल की तुलना यमपुरी से की गई है.[23] हवा के द्वारा यत्र-तत्र भैंसों के मुख से निसृत फेन को उड़ाने का वर्णन किया गया है.[24] यह वर्णन प्रातः काल से सम्बन्धित है अतः यह प्रतीत होता है कि महिष प्रातः काल अधिक जुगाली कर फेन निसृत करते हैं. भीलों की सेना की तुलना स्नान को जाने वाले जुगाली भैंसों से की गई है.[25] यह काफी हद तक उचित भी है. भील वास्तव में एक जंगली जाति है एवं रंग में भी श्यामवर्ण होती है. यमुना नदी की तुलना भैंसे के सींग से की गयी है.[26] यमुना का जल नील वर्ण एवं आकार टेढ़ा माना गया है. साथ ही भैंसे का सींग भी नीलवर्ण (श्याम) एवं टेढ़ा होता है. अतः यह सार्थक है सुन्दर है धूमिल दिशा की तुलना बूढ़े बैल के सींग से की गयी है.[27] वास्तव में महिष का सींग जरावस्था में श्यामलता को धारण न कर कुछ भूरे रंग का हो जाता है. अतः समता उचित है.

---

18. 'वनमहिष' कादम्बरी. पृ. 83.
19. 'सलिल' ह. च पृ. 82.
20. 'क्वचिद् महिष'–कादम्बरी० पृ. 374.
21. 'प्रवष्ट वत्सा महषीव वत्सला–बु० च० 8/24.
22. कादम्बरी. पृ. 637.
23. 'अम्बिका–त्रिशूलमिव–महिष रुधिरराद्र'कायम्' कादम्बरी. पृ. 96.
24. 'प्रताधिपनगरी.' कादम्बरी पृ. 80.
25. 'वनमहिष-रोमन्थफेन–बिन्दुवाहिनि' कादम्बरी पृ. 80.
26. अवगाह प्रस्थितमिव-कादम्बरी पृ. 89.
    'महानवमीहं महिष मण्डलानाम्' ह. च. पृ. 416.
27. 'सीमन्त्यमाना' शिशु. 12/75.

अंधकार की तुलना भैंस से अनेकधा की गयी है. [28]

इस प्रकार महिष का काव्यात्मक वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध होता है.

महिष का सबसे अधिक उल्लेख गद्य काव्यों में हुआ है. कादम्बरी में महिष का वर्णन सबसे अधिक बार यानि १२ बार आया है. हर्षचरित में महिष का वर्णन ६ बार, शिशुपालवध में ३ बार, नैषधीय चरित्र में २ बार एवं दश-कुमार चरित, रघुवंश व कुमारसम्भव, ऋतुसंहार, बुद्धचरित, किरातार्जुनीयम् व अभिज्ञान शाकुन्तलम् में महिष का केवल एक-एक बार वर्णन किया है. इस प्रकार महिष का वर्णन कुल मिलाकर ३० बार हुआ है. महिष के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में दर्शनीय है.

---

28. 'जरन्महिषविषाण धूषराम्' यथोपरि. 17/41.
29. रविरथतुरगमार्गानुसारेण ह. च. पृ. 157.

तालिका-१

'महिष' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (4)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१.	रघु०	६/६१.
१.	कुमार०	१४/७.
१.	ऋतु०	१/२१.
१.	शाकु०	२/६.

तालिका-२

'महिष' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (26)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	१	बु. च.	८/२४.
भारवि	१	किरात.	१२/५०.
माघ	३	शिशु.	१/५७. १२/७५. १७/४१.
श्रीहर्ष	२	नैषध.	१३/३४. १६/६२.
बाणभट्ट	६	ह. च.	पृ. ८२, १३६, ५७, ६०, ४१६, १६.
,,	१२	कादम्बरी	पृ. ३२, ५७, ८०, ८३, ८७, ८६, ८६ ६६, ३७४, ५१२, ६३७, ३७.
दण्डी	१	द. च.	पृ. ११.

अज
THE GOAT

'प्रलम्ब-कूर्च्चधरैश्छागैरपि धृतव्रतैरिव ।'
—कादम्बरी० पृ० ६४१

संस्कृत साहित्य में अज का स्थान अन्य पशुओं की अपेक्षा गौणतर है, किन्तु अज का उल्लेख संस्कृत साहित्य में प्राचीन है वैदिक साहित्य में बकरी को अजः, अजा, छगः, छागः. वस्तः शब्दों से कहा गया है.[1] लाल बकरी को लोढ़ः[2] कहा गया है. संस्कृत में अज के लिए अजः, छागः, छगलकः, वस्तः, शुभः एवं मादा अज के लिए अजा व छागी शब्दों का प्रयोग हुआ है.[3] अमरकोष में स्तभः, छागः, वस्तः, छगलका, अजः एवं अजा शब्दों का प्रयोग हुआ है.[4] वाल्मीकि रामायण में अजामुखी राक्षसी का नाम आया है.[5]

बकरी मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत स्तनप्राणी श्रेणी के अज उपपरिवार का प्राणी है.[6] सामान्य भाषा में यह एक चौपाया पशु है.

बकरी मानव समाज के लिए एक उपयोगी प्राणी है. यह जीव देखने में बड़ा चंचल स्वभाव का होता है. इसके सिर पर दो सींग होते हैं जो विभिन्न प्रकार की किस्मों के अज के आधार पर विभिन्न आकार-प्रकार के होते हैं. अज का शरीर बालों से ढ़का रहता है, इसके बालों का रंग विभिन्न प्रकार का होता है, बकरियां सामान्यतः काली, सफेद, भूरी, खैर एवं चितकबरी होती हैं.

---

1. ऋक् 10/16/4. अ. वे. 9/5/1; 8/70/15; अ. वे. 4/71/1. तै. सं. 5/6/22/1. ऋक्. 2/162/3 वा. सं. 16/89. 21/40. ऋक्. 1/161/13 तै. सं. 2/3/7/4; 5/3/1/5.
2. ऋक्. 53/23.
3. सं. इ. डि. आप्टे. पृ. 186.
4. अजाछाग. इत्यमरः (वैश्यवर्ग)
5. वा. रा. सुन्दरकाण्डे.
6. जीव जगत पृ. 588.

भेड़ की भांति बकरी भी घास के मैदानों में पायी जाती है. घाटियों में बकरियों का बाहुल्य होता है क्योंकि वहां मुलायम घास अधिकता में उपलब्ध होती है, रेगिस्तानों में भी बकरियां पायी जाती है, बकरी एक सामुदायिक प्राणी है.

बकरी का उत्पत्ति स्थान पूर्व में माना जाता है कारण कि बकरी के प्रथमावशेष फारस में उपलब्ध हुये हैं.[7] बकरी चीन, ग्रेट-ब्रिटेन, यूरोप, उत्तरी अमेरिका, बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत, मध्येशिया व सिन्ध में पायी जाती है. भारत में बकरी कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, हिमाचलप्रदेश व राजस्थान में बहुतायत से पायी जाती है. बकरी सामान्यतः शुष्क एवं ऊष्ण जलवायु में रहती हुयी गर्मी को आसानी से सह लेती हैं किन्तु नमी इसके लिए ठीक नहीं.[8] अज को चन्द्रमा की सवारी माना गया है.

बकरी का दूध, ऊन, मांस व चमड़ा मनुष्य के बड़े काम की वस्तुयें हैं,[9] बकरी को गरीब की गाय माना गया है. इसका दूध विशुद्ध धवल रंग का होता है एवं गाय के दूध की भांति टिकाऊ एवं उपयोगी होता है.[10] यों तो बकरियां अनेक प्रकार की होती हैं किन्तु उनमें प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं :—

(अ) कश्मीरी—भारत के कश्मीर राज्य में पायी जाने वाली एक नस्ल है. यह एक सामान्य बकरी से अधिक उपयोगी होती है.[11] इसकी ऊन अच्छी व मांस खाने योग्य होता है.

(ब) अन्गोरा—यह बकरी कम दूध देने वाली होती है. इसे शीत एवं शुष्क जलवायु की आवश्यकता है. यह अच्छी ऊन देने वाली किस्म है.[12]

(स) जमुनापारी—यह कद में विशाल होती है एवं अधिक दूध देने वाली होती है. यह बकरी १८९६ में एक अंग्रेज द्वारा आयात की गयी थी.[13]

(द) बरबरी—यह जमुनापारी से विपरीत गुणों वाली होती है यानी

---

7. इन. ब्रि. भाग 10 पृ. 456.
8. इन. चेम्बर. भाग 6 पृ. 402
9. ए. किंग. पृ. 839. इन ब्रि. भाग 10 पृ. 457.
10. यथोपरि. यथोपरि.
11. यथोपरि. ए. किंग पृ. 839.
12. यथोपरि. इन. ब्रि. भाग 10 पृ. 457.
13. यथोपरि. यथोपरि.

कद में छोटी व कम दूध देने वाली. यह एक बारगी दो बच्चे देने वाली होती है. अतः यह किस्म संख्या में निरन्तर बढ़ती रहती है.

बकरी का दूध बच्चे के लिए उपयोगी एव स्वास्थ्यप्रद होता है. महात्मागाँधी भी बकरी का दूध पीते थे. बकरी का मांस सम्पूर्ण भारत में खाया जाता है. बकरे के चमड़े के जूते बनते हैं. इसके बालों के नमदे, कपड़े व रस्सियां बनाई जाती है. बकरी को यदि एक पौण्ड अनाज नित्य खाने को दिया जाय तो वह तीन पौंड दूध नित्य दे सकती है.[14] इस प्रकार यह एक सस्ता घरेलू प्राणी है. इसके निवास के लिए थोड़े से स्थान की आवश्यकता होती है.

अज का जीवन काल ८ से १२ वर्ष के मध्य होता है.[15] बकरी एक बार में दो बच्चों को जन्म देती है. सामान्यतः तीन भी देती है और यदा-कदा चार एवं पांच भी देते हुए देखी गई है,[16] बकरी का बच्चा छः माह में बड़ा हो जाता है.

संस्कृत काव्यों में अज

संस्कृत काव्यों में अज का वर्णन विरलतम है. काव्यों में बकरी के लिए छागः शब्द का प्रयोग हुआ है.[17]

मानव व अज—अज एवं मानव का सम्बन्ध गहरा रहा है. सूतिका गृह के बाहर द्वार पर वृद्ध अज को बाँधना शकुन समझा जाता है.[18]

उपमित अज—'दीर्घदाड़ी को धारण कर बकरियाँ भी मानों व्रतावलम्बन कर देवी की आराधना करती थीं'–इस वाक्य में बकरी की दाड़ी की समता कूर्च वाले व्रतावलम्बी महर्षियों से की गयी है.[19] वासवदत्ता में इन्दुमती को अज (राजा अज, बकरा) की अनुरागिनी कहा गया है.[20] नैषधीयचरितम् में बकरे के स्वादिष्ट मांस का उल्लेख है.[21]

सम्पूर्ण काव्यों में अज का उल्लेख केवल ४ बार हुआ है. बाण, सुबन्धु व श्रीहर्ष ने क्रमशः २, १ व १ बार अज का उल्लेख किया है. अज के वर्णन का विश्लेषण संलग्न तालिकाओं में दर्शनीय है.

———

14. यथोपरि,
15. यथोपरि,
16. यथोपरि,

तालिका—१

'अज' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (X)

(×)

तालिका—२

'अज' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (3)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
सुबन्धु	१	वासवदत्ता	पृ. ३८.
बाणभट्ट	२	कादम्बरी	पृ. २२०, ६४२.
श्रीहर्ष	१	नैषध.	१६/८६.

— — —

मेष
THE SHEEP

'मदोद्धतं मेषमधिष्ठितः शिखी'

—कुमार० ४/६

संस्कृत वाङ्मय में मेष का स्थान अन्य पशुओं की अपेक्षा गौणतर है. मेष का उल्लेख संस्कृत साहित्य में काफी प्राचीन है. वैदिक साहित्य में मेष को उरा, अवि, मेष, उर्संनी, परुष्नी व उर्णवती नामों का उल्लेख है.[1]

मेष मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत स्तनप्राणी श्रेणी के अज उप-परिवार का पशु है. सामान्य भाषा में मेष चौपाया जाति का जीव है.

मेष मानव जाति के लिए एक अत्यन्त उपयोगी पशु सिद्ध हुआ है. विश्व में अनेक प्रकार की भेड़ें पायी जाती हैं, जिनमें मेरोना, स्पेनी, कोलम्बियन, आल्डनवर्ग, आक्सफोर्ड, कराकुल, न्यान, उरियल, भरल इत्यादि प्रमुख हैं.[2] भेड़ें विश्व के अनेक भागों में पायी जाती हैं, जिनमें प्रमुख स्थान हैं—पामीर-प्लेटोतुर्किस्तान, पश्चिमी मगोलिया, साइबेरिया, लद्दाख, अफगानिस्तान, तिब्बत, अफ्रीका, नेपाल व भारत. भारत में भेड़ें पञ्जाब, राजस्थान, हरियाणा, कश्मीर व मध्यप्रदेश में पाली जाती हैं. भेड़ एक लघुकाय प्राणी है. यह ऊन से ढ़का रहता है. इसके सिर पर दो सींग होते हैं. मादा मेष के सींग नर मेष की अपेक्षाकृत छोटे होते हैं. इनके सींग हरे या भूरे रंग के होते हैं. नर के सींग टेढ़े होते हैं एवं धारीदार होते हैं[3] भेड़ों के नर-बकरी की भाँति दाढ़ी नहीं होती. भेड़ें अनेक रंग की होती हैं. इनके मुख्य रंग हैं—काला, चितकबरा, सफेद एवं मटिया.

भेड़ें घास के मैदानों एवं पहाड़ियों की तलहटी में पायी जाती हैं, कारण कि इनको वहाँ घास मिल जाती है. रेगिस्तान में भेड़ें बड़ी ही उपयोगी होती है जो थोड़ा खाकर अधिक लाभान्वित करती हैं. यह भी बकरी की भाँति एक सामुदायिक जीव है. ये कतार बनाकर एक के पीछे एक चलती देखी गई हैं और इनकी इसी क्रिया के कारण इनकी चाल को 'भेड़-चाल' कहा जाता है. इस बात से यह

---

1. मेढोरभ्रो. इत्यमरः (वैश्यवर्गः)
2. इन. ब्रि. भाग.84482. ए. किंग. पृ. 20-55पृ.5.
3. यथोपरि.

सिद्ध होता है कि भेड़ एक अल्पबुद्धि वाला प्राणी है. भेड़ों की चाल की बात अक्षरशः सही है. वे वास्तव में बिना किसी कठिनाई के बारे में विचार किये निरन्तर चलती देखी गयी हैं.

भेड़ से मानव को तीन वस्तुयें मुख्य रूप में प्राप्त हैं—दूध, मांस एवं ऊन. भारत में तो नहीं किन्तु अमेरिका, ब्रिटेन, रूस व अफ्रीका में भेड़ के मांस का आयात-निर्यात काफी मात्रा में होता है. भेड़ का दूध पीने के काम तो आता ही है, साथ ही टूटी हुयी हड्डियों पर मलने से भी आराम मिलता है. ऊन भेड़ से प्राप्त होने वाली सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है जिससे विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का निर्माण होता है.[4]

सामान्यतः भेड़ एक पालतू प्राणी है, किन्तु जंगली भेड़ें भी पाली जाती हैं. जंगली भेड़ें संख्या में कई होती हैं एवं एक समुदाय में एक वृद्ध नर-भेड़ के पीछे-पीछे चलती हैं. वे आकार में बड़ी होती हैं.[5] पालतू भेड़ें आकार, संख्या, ऊन की श्रेष्ठता, रंग एवं दूध की उत्पत्ति के आधार पर जंगली भेड़ों से भिन्न होती हैं.[6] कुछ भेड़ों की ऊँचाई करीब ४ फीट होती है.[7] वे लम्बाई में ७ फीट तक होती हैं. मादा-भेड़ गर्मी के मौसम में एक या दो बच्चों को जन्म देती है.

संस्कृत काव्यों में मेष

संस्कृत काव्यों में भेड़ का वर्णन अत्यन्त विरल है. काव्यों में भेड़ के लिए उरभ्रः एवं मेषः शब्दों का प्रयोग किया गया है.[8]

मानव व मेष—हर्षचरित में एक स्थान पर भेड़ पालन का उल्लेख किया गया है कि ग्वाले ऊँटों के साथ-साथ भेड़ों को भी पालते हैं.[9] मेष को महाकवि कालिदास ने अग्निदेव की सवारी के रूप में वर्णित किया है.[10]

उपमित मेष—सस्कृत काव्यों में मेष को केवल दो बार उपमित किया गया है. एक स्थान पर भेड़ से ब्रह्मचर्य को उपमित किया है. "जैसे गर्वित भेड़ा

---

4. इन. चेम्बर. भाग. 12 पृ. 462.
5. इन. ब्रि. भाग 20 पृ. 482.
6. यथोपरि. 482.
7. द० स० ए० भाग० 2 पृ. 350.
8. बु० च० 13/23 ह० च० पृ० 161. कुमार० 14/6.
9. 'करभीय कुमार'० ह० च० पृ० 161.
10. 'महोघतं मेषमधिष्ठितः'–कुमार० 14/6.

चोट करने की इच्छा से पीछे हट जाता है उसी प्रकार तुम्हारा यह ब्रह्मचर्य पीछे हट जाता है.'' इस प्रकार का वाक्य गौत्तम का शिष्य आनन्दनन्द के प्रति कहता है.[11] अन्यत्र भेड़ के से मुख वाले राक्षसों का वर्णन किया गया है.[12]

इसप्रकार संस्कृत काव्यों में मेष का नामोल्लेख केवल ६ बार हुआ है. महाकवि अश्वघोष ने मेष का वर्णन दो बार किया है–एक बार सौंदरनन्द में तथा दूसरी बार बुद्धचरित में. हर्षचरित, शिशुपालवध एवं नैषधीयचरित में भेड़ का एक-एक बार उल्लेख मिलता है. महाकवि कालिदास ने अपने काव्य कुमारसम्भव में भेड़ का एक- बार वर्णन किया है. कालिदास के नाटकों में मेष के वर्णन का अभाव है. मेष के वर्णन का विश्लेषण निम्नांकित तालिकाओं में अवलोकनीय है.

---

11. सौ० न० 11/25.
12. बु० च० 23/13.

तालिका—१

'मेष' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (1)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	कुमार०	१४।६.

तालिका—२

'मेष' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (5)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	१	बु० च०	१३।२३.
,,	१	सौ० नं०	११।२५.
श्रीहर्ष	१	नैषध०	
माघ	१	शिशु०	
बाणभट्ट	१	ह० च०	पृ० १६१.

मृग
THE DEER

सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।।

—शाकुन्तलम् ४/४१

सम्पूर्ण-संस्कृत साहित्य में मृग का प्रमुख स्थान रहा है. मृग शब्द संस्कृत साहित्य में अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है. वैदिक साहित्य में मृग के लिए रुरुः, कृष्णः, पृषत्ः, हरिणः, कुलुंगः, पृषति, एणी, रोहित शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनमें अन्तिम तीन नाम सामान्यतः मादा-मृग के वाचक हैं.[1]

मृग मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत मृग (काला) उपपरिवार का जीव है.[2] मृग उप-परिवार एक बहुत बड़ा परिवार है जिसमें मृग (काला) व चिकारा आते हैं. संस्कृत में मृग शब्द का एक विशेष अर्थ किया गया है जिसके अन्तर्गत रोझ उपपरिवार का चौसिंगा, बारहसिंघा परिवार के बारहसिंघा, हंगन्त, सांभर, चीतल, पढा, काकड़, व कस्तूरी मृग भी आ जाते हैं. तात्पर्य यह है कि मृग शब्द एक ऐसा सामान्य शब्द है जिसका प्रयोग प्रत्येक प्रकार के पशुओं के लिए किया जाता है.[3]

मृग एक शाकाहारी प्राणी है. सामान्य अवस्था में यह एक जंगली जीव है, जो जंगलों में इधर-उधर घूमता रहता है. सामान्यतः हरिण, हल्के पीले, ललछौंह, नारंगी, काले, चितकबरे, बादामी, भूरे इत्यादि रंग के होते हैं.

---

1. तै० सं० 5/19/1. 8/4/10. वा० सं० 24/27/37. ए० ब्रा० 3/33. तै० सं० 5/2/5/6. 6/1/3/1. शा० ब्रा० 1/1/4/1. 3/2/1/28. तै० सं० 5/5/17/1. मै० सं० 3/14/9/21. वा० सं० 24/27/40. निरुक्त. 2/2. ऋक्. 1/16/3/1. 5/78/2. अ० वे० 6/67/3. 3/67/3. तै० सं० 5/5/11/1. मै० सं० 3/14/9/13. वा० सं० 24/27/32. वै० इ० (1) पृ० 19. अ० वे० 5/14/11. तै० सं० 5/5/15/1. ऋक्० 10/39/8. अ० वे० 4/4/5/7.
2. जीव जगत पृ० 598.
3. गन्धर्वः शरभो रामः सुधरो गवयः शशः। इत्यादयो मृगेन्द्राद्या गवाद्याः पशुजातयः। इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

मृग अनेक प्रकार के होते हैं.[4] यह एक सुन्दर जीव है. छोटी-छोटी पतली चार टांगें, सिर पर छोटे-बड़े अनेक प्रकार के चित्र विचित्र सींग एवं बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखें ही मृग की सुन्दरता का राज है.

मृग मुलायम घास के मैदानों में निवास करने वाला प्राणी है. कई मृग तो पहाड़ी भागों से परे बिल्कुल मैदानी भागों में ही विचरण करना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि मैदानी भागों में हरी-हरी घास उगती है जो मृग का प्रमुख खाद्य है. मृग के चरने का कोई सुनिश्चित समय नहीं होता है. यह इच्छानुसार चरता देखा गया है. मृग के विभिन्न प्रकारों की मादाओं का गर्भाधानकाल अलग-अलग हैं, पर सभी एक या एक से अधिक बच्चे देती पाई गई हैं. मृग सामान्यतः भारत, अफ्रीका, एथोपिया, टांगानिका एवं साइबेरिया के भागों के अतिरिक्त यूरोप के अनेक भागों में भी पाये जाते हैं.[5] वास्तव में कोई भी वास्तविक मृग अमेरिका, का नहीं है. मृग की शरीर रचना कार्य-कलाप एवं रंग इत्यादि के बारे में इतनी विभिन्नतायें विद्यमान है कि अब तक इन सब में से कतिपय का संक्षिप्त ज्ञान न हो तब तक उनके बारे में जानना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है. अतः अब हम मृग के विभिन्न प्रकारों में से कतिपय पर संक्षेप में विचार करेंगे—

मृग—हमारे देश का हरिण इस श्रेणी के अन्तर्गत आता है. इसे कालिया हरिन व कृष्णसार नामों से भी कहा गया है. ये मृग मैदानी भागों में अधिक पाये जाते हैं. ये लम्बाई में ५ से ६ फीट एवं ऊँचाई में ढ़ाई से तीन फीट तक होते हैं. नर के सींग १५ से २१ इंच तक लम्बे धारीदार एवं सीधे होते हैं.[7] मादा मृग शृंग-विहीन होती है या बहुत छोटे सींगों वाली होती है. मृग का रंग बादामी या कलछौंह होता है. इसका मांस खाने योग्य होता है.[8]

चिकारा—यह मृग सामान्य मृग से छोटा एवं अति सुन्दर होता है. इनका रंग खैर होता है. नीचे का भाग सामान्यतः श्वेत होता है. मादा के सींग होते हैं. चिकारा से सम्बन्धित कई कहानियाँ हैं.

चौसिंगा—जैसा कि नाम से स्पष्ट है इसके सिर पर चार सींग होते हैं. मादा शृंग-विहीन होती है. ये हमारे देश में महाराष्ट्र, पंजाब हरियाणा,

---

4. इन. ब्रि. भाग 2 पृ. 21. जीवजगत पृ. 598–612.
5. इन. चेम्बर. भाग 2 पृ. 21.
6. वही. वही.
7. ए. किंग. पृ. 821.
8. इन. ब्रि. भाग 2 पृ. 21.

राजस्थान, मध्यप्रदेश के अतिरिक्त हिमालय की तराई में भी पाया जाता है.

कस्तूरी मृग—प्रायः हिमालय की तराई में पाया जाने वाला यह मृग ५०० से ७०० मि. मी. तक ऊँचा एवं ७५० से ६५० मि. मी. तक लम्बा होता है. यह शृंग-विहीन होता है. इसकी पिछली टांगें छोटी होती हैं. शरीर का रंग विभिन्न प्रकार का होता है. यह एकान्त सेवी होता है.[9] इसकी नाभि से कस्तूरी प्राप्त होती है जिसे संस्कृत में 'मृगमद' कहा गया हैं. एक मृग से १० से ४५ ग्राम तक कस्तूरी प्राप्त होती है जो आर्थिक जगत् में महत्वपूर्ण वस्तु है.

बारहसिंघा—जैसा कि इसके नाम से विदित है इसके दोनों सींगों में कुल मिलाकर बारह सींग होते हैं जो समय-समय पर (सामान्यतः पौष माघ में) गिरते रहते हैं. यह प्राणी ६ फीट तक लम्बा एवं करीब चार फीट तक ऊँचा होता हैं. मध्यप्रदेश व हिमालय की तराई में बारहसिंघा पाया जाता है. सर्दी में इसका रंग बादामी होता है किन्तु गर्मी में सफेद चिकत्तों से पूर्ण खैर हो जाता है.

चीतल—इस मृग के शरीर पर चिकत्ते होते हैं अतः यह बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होता है. यह गर्म रेगिस्तानों को छोड़ सम्पूर्ण भारत में उपलब्ध होता है. यह लगभग ५ फीट लम्बा एवं तीन फीट ऊँचा प्राणी है. इसके शरीर पर सफेद रंग की चित्तियाँ होती हैं जो कि मुख पर कम व हल्की होती हैं. यह सरोवरों के किनारे बड़े-बड़े समुदायों में मिलता है.

सांभर—इस प्रकार का मृग हमारे देश में प्रायः सभी स्थानों पर पाया जाता है. यह वन प्रधान पहाड़ी घाटियों में रहना अधिक पसन्द करता है. यह एक विशालकाय प्राणी होता है. इसकी ऊंचाई साढ़े चार फीट एवं लम्बाई साढ़े सात फीट तक होती है. इसके सींग बड़े होते हैं एवं शाखायुक्त होते हैं. आश्विन के माह में इनके नये सींग आते हैं. इसका रंग कत्थई होता है. प्राचीन साहित्य में एक कहानी मिलती है जो एक लड़के से सम्बन्ध रखती है जिसे भारतीय भाषा में 'मौगली' एवं आंग्ल में 'गेजल बॉय' नाम दिया गया है. यह लड़का देखने में मानव किन्तु क्रियाओं में चिकारा था.[10]

इस प्रकार हमने विभिन्न मृगों की विभिन्न विशेषताओं पर विचार किया. अब हम इसकी काव्यात्मक विशेषताओं पर विचार करने का प्रयास करेंगे.

---

9. हि. वि. कोष. भाग 2 पृ. 406.

10. ए. किंग. पृ. 814. मौगली, श्रीकृष्णदत्त शर्मा ।

संस्कृत काव्यों में मृग

संस्कृत काव्यों में मृग का स्थान सर्वदा मुख्य रहा है. इसे काव्यों में मृगः, हरिणः, कुरंगः, एणः, एणकः, चमरः, शरभः, रूकः, नीलाण्डजः, प्रियंकः, गवयः, कृष्णः, कृष्णसारः, पृषत्, रंकुः, सारंग नामों से कहा गया है.[11]

मादा के लिए विशेषतः कतिपय काव्यकारों ने मृगी, एणी व हरिणी का भी प्रयोग यदा-कदा किया है. उपर्युक्त नामों में कतिपय नाम मृग की भिन्न भिन्न किस्मों के भी हैं. किन्तु इनमें से अधिकतर आधुनिक युग में मृग शब्द के पर्याय बन गये है.[12] इस प्रकार नामोल्लेख करने के पश्चात् इसकी काव्यगत विशेषताओं पर विचार करेंगे. योजनानुसार हमें इस स्थान पर मृगों का काव्यात्मक विभाजन प्रस्तुत करना चाहिए, किन्तु काव्यों में भी प्रायः उन्हीं मृगों के प्रकारों का विवरण किया गया है. अतः पुनरावृत्ति से बचने के लिए हम यहाँ मृगों का विभाजन प्रस्तुत नहीं करते.

निवास व मानव से सम्बन्ध—संस्कृत-साहित्य में मृग सर्वदा वन प्रदेशों में विचरण करते हुए बताये गए हैं. मृग एक समुदाय वाला प्राणी है.[13] राजा दिलीप जब बन में अपनी पत्नी के साथ जाते हैं तो रास्ते में मृगों के समुदाय उनके रथ की ओर एकटक होकर देखते हैं.[14] इसी प्रकार महर्षि वशिष्ठ के उटज द्वार पर मृग खड़े रहते हैं, ऐसा वर्णन कालिदास ने किया है.[15] रैवतक पर्वत पर मनोहर

---

11. कु. सं. 2/1, सौ. नं. 1/13, किरात. 1/40, मेघ०उ० 37, शिशु० 2/53 रघु० 9/55, कुमार० 1/46, ऋतु० 2/9, नैषध० 2/21, ह० च० पृ० 326, कादम्बरी० पृ० 58, रघु० 14/68, सौ० नं० 1/12, किरात० 12/52, मेघ०उ० 46, कादम्बरी० पृ० 638, कुमार० 5/15, ह०च०पृ० 424, ह० च० 137, 324, कादम्बरी पृ० 141, सं०इ०मं०डि० आप्टे० पृ० 96, कादम्बरी० 121, 127, शिशु० 4/143, किरात० 12/47, ह०च०पृ० 420, रघु० 9/66, रघु० 1/23, रघु० 9/72, ह० च० पृ० 420, ह० च० पृ० 420, शिशु० 4/32, ह०च०पृ० 420, ह०च०पृ० 68, कादम्बरी पृ० 18, कादम्बरी 388, नैषध० 18/19, नैषध० 12/77, ह० च० पृ० 420, शाकु० 1/5.
12. इ० सं० डि० आप्टे० पृ० 96.
13. 'मृगकादम्बकम्'–कादम्बरी पृ० 83.
14. मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यनदनाबद्ध दृष्टिषु ।–रघु० 1/40.
15. रघु० 1/50.

एवं अनेक रंगों वाले रोमयुक्त मृग के भ्रमण का वर्णन भी प्राप्त होता है.[16] 'हरिणी' नामक अप्सरा का वर्णन महाकवि कालिदास ने किया है जिसे इन्द्र ने मुनि की तपस्या भंग करने के लिए भेजा था.[17] राजा नल का वन में मृगों के साथ मोक्षार्थ निवास करने का वर्णन भी किया गया है.[18]

महाकवि बाणभट्ट ने अच्छोद सरोवर की सिकता मिट्टी पर चमरी एवं कस्तूरी मृगों के निशानों का वर्णन किया है.[19] इसी प्रकार महाकवि कालिदास ने कस्तूरी एवं शरभ मृगों का निवास हिमालय पर्वत को बतलाया है.[20] इन सभी बातों के आधार पर यह कहना तार्किक होगा कि मृग खुले मैदानों, नदियों की घाटियों वनों एवं पर्वतीय भागों में निवास करते हैं. यह बात अवश्य है कि इन मृगों की किस्म में कतिपय भेद अवश्य है जो उनकी भौगोलिक परिस्थितियों पर पूर्ण आधारित है. इन विवरणों से एक द्वितीय बात यह प्रमाणित होती है कि मृग का मनुष्य के साथ गहरा सम्बन्ध रहा है एवं यह मनुष्य की दृष्टि में एक प्रिय पशु रहा है. तभी तो आश्रमवासी चिल्ला उठते हैं कि यह आश्रम का मृग है इसे नहीं मारा जाना चाहिए.[21] शकुन्तला का मृग के प्रति इतना प्रेम है कि कवि ने इसे पुत्र कहा है. राजा दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के साथ रहकर उसे भोली चितवन सिखाने वाले मृगों पर बाण चलाने की असमर्थता पशु-प्रेम का प्रत्यक्ष प्रमाण है.

क्रिया-कलाप—हरेक प्राणी की क्रियाओं में कुछ न कुछ विशेषतायें होती हैं. मृग की क्रियाओं में उसकी चौकड़ी भरना प्रमुख क्रिया है. जिसका सभी काव्य-कारों ने वर्णन किया है.

राजा दशरथ ने रुरु नाम के विशेष मृग का पीछा किया था एवं राम को सोने का मृग दूर ले गया था. ये दोनों बातें इस बात का साक्षात प्रमाण है कि मृग बड़ी तेज गति से चलता है तभी तो ये नृप श्रेष्ठ उनके पीछे भागते होंगे.[22]

---

16. 'रुचिरकचत्रतनूरुह शालिभि विचलितैः प्रियकव्रजं'–शिशु० 4/32.
17 'हरिणी सुरांगनाम्'–रघु० 8/79.
18. मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टमदेह बन्धाय पुनर्वबन्ध' ।–रघु० 18/7.
19. 'सिकता-निमग्न–चमर–कस्तूरिका–मृगी-खुर–पंकिना'—रघु० 18/7.
20. मेघ० पृ० 56, 58.
21. 'आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्य'–शाकु० 1 (गद्य)
'सोऽयं न पुत्र कृतक पदवीं मृगस्ते'–वही० 4/14, वही 2/4
22. 'रुरोर्गृहीतवर्त्या विपिने पार्श्वं चरैरलक्ष्यमाणः'–रघु० 9/72.
'मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम्'–शाकु० 1/6.
कनकमृगो राघवमति दूरं जहार'–कादम्बरी पृ० 66.

अभिज्ञान शाकुन्तल में मृग के दौड़ने का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत करते हुये महाकवि कालिदास ने लिखा है कि राजा दुष्यन्त जब मृग का पीछा कर रहे थे तब मृग गर्दन को पुनः-पुनः घुमाकर रथ की ओर मनोहरता पूर्वक देखता हुआ बाण के लगने के भय से अपनी पीठ को शरीर के पूर्व भाग में समेटकर आधे चबाये हुए कुशा के ग्रासों को, परिश्रम से खुले हुये अपने मुख से मार्ग में फेंकता हुआ, आकाश में छलांगें मारता हुआ दौड़ रहा है. यह पृथ्वी पर कम पैर रख रहा है एवं मानों आकाश में उड़ा जा रहा है. हरिण दौड़ने में इतने तेज होते हैं कि अश्व भी मानों उनसे होड़ करके दौड़ने लगे हों ऐसा उल्लेख शाकुन्तलम् में किया गया है.[23] इसी प्रकार मृग के चौकड़ी भरने के उल्लेख अन्य स्थानों पर भी प्राप्त होते हैं. अतः मृग का तेज दौड़ना मृग की एक क्रियात्मक विशेषता कही जा सकती है.

मृग हाथी, अश्व व श्वान की भाँति एक समझदार प्राणी है. गजों के समुदाय में जिस प्रकार एक मादा आगे-आगे चलती है उसी प्रकार मृगों में काला मृग समुदाय में सबसे आगे चलता है. काले मृग के बांये सींग से मृगी के द्वारा आँख खुजलाने का वर्णन मिलता है.[24] मनुष्य के दुःख में मृग भी दुःखी एवं सुख में सुखी होते देखे गये हैं. सीता के विलाप को सुनकर मृग घास का कौर गिरा देते हैं एवं वे दिलीप जैसे दयालु राजा को देख कर भयभीत नहीं होते.[25] मृगों को शायद गायन अत्यन्त प्रिय है तभी तो वे संगीत के लिये घास चरना छोड़ कर उसे ध्यान पूर्वक सुनते हैं एवं यदा-कदा व्याघ्रों के चक्कर में भी आ जाते हैं.[26]

23: ग्रीवाभंगाभिरामं मुहरनुपतति स्यन्दने बद्ध दृष्टिः,
पश्चार्ध्वेन प्रविष्टः शरपतन भयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृत मुखभ्रंसिभिः कीर्णवर्त्मा,
पश्योद ग्रप्लुतत्वातवियति बहुतरं, स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ।–शाकु० 1/7.
धावत्यमो मृगजवाऽक्षमयेवरथ्या–वही० 1/8.

24. मृगाणां यूथं तदग्रसरगर्वित कृष्णसारम्—रघु० 9/55.
'मृगांगनायूथ विभूषितानि'– ऋतु० 4/8.
शृंगेकृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूमानां मृगीयम्—शाकु० 6/17.
'हरिणाध्यासिता'—कादम्बरी० पृ० 58.

25. रघु० 14/68

26. विलोकयन्त्यो वपुरापुराणां प्रकाय विस्तार फलं हरिण्यः । रघु० 2/11.
एणकानां गीत श्रवणव्यसनम्—कादम्बरी० पृ० 127.
समासन्नकिन्नरीरव समान रवः—ह० च० पृ० 420.

गीत उनके आल्हाद का कारण है, भय का नहीं. भय की अवस्था में तो मृग भागते हैं तभी तो महाकवि भारवि ने शिव की सेना को देख कर भयभीत हुये. चमरी मृगों का उल्लेख किया है. जो कि भगने का प्रयास कर रहे थे किन्तु पूंछों के झाड़ियों में फंस जाने से भाग नहीं सकते थे.[27] काव्यों में निडर होकर विचरण करने वाले मृग का वर्णन मिलता है. [28] घरों में विचरने वाली विश्वास मेर चमरी मृगों का भी उल्लेख मिलता है. आश्रमों में मृग निडर होकर विचरण करते हैं एवं तपस्वियों के साथ हिलमिल कर रहते हैं. [29] कादम्बरी द्वारा मृगों को विस्तृत यवांकुर देने का एवं साथ ही मृग किस प्रकार मरकत मणि की किरणों को हरितवर्णा घास समझ कर खाना चाहते हैं, का उल्लेख मिलता है. [30] जिससे दो बातें सिद्ध होती हैं, प्रथम तो यह कि मृग मानव से प्रेम करता है और दूसरी यह कि मृग कभी-कभी अज्ञानवश मूर्खता भी कर बैठता है, जो उसके पशुत्व का साक्षात् प्रमाण है. परन्तु यह मूर्खत्व यदा-कदा देखा जा सकता है, सर्वदा नहीं. मृगी द्वारा अपने बच्चों को चाटना, काले हरिण का हरिणी को सींग से खुजलाना एवं राजा दशरथ द्वारा हरिण को मारने का विचार करने पर हरिणी का बीच में आकर खड़ा हो जाना मृगों के पारस्परिक प्रेम के ज्वलन्त उदाहरण हैं. जो मानस पटल पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं. [31] मृग व सिंह का सम्बन्ध एक विचित्र

गीतानिगोप्याः कलमं मृगव्रजो न नूनभल्लीतिहरिर्व्यलोकयत'–शिशु० 12/43 देखिये शिशु० 4/43. व्याधजनगीतगृहीत चित्तयैव हरिण्यैतन्न विज्ञातं मया'—मालविका०–3 (गद्य) देखिये, बु० च० 11/35. सौ० नं० 8/15.

27. किरात० 12/47
28. निरातंकरंकवः । ह० च० 423.
नष्टाशंका हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति'—शाकु० 1/15.
चमरोः ।' ह० च० पृ० 388.
29. तपोवनमृगेणानुगम्यमानः हरिति'—कादम्बरी० पृ० 111
शब्दाभि हित्वाभिमुखश्च तस्थुर्मृगाश्च लाक्षामृग चारिणश्च ।' बु० च० 7/5
'विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगाः– शाकु० 1/14
30. आभरणमरकत मयूखान् लिहते भवन हरिणशावकाय
श्रवणादपनीय यवांकुर प्रसरं प्रयच्छन्तीयम्'— कादम्बरी० पृ० 544.
परिसर विषयेषु लीढमुक्ता हरिततृणोद्गमशंकया मृगीभिः'—किरात० 5/38
31. एणी जिह्वाम्पल्लवोपालद्यमान मुनिबालकम्—काद० पृ० 120
शृंगेण च स्पर्शनिमीलताक्षीं मृगीकंडूयत कृष्ण सारः'—कुमार० 3/36.
लक्ष्यकृतस्य हरिणाय हरिप्रभावः प्रेत्यस्थिता सहचरीं व्यावधायदेहम्
—रघु० 9/57

सम्बन्ध रहा है. एक स्थान पर मृगी के बच्चे द्वारा शेरनी के दूध पीने का उल्लेख है तो अन्यत्र हिरण मारने के लिये शेरों के समुदाय को ले जाना लज्जाप्रद बताया है एवं मालवों के व्यवहार को हिरणों द्वारा सिंह के बाल पकड़ना कह कर बेचारे मृग की स्थिति का मजाक उड़ाया गया है.[32] कहीं मृग का हिंसक पशुओं के साथ विचरण बताया गया है.[33] रघुवंश में मृगों के द्वारा नीवार (धान विशेष) खाने एवं मृगों द्वारा हरी घास पर बैठने के उल्लेख मिलते हैं.[34] कुमारसंभव में मृगों द्वारा तिल खाने एवं किरातार्जुनीयम् एवं रघुवंश में कुशों को खाने व छिन्न-भिन्न करने का वर्णन मिलता है.[35] चमरी मृगों द्वारा शुक नामक वृक्ष के पत्ते खाकर उसकी जड़ों में विश्राम करने का वर्णन भी काव्यों में मिलता है.[36] इन सब बातों से यह ज्ञात होता है कि मृग एक शाकाहारी प्राणी है जो नीवार, तिल व कुशाओं को खाता है. शरभों के पानी पीने का उल्लेख कालिदास ने किया है.[37] प्राणी जगत् में बहुत से प्राणी ऐसे होते हैं, जो भोजन के बाद जुगाली करते हैं. मृग भी उनमें से एक है जिसकी जुगाली पर काव्यकारों का विशेष ध्यान गया है. हरिण आंगन में सुख से जुगाली कर रहे थे, हरिणों के जुगाली करने से फेन निकलता है, चमर मृगों के समुदाय आम के वृक्ष के नीचे बाग में जुगाली कर रहे थे, वनभूमियों के मुलायम बयानों में समुदाय के समुदाय मृग बैठ कर धीरे-धीरे पगुरी करने लगे एवं आश्रम मृग जुगाली कर रहे थे. इस प्रकार के अनेक उल्लेख काव्यों में यत्र-तत्र-

---

32. अयमुत्सृज्य मातरमजात केहरिः केशरि शिशुभिः सहोजजातपरिचयः पिवति कुरंग शावक सिंहीस्तनम् ।—कादम्बरी० पृ० 141.
हरिणार्थमति हेपरण सिंह संभारः । ह० च० पृ० 326.
सोऽयं कुरंगकैः कचग्रहः केशरिणः—ह० च० पृ० 324.
33. अपिक्षुद्रा मृगा यत्र शान्ताश्चेरुः सममृगैः—सौ० नं० 1/13.
'निर्विकारवृकविलोक्यमान पोतपीत गवयद्यनवः'—ह० च० पृ० 420.
34. 'अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचित्तैर्मृगैः'—रघु० 1/50.
मृगाध्यासित शाद्वलानि'—वही० 2/17.
35. अरण्यबीजांलिदानलालितास्तया व तस्यां हरिणाविशश्वसुः—कुमार० 5/15.
मृगद्विजालूनशिखेषुर्वाहिषाम्'—किरात० 1/40.
प्रापमुदितहरिणीदशक्षत० किरात० 12/52.
कुश गर्भमुखं मृगाणां यूथम्—रघु० 9/25.
36. ग्रन्थिपर्णं–ग्रास मुदित—चमरी कुल–निसेवितः मूलैः—कादम्बरी० पृ० 385.
37. शरभकुलमजिहै प्रोद्धरत्यम्बु कूपात्—ऋ० सं० 1/23.

सर्वत्र बिखरे पड़े हैं. 38 वियोगावस्था में मृग भी दुःखी होते हैं इसका प्रमाण है, मृगों का शकुन्तला के प्रति प्रेम. जब शकुन्तला पतिगृह जाती है तो मृग मुंह से कुशाग्रों को निकाल कर दुःख प्रकट करते हैं. इस प्रकार पगुरी करना मृग समुदाय की एक आवश्यक क्रिया है.

बेचारा मृग प्राचीन समय से ही शिकार का साधन बना हुआ है. बुद्ध चरित में विश्वास पैदा कर मृग को मारने का उल्लेख है तो रघुवंश में राजा के द्वारा मृगों को घेरने का उल्लेख है. 39 मृग मानव के मनोरंजन का भी साधन रहा है, तभी पार्वती हरिणियों की आंख से अपनी आंख को मापा करती थी. 40 मृगों के विश्राम एवं जागरण का उल्लेख भी प्राप्त होता है. 41 गज व वृषभ दो ऐसे प्राणी हैं, जो वप्रकीड़ा विशेष रूप से करते हैं. किन्तु सींगों से मृग भी कुन्दों को उखाड़ा करता है जिसे मृग की वप्रक्रीड़ा कहें, तो अनुचित न होगा. 42 अत्रि के द्वारा मृगी के साथ समागम करने का उल्लेख दशकुमार ने किया है.43 सामान्यतः हरिण सवारी का साधन नहीं है, किन्तु काव्यों में इसे पवन देव की सवारी का साधन माना है.44

मेघदूत में एक विशिष्ट प्रकार के पशु का वर्णन आया है जिसे 'शरभ' कहते

---

38. देखिये—रघु० 1/52. कादम्बरी पृ० 575.
कादम्बरी पृ० 84. ह० च० पृ० 420. वही० पृ० 137.
कादम्बरी पृ० 151.
'छायाबद्ध कदम्बं मृगकुलं रोमन्थभ्यस्यतु'—शाकु० 1/6
'उद्गलित दर्भकवला मृगाः—वही० 4/13.
रघु० 14/69.
विश्वास्य मृगान्निहन्मि' — बु० च० 6/62
चमरान्परितः प्रवर्तिताद्वः,—रघु० 9/66.
40. 'यथा तदीयैर्नयनैः कुतुहलात्पुरः सखीनामभिभीत लोचनैः, कुमार० 5/15.
41. सुख निषण्णानीलाण्डजमण्डजाः—ह० च० पृ० 420.
'प्रभातशिशिरमारुताहतमुत्तप्तजतुत्सेशिलष्ट्ं पक्षमालमिव सशेषनिद्राजिमद्मिततारं चक्षुरुन्मीलयत्सु शनैः शनैः'० —कादम्बरी पृ० 80.
42. 'ऋषिजनार्थमेणकैर्विषाणशिखरोत्खन्यमान विविध-कन्दमूलम्
—वही० पृ० 121.
43. 'अत्रेर्मृगी समागमः'—दशकुमार. च० पृ० 170.
44. कुमार० 14/10

हैं. यक्ष बादल से हिमालय-वर्णन के सन्दर्भ में कहता है कि उसकी गर्जन को सुन कर 'शरभ' अपने हाथ-पैरों को चलायेंगे. वास्तव में शरभ आठ पैरों का एक मृग होता है जो बिजली की चमक से बहुत उछलता है. उसके शरीर के लम्बे-लम्बे बाल झाड़ियों में फंस जाते हैं. वह बहुत तड़फता है और इसी बीच उसके पैर टूट जाते हैं. वर्तमान में हिमालय पर कोई शरभ नहीं मिलता. ऐसा प्रतीत होता है कि यह जाति अब लुप्त हो गई है, शरभ को 'अष्टपाद' भी कहते हैं.

उपमित मृगः—संस्कृत काव्यकारों ने मृग को अनेकधा अनेक प्रकार से उपमित किया है. शवर के बाण को मृगों के कालपाश के सदृश्य, चमरी-मृग की पूंछ के बालों को नल के बालों के समान, एवं नृपपुत्र की समता मृग से की गयी है. जो मृगराज के समान गति वाला है.[45] कम्बोज देश के नवयुवकों को आँखों के चंचल तारों वाले हरिणों की भांति उड़ान भरने वाला कहा है.[46] कि इस प्रकार के व्यक्ति के पास लक्ष्मी उज्ज्वल मयंक की भांति एक रात भी नहीं रुकती.[47] गीत के मनोहर राग द्वारा खींचे गये मन व हिरण द्वारा खींचे गये रथ की समता प्रदर्शित करते हुये महाकवि कालिदास ने लिखा है कि गीत के मनोहर राग ने मन को वैसे ही खींचा, जैसे राजा के रथ को हरिण ने.[48]

कुल कुमारियों की समता मुग्ध मृगी से की है.[49] टेढी-मेढी नदी की तुलना काले मृग के टेढे सींग से की है.[50] अन्यत्र लक्ष्मी को इन्द्रियरूपी हरिणों के पक्ष में व्याधों का गान कहा है.[51] दुराशारूपी मृगी एवं मनुष्य की इन्द्रियों को मृग कहा है.[52] शोभा की समता मृग को फंसाने वाले जाल से एवं बुद्ध के

---

45. 'कालपाशं कुरंगयूथानम्'—ह० च० पृ० 416.
स्यावालभारुयतवुत्तमांगजैः समं चमर्येव तुलाभिलाषिणः' नैषध० 1/25.
स राजसुनुर्मृगराजगामी मृगाजिरं तन्मृगवत्प्रविष्टः—बु० च० 7/2.
46. काम्बोजवासिन इवास्कंदन्तः तरलतारकाहरिणाइवोड्डीयमानाः'—ह० च० पृ० 223.
47. 'कातरुप्य तु शशिन इव हरिण हृदयस्य पाण्डुरपृष्ठस्य कुतो द्विरात्रमपि विचला लक्ष्मीः' ह० च० पृ० 337.
48. 'एष राजेव दुष्यन्त सारंगेणातिरहंसा'—शाकु० 1/5.
49. 'वनमृगीमुग्धस्यकुलकुमारी जनस्य'—ह० च० पृ० 44.
50. 'कृष्णसारमृगशृंगभंगुरा'—नैषध० 18/19.
51. 'व्याधगीतिरिन्द्रियं मृगाणाम्'—कादम्बरी पृ० 325.
52. दुराशा-मृगतृष्णिकया—कादम्बरी पृ० 500.

पैरों को मृग द्वारा चाटने को शमाभाव पान से एवं धूल को वृद्ध-हरिण विशेष के लोग गुच्छ से उपमित किया है.[53] शास्त्रों में कृष्णमृग के प्रतिबिम्ब की समता मृग के काले केशों से की गई है.[54] चमरी मृगों के प्रमाण से युक्त विंध्याटवी को राज्य की मर्यादा से उपमित किया गया है.[55] रोमावली की समता कस्तूरी से धोये गये मथुरावासी स्त्रियों के वस्त्रों से की गयी है.[56] कृष्णमृगों के द्वारा वृक्षों को खुजलाने की समता उनके द्वारा यजमानों को यज्ञ में खुजलाने से की गई है.[57] सौन्दरनन्द में पवित्र वेदियों पर सुप्त हरिणों को लावे व माधवी के फूलों के समान उपहार कहा है.[58] दमयन्ती के केशपाशों के सम्मुख समता में चमर मृग के बालों को तुच्छ माना गया है.[59] राजा की गोद में मृत इन्दुमति को चन्द्रसे मृगछाया के समान माना है अर्थात् इन्दुमति राजा अज की गोद में इस प्रकार निश्चल पड़ी है मानों चन्द्रमा में मृगशावक निश्चल है.[60] हिमालय पर्वत पर रहते वाले चमरी मृगों द्वारा घुमाई जाने वाली पूंछ ऐसी प्रतीत होती है मानों हिमायल को चंवर हिला कर उसका गिरिराज नाम सार्थक कर रहे हों. यहां चमरी की पूंछ को चंवर व हिमालय को राजा से उपमित किया गया है.[61] करधनी की तुलना कामदेव के चंचल चित्त रूपी मृग को बांधने की फांस से की गयी हैं.[62]

इन्द्रिय हरिण हारिणी च सतत मतिदुरन्तेयम् उपभोग मृगतृष्णिका ।'
—कादम्बरी पृ० 315.

53. कुरंगस्यामायमान लावण्यम्. ह० च० पृ० 106.
उपशर्मामिव पिषद्गिर्षन हरिणौ जिह्वालताभिरूप लिह्यमान पादपल्लवम्
ह० च० पृ० 424.
'क्वचित परिणतरल्लकरोमपल्लवमलिन:—काद० 351.

54. पतितकृष्णचामरप्रतिबिम्बानां च शिवछेदलग्न – केशजालकानामिव'.
—कादम्बरी पृ० 640.

55. चमरमृगबाल व्यजनो शोभितां—कादम्बरी पृ० 58.

56. 'श्यामीकृता मृगपदैरिव माधुरीणां'—नैषध० 11/106.

57. दीक्षितैरिव कृतकृष्णसारविषण कांडूयनैः । काद० 388.

58. विरेजुर्हरिणा यत्न सुप्ता मेद्द्वासुवेदिषु
कृत इव ।। सौ० नं० 1/12.

59. 'पशुना ऽ तत्तुल्य नामिमिच्छत्तु चामेरणा क :' । नैषध० 2/20.

60. मृगलेखा मुपसीव चन्द्रमा:–रघु० 8/42.

61. यस्यार्थ युक्तम् गिरिराजशब्दं कुर्वान्ति बालव्य कुमार 1/13.

62. वही० 9/25.

संस्कृत साहित्य में यत्र-तत्र-सर्वत्र मृग की आंखों की तुलना स्त्रियों के नेत्रों से की गयी है.[63] पार्वती ने आंखों की चितवन मृगों को धरोहर के रूप में दे दी एवं पार्वती ने आंखों की चितवन हरिणियों से सीखीं-इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं.[64]

मृगनयनी स्त्रियों के उल्लेख सभी काव्यों में बिखरे पड़े हैं.[65] तात्पर्य यह है कि स्त्रियों के नेत्र मृगी के नेत्रों के समान बड़े होते हैं एवं उनमें मृगी के समान चितवन भी देखी जा सकती है.[66] कतिपय स्थानों पर मृगशावक के सदृश्य अधीर नेत्रों वाली स्त्रियों का उल्लेख भी प्राप्त होता है.[67] अन्यत्र हरिणियों की आंखों को चमक के समान बताया है और दमयन्ती के नेत्रों को हरिणी के सदृश्य कहा है.[68] एक स्थान पर दमयन्ती के नेत्रों की समानता में अपने नेत्रों को तुच्छ समझने वाले मृगों का खुर द्वारा नेत्र-कण्डूयन वर्णित किया गया है.[69]

प्राप्य पदार्थ :—मृग जाति से मानव समाज को अनेकानेक वस्तुओं की उपलब्धि होती रही है. इनमें से मृगचर्म, कस्तूरी एवं चामर तीन वस्तुएं प्रमुख हैं. मृगचर्म धारण करने का उल्लेख अनेक बार हुआ है.[70] मृग की खाल को पकाने, आसन के रूप में बिछाने एवं वस्त्र के रूप में पहनने का वर्णन विभिन्न

---

63. स स्वर्गीय मृगवदान्तीय वशीकाराय मारायते. नैषध० 14/89.
64. विलोल दृष्टं हरिणांगनासु च'-कुमार० 5/13.
65. देखिये.-रघु. 8/59, ऋ. सं. 4/10 मेघ. उ. 37, बु. च. 28/14. ह. च. पृ. 48, कुमार. 5/72. नैषध. 7/72. विक्रम. 4/8, मालविका० 3/1.
66. चकित हरिणीप्रेक्षणो दृष्टिपातं'—मेघ. उ. 46
'चकित बालकुरंगलोचना'-द. कु. च. पृ. 84.
67. वनिताभिधीरलोचनाभिर्मृगशाबाभि-'बु. च. 5/41
बालपृषद्दिद लोचना'-नैषध-12/77.
68 पर्यन्तसंस्थितमृगीनयनोत्पलानि'-ऋ. सं. 3/14.
'हरिणीदृशेवम्'-नैषध. 10/133.
69. 'स्वदृशोजनयन्ति सान्त्वनां खुरकण्डयनकतवान मृगाः-नैषध 2/21.
70. देखिये-नैषध. 10/97, 101, 104.
'अपश्यज्विनमन्विध्यन्नजिनं ब्रह्मचारिणा'-नैषध. 17/189.
शिशु. 1/6 किरात. 12/27.

काव्यकारों ने किया है.[71] अस्त्रों की मंत्रयुक्त शिक्षा लेने के लिये एवं आखेट पर जाते समय मृग चर्म धारण किया जाता है.[72]

द्वितीय मुख्य प्राप्त-वस्तु कस्तूरी है जिसकी सुरभि इतनी उत्कृष्ट होती है कि यदि मृग शिलातल पर बैठा हो तो वह स्थान सुगन्धित हो जाता है.[73] कस्तूरी के सम्पर्क से महल, पवन एवं दिशाओं के सुरभित होने के वर्णन भी काव्यों में मिलते हैं.[74] हिमालयवासी लोगों के लिये कहा गया है कि वे कस्तूरी की सुरभि में बसे हुये मृग रोम द्वारा निर्मित वस्त्रों को पहनने वाले हैं. इसी प्रकार अस्त्र शिक्षा के समय रघु द्वारा मृग चर्म पहनने का वर्णन भी मिलता है.[75] कस्तूरी के सम्पर्क से वस्तुयें श्यामवर्ण हो जाती हैं.[76] मृग के बाल एवं सींग भी कतिपय कार्य कलापों में उपयोगी सिद्ध हुये हैं.[77] हरिणों के शिकार करने का उल्लेख भी बहुत मिलता है. एक स्थान पर लिखा है कि हरिण सांभर इत्यादि को मारने से खेत की

---

71. 'सक्रियमाण कृष्णाजिनं'–कादम्बरी पृ. 122
'आस्तीर्णाजिनरत्नासु'–रघु० 4/65.
कृष्णाजिनविकीर्ण शुष्यत्पुराढाशीय श्यामाकतण्डुलानि' ह. च. पृ. 78.
'कृष्णाजिनी'–वही. पृ. 68.
'नक्षत्रराशिखि चित्रमृगकृत्तिकाश्लेषोपशोभितः'
—कादम्बरी. पृ. 113.

72. 'परिधाय रौरवीमशिक्षतास्त्र'–रघु. 3/13. अजिनदण्डभृतं–वही. 9/21

73. 'आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां'–मेघ. पृ. 56.
'मृगस्यनाभिकस्तूरिका सौरभवासनाभिः'–नैषध. 22/85.
दृषदोवासिजोत्संगा निषण्ण मृगनाभियः'–रघु. 4/74.

74. इतस्ततः प्रचलित–ररिचिताभित कस्तूरिका कुरंग परिमललवासितदिङ्मुखम्'
—कादम्बरी–पृ० 271.
'कस्तूरिका मृग विमर्द सुगन्धिरेति'-शिशु. 4/61.
'परिमला मोदितककुभचकस्तूरिका कुरंगान्'–ह. च. पृ० 389.

75. 'मृगमदपरिमल वाहिमृगरोमाच्छादितैर्हिम वत्पादैरिव महत्तरैः स्थिरीकृतः'
ह. च. पृ. 162.

76. 'हरिण मदेन स कृष्णः'–नैषध. 21/45

77. 'मृगशृंग परिग्रहाम्:–रघु. 9/21
'केश्चिदगृहिता चमर माल'–कादम्बरी. पृ. 93.
चामरग्राहिणी'–वही. पृ. 545.

फ़सल चर जाने से बच जाती है.[78] अन्यत्र एक मृग एक ही समय दो व्यक्तियों द्वारा मारा जाने से भेदभाव का कारण है तो फिर कहीं मृगों को मारने के चातुर्य का प्रदर्शन किया गया है.[79]

यद्यपि मृग को गोद में धारण किये है फिर भी चन्द्रमा को मृगलांछन कहा गया है.[80] अन्यत्र मृग-तृष्णा से हिरण चन्द्रमा से लिपटा रहता है, ऐसा वर्णन मिलता है.[81] मृग-युक्त चन्द्र को कलंकित समझते हुये लोग इसको देखते हैं.[82]

मनुष्य सर्वदा पशु पक्षियों को प्रेम करता रहा है तभी तो उसने अपनी कलाकृतियों में भी मृग की मूर्तियों का निर्माण किया है.[83] स्वर्ण के बने मृग व मृग-युक्त रथ का वर्णन भी मिलता है.[84]

इस प्रकार काव्यकारों ने मृग का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है. मृग का सबसे अधिक वर्णन बाण ने किया है. द्वितीय स्थान कालिदास का है. बाण ने कादम्बरी में ८९ बार व हर्षचरित में ४२ बार कुल १३१ बार मृग का वर्णन किया है. कालिदास ने रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, ऋतुसंहार, अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोवर्शीय व मालविकाग्निमित्र में क्रमशः ३१, १४, ५, ६, १८, ५ व २ बार मृग का उल्लेख किया है. इस प्रकार कालिदास ने मृग का वर्णन कुल ८१ बार किया है. इसके अतिरिक्त श्रीहर्ष, माघ, अश्वघोष, सुबन्धु, भारवि व दण्डी ने अपने काव्यों में क्रमशः ६३, २०, १६, १६, १५ व ८ बार मृग का वर्णन किया है. इस प्रकार संस्कृत काव्यों में मृग का उल्लेख कुल मिलाकर ३४० बार हुआ है, मृग के वर्णन का विश्लेषण आगे तालिकाओं में प्रस्तुत किया जाता है.

---

78. 'हरिण गवतगवयादिवधेन सस्यलोपप्रतिक्रिया–ह. च. पृ. उ. 8/24
79. कृपेति चेदस्तु मृगः क्षतः क्षणादमनेन पूर्व न भयेति का गतिः'
–किरात. 14/15.
'मृगवधू वैधव्य दीक्षादानदक्षैरनेकवर्णैः श्वभि':–काद. पृ. 93.
80. 'अंकाधिरोपितमृगश्चन्द्रमामृगलांछनः'–शिशु.2/53.
उत्संगसंगि हरिणस्य मृगांक मूर्त्तेः'-वही. 4/22.
81. 'नैनं मृस्त्यजति तन्मृगतृष्णयेवा'–नैषध. 22/153. शिशु. 6/34.
82. 'म्लानिस्थानं तदपि नितरां हरिणो य कलंकः–नैषध. 19/56
वही. 22/66.
83. 'अन्यत्राङ्कुरितामिव कुटिल हरिण विषाण कोटि-कुटैः'–कादम्बरी. पृ. 638.
84. 'मृग प्रयुक्तान् रथकांश्च हेमानचक्रिरेऽ हस्मै सुहृद्दालयेभ्यः—' बु. च. 2/21.
'हिरण्मयान् हरितमृगाश्च कांश्च'–बु. च. 2/22.

तालिका—१

'मृग' के वणन का कालीदास के काव्यों में विश्लेषण (८१)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
३१	रघु०	१।४०, ५०, ५२. २।११, १७. ३।३१. ४।६५. ७४. ५।७. ८।४२. ५६ ७६, ६।२१, २१, ५१, ५५, ५७, ६६, ७२, ११।२३, ४४, १२।३७, ५३. १३।१८, २५, ३६, ४३, १४।६७,. १६।१५, १८।७. १३.
१४	कुमार०	१।१३, १५, ४६, ४८. ३।३१, ३६. ५।१३, १५, ७२. ८।३८. ६।२५. १४।१०, २७, २६.
५	मेघ०	१।२५, ५६, ५८. २।३७, ४६.
६	ऋतु०	१।२३, २।८, ६. ३।१४. ४।८, १०.
१८.	शाकु०	१।५, ६, ६, गद्य. गद्य, गद्य, १०, १४, २५. गद्य. २।३. ३।६. ४।गद्य १२. १४. ६।१४, गद्य, १७.
२.	मालविका०	३।१, गद्य
५.	विक्रम०	२।गद्य, ४।८, ५७, ६१, गद्य.

तालिका—२

'मृग' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (२५६)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्व घोष	११	बु० च०	१/२६, २/२, २२. ५/४१. ६/६२. ७/२, २८. ११/३५. १३/५३. २६/३८. २८/१४.
	५	सौ० न०	१/१२, १३. ४/३६. ८/१५. ७/३३.
भारवि	१५	किरात०	१/४०. ४/३३. ५/३८. ११/५८. १२/२७, ३८, ४७, ५२. १३/४६, ६३, ६८. १४/१३ से १५. १५/१०.
माघ	२६	शिशु०	१/६, ३६. २/५३. ४/२२, ३२, ४३, ४६. ५/५३. ६/६, ३४. ६/८३. १०/३६. १२/३० ४२, ४३. १५/२०, ८०. १७/३६. १६/१२०. २०/६१.
श्रीहर्ष	६३	नैषध०	१/२५. २/२०, २१, ६७, ८३. ४/१४. ५/१३१. ६/१८. ७/३०. ३३, ७२, १०८. ८/४०. ६/२६. १०/३३. ६७, १०१. ४, ३३. ११/४, ५३, ६०, ६७, १०६. ६, २१, २३. १२/१५, ४२, ४६, ७५,७७. १३/१७. १४/८६. १५/७, ३०, ३७. १६/२१, ८६. १७/६८, १८६ १८/७, १२, १६, ५६. २०/१४५. २१/२६, ४५. २२/२४ २६, ६४,६६,से७६,७८,१०६,७,१५,२३२४,३२,३५,३८.
सुबन्धु	१६	वासवदत्ता	पृ० ६०, ६५. ६५, ६८, ८२, १२७, ३४, ५५, २०४, ६. २५, ३२, ३३, ३३, ४६, ५१.
बाण	४२	ह० च०	पृ० १५, १७, १६, २३, २४, ४४, ४८, ५४, ५८, ६८, ७८,६६,१३८,६२, ६५. २२३, ३८, ५३, ५८, ५८, ६१, ७०, ७५, ३२४ २६, ३७, ४०, ५०, ५१, ५७, ८८, ८८, ६२,४१०, १५. १०, २०, २०, २०. २०, २४, ४२, ५०.
	८६	कादम्बरी	पृ० ४१, ४६, ५०, ५८, ६०, ६६, ७६, ७८, ८०, ८३, से ८५, ८५, ८६, ६१, ६३, ६३ ६५, ६५. ६८, १००, ११, ११, १३, १७, १७, २० से २२, २६. ४१, ४१, ४२, ४६, ५०, ५०, ५२, ५५, ६१, ८६, ६०, ६६, २६१, ६५, ७१, ७१, ७२, ७५, ८६, ६१, ६३, ६३,३०३, ३, ४, ४, १५, १५, २५, २७, ४१, ५१ ७०, ८३, ८५, ८८, ६८, ६८,४०४,२०, ७५, ६६, ५००, १७, ३३, ३५, ४४, ४६, ५७, ७५, ६६, ६१६, ३५, ४०, ७११, ३३, ४१, ६३, ६५,
दण्डी	८	द० च०	पृ० ५१, ८४, १०४, ६, १६, २८, ७०, ४४६.

— — —

सिंह
THE LION

'अवेहि मां किंकरमष्टमूर्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्'।

—रघुवंश २/३५

सम्पूर्ण-संस्कृत-साहित्य में वर्णित पशु-वर्ग में सिंह का प्रमुख स्थान रहा है. वैदिक काल से लेकर काव्यों तक सिंह के वर्णन की अविरलधारा प्रवाहित होती है. वैदिक साहित्य में सिंह के लिये सिंहः[1] शब्द का प्रयोग किया गया है. वाल्मीकि रामायण में सिंह का वर्णन अनेकधा आया है एवं इसे सिंहः[2] व हरिः[3] नामों से कहा गया है. अमरकोष में शेर के लिये सिंहः, मृगेन्द्रः, पंचास्यः, हर्यक्षः, केसरी व हरिः पर्याय शब्दों का उल्लेख है.[4]

भारतीय राजचिन्हों में सिंह को प्रमुखता दी गयी है. यह भी उसके राजत्व की स्वीकारोक्ति है. सिंह वन का राजा माना गया है. यह विशुद्ध जंगली एवं मांस-हारी जीव है. वैज्ञानिकों की दृष्टि में यह मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत बिल्ली-समूह के बिल्ली परिवार का सदस्य है.[5] सिंह विश्व के सभी भागों में पाया जाने वाला जीव है. यह भारत, अमेरिका व फारस में पाया जाता है. सिंह रेतीले मैदानों, चट्टानी भागों में एवं लम्बी घास व झरने वाले स्थानों में रहना पसंद करता है. यह घने जंगलों में रहना पसंद करता है. इसे मुक्त वातावरण वाले भाग अधिक प्रिय है. आधुनिक युग में सिंह का अभाव स्पष्टतः देखा गया है कारण कि यह विश्व के विशालकाय पशुओं में से हैं, फिर भी अजायबघरों में देखा जा सकता है. सिंह एक डरावना रोबीला जीव है. इसी कारण जगत् के रोबीले लोग सिंह सम्बन्धित नाम

---

1. ऋक्० 1/64/8, 1/95/5 अ० वे० 4/36/6. तै० सं० 5/5/21/1. का० सं० 12/10 मै० स० 2/1/9.
2. 'सिंहविप्रेक्षितौ वीरो महाबलपराक्रमो' —वा० रा० कि० 3/8
3. 'दृप्तसिंहगतिस्ततः'—यथोपरि० कि० 14/14
   'हर्यश्च हरयो पत्यम्' —यथोपरि० 3/14/24
4. 'सिंहोमृगेन्द्रः पंचास्यो हर्यक्षः केसरी हरिः-इत्यमरः (सिंहादिवर्ग)
5. ए० किंग० पृ० 580 जीवजगत पृ० 665.

रखते देखे गये हैं यथा—शेरसिंह, केसरीसिंह, बाघसिंह, शार्दूलसिंह, रामसिंह, हिम्मतसिंह, ओङ्कारसिंह आदि-आदि. सिंह के शरीर पर हल्के बाल होते हैं. जिनका रंग भूरा, पीला एवं मटियाला में से एक होता है. इसके सिर पर काफी बाल होते हैं जिनके कारण यह अति सुन्दर लगता है. इसके नाक के नीचे के भाग में ३ इन्च से ५ इन्च लम्बी मूंछे होती है. पूंछ के सिरे पर बालों का एक गुच्छा होता है. जो गहरे भूरे या काले बालों से युक्त होता है. इसकी कमर पतली होती है एवं सीना उठा हुआ होता है. इसका सिर चपटा एवं विशाल होता है. सिंह के दांत बड़े मजबूत होते हैं. यह हड्डियों को आसानी से चबा सकता है. शेर का शयनकाल दिन में होता है. यह गुफा या किसी झरने के किनारे घास के बीच दिन के गर्म भाग को व्यतीत करता है. इसका कार्यकाल रात का समय है.[6]

सिंह शुद्ध मांसाहारी जीव है. इसके प्रमुख खाद्य हैं—जेबरा, जिराफ, भैंसा, बारहसिंघा, बतख आदि. शेर जीने के लिये मारता है अर्थात् बिना आवश्यकता के यह किसी पशु को नहीं मारता.[7] मनुष्य पर सिंह यदा-कदा ही हमला करता है. सामान्यतः वह मनुष्य से दूर ही भागता है. सम्भवतः उसे मनुष्य की बुद्धि का ज्ञान है. सिंह कामी पशु नहीं. यह शेरनी के साथ किसी एकान्त स्थान की खोज करता है. सामान्यतः सिंह की मादा एक बारगी एक बच्चा देती है. किन्तु यदा-कदा दो बच्चे भी देखे गये हैं. गर्भाधान के १०८ दिन बाद बच्चा परिपक्व होता है.

सिंह व शेरनी में कतिपय मुख्य भेद होते हैं. सिंह की लम्बाई पूंछ सहित १० फीट तक होती है जबकि शेरनी की ९ फीट या इससे भी कम. सिंह की ऊंचाई कंधे से ३ फीट होती हैं. वजन करीब ५०० पौंण्ड, जबकि शेरनी कद में छोटी एवं वजन में ३०० पौण्ड मात्र होती है.[8]

सिंह समुदाय-प्रिय जीव है. इसे अकेला बहुत कम अवसरों पर देखा जा सकता है.[9] शेर की दहाड़ बड़ी भयंकर होती है. जो शाम को या रात को सुनने में आती है. इसकी दहाड़ का समय व स्थान सुनिश्चित सा होता है जिससे शिकारी लोग इसके निवास स्थान का अनुमान करने में सफल होते हैं.

सिंह का जीवनकाल १५ वर्ष होता है. पर कई सिंह २५ वर्ष तक भी जीवित देखे गये हैं[10] मरणोपरान्त सिंह का शरीर मसाले भरकर अजायबघर में रख दिये

6. ए० किंग पृ० 581
7. यथोपरि० पृ० 582
8. इन० चेम्बर० भाग 6 पृ० 402
9. ए० किंग पृ० 581
10. इन० चेम्बर भाग 6 पृ० 402

जाते हैं. इसकी खाल बिछाने के काम आती है. कतिपय शोभादायक वस्तुओं का निर्माण भी इसकी खाल से होता देखा गया है.

संस्कृत–साहित्य में सिंह

संस्कृत साहित्य में वर्णित पशु-वर्ग में सिंह का प्रमुख स्थान रहा है. सिंह-वर्णन की यह परम्परा हमें वैदिक काल से अविच्छिन्न रूप में मिलती है. वैदिक साहित्य में इसके लिये सिंह शब्द का प्रयोग हुआ है. वाल्मीकिरामायण में सिंह का वर्णन अनेकधा मिलता है. वहाँ इसे सिंह एवं हरि कहा गया है. परवर्ती साहित्य में इसके बहुविध पर्यायवाची शब्द मिलते हैं. यथा: केसरी (रघु०, काद०), हरि (नैषध, हर्षच०), सिंह (रघु०, ह०), मृगेन्द्र (ऋतु), मृगपति (कादम्बरी), मृगराज (रघु०, बुद्धचरित), मृगाधिप (किरात०), मृगाधिराज (रघु०), मृगेश्वर (ऋतु०), द्विपद्विष (शिशु०). यहाँ कालिदास एवम् उत्तरवर्ती प्रमुख रचनाकारों की कृतियों में समाविष्ट सिंह-वर्णन पर विवेचन किया गया है.

सिंह विशेष: कुम्भोदर–महाकवि कालिदास ने अपने काव्य रघुवंश के द्वितीय सर्ग में एक सिंह विशेष की कल्पना की है, जो अपना नाम कुम्भोदर बतलाकर निकुम्भ का मित्र बताता है.[11] उसकी सबसे बड़ी विशेषता है उसका मनुष्य के समान बोलना.[12] वह राजा दिलीप से बातचीत करता है एवं कहता है कि वह कोई साधारण सिंह नहीं है. अपितु भगवान् शंकर का दास है एवं पार्वती ने उसे वन के रक्षार्थ रख छोड़ा है.[13] वह राजा से कहता है कि हे राजन् ! तुम व्यर्थ एक गाय मात्र के लिये अपने एकछत्र राज्य को खोना चाहते हो, यह तुम्हारी मूर्खता का स्पष्ट प्रमाण है.[14] किन्तु भक्त दिलीप स्वयं को गो के लिये अर्पित करने के लिये तत्पर हो जाता है. वह सिंह के सम्मुख आंख बन्द कर गिरने लगता है, सिंह गायब हो जाता है. इस प्रकार कालिदास ने एक सिंह की सुन्दर कल्पना प्रस्तुत की है, जो अन्यत्र दुर्लभ है.

मानव व सिंह :—मानव व सिंह का दूर का सम्बन्ध सदा से रहा है. मानव अपने नाम के आगे सिंह शब्द का प्रयोग आज भी करता देखा गया है. बाण ने सिंहनाद नामक सेनापति का उल्लेख किया है.[15] राज्यवर्धन को सिंह कहा है. कहीं वे

---

11. रघुवंश 2/35.
12 रघुवंश 2/33.
13. रघुवंश 2/35; 2/38.
14. रघुवंश 2/47.
15. हर्षचरित, पृ० 333.

पुरुषसिंह गिरिकन्दरा में न चले जायं.[16] एक कैदी का नाम सिंहघोष बनाया गया है [17] एक स्त्री को तेज शस्त्रों की धारा के वनों में विचरण करनेवाली सिंही कहा है.[18] कृष्ण, बलराम व उद्धव को सिंह कहा गया है [19] एक सिंहाकृति राक्षस का भी उल्लेख मिलता है.[20] भरत के द्वारा खेलने के लिये जबरन सिंह शावक को खींचने का वर्णन कालिदास ने किया है.[21] शकुन्तला भरत से कहती है कि यदि वह शेरनी के बच्चे को नहीं छोड़ेगा तो शेरनी उसपर आक्रमण कर बैठेगी.[22] पर भरत सिंह के बच्चे से मुंह खोलने को कहते हैं क्योंकि वे उसके दांत गिनने के इच्छुक हैं.[23] तपस्विनी राजा को देखकर भरत द्वारा कसकर पकड़े हुए सिंह शावक को छुड़ाने को कहती है.[24] भारतीय साहित्य में अवतारों का बड़ा महत्त्व रहा है. दण्डी ने अपने काव्यों में जयसिंह, सिंहवर्मा, चण्डसिंह नामक व्यक्तियों का उल्लेख किया है.[25] नृसिंहावतार भी उसमें से एक अवतार रहा है. नृसिंह नर एवं सिंह की साम्यावस्था है. अर्थात् नर के शरीर पर सिंह का सिर लगा हुआ है. भगवान कृष्ण को माघ ने नृसिंह कहा है.[26] बिम्बसार को अश्वघोष ने नृसिंह कहा है[27]; अन्यत्र भगवान बुद्ध को भी.[28] बाण ने चन्द्रापीड़ को नरसिंह कहा है. एवं अन्यत्र एक श्यामवर्ण के युवक की आवाज की समता नृसिंह से की गयी है.[29] इस प्रकार काव्यों में नृसिंह का वर्णन यदा-कदा मिलता है.

क्रियाकलाप—काव्यों में सिंह के अनेक कार्यों का सुन्दर वर्णन मिलता है.

---

16. हर्षचरित, पृ० 304.
17. हर्षचरित, पृ० 243.
18. हर्षचरित, पृ० 196.
19. शिशुपाल वध; 2/5
20 शिशुपाल वध; बु० च०, 13/52.
21. अभिज्ञानशाकुन्तल, 7/14.
22. अभिज्ञानशाकुन्तल, (गद्य)
23. अभिज्ञानशाकुन्तल, (गद्य)
24. अभिज्ञानशाकुन्तल, (गद्य)
25. दशकुमारचरित, पृ० 147.
26. शिशुपालवध, 1/47; 14/72.
27. बु० च०, 10/17.
28. बु० च०, 25/8
29. कादं०, पृ० 340; ह० च०, 191.

सिंह झाडियों के मध्य घूमा करता है.[30] सिंह एक हिंसक पशु है. उसके द्वारा गाय को दबोचने का वर्णन मिलता है.[31] सिंह हाथियों को मारकर अपना आहार सम्पन्न करता पाया गया है.[32] कई बार सिंह गज को मारकर भी चला जाता है एवं उसे आहार नहीं बनाता.[33] माघ ने सिंह की क्रूरता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा है कि लोग उस निर्दय सिंह को मृगाधिप की संज्ञा देते है जो मृगों का हनन करता है. गर्मी का मौसम इतना भयंकर होता है कि गर्मी के कारण पशु पक्षी अपने आपसी भेदभाव को भुला देते हैं, तभी तो सिंह के पास शयन करनेवाले गज को वे नहीं मारते.[34] आश्रम के प्रभाव में भी पशु हिंसा को त्याग देते हैं. भदन्त के आश्रम में विश्रब्ध भाव से बैठे हुए सिंह-शावकों का उल्लेख उपलब्ध होता है.[35] दहाड़ना सिंह की एक प्रमुख क्रिया है. मेघ की गर्जन को सुनकर सिंह दहाड़ करते हैं.[36] बाण ने प्रभात में सिंह के दहाड़ने का उल्लेख किया है.[37] अतः बाण का यह कथन सत्यता से परे हटता प्रतीत होता है. सम्भवतः बाण ने सिंह की दहाड़ सूर्योदय के काफी पूर्व सुनी होगी और प्राचीन परम्परा के अनुसार ३-४ बजे के समय को प्रभात मानकर यह लिखा होगा या किसी अवसर विशेष के कारण सिंह ने प्रातः दहाड़ की हो. ये दोनों ही बातें सम्भव हो सकती हैं. पर सिंह रात या शाम को सुनिश्चित समय पर ही दहाड़ता है इसमें दो राय नहीं हो सकती. प्रातःकाल में शेर के जम्हाई लेने का उल्लेख मिलता है.[38] सिंह के सोने का वर्णन भी कवियों ने किया है. माघ ने इसका सूक्ष्म निरीक्षणात्मक वर्णन करते हुए कहा है कि सिंह नेत्रों को खोलकर पुनः बन्द कर लेता है.[39] कवि का यह वर्णन 'श्वनीनिद्रा' से काफी साम्य रखता है. निद्रा के बीच यदि सिंह को बाधा पहुँचती है तो वह भड़क उठता है. दशरथ के बाण की टंकार एवं हाथी की चिग्घाड़ से निद्रा त्याग किये सिंह का क्षुब्ध होना वर्णित है.[40]

---

30 काद०, पृ० 59.
31. रघु०, 2/27.
32. किरा०, 2/18; विक्रमो० 4/63.
33. द० च०, पृ० 40.
34. द० च०, ऋ० 1/14, एवम् 1/27.
35. ह० च० पृ० 424.
36. किराता० 2/21.
37. काद० पृ० 82.
38. काद० पृ० 79.
39 काद० पृ० 30, शिशुपा०, 12/52.
40. रघु०, 9/54 तथा 964.

उपमित सिंह :—अन्य पशुओं की भांति कवियों ने सिंह को भी बारम्बार उपमित किया है. काव्यकारों ने भगवान बुद्ध, राजा पुष्य, राजा ध्रुवसन्धि, तारापीड़, भगवान कृष्ण, अज, सिंहवर्मा, महाराज शुद्धोदन, राजवाहन, प्रभाकरवर्धन, हर्षवर्धन व चन्द्रापीड़ को यत्र तत्र सवत्र सिंह से उपमित किया है. भगवान् बुद्ध को सिंह की सी गति वाला कहा गया.[41] विषयों से लुभाये गये बुद्ध की दशा को विषलिप्त तीर से विद्ध उस सिंह के समान बताया है जिसे इस दशा में न धैर्य होता है न चैन.[42] अन्यत्र बुद्ध को गोओ के मध्य स्थित सिंह के समान कहा है.[43] बुद्ध की आवाज की समता सिंह की आवाज से की है.[44] यक्षों के द्वारा की गयी घोषणा की ध्वनि की तुलना सिंह की आवाज से की गई है.[45] राजा रघु का कुल पुष्य की उपस्थिति में उसी प्रकार शोभायमान हुआ, जैसे एक मृगशावक की उपस्थिति में वन.[46] यहां रघुकुल व वन एवं मृगशावक व पुष्य की समता प्रदर्शित की गयी है. राजा ध्रुवसन्धि को मनुष्यों में सिंह कहा है.[47] तारापीड़ को मृगपति कहा है.[48] भगवान कृष्ण को हाथियों को मारने वाले (द्विपद्विष। अर्थात् सिंह कहा गया है.[49] मंच पर चढ़ते हुये अज की तुलना शिला पर बैठे हुये सिंह के बच्चे से की है.[50] चम्पेश्वर को सिंह सदृश असाधारण पराक्रमी कहा है.[51] महाराज शुद्धोधन के कधों की समता सिंह के कंधों से की है.[52] पिंजरे में बंद राजवाहन को पिंजरे में बंद सिंह के बच्चे से उपमित किया है.[53] प्रभाकरवर्धन को सिंह एवं राज्यवर्धन को सिंह-शावक कहा गया है. प्रभाकरवर्धन ने कवच धारण करने योग्य राज्यवर्धन को हूणों के दमन के लिये भेजा, जिस

---

41. बु० च०, 5/27; 8/56 तथा 1/55.
42. बु० च०, 5/1.
43. बु० च०, 13/33.
44. बु० च०, 24/2.
45. बु० च०. 15/61
46. रघु० 18/37.
47. रघु० 18/65.
48. काद०, पृ० 184.
49. शिशु०, 1/39.
50. रघु०, 6/3.
51 द० च० पृ० 1`8.
52 सौ० न०, 2/58.
53. द० च०, पृ० 137.

प्रकार एक सिंह अपने बच्चे को हरिणों को मारने भेजता है.[54] प्रभाकरवर्धन की आवाज की तुलना सिंह से की गयी है.[55] महाकवि बाण ने विद्यालय में रखे गये चन्द्रापीड की तुलना पिंजरे में रखे सिंहशावक से की है.[56] पुरुषों की भांति स्त्रियों की तुलना सिंह या शेरनी से करने में संस्कृत के कवि सिद्धहस्त हैं. प्रभाकरवर्धन की पत्नी को बाण ने सिंह के सदृश प्रकाण्ड पुरुष की शेरनीवत् गृहिणी कहा है.[57] विन्ध्याटवी की शोभा की तुलना सिंहवाहिनी पार्वती से की हैं.[58] चन्द्रमुखी पुतलियों की उपस्थिति में मृगलाञ्छनों के अभाववाली नगरी की तुलना सिंह के द्वारा मृगों को मारकर साफ करने से की गयी है.[59] यहां नगरी में चन्द्रमुखियां है. अत: मृगों का अभाव है, वह अभाव उसी प्रकार है जिस प्रकार सिंह मृगों को मारकर सफाया कर देता है. चन्द्र की लालिमा की तुलना सिंह के द्वारा मारे गये मृग के लाल रक्त से की गई है.[60] अगस्ति कुसुम की कलियों की समानता सिंह के नखों से की है.[61] गेरु के पहाड़ पर लगे लोध्र के पुष्प की तुलना नन्दिनी पर बैठे सिंह से की गयी है [62] गजमद से भीगे हुए भीलों के बालों की तुलना सिंह के अयाल से की गयी है.[63] तपे हुये सोने के तारों से मंढे हुये चांदी के बने टूटे हुये भगवान् कृष्ण के बाजूबन्द से धातु की शिला के सम्पर्क में आने से पीत हुये सिंह से समना की गई है.[64]

सिंह और सिंहासन: — सिंह के चर्म से बने आसन को सिंहासन कहा जाता है. सिंहासन का उल्लेख कवियों ने किया है. चन्द्रापीड़ के सिंहासन पर बैठने का उल्लेख मिलता है.[65] बहुमूल्य एवं स्वर्ण निर्मित सिंहासनों पर बैठने के उल्लेख मिलते हैं.[66] बाद में चलकर सिंह के चित्र या मूर्ति से उक्त आसन को भी यह कहा जाने

---

54. ह० च० पृ० 257.
55. ह० च०, पृ० 286.
56. काद० पू०, पृ० 230.
57. ह० च०, पृ० 291
58. कादम्बरी, पू० पृ० 58.
59 नैषध 2/83.
60. ह० च० पृ० 27.
61. कादम्बरी, पृ० 6 7.
62. रघु०, 2/29.
63. कादम्बरी, पृ० 90.
64. सौ० न०, 10/9.
65. रघु०, 15/83; काद०, पृ० 340.
66. रघु०, 7/18; बु० च०, 23/8; द० च०. पृ० 15. मालविका०, 1/12; रघु०, 4/4.

लगा. काव्यों में सिंह का सबसे अधिक उल्लेख महाकवि कालिदास ने किया है. उन्होंने रघुवंश में ४४, कुमारसंभव में ७, ऋतुसंहार में २, अभिज्ञानशाकुन्तल में ५, मालविकाग्निमित्र में एक, विक्रमोर्वशीय में २, कुल ६१ बार, सिंह का उल्लेख किया है. द्वितीय स्थान बाण का है, जिन्होंने हर्षचरित में ३३ एवं कादम्बरी में १२, बार कुल ४५ बार, सिंह का वर्णन किया है. इसके अतिरित अश्वघोष ने २४, दण्डी व माघ ने १८-१८ बार, सुबन्धु ने १० बार, भारवि ने ६ बार एवं श्रीहर्ष ने ५ बार सिंह का उल्लेख किया है.

इस प्रकार प्रस्तुत काव्यों में सिंह का वर्णन कुल मिलाकर १८७ बार हुआ है. सिंह के वर्णन का विश्लेषण तालिकाओं में अवलोकनीय है.

तालिका–१

'सिंह' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (६१)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
४४	रघु०	२।२७ से ३१,३३ से ६१,४।४, ७२. ६।३. ७।१८. ६।५४. ६४. १५।८३. १७।७. १८।३५. ३७ से ४०.
७	कुमार०	१।६, ५६. ६।३६. ७।३७. ११।४३, ४४. १४।२७, २८, २६.
२	ऋतु०	१।१३, २७.
५	शाकु०	१।गद्य. ७।३, १४, गद्य, गद्य.
१	मालविका०	१।१२.
२	विक्रम०	१।१७. ४।६४.

तालिका–२

'सिंह' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (१२६)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	२०	बु० च०	१।१५. ५।१, २७, २७, ७।२. ८।५३. १०।१७, १३।१६, ३३,५०. १५।६१. २१।१८. २३।८. २४।२. २५।८. २८, ३१, ५६. २६।३६. २७।६.
	४	सौ० न०	१।१६ २।५८. ८।४४. १०।६.
भारवि	६	किरात०	२।१८. २१. ७।३६. १२।४८. १५।४५. १६।५०.
माघ	१८	शिशु०	१।३६, ४७, ४८. २।५, ५३. ५।११२. ६।१६. १२।५२ १३।२८. १४।७२, ७३ १५।३४. १६।३४, ५६. १७।३२. १६।२, २१, २६.
श्रीहर्ष	५	नैषध०	२।३३. १२।७४, १३।५. १६।६. २१।५६.
सुबन्धु	१०	वासवदत्ता	पु० ७,६५ ७६, ७६ ८०, ६८, १६३, २२३, २३, ३४.
बाणभट्ट	३३	ह० च०	पृ० २७, ५५, ६०, ८२, ११६, ५४, ६१, ६६, २१६, ३०, ३८, ५७, ५८, ६१, ८७, ६१. ३०७, १४, २०, २२, २२, २४,२६, २६, ३२, ३२, ३३, ३३, ३७, ४०, ४०५, १६, २८.
	१२	कादम्बरी	पृ० ५८, ५६, ७६, ८२, ६०, १८४, २३०, ३०२, ४०, ४०, ८०, ६३७.
दण्डी	१८	द० च०	पृ० २३, ४१, १२६, ३७, ३८, ३८, ४७, २३७, ४३, ४७, ५५, ३१२, २१, २२, २६, ४५४. ७७, ८०.

— — —

व्याघ्र
THE TIGER

"मृग्या परिभवो व्याघ्रयामित्यवेहि त्वया कृतम् ।"
—रघुवंशम् १२/३७

संस्कृत-साहित्य में व्याघ्र का स्थान गौण रहा है. वैदिक साहित्य में बाघ को द्वीपिन[1] शब्द से कहा गया है. वीरकाव्यों में व्याघ्र का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है, वहाँ इसे व्याघ्र[2] व शार्दूल[3] शब्दों से कहा गया है. अमरकोष में व्याघ्र के लिए शार्दूलः, द्वीपिन व व्याघ्रः शब्दों का उल्लेख है.[4]

व्याघ्र एक मांसाहारी शुद्ध जंगली जानवर है. वैज्ञानिकों की दृष्टि में यह मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत बिल्ली-समूह के बिल्ली-परिवार का सदस्य है.[5]

बाघ एशिया का प्रमुख बिल्ली-परिवारीय पशु है. यह साइबेरिया, कैसपियन सागर के उत्तरी भागों व भारत में पाया जाने वाला पशु है. यह घने वनों में रहना अधिक पसन्द करता हैं.[6]

यह अधिक अन्धकारमय जलपूर्ण स्थानों में रहना चाहता है, जहाँ इसे आसानी से पानी प्राप्त हो सके. सिंह से कुछ कम रोबीला यह जानवर धारीदार चर्म से युक्त होता है. इसकी पूंछ ठीक बिल्ली जैसी होती है.

इसके शरीर का रंग बादामी या ललछौंह होता है. इसका सिर चपटा व बड़ा होता है इसके दांत भी सिंह के दांतों की भाँति मजबूत होते हैं. इसकी ऊँचाई

---

1. अ० सं० 4/8/7, 6/38/2.
2. 'इदं तु पुरुषव्याघ्रः'–वा० रा० सं० 58/98.
3. 'राघवो नृप शार्दूलः'–वा०रा०सु० 61/17.
   'उत्तिष्ठ हरिशार्दूल भजस्व शयनात्तमम्'–वही० 20/25.
   'शार्दूलमृग संघुष्टं सिंहैर्भीमरवैमृतम्'–वही० कि० 27/2.
4. 'शार्दूल द्वीपिनौव्याघ्रे'–इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)
5. जीव जगत पृ. 657.
6. ए०किग0 पृ. 587.

२ फीट से ३ फीट एवं लम्बाई ५ से ६ फीट तक होती है. इसकी पूंछ ढ़ाई से तीन फीट लम्बी होती हैं. शेर की भाँति इसकी मूंछें भी तीन इन्च तक लम्बी होती हैं.

बाघ विशुद्ध मांसाहारी जीव है. यह सूअर, हिरण, सांभर, गाय-बैल व घोड़े का शिकार करता पाया गया है. भेड़, बकरी भी उसका प्रमुख खाद्य है.[7] ये थपेड़ा मारकर जानवर की गर्दन को तोड़ डालते हैं एवं फिर उसे खाते हैं. यदा-कदा यह मनुष्य को भी मार डालता है. बाघ अच्छा तैराक होता है. इसीलिए यह पानी के स्थानों को प्रमुखता देता है. यह विशेषरूप से छलाँग लगाने में समर्थ रहता है. एक छलांग में यह १५ फीट तक उछल जाता है.[8]

बाघ का शिकार एक कठिन कार्य है. भारतीय लोग इसे गड्ढे में डालकर मारते हैं किन्तु पाश्चात्य शिकारी उच्च शक्तिशाली राइफल से इसका शिकार करते हैं.[9]

बाघ के गर्भाधान का कोई सुनिश्चित समय नहीं है. गर्भाधान के सौ दिन के पश्चात् मादा दो से पाँच तक बच्चे देती है.

संस्कृत काव्यों में व्याघ्र

संस्कृत-काव्यों में बाघ का स्थान गौण रहा है. इसे काव्यों में व्याघ्र[10] व शार्दूल:[11] कहा है. नामोल्लेख करने के पश्चात् हम व्याघ्र की काव्यगत विशेषताओं पर विचार करेंगे.

मानव व बाघ—यद्यपि बाघ एक भयानक जीव है फिर भी मानव से उसका सम्पर्क रहा है. हर्षचरित में राजा को व्याघ्र कहा है.[12] अश्वघोष ने अपने काव्य बुद्धचरित में व्याघ्रमुखी राक्षस का उल्लेख किया है.[13] शबरों का बाघों के साथ रहना बतलाया गया है.[14] सूतिकागृह में अखण्डित-व्याघ्र चर्म के लटकाने का उल्लेख बाण ने किया है.[15] मानव एक बुद्धिमान् जीव है अतः वह सब जीवों को

---

7. ए. किंग. पृ. 590.
8. ए. किंग पृ. 588.
9. ए. किंग. 592.
10. रघु. 12/37, ह. च. पृ. 390, सौ. नं. 1/37.
11. सौ. नं. 10/12, ह. च. पृ. 4/5, कादम्बरी पृ. 637.
12. 'कुपित नृपव्याघ्रम्'-ह. च. पृ. 390. वही. पृ. 391.
13. व्याघ्रर्क्षसिंहद्विरदाननाश्चे'–बु. च. 13/19.
14. 'क्रूरात्मभिः शार्दूलैः सह-संवास' - कादम्बरी पृ. 98.
15. 'आलम्बिताविकलव्याघ्रचर्मणा वन्दनमाला'-- वही. पृ. 2/8.

वश में कर लेता है. व्याघ्र के शिकार का वर्णन दण्डी ने किया है. वहाँ बाण द्वारा व्याघ्र के प्राण-हरण का उल्लेख किया है.[16]

कार्य-कलाप—विश्व की रचना कर्म के आधार पर हुई है, अतः हर जीव कोई न कोई क्रिया अवश्य करता रहता है. बाघ की भी ऐसी ही क्रियायें देखने में आती हैं. वन में व्याघ्र के निवास पर कवियों का ध्यान गया है. वन में व्याघ्रों द्वारा सैनिकों को मरवाने का उल्लेख मिलता है.[17] बाघ के खाने व दौड़ने का वर्णन भी मिलता है.[18] 'कुमार को बाघ खा गया' ऐसा वर्णन दशकुमार चरित में आया है.[19] एक तरफ बाघ की भयंकरता का उल्लेख मिलता है तो दूसरी तरफ व्याघ्र के द्वारा बुद्ध के सम्पर्क में आकर मांस भक्षण को त्याग कर शील का पालन करने का वर्णन भी कवियों ने किया है.[20] इससे पशुओं की बुद्धिमत्ता एवं सत्संगति की महिमा स्पष्ट होती हैं. व्याघ्र के मारने से स्थल मार्ग का शोधन हो जाता है. इस प्रकार का वर्णन दण्डी ने किया है.

उपमित व्याघ्र—व्याघ्र भी कवियों की उपमा का विषय बना है. शूर्पनखा से कवि ने सीता को कहलवाया है कि उसने (सीता ने) उसका (शूर्पनखा का) अपमान उसी प्रकार किया है जिस प्रकार कि हरिणी बाघिन का अपमान करती है.[21] यहाँ शूर्पनखा को बाघिन व सीता को हरिणी से उपमित किया है. महावर लगा कर सीढ़ियों पर चढ़ने से लाल पैरों को अंकित करने वाली स्त्रियों की तुलना सद्य मारे गये हरिण के रक्त से लाल नखयुक्त बाघिन द्वारा सीढ़यों पर चढ़ने से की गई है.[22] कपिल गौतम की तुलना युवावस्था में बाघ के बच्चों की तरह युवा होने से की गई है.[23] बाघ के रक्त से सने नखों की समता पलाश के रक्तपुष्पों से की गई है.[24] गुफाओं में से निकलने वाले किरातों को गुफाओं में से निकलने वाले बाघों से उपमित किया गया है.[25]

---

16. 'व्याघ्रस्य'—द. च. पू. उ,8/31.
17. 'व्याघ्रम्'— वही. उ. पू. 8/31.
 'बालग्रीवेव व्याघ्रनखपंक्ति मंडिता'—काद. पृ. 59.
18. व्याघ्र शीघ्रम् द० च. उ. 8/31.
19. 'कुमारः शार्दूलभक्षित'—वही. उ. 8/41
20. ह. च. पृ. 424.
21. रघु. 12/37.
22. रघु. 16/15.
23. सौ. नं. 1/37.
24. कादम्बरी पृ. 637.
25. सौ. नं. 10/12.

प्राप्य वस्तुयें—बाघ के चमड़े से बने आसन को बिछाने का उल्लेख मिलता है.[26] शबरों द्वारा बाघाम्बर पहनने का वर्णन बाण ने किया है कि शबर लोग शंकर के गणों के समान बाघचर्म लपेटे थे.[27] बाघ के चमड़े से बंधे तरकस का वर्णन भी मिलता है.[28] बूढ़े व्याघ्र के चर्म से बनी कंचुक का बाण ने कादम्बरी में उल्लेख किया है.[29] इस प्रकार बाघ से उपलब्ध पदार्थों का भी कवियों ने उल्लेख किया है.

बाघ का सबसे अधिक वर्णन बाण ने, उससे कम दण्डी ने एवं उससे कम कालिदास एवं अश्वघोष ने किया है. बाण ने हर्षचरित में ५ बार एवं कादम्बरी में ५ बार कुल १० बार बाघ का वर्णन किया है. दण्डी ने ५ बार एवं कालिदास व अश्वघोष ने ३–३ बार बाघ का वर्णन किया है. इस प्रकार बाघ का वर्णन कुल २१ बार हुआ है जबकि भारवि, माघ, श्रीहर्ष व सुबन्धु ने बाघ का वर्णन अपने काव्यों में नहीं किया है. कालिदास के नाटकों में भी बाघ के वर्णन का सर्वथा अभाव है. बाघ के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में प्रदर्शित है.

26. स देवदारु द्रुम वेदिकायां शार्दूल चर्म.43 :/कुमार 3/44
27. कैश्चित् प्रमथैरिव केसरी कृतिधारिभिः–कादम्बरी पृ. 94.
28. 'शार्दूल चर्मपट पीडितः'—ह. च. पृ. 415.
29. 'जरद् व्याघ्र चर्म्मः,—कादम्बरी''''

तालिका–१

'व्याघ्र' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (3)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
२	रघु.	१२।३७. १६।१५.
१	कुमार.	३।४४.

तालिका–२

'व्याघ्र' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (18)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	१	बु. च.	१३।१६.
,,	२	सौ. न.	१।३७. १०।१२.
बाणभट्ट	५	ह. च.	पृ. ३६०, ६०, ६१, ४१५, २४.
,,	५	कादम्बरी	पृ. ५६, ६४, ६८, २१८, ६३७.
दण्डी	५	द. च.	पृ. ३१,८।२४, ३१,३१,४१.

मार्जार
THE CAT

"ओतुर्विडालो मार्जारो वृषदंशक आखुभुक्"

—अमरकोषः

सम्पूर्ण-संस्कृत-साहित्य में बिल्ली का गौण स्थान रहा है. वैदिक साहित्य में ध्रुवीय बिल्ली के लिये जाहकः शब्द का प्रयोग हुआ है.[1] । अमरकोष में बिल्ली के लिये ओतुः. बिडालः, मार्जारः, वृषदंशकः व आखुभुक् नामों का उल्लेख किया गया है.[2] बिल्ली मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत बिल्ली परिवार की सदस्या है.[3]

मनुष्य का यह परिचित जीव दूध दही के चक्कर में घरों में यत्र तत्र-सर्वत्र फिरता पाया जाता है. बिल्ली की अनेक जातियाँ भूमण्डल पर फैली हुयी हैं. यह शेर व चीते की तो मौसी' कहलाती है. सामान्य बिल्ली की अनेक नस्लें देखने में आती है. यहाँ हम उनका नामोल्लेख मात्र करेंगे—१. एन्गोरा २. परसियन ३. स्यामी ४. बर्मी ५. अनेसिनियन ६. रूसीनीली. इनमें एन्गोरा व परसियन लम्बे बालों वाली होती हैं. एन्गोरा का सिर तीखा, नाक लम्बा रेशमी फर प्रमुख पहिचान के चिह्न हैं. इसकी पूंछ के सिरे पर बालों का आधिक्य होता है.[4] बिल्लियाँ सामान्यत: सफेद, भूरी, कलछौंह एवं चितकबरे रंगों की होती हैं.

बिल्ली की ऊँचाई एक फुट ऐवं लम्बाई पूंछ सहित डेढ़ से २ फीट तक होती है. मादा आकार में कुछ छोटी होती है. बिल्ली के मुख पर मूंछे होती हैं. एवं अन्धेरे में इसकी आंखें चमकती रहती हैं.[5]

बिल्ली घरेलू पालतू एवं चुस्त जीव है. यह कृपापात्र-मित्रतापूर्वक साथी बनाती है किन्तु यह स्वतन्त्र है एवं अपना स्वयं का मार्ग चाहती है.[6] बिल्ली की

---

1. तै० सं० 5/5/18/1
2. ओतुर्विडालो मार्जारो वृषदंशक आखुभुक् । इत्यमरः (सिंहादि वर्गः)
3. जीव जगत पृ० 667
4. इन० ब्रि० भाग 5 पृ० 14
5. इन० वर्ड० भाग 3 पृ० 215
6. वही० पृ० 216

स्मरणशक्ति अत्यन्त तीव्र होती है. वह अपने शत्रु व मित्र को खूब पहिचानती है.[7]

बिल्ली के प्रमुख खाद्य हैं मुर्गी, कबूतर, चूहे, बतख एवं अन्य छोटे प्राणी. बिल्ली पका खाना भी खा लेती है. दूध व दूध की मलाई इसे शायद अधिक प्रिय है, क्योंकि दूध को चट करने में यह कभी पीछे नहीं रहती.

बिल्ली का पालन सर्वप्रथम ३००० ई० पू० मिश्र में प्रारम्भ हुआ क्योंकि यह अनाज के भण्डारों की रक्षा में बड़ी सहायक थी. अतः मिश्रवासियों ने अपने खेतों की रक्षार्थ बिल्ली का पालन प्रारम्भ किया.[8] आजकल बिल्ली पालन का शौक भारतीय समाज में भी बढ़ने लगा है. बिल्ली की खाल एवं बालों से अनेक छोटी-बड़ी वस्तुओं का निर्माण होता है.

बिल्ली एक बार में अनेक बच्चों को जन्म देती है, जिनको उठाकर यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती हुयी पायी गयी है. बिल्ली से सम्बन्धित अनेकानेक कहानियां हमारे देश में प्रचलित हैं.

साहित्य में 'भीगीबिल्ली' व 'बिल्ली के भाग्य से छींका टूट गया' मुहावरों का प्रयोग किया जाता है. बिल्ली के द्वारा रास्ता काटा जाना अशुभ माना है एवं बिल्ली को मारना महापाप.

संस्कृत-काव्यों में बिल्ली:—संस्कृत-काव्यों में बिल्ली का स्थान सर्वथा गौण रहा है. इसे प्रस्तुत काव्यों में बिडाल: व जाहक: नामों से कहा गया है.[9]

क्रिया-कलाप:—बिडाल के द्वारा चूहे के पकड़ने की बात को महाकवि कालिदास ने प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल में विदूषक के द्वारा कहलवाया है कि वह बिल्ली के पञ्जे में पड़े हुये चूहे के समान अपने प्राणों से हाथ धोये बैठा है. यहां राजा इन्द्र का सारथि विदूषक को पकड़ लेता है. इस वर्णन में सारथि को बिल्ली एवं विदूषक को चूहे से उपमित किया गया है[10] विदूषक ने मालविका की दशा का वर्णन करते हुये उसे बिल्ली के पञ्जे में पड़ी हुयी कोयल के समान बतलाया है.[11] झाड़ियों में बिल्ली की उपस्थिति श्री सुबन्धु ने वर्णित की है इस आकार पर बिल्लियों का निवास झाड़ियां भी हैं, यह प्रमाणित होता है.[12] वत्स के विमलवंश की प्रशंसा में

---

7. इन० वार्ड. भाग 3 पृ. 216.
8. इन० ब्रि० भाग 5 पृ० 14.
9. शाकु० 6 (गद्य), वासवदत्ता० पृ० 2‌33.
10. 'बिडालोगृहितो मूषक० शाकु० 6 (गद्य)
11. यो बिडालगृहीतायाः परिभृतिकायाः'—मालविका 4 (गद्य)
12. गुञ्जाकुञ्ज० वासवदत्ता० पृ 233.

महाकवि बाण लिखते हैं कि लोग कुक्कुट का भक्षण (व्रतविशेष) करते थे, तथापि बिडालों जैसा व्यवहार (हिंसा) नहीं करते थे.[13] इस प्रकार कतिपय काव्यकारों ने ही बिल्ली का वर्णन प्रस्तुत कर पशुजगत् के प्रति अपने उदार-व्यवहार का प्रमाण दिया है.

सम्पूर्ण काव्यों में बिल्ली का वर्णन केवल ५ बार आया है. कालिदास, बाण व दण्डी ने क्रमशः ३, १ व १ बार बिल्ली का उल्लेख किया है. वर्णन का क्रम तालिकाओं में है।

13. 'कृतकुक्कुटव्रता अप्यबैडालवृत्तयः'—ह० च० पृ० 69.

तालिका—१

'मार्जार' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (३)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	शाकु०	६ गद्य
२	मालविका०	३।१५. ४ गद्य.

तालिका—२

'मार्जार' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (२)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
सुबन्धु	१	वासवदत्ता पृ० २३३	
बाणभट्ट	१	हर्षचरित पृ० ६६	

ऋक्ष
THE BEA '

' ऋक्षाच्छभल्ल भालुकाः ।''

—अमरकोश ।

संस्कृत-साहित्य में ऋक्ष का स्थान सामान्य है, किन्तु इसका वर्णन संस्कृत-साहित्य में प्राचीनतम है. वैदिक-साहित्य में ऋक्ष को केवल ऋक्षः नाम से कहा गया है.[1] जबकि बाद के साहित्य में अन्य नाम भी प्राप्त होते हैं. वाल्मीकि रामायण में भी ऋक्षः शब्द ही उपलब्ध हैं.[2] वहां जामवन्त नामक भालू का विशेष वर्णन किया गया है. अमरकोष में ऋक्षः, अच्छः, भल्लः, भालूकः व भल्लूकः शब्दों से भालू को कहा गया है.[3] भालू या रीछ मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत स्तनप्राणी श्रेणी के भालू-परिवार का सदस्य है.[4]

भालू एक विशालकाय एवं अत्यन्त डरावना प्राणी है. यह मांसाहारी जीव है. इसका सारा बदन बालों से ढ़का होता है. इसकी टांगे अत्यन्त सुदृढ़ होती हैं. यह ऊंट की तरह लुढ़कता हुआ चलता है यानी एक तरफ की दोनों टांगों को एक साथ आगे रखता है. इसका थूथन सूअर की भांति लम्बा होता है. इसका सिर बन्दर की तरह गोल होता है परन्तु इसकी पूंछ छोटी होती है. इसके पैरों में ५ नाखून होते हैं. यह अपनी पीछे की टांगों पर यदा-कदा खड़ा होता है. यह शहद खाना पसन्द करता है.[5] भालू मुख्यतः निम्नलिखित प्रकार के होते है :—

१ भूरा-भालू—भालू भूरे एवं कुछ लाल झलक लिये हुये होता है. यह भालू उत्तरी गोलार्द्ध के शीतोष्ण क्षेत्र में स्पेन से जापान तक पाया जाता है[6] इसकी लम्बाई लगभग २ मीटर होती है. मौसम के साथ-साथ इसके बालों के रङ्गों में परि-वर्तन आ जाता है. जाड़ों में इसके बाल अधिक लम्बे हो जाते हैं. भूरा भालू एक सीधा

---

1 ऋक्० 5/56/3 वा० सं० 24/36 मै० स० 3/14/17
2 'ऋक्षाश्च वानराः० वा० रा० कि० 39 28
3 'ऋक्षाच्छभल्लभालूकाः'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)
4 जीवजगत पृ० 687
5 इन० ब्रि० भाग० 3 पृ० 258
6 यथोपरि०

जीव होता है. यह आक्रमण करने की अपेक्षा भाग जाना अधिक पसंद करता है. इसका प्रमुख खाद्य पत्ते हैं किन्तु यदा-कदा यह भेड़ बकरियों को भी चटकर जाता है. इसका गर्भाधानकाल एक वर्ष का होता है. यह भालू लङ्का व भारत में अधिक पाया जाता है.

२ रीछ :—रीछ भारतवासियों का जाना-पहचाना जीव है. यह भी लंका व भारत में अधिक पाया जाता है. यह पूर्णतः बालों से ढ़का रहता है. इसके सीने पर वी (V) आकार के सफेद बाल होते हैं. इसकी लम्बाई करीब २ मीटर होती है. भालुओं में रीछ विशेष बड़ा नहीं होता किन्तु यह अत्यन्त चञ्चल होता है. यह राहगीरों पर हमला कर देता है और घायल कर देता है. यह पेड़ों पर भी चढ़ जाता है. इसकी घ्राणशक्ति अत्यन्त तीव्र होती है जबकि श्रवण व दर्शन शक्तियां क्षीण पायी गई है. यह कन्दमूल फलों के अतिरिक्त दीमक को खा जाता है. जाड़ों में मादा दो बच्चे देती है.

३–काला भालू—यह भालू बलूचिस्तान से मन्चूरिया तक पाया जाता है. इसे हिमालय व तिब्बत का 'काला-भालू' भी कहा जाता है.[7] यह भालू डेढ़ से २ मीटर तक लम्बा होता है. यह भालू बड़ा भयंकर एवं बदमाशी करने में अग्रणी होता है. यह मनुष्य पर तुरन्त हमला कर देता है. यह पानी में तैरने और पेड़ पर चढ़ने में समर्थ होता है.[8] यह भी फल एवं शहद तो खाता ही है साथ ही मांस भी इसे काफी पसन्द है. इसकी मादा २ साल से गर्मी के आरम्भ में बच्चे देती देखी गयी है.

४–ध्रुवीय भालू--यह भालू ध्रुवीय प्रदेशों में पाया जाता है. इसके शरीर पर सफेद लम्बे बाल रहते हैं. यह एक क्रियाशील जीव है. इसका मुख्य भोजन सील, मरे हुए जानवर, मछलियाँ, नारियल, अण्डे, फल, जड़ें, घास व चीटियाँ होती हैं. यह बर्फ की गुफाओं के मध्य में निवास करता है[9]

भालू खाने की तलाश में मीलों की यात्रा कर जाता है. यह पारिवारिक जीवन के प्रति उदासीन रहता है. पालतू भालू बड़े ही मनोरञ्जक तमाशे प्रस्तुत करने वाले होते हैं. भालू के खेल यदा-कदा भारतीय गांवों में देखे जा सकते हैं. भूरे भालू तो मुक्केबाजी एवं कुश्ती में काफी प्रवीण देखे गये हैं.[10] हर भालू शिकारी नहीं होता फिर भी अवसर पाकर ये मांस खा लेते हैं. भालुओं में कई भालू अच्छे तैराक होते हैं. भालू विश्व के कामुकतम पशुओं में से एक हैं.

7. इन० चेम्बर भाग 11 पृ० 174.
8. ए० किग० पृ० 464.
9. ए० किग० पृ० 459, इन० ब्रि० भाग 3 पृ० 258.
10. ए० किग० पृ० 462.

आर्थिक जीवन में भालू का विशेष महत्व नहीं किन्तु ध्रुवीय भालू की फर एवं सामान्य भालू के बाल अनेक प्रकार की छोटी बड़ी वस्तुओं के निर्माण में सहायक हैं.

संस्कृत काव्यों में ऋक्ष—प्रस्तुत संस्कृत काव्यों में भालू के लिए ऋक्षः व भल्लः नामों का प्रयोग हुआ है.[11]

मानव व भालू—भालू व मानव का पुराना साथ रहा है. बुद्धचरित में भालू के मुख वाले राक्षस का वर्णन मिलता है.[12] अभिज्ञान शाकुन्तल में विदूषक सेनापति से कहता है कि उसे वन में ही कभी न कभी किसी नाक के लोभी बूढ़े रीछ के मुंह में पड़ना पड़ेगा.[13]

कार्य-कलाप—बाण ने विन्ध्याटवी में रीछों के निरन्तर घूमने का उल्लेख किया है [14] वास्तव में रीछ चुप बैठने वाला प्राणी नहीं, क्योंकि उसे अजायबघरों में भी पिंजड़े के भीतर निरन्तर घूमते हुए पाया गया है. अतः कवि का वर्णन सूक्ष्म निरीक्षण का फल है. भालू को शहद प्रिय होता है. उसके द्वारा शहद चाटने का उल्लेख बाण ने किया है.[15] भालुओं के आराम करने का वर्णन करते हुए सुबन्धु लिखते हैं कि भालू पेड़ों की छाया में आराम कर रहे थे.[16] भग्न मन्दिरों में भालुओं के उत्पात का उल्लेख भी मिलता है.[17]

प्राप्य-पदार्थ—मरणोपरांत ऋक्ष के चमड़े से वस्तुओं का निर्माण संभव है. बाण ने शबर-सैनिक के तरकस को भालू के चर्म का बना हुआ बतलाया है.[18]

सम्पूर्ण काव्यारण्य में ऋक्ष का वर्णन विरल है. बाण ने ऋक्ष का उल्लेख ४ बार एवं अश्वघोष व सुबन्धु ने एक-एक बार किया है. शाकुन्तल में ऋक्ष का एकधा वर्णन किया गया है कुल मिलाकर ऋक्ष का वर्णन ७ बार हुआ है. वर्णन का विश्लेषण आगे तालिकाओं में प्रस्तुत है.

---

11. बु० च० 13/19 कादम्बरी पृ० 58, 647, ह० च० पृ० 98, 415.
12. 'व्याघ्रर्क्षसिंह द्विरदाननाश्च' – बु० च० 13/19.
13. 'नरनासिकालोलुपस्य जीर्णर्क्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि'—शाकु० 2 (गद्य)
14. सततभृक्ष० कादम्बरी पृ० 58
15. भल्लगोलाङ्गूल० ह० च० पृ० 98.
16. ऋक्षगवयशरभ केसरिकुमुद पनस० वासवदत्ता पृ० 65.
17. 'असकृदुत्सन्न देव०' कादम्बरी० पृ० 647
18. 'अच्छभल्लचर्ममयेन'—ह० च० पृ० 412.

तालिका–१

'ऋक्ष' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (1)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	शाकु.	२ गद्य.

तालिका–२

'ऋक्ष' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (6)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	१	बु. च.	१३।१६
सुबन्धु	१	वासवदत्ता	पृ. ६५
बाणभट्ट	२	ह. च.	पृ ६८, ४१५
,,	२	कादम्बरी	पृ. ५८, ६४७

तरक्षु
THE HYENA

"प्रभुदिततरतरक्षवः"

—हर्षचरितम् पृ० ४२०

संस्कृत–साहित्य में तरक्षु का स्थान गौणतम रहा है. तरक्षु का वर्णन काफी पुराना है वैदिक साहित्य में तरक्षु एवं सालावृक शब्दों का उल्लेख मिलता है.[1] अमरकोष में तरक्षु एवं मृगादनः शब्दों का प्रयोग हुआ है.[2] तरक्षु मेरुदण्डीय उप-जगत् के अन्तर्गत बिल्ली उपवर्ग के बिल्ली समूह के लकड़बघा परिवार का सदस्य है.[3]

लकड़बघा भारत में पाया जाने वाला एक सुपरिचित जीव है. लकड़बघा के दो प्रमुख प्रकार हैं. जिनकी शरीर रचना एवं वितरण में कुछ अन्तर है. अतः उनका अलग-अलग उल्लेख कर सामान्य विशेषताओं पर विचार करेंगे.

१–धारीदार लकड़बघा—इस प्रकार का लकड़बघा भारत, फारस, एशियामाइनर, एवं उत्तरी–पूर्वी अफ्रीका में पाया जाता है.[4] यह बड़ा गन्दा एवं बेडौल जीव होता है. इसका कद भेड़िये जितना होता है एवं यह झलक लिए हुए ललछौंह रंग का होता है.[5] इसके शरीर पर धारियां होती हैं. इसकी दुम की लम्बाई लगभग डेढ़ फुट होती है. इसके शरीर का अगला भाग बड़ा ऊँचा सा होता है एवं इस कारण यह बड़ा रोबीला लगता है इसके अगले पैर पीछे के पैरों से अपेक्षाकृत बड़े होते हैं.

२-चित्तीदार लकड़बघा—इस प्रकार का लकड़बघा अफ्रीका के घने वनों में पाया जाता है. इस जीव पर बड़े–बड़े धब्बे होते हैं. यह धारीदार लकड़बघे

---

1. तै० सं० 5/5/9/1, ऋक्० 10/73/2 तै० सं. 6/2/7/5.
2. 'तरक्षुस्तु मृगादनः'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)
3. जीव जगत पृ. 676.
4. इन. ब्रि. भाग 12 पृ. 8.
5. यथोपरि.

से आकार में बड़ा होता है एवं सोये हुए लोगों पर भी आक्रमण कर बैठता है. इसके कंधे की ऊँचाई ३ फीट तक होती है एवं वजन १७५ पौण्ड तक.[6] इसे हंस-मुख लकड़बघा भी कहते हैं.

इतना रोबीला होते हुए भी लकड़बघा बड़ा डरपोक जीव है. यह प्राय मुर्दों को खाकर पेट पालता है. रेतीले भागों में यह धूल उछालकर राहगीरों को परेशान करता है और मौका पाकर पकड़ भी लेता है. इसकी रीढ़ की हड्डी से चलते समय खट-खट की आवाज सुनाई देती है. इसके दाँत व जबड़े बड़े मजबूत होते हैं. जिनकी सहायता से यह हड्डियों को आसानी से चबा जाता है. इसके पन्जों की पकड़ भी मजबूत होती है.[8] इसकी गन्दी हरकतों के कारण यह 'जानवरों का भंगी' भी कहलाता है. इसकी चिल्लाहट बड़ी भयंकर होती है.

इसका प्रमुख खाद्य मांस है. यह बस्ती में से मुर्गों, बतखों, कुत्तों व भेड़-बकरियों को उठा ले जाता है.[9] इसकी मादा एक बार में ३ से ५ तक बच्चे दे देती है.

संस्कृत काव्यों में तरक्षु – संस्कृत काव्यों में तरक्षु के लिए तरक्षु शब्द का ही प्रयोग मिलता है. इस पशु का वर्णन काव्यों में गौणतम रहा है. इसका वर्णन अश्वघोष एवं बाण ने ही किया है. बुद्धचरित में तरक्षु की आकृति वाले राक्षस का उल्लेख मिलता है.[10] हर्षचरित में किन्नरियों के सङ्गीत में आनन्दित हरिणों का लकड़बघे द्वारा देखे जाने का उल्लेख है.[11]

इस प्रकार प्रस्तुत संस्कृत काव्यों में तरक्षु का कुल मिलाकर २ बार वर्णन हुआ है. अतः इसका स्थान वर्णित पशु-जगत में संख्या व वर्णन के आधार पर सबसे नीचा रहा है. जिसका वर्णन आगे की तालिकाओं में दर्शनीय है.

———

6. ए. किग. पृ. 551.
7. इन ब्रि. भाग 12 पृ. 8.
8. इन० चेम्बर भाग 7 पृ० 327
9. यथोपरि.

तालिका–१

'तरक्षु' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (X)

(×)

तालिका–२

'तरक्षु' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (2)

कवि	सख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	१	बु. च.	१३।५२
बाणभट्ट	१	ह. च.	पृ. ४२०

— — —

शृगाल
THE JACKAL

"जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः"

—किरातार्जुनीयम १/३८

संस्कृत-साहित्य में शृगाल का वर्णन अत्यन्त न्यून है. वैदिक साहित्य में शृगाल का यदा-कदा उल्लेख मिलता है. इसे वैदिक साहित्य में वकः, लोपाषः व शृगालः नामों से कहा गया है.[1] वीरकाव्य साहित्य में शृगालः शब्द अधिक प्रचलित हो गया था.[2] रामायण में वकः. शिवा व गोमायु शब्दों का प्रयोग हुआ है. अमरकोष में शृगाल के लिए शिवा, भूरिमायः, गोमायु, मृगधूर्तकः, शृगालः, वञ्चकः, क्रोष्टु, फेरु, फेरवः व जम्बुकः शब्दों का उल्लेख है.[3]

शृगाल मेरु-दण्डीय-उपजगत् के अन्तर्गत कुत्ता-समूह के कुत्ता-परिवार का सदस्य है.[4] यह दक्षिणी एशिया, अफ्रीका, दक्षिणी-पूर्वी यूरोप, भारत व लंका में पाया जाता है.[5] सियार एक ऐसा जीव है जो क्या पर्वत, क्या जंगल और क्या गाँव (बस्ती) सभी स्थानों पर भ्रमणशील पाया गया है. मरघट वाले स्थानों में सियार की उपस्थिति निरन्तर देखी गई है. एक लोक कथा के अनुसार कहा गया है कि सियार पहले बस्ती में रहा करता था, किन्तु जंगल में रहने वाले कुत्तों से इनका समझौता हो गया और कुत्ते जंगल से बस्ती में आ गये एवं सियार जंगल

---

1 ऋक्. 1/42/2. अ. वे. 7/95/2. 12/1/49
ऋक्. 10/28/4. तै. सं. 5/21/1. मै. सं. 3/14/17. श. ब्रा. 12/5/2/5

2 वै. इ. (2) पृ. 468

3 वा. रा. सु. 7/54, 7/54, 41/20, 57/4

'स्त्रियां शिवा भूरिमाय गोमायु मृगधूर्तकाः
शृगालवञ्चक कोष्टु फेरुफेरवः जम्बुकाः ।।'

इत्यमर [सिंहादिवर्गः]

4 जीव जगत् पृ. 683.

5 इन. चेम्बर. भाग–8 पृ. 1, इन. ब्रि. भाग–12 पृ. 850, ए. किंग. पृ. 441

को चले गये. अब ये दोनों ही अपने स्थानों पर खुश नहीं हैं और यही कारण है कि ये हर शाम रोकर अपना समय बिताते हैं.

सियार की लम्बाई एक मीटर व ऊँचाई २ फीट के लगभग होती है. यूरोप व सिन्ध के सियार अपेक्षाकृत काफी बड़े होते हैं.[6] इनका रंग भूरा व कत्थई होता है. बाल पीठ पर गहरे कत्थई एवं नीले हल्के रंग के होते हैं.[7] इसके शरीर के बाल काले एवं दुम के बाल खैर रंग के होते हैं. चौपाया होने के कारण इसमें सभी चौपायों के गुण यानी दो कान. दो आँखें व एक नाक होती है. इसकी शक्ल कुत्ते की शक्ल से अत्यन्त साम्य रखती हुई होती है. सियार की धूर्तता से सम्बन्धित अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं.[8] इसकी धूर्तता के कारण 'रंगा-सियार' एक प्रसिद्ध मुहावरा बन गया है. इसकी आवाज बड़ी तेज व 'हुक्का-हुआ' व 'हाव-हाव' की आवाज होती है. लोमड़ी की भांति इसमें बचाव के गुण विद्यमान होते हैं.[9]

सियार रात्रिचर प्राणी है. यह खेती को बहुत हानि पहुंचाता है. फल-फूल व अनाज के अतिरिक्त यह छोटे पक्षियों को भी मारकर खा जाता है. मरे हुये जीवों के साथ-साथ शेर द्वारा शिकार कर छोड़े हुये जीवों को भी यह खाता देखा गया है.[10] मांस, मछली आदि तो इसके प्रिय खाद्य हैं ही, साथ ही गन्ना भी अतिप्रिय है.[11] सियार की मादा एक बार में कुतिया की भांति अनेक बच्चों को जन्म देती है. सियार जाड़े में बहुत 'हाव-हाव' करते सुने गये हैं. लोगों का अनुमान है कि वे सर्दी से पीड़ित होकर ऐसा करते हैं, पर इसमें तथ्य प्रतीत नहीं होता; क्योंकि सियार हमेशा दिन में गुफा में पड़ा रहता है एवं रात्रि को उसका कार्य-कलाप का समय है. यदि सियार को हम 'रजनीचर' कहें, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी.

संस्कृत-काव्यों में सियार— संस्कृत-काव्यों में शृगाल के लिए शिवा, शृगालः, मृग-धूर्तकः, वनशुनः शब्दों का प्रयोग हुआ है.[12] नामोल्लेख करने के

---

6 इन. चेम्बर. भाग–8 पृ. 1
7 इन. ब्रि. भाग–12 पृ. 850
8 'हितोपदेश व पञ्चतन्त्र की कहानियाँ'
9 इन. ब्रि. भाग–12 पृ. 850
10 ए. किंग. पृ. 439
11 इन. चेम्बर. भाग–8 पृ. 1
12 कुमार. 15/18, रघु. 11/61 ह. च. पृ. 456
व. च. पृ. 247, कुमार. 15/41, शिशु 15/34

पश्चात् अब हम शृगाल की काव्यात्मक विशेषताओं पर विचार करेंगे.

मानव व सियार—जैसा कि कहा जा चुका है कि शृगाल मानव के काफी निकट रहा है. अतः मानवता के साथ इसका वर्णन मिलता है. दशकुमारकार दण्डी ने तो एक परिचायिका का नाम ही 'शृगालिका' रख दिया है.[13] सियार का बोलना अमङ्गल सूचना माना गया है तभी तो वन में निसृत युधिष्ठिर से द्रौपदी सियार की ध्वनि-युक्त वन को अमङ्गलकारी बतलाती है.[14] गीदड़ों को पुत्रोत्पत्ति के लिए मांस की बलि देने का उल्लेख बाण ने किया है, जिसमें अन्धविश्वास की स्पष्ट झलक प्रतीत होती है.[15] एक तरफ मानव के लिए सियार का रोना अमङ्गलकारी कहा गया है, तो दूसरी ओर उसको भीलों के लिए वेद पाठ की संज्ञा देने में भी कविगण पीछे नहीं रहे हैं.[16]

क्रिया-कलाप—हर जीव की अपनी कोई न कोई विशेषता होती है. शृगाल की भी एक वैसी ही विशेषता है—चिल्लाना. सियारियाँ आकाश की ओर मुंह करके चिल्लाने लगीं, सियारियां सूर्यमण्डल के चारों ओर डरावने स्वर से रोने लगी इत्यादि वर्णन कवियों ने सभी जगह किये हैं.[17] मरघट में झाड़ियों के मध्य सियारियों के बच्चों के चिल्लाने की तरफ बाण का ध्यान गया है.[18] रोने-चिल्लाने के बाद सियार की द्वितीय क्रिया के रूप में आता है-उसका खाना-पीना. युद्ध में सियार बाँह को माँस के लालच से खींच लेता है, रक्त-कण के लोभ से चञ्चल सियार-गण लोहमहिष के रक्तनेत्र को जीभ से चाट रहे हैं, इत्यादि उल्लेख कवियों की पैनी अवलोकन शक्ति का चमत्कार है.[19]

उपमित शृगाल—कवि अपने कार्य में कभी पीछे नहीं रहा, उसे जहाँ कहीं भी कुछ कहने का अवसर मिला है उसने मुक्तकण्ठ से कहा है. फिर भला सियार को वह उपमित क्यों नहीं करता. सियार की आवाज की तुलना उसने शूर्पनखा की आवाज से की है.[20]

---

13 द. च. पृ. 243, 'शृगालिका मुख निसृतवार्त्ता'—द. च. पृ. 247

14 'जहाति निद्रामशिवैः शिवारुतैः'—किरात. 1।38

15 'चत्वरेषु शिवा.' कादम्बरी पृ. 202

16 'शास्त्रम् शिवारुतम्' कादम्बरी पृ. 98

17 'नभसो ववाशिरे शिवानां राजयः'—ह. च. पृ. 281

18 'किलकिलायमान.' ह. च. पृ. 456

19 'शिवा भुजच्छेदमयाचकार'—रघु. 7।50

20 'शिवाघोर रचनां पश्चाद् बुबधे'—रघु. 12।39

जहाँ मानव में पशुओं का कोई गुण आ जाता है, वहीं उसमें राक्षसत्व की झलक दीखने लगती है. यहाँ शूर्पनखा की आवाज का सियारवत् होना उसके दानवत्व का द्योतक है. तारकासुर ने देवताओं की वाणी को सियार के रोने की वाणी से उपमित किया है.[21] यह उसके दानवत्व का प्रमाण है. शिशुपाल भगवान् कृष्ण की युधिष्ठिर द्वारा की गई पूजा को गीदड़ की पूजा के समान कहता है.[22] सूर्य की ओर मुंह करके रोने वाली सियारियों के लिए कहा गया है कि मानों वे क्षत्रिय रक्त से अपने पिता को तर्पन करने वाले परशुराम को बुला रही हों.[23] इस प्रकार एक बड़े ही मनोहर ढंग से कवियों ने सियार को सादृश्यमूलक अलंकारों में स्थान देकर जीवों के प्रति अपने गाढ़ानुराग का प्रमाण प्रस्तुत किया है.

सम्पूर्ण संस्कृत-काव्यों में सियार का उल्लेख केवल १४ बार हुआ है अर्थात् सियार का स्थान सर्वथा गौण रहा है. सियार का सबसे अधिक वर्णन बाण व कालिदास ने किया है. रघुवंश व हर्षचरित में सियार का वर्णन ३–३ बार कादम्बरी व दशकुमारचरित, कुमारसम्भव व वासवदत्ता में २–२ बार एवं किरातार्जुनीयम् व शिशुपालबध में एक-एक बार हुआ है. पद्य कवि अश्वघोष ने सियार के प्रति अपना मत नहीं दिया है. इसके अतिरिक्त कालिदास के नाटकों शाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्रम् एवं विक्रमोर्वशीयम् में सियार का वर्णन उपलब्ध नहीं होता. इस प्रकार सियार का वर्णन संस्कृत-काव्यों में गौण है. सियार के वर्णन का विश्लेषण आगे की तालिकाओं में दर्शनीय है.

———

21 'निशि स्वैरं वनान्ते मृगधूर्तका इव' कुमार. 15।41

22 'अस्य वनशुन इवापचिति'–शिशु. 15।34

23 रघु. 11।61

तालिका–१

'शृगाल' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (५)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
३	रघु०	७।५०. ११।६१. १२।३९.
२	कुमार०	१५।१८. ४१.

तालिका–२

शृगाल' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों नें विश्लेषण (११)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
भारवि	१	किरात.	१।३८.
माघ	१	शिशु.	१५।३४.
सुबन्धू	२	वासवदत्ता.	२।४,१५.
बाणभट्ट	६	ह. च.	पृ० ९८, २८१, ४५६.
,,	२	कादम्बरी	पृ० २०२, ६३७.
दण्डी	२	द. च.	पृ० २३४, ४७.

वृक
THE WOLF

"नावलुप्यसे सेवकवृकै:"

—कादम्बरी, पृ. ३३६

संस्कृत-काव्यों में वृक का स्थान गौण रहा है. वैदिक साहित्य में भी भेड़िये के लिए वृकः नाम का उल्लेख मिलता है.[1] अमरकोष में वृक के लिए कोकः, ईहामृगः एवं वृकः शब्दों का उल्लेख है.[2] वैज्ञानिकों द्वारा वृक मेरु-दण्डीय उप-जगत् के अन्तर्गत कुत्ता परिवार का सदस्य माना गया है.[3]

वृक विश्व के अनेक भागों में पाया जाता है. इसे हिमालय की तराई वाले भागों से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारत में देखा गया है. भेड़िया अपनी चालाकी एवं गोलबन्दी के लिए प्रसिद्ध है. यह अकेला कम देखने में आता है एवं सामान्यतः ७–८ के समुदाय में रहता है. यह एक खूंखार जीव है. यदाकदा बच्चों को उठाकर ले जाते हैं और गुफा में उनका पालन करते हैं. ये बच्चे फिर बोलना नहीं सीख पाते एवं ज्यादा दिन जिन्दे नहीं रहते. वे न मानव ही रहते हैं और न भेड़िया ही. इस विषय में श्री रडयार्ड किपलिंग की एक कहानी, जिसे 'जंगल–बुक' या 'मोगली की कहानी' नाम दिया गया है, विख्यात है. यह एक एसे बच्चे की कहानी है जो भेड़ियों के द्वारा जंगल में पाला गया था. जब वह वापस बस्ती में लौटा तो लोगों ने उस पर पत्थर फेंके और स्वीकार नही किया. यह कहानी स्काउटिंग के साहित्य में अनेक स्थानों पर मिलती है. यह कथा अंशतः काल्पनिक है.[4]

भेड़िया आकार में सियार से बड़ा होता है. यह लगभग एक मीटर लम्बा एवं २ से ढ़ाई फीट ऊँचा जीव है. इसकी पूंछ करीब आधा मीटर लम्बी होती

---

1 ऋक्. 1।42।2, अ. वे. 7।95।2 का. स. 11।10

2 'कोक ईहामृगो वृकः'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

3 'जीवजगत्' पृ. 861

4 देखिये–'वेनगंगा के किनारे'—श्री श्रीकृष्णदत्त शर्मा

है. भेड़िये का रंग राख जैसा होता है. पेट का रंग हल्का होता है एवं पीठ पर रंग गहरी धारियों से युक्त होता है.

भेड़िया मांसाहारी पशु है. खरगोश, भेड़-बकरी तो इसके प्रमुख खाद्य पदार्थ हैं ही, यदा कदा ये मिलकर गाय या बैल आदि को भी अपना आहार बनाने में सफल हो जाते हैं. आदमखोर हो जाने पर ये अण्डे बड़े भयंकर हो जाते हैं. भेड़िये की मादा सर्दी के दिनों मे ५–७ बच्चों को एक बारगी जन्म देती है.

संस्कृत काव्यों में वृक—संस्कृत काव्यों में वृक के लिए वृक: शब्द का ही प्रयोग हुआ है[5] काव्यों में वृक का वर्णन अत्यन्त विरल है.

मानव व वृक—मांसभक्षी पशु होने के नाते वृक का मानव के साथ सामीप्य-सम्बन्ध तो नहीं रह सका, फिर भी मानव भेड़िये से संबन्धित अवश्य रहा है. महाकवि भारवि ने तो अपने काव्य में युधिष्ठिर के भाई भीमसेन को 'वृकोदर' नाम से अनेकधा कहा है.[6] भीमसेन शक्ति के भण्डार थे एवं शक्ति के लिए अधिक भोजन की भी उनको आवश्यकता थी. अत: अधिक खाने के कारण उन्हें वृक के समान पेट वाला कहा है, क्योंकि भेड़िया खाने में सानी नहीं रखता. चोरी छलकपट व चालाकी कुछ भेड़िये के ऐसे गुण हैं जो नीच लोगों में देखे जा सकते हैं. बाण ने अपनी कादम्बरी में शुकनासोपदेश में चन्द्रापीड़ को कहलवाया है कि उसे धूर्त भेड़िये रूपी सेवक धोखा न दे दें.[7] इस प्रकार मानव व वृक का सम्बन्ध काव्यों में वर्णित किया गया है.

कार्य कलाप—भेड़िया एक मांसाहारी जीव है, अत: मांस की खोज में उसका इधर-उधर घूमना आवश्यक है. मनुष्य मांसाहारी जीवों से डरता है क्योंकि उसे व उसके पालतु पशुओं को इनसे सर्वदा खतरा बना रहता है. इसी बात को ध्यान में रखते हुए दण्डी लिखते हैं कि भेड़िये व व्याघ्र के मारने से स्थल-मार्ग भय रहित हो जाता है.[8] एक स्थान पर वृक की चालाकी, उदण्डता एवं बदमाशी की बात कही गयी है तो अन्यत्र वही वृक शान्ति का अवतार सा प्रतीत होता है. बाण ने लिखा है कि दूध पीते हुए नील गाय के बच्चों को वृक कुछ किये बिना ही बैठे-बैठे देख रहे हैं.[9]

---

5 किरात. 1।34 कादम्बरी पृ. 336

6 'महारथ सत्यधनस्य मानसं दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः'—किरात. 1।34

7 'नावलुप्यसे सेवकवृकैः' कादम्बरी पृ. 336

8 'वृक व्याघ्राहिघाते' द. च. 8। 24

9 'निर्विकार वृक.' ह. च. पृ. 420

सम्पूर्ण काव्यों में वृक का उल्लेख कुल मिलाकर ५ बार ही मिलता है. बाण व भारवि ने दो-दो बार एवं दण्डी ने एक बार भेड़िये का उल्लेख किया है. वृक के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में दर्शनीय है.

— — —

तालिका—१

'वृक' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (X)

तालिका—२

'वृक' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (5)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
भारवि	२	किरात.	१।३४. २।१.
बाणभट्ट	१	ह. च.	पृ. ४२०.
,,	१	कादम्बरी	पृ. ३३६.
दण्डी	१	द. च.	पृ. ८।२४.

श्वान
THE DOG

अस्ति क्षुधार्ता इव सारमेया,
भुक्त्वापि यान्नैव भवन्ति तृप्ताः ।।
—बुद्धचरितम् । २५

संस्कृत साहित्य में श्वान का स्थान गौण रहा है किन्तु इसका वर्णन अत्यन्त प्राचीन है. वैदिक-साहित्य में श्वान का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है. वैदिक-साहित्य में श्वान के लिए कुक्करः,[1] माकलः,[2] श्वानः[3] सारमेयः[4] शब्दों का प्रयोग होता था. वैदिक-साहित्य के बाद वीरकाव्य साहित्य में तो श्वान के बारे में अनेक कथायें मिलती हैं. वहां इसे श्वान,[5] शुनकः,[6] व सारमेय[7] शब्दों से कहा है. रामायण में कुत्ते के मांस के खाने वालों को चाण्डाल की संज्ञा दी गयी है.[8] संस्कृत-साहित्य में चाण्डाल को श्वपचः भी कहते हैं. अमरकोष में कुत्ते को कौलेयकः, सारमेयः, कुक्करः, मृगदशकः, शुनकः, भषकः, श्वा, विट्चरः, एवं ग्राम्यसूकरः कहा है.[9] श्वान मेरु-दण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत कुत्ता-समूह के कुत्ता परिवार का सदस्य है.[10]

कुत्ता मानव का पुराना साथी है. यह संसार के सभी भागों में पाया जाता है कुत्ता एक पालतू जीव है कुत्ता परिवार एक बहुत बड़ा परिवार है. अतः कुत्तों

---

1 अ० वे० 7/95/2
2 जै० ब्रा० 2/440.
3 ऋक्० 1/161/13, 1/182/4. 2/39/ अ० वे० 6/37/3, 11/2/2
4 ऋक्० 7/55/2. 10/14/10
5 'श्वानकुक्कुटवृकांश्च'—वा० रा० यु० 100/44
6 'सूकरा शुनकैः सह'—वही० उ० 35/30
7 'सारमेयस्य वैद्विज'—वही० उ० 1/2/20
8 'श्वामांसभोजिनः'—वही० बा० 62/18
9 'कौलेयकः सारमेयः कुक्करो मृगदर्शकः
'शुनको भषकः श्वा स्यात्,
'विट्चरः सूकरोग्राम्यः इत्यमरः ।। (शूद्रवर्गः)
10 जीव जगत पृ० 679

के अनेक प्रकार विश्व में वितरित हैं. उन सबका यहां विस्तृत वर्णन करना संभव नहीं, अतः उनका नामोल्लेख मात्र करते हैं :—

(१) अलसेसियन (२) स्पेनियल (३) डाक्सहुड (४) पिकनीज (५) डलमेशियन (६) सेटर (७) ब्लडहाउण्ड (८) बुलटेरियर (९) गोलडन रिट्रीवर (१०) ग्रेहाउण्ड.

इन सब प्रकार के कुत्तों के गुण, रंग आकार आदि में थोड़ा-थोड़ा अन्तर पाया जाता है. कुत्ते का इतिहास प्रागैतिहासिक है. स्विटजरलैण्ड के लोग कुत्तों को शिकार के लिए काम में लाते थे.[11]

कुत्ता घर-घर घूमने वाला जीव है. इसका कद सियार के बराबर का होता है. कुत्ते अनेक रंग के होते हैं. सफेद चितकबरे, भूरे बादामी, ललछौह व काले रंग के कुत्ते यत्र-तत्र-सर्वत्र देखने में आते हैं कुत्ता आरम्भ में सियार की भांति जंगली था, किन्तु बाद में इसे पालतू बना लिया गया.

कुत्ता एक बहुत स्वामीभक्त एवं बुद्धिमान जीव है. कुत्ते की बुद्धिमानी की अनेक कथाएं हमारे देश में प्रचलित हैं. कुत्ते का मानव के साथ युग-युग का साथ रहा है और इस कारण कुत्ता बड़ा समझदार हो गया है. इसकी समझदारी के कार्यों को देखकर आश्चर्य होता है. कुत्ता घर का एक बहुत बड़ा चौकीदार होता है. कारण कि यह कभी गहरी नींद नहीं सोता और थोड़ी सी आहट सुनते ही आंख खोलकर देख लेता है कि क्या कुछ हो रहा है. इसकी आँखे बड़ी तेज ज्योति वाली होती है और घ्राणशक्ति तो बहुत ही तीव्र होती है. कुत्ता एक संगीत प्रेमी जीव माना जाता है. शाम के समय जब मदिरों में घन्टा ध्वनि होती है, तब कुत्ता एक स्वर से भौंकता है. कतिपय लोग इसे कुत्ते का रोना कहते हैं, पर यह रोना न होकर कुत्ते का संगीत प्रेम प्रदर्शन मात्र हैं, ऐसा मनोवैज्ञानिकों का मत है. पुलिस व फौजी कुत्ते बड़े ही चतुर होते हैं. ये चोरों को पकड़ने में बहुत सफल हुये हैं. यदि कुत्ते को समय पर अच्छा भोजन दिया जावे एवं इसे स्वच्छ परम्परा में रखा जावे तो यह बड़ा साफ-सुथरा जीव है. शिकारी कुत्ते बड़े समझदार एवं इशारे पर काम करने वाले होते हैं. भारत में भी अब कुत्ते पालने का शौक दिनोदिन बढ़ता जा रहा है. कुत्ता मनुष्य के बड़े काम का प्राणी है.

कुत्ता एक मांसहारी जीव है. परन्तु मानव के साथ सम्पर्क होने से यह पका खाना भी खाना सीख गया है. कुतिया एक बार में अनेक बच्चे देती है. कुत्ता बहुत कामुक होता है.

---

11 इन० ब्रि० भाग 7 पृ० 495

संस्कृत काव्यों में श्वान

संस्कृत काव्यों में कुत्ते को श्वानः, सारमेयः, शुनः. कौलेयकः, एवं ग्राम्यमृगः नामों से कहा गया है.[12] अब हम श्वान की काव्यात्मक विशेषताओंका वर्णन करेंगे ।

मानव एवं श्वानः—जैसा कि सर्वविदित है कि कुत्ते व मानव का युग-युग का साथ रहा है. फिर भला वह कवि की लेखनी से किस प्रकार वंचित रह सकता था. कुत्तों को बाण ने भीलों का साथी बतलाया है.[13] यशोमती राजा के प्रिय कुत्तों को भी डबडबाई निगाह से देख रही थी[14] शिकार के शौकीन नवयुवकों के साथ ननैली झाड़ियों में कुत्तों के भ्रमण का भी उल्लेख प्राप्त होता है.[15]

श्वान के क्रिया-कलापः—कुत्ते अच्छे शिकारी होते हैं. ये मृगों को नोच डालते हैं.[16] शिकार के लिए कुत्तों को मुक्त करने का वर्णन भी मिलता है.[17] कुत्ते लोगों को भी यदा-कदा काट लेते हैं.[18] एक तरफ कुत्ता जितनी बहादुरी से काम करता है दूसरी ओर यदि उससे भी बलवान मिल जाता है तो कुत्ते की भी बुरी दशा होती है. सूअर कुत्ते पर आघात कर उन्हें घायल बनाने में समर्थ होते हैं.[19] गांव के लोग वीर होते हैं वे कुत्तों को कुसष्ठक फासों में बांधकर घसीट लेते हैं.[20] कुत्तों के रोने का उल्लेख महाकवि कालिदास ने किया है.[21] कुत्तों की आवाज से वन में गांव की स्थिति का पता चल जाता है क्योंकि कुत्ते गांवों में

---

12 कुमार 15/41 ह० च० पृ० 404
कादम्बरी० पृ० 98. ह० च० पृ० 4. बु० च० 14/13
बु० च० 11/25. कादम्बरी पृ० 86
कादम्बरी 87 ।
ह० च० पृ० 287. 409
शिशु० 15/15 ।

13 'परिचिता श्वानः'—कादम्बरी पृ० 96

14 'भूपालवल्लभन्कौलेय० ह० च० पृ० 287

15 ह० च० पृ० 409

16 'सारमेय विलुप्यमाना'—कादम्बरी पृ० 86

17 विमुच्यन्तां श्वानः—वही० पृ० 85

18 'भक्ष्यन्ते दारुणै श्वंनिः'—बु० च० 14/131

19 कण्ठैर्महावराह—प्रहारजर्जरं० कादम्बरी पृ० 93

20 ह० च० पृ० 379

21 'श्वान-स्वरेन'—कुमार० 15/24

ही रहते हैं.[22] कुत्तों की आवाज का उल्लेख मिलता है, जिसे घुर्र-घुर्र की आवाज कहा है.[23]

उपमित श्वानः—काम निंदा करते हुए अश्वघोष ने कामी लोगों की अतृप्ति की हड्डी चबाकर भी अतृप्त कुत्तों से समता की है अर्थात् कामी लोग भोग करने के बाद भी तृप्त नहीं होते जिस प्रकार कुत्ते हड्डी चबाकर भी भूखे ही रहते हैं.[24] कालिदास द्वारा वर्णित तारक ने देवताओं की वाणी की तुलना कार्तिक मास में भौंकने वाले कुत्तों से की है.[25] वीर पुरुषों द्वारा घेरी गई नाव की समता सूअरों को कुत्तों द्वारा घेरे जाने से की गई है अर्थात् नाव व सूकर एवं वीर पुरुष व कुत्तों के गुणों में साम्य प्रदर्शित किया गया है.[26] घर-घर में केवल जन्म लेने वाले कवियों को कुत्तों के समान बतलाकर महाकवि बाण ने खल निंदा का नया उदाहरण प्रस्तुत किया है.[27] उनका तात्पर्य संभवतः यह है कि जिस प्रकार घर-घर में कुत्ते निवास करते हैं, वैसे ही हर व्यक्ति अपने आपको कवि मानने लगा है. यह कवि की सूक्ष्म दृष्टि की उपज है माघ ने शिशुपाल के शब्दों में भगवान् कृष्ण की तुलना कुत्ते से करते हुए कहा है कि जिस प्रकार जलते हुए हविष्य को पाने में कुत्ता असमर्थ होता है (ताप के कारण), उसी प्रकार राजा लोगों की उपस्थिति में कृष्ण इस हविष्य के अर्द्धांश को पाने में सर्वथा असमर्थ रहेगा.[28] यहां कृष्ण व कुत्ते की एवं राजा लोग व अग्नि युक्त हविष्य की समता प्रदर्शित की गयी है. इस प्रकार कवियों ने श्वान को अनेकानेक प्रकारों से उपमित कर संस्कृत साहित्य को एक नयी दिशा दी है.

संस्कृत काव्यों में श्वान का सबसे अधिक उल्लेख बाण ने किया है. द्वितीय स्थान कालिदास व अश्वघोष का है. बाण ने कुत्ते का वर्णन १० बार एवं कालिदास व अश्व घोष ने २–२ बार किया है, जबकि माघ व दण्डी ने केवल १–१

---

22 कुक्कुटकौलेय करटिता नुमीयमान० कादम्बरी पृ० 634

23 शुनांच० यथोपरि पृ० 87

24 कादम्बरी पृ० 634

25 'श्वानः प्रमत्ता इव कार्तिके'—कुमार० 15/41

26 'तावदतिजवा नौकाः श्वान० द० च० पृ० 404

27 'सन्ति श्वान इवा संख्या जातिभाजो गृहे-गृहे ह० च० पृ० 4

28 ग्राम्यमृग—शिशु० 15/15

बार. भारवि, श्रीहर्ष, सुबन्धु एवं कालिदास के नाटकों में कुत्ते का वर्णन अनुपलब्ध है. इस प्रकार कुत्ते का वर्णन कुल मिलाकर केवल १६ बार हुआ है अतः वर्णन के आधार पर संस्कृत में श्वान का गौण स्थान रहा है. श्वान के वर्णन का विश्लेषण संलग्न तालिकाओं में दर्शनीय है.

तालिका—१

'श्वान' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (२)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
२	कुमार०	१५।२६, ४१.

तालिका—२

'श्वान' के वर्णन का कालिदासोतर काव्यों में विश्लेषण (१५)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	२	बु० च०	११।२५. १४।१४.
माघ	१	शिशु०	१५।१५.
सुबन्धु	१	वासवदत्ता	पृ० २१५.
बाणभट्ट	४	ह० च०	पृ० ४, २८७, ३७९, ४०९.
	६	कादम्बरी	पृ० ८५, ८७, ९३, ९८, ३२०, ६३४.
दण्डी	१	द० च०	पृ० ४०४.

शश
THE RABBIT

य एव जागर्ति शशः शशाङ्के,
बुधो विधते क इवात्रचित्रम् ।
—नैषधीयचरितम् २२/६४

संस्कृत साहित्य में शश का स्थान अन्य पशुओं की अपेक्षा गौण है. किन्तु शश का उल्लेख संस्कृत साहित्य में प्राचीन है. वैदिक-साहित्य में खरगोश को शशः[1] कहा गया है. ऋग्वेद में शश का केवल एक बार उल्लेख आया है.[2] शतपथ ब्राह्मण में 'चन्द्र में शशः का उल्लेख है.[3] संस्कृत साहित्य में खरगोश को शशः[4] एवं शशकः[5] शब्दों से कहा है. बाल्मीकि रामायण में भी शशः शब्द आया है.[6]

शश मेरुदण्डीय उपजगत के अन्तर्गत स्तनप्राणी श्रेणी के द्विदन्त उपवर्ग के खरगोश परिवार का प्राणी है.[7] सामान्य भाषा में खरगोश चौपाया प्राणी है. यह १८ से २० इन्च तक लम्बे होते है. लम्बाई में ३ या ४ इन्च लम्बी पूंछ भी शामिल है. खरगोश की मादा आकार में नर से बड़ी होती है. खरगोश की पीछे की टांगे बड़ी होती है और इसी कारण वह तेज दौड़ता है. खरगोश जाति एक ही है, किन्तु स्थान-स्थान के आधार पर इसे कई जातियों में विभक्त कर दिया है. खरगोश एक हितकर एवं शांति प्रिय जीव है[8] यद्यपि इसके दांत अत्यन्त कठोर होते हैं, किन्तु ये बहुत कम काटते हैं; भले ही इनको पीटा जाय.[9] शश की पूंछ छोटी एवं कान बड़े होते हैं.

---

1 ऋक० 10/28/2 वा० सं० 23/56
मै० सं० 3/14/15
2 ऋक्० 10/28/2
3 श० ब्रा० 11/1/5/3
4 अमर कोषे०
5 स० ई० डि० आप्टे पृ० 375
6 'मातंग शशश्च सहितौ वने'—वा० रा० सु० 22/16
7 जीव जगत पृ० 650
8 ए० किंग पृ० 230
9 यथोपरि०

खरगोश का उत्पत्ति-स्थान भूमध्य सागरीय प्रदेश माना जाता है, किन्तु मानव के द्वारा यह सम्पूर्ण समशीतोष्ण यूरोप में फैल गये हैं एवं निरन्तर फैल रहे हैं.[10] खरगोश न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका ध्रुवप्रदेश व भारत मे अधिक पाया जाता है. यह खेतों व झाड़ियों वाले भागों में रहता है, क्योंकि वहां इसको घास व पौधों के अतिरिक्त छिपने का स्थान भी मिल जाता है. यह खेतों के लिए हानिकारक है.

खरगोश के बदन का ऊपरी हिस्सा खैर रंग का होता है. इसका मुंह कल-छौंह एवं नीचे का भाग धवल होता है. इसकी टांगों व सीने का कतिपय भाग लालिमा पूर्ण होता है. शश का सारा शरीर बालों से ढका होता है. इसके मुंह पर मूंछे होती हैं.

खरगोश का आर्थिक महत्त्व काफी है. इससे मुख्यतः दो वस्तुएं प्राप्त होती हैं प्रथम तो फर एवं द्वितीय मांस[11] इसकी फर से कपड़े एवं टोप बनाये जाते हैं. हैट-व्यापार के लिए सबसे अधिक फर आस्ट्रेलिया से निर्यात किया जाता है.[12] खरगोश से द्वितीय प्राप्त वस्तु है, उसका मांस. खरगोश का मांस सफेद रंग का रवेदार एवं स्वादिष्ट माना गया है.[13] इंगलैण्ड प्रतिवर्ष दस हजार टन खरगोश का आयात करता है.[14]

खरगोश बसन्त ऋतु में बच्चे देता है. इसका गर्भाधान काल एक माह का होता है. मादा खरगोश एक बार में एक या दो बच्चे देती है. छः या सात माह में खरगोश जवान हो जाता है. खरगोश का जीवल काल १०, पर १२ वर्ष से अधिक कदापि नहीं होता. कतिपय खरगोश तो ३ या ४ साल में ही समाप्त हो जाते हैं.[15] खरगोश का अन्त उसके मांस एवं वैज्ञानिक परीक्षणों के लिए समय समय पर होता रहता है.

संस्कृत काव्यों में शश

संस्कृत काव्यों में शश का वर्णन विरल है. काव्यों में इसे शशः[16] एवं शशकः नामों से कहा गया है.

---

10 इन० ब्रि० भाग 16 पृ० 86
11 ए० किंग पृ० 231
12 इन० ब्रि० भाग 16 पृ० 861
13 ए० किंग पृ० 231
14 यथोपरि० पृ० 231
15 यथोपरि० पृ० 237
16 ह० च० पृ० 416, शिशु० 5/25

मानव एवं खरगोश :—खरगोश मानव के जीवन से काफी सम्बन्धित रहा है. सेना के मध्य में खरगोश का आना अनिष्ट-कारक माना गया है.[18] खरगोश के शिकार एवं उसके पालन की झलक भी काव्यों में उपलब्ध है.[19]

शश के कार्य कलाप :—शश के बच्चों के शिलाओं पर शयन करने का वर्णन महाकवि बाण ने किया है.[20] सेना की कलकल ध्वनि को सुनकर खरगोश इधर-उधर उचकने लगे. अतः प्रतीत होता है कि खरगोश बड़ा डरपोक व चंचल पशु है. खरगोश द्वारा ईख खाने का भी उल्लेख मिलता है.[21]

उपमित शशक :—कवियों ने अनेक बार शश के चिन्ह को चन्द्रमा के लांछन के सदृश बताया है.[22] नैषधकार ने यह अनुमान किया है कि चन्द्रमा के मध्य में वर्तमान धवलोदर शश का मुख ऊपर की तरफ है.[23] कादम्बरी में कनेर से भरी पहाड़ियों में शशक का स्वच्छन्द भ्रमण वर्णित किया गया है.[24]

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्यों में शशक का वर्णन केवल १६ बार आया है. बाण ने छः बार हर्ष चरित में एवं दो बार कादम्बरी में, कुल ८ बार शशक का वर्णन किया है. नैषधकार, माघ व भारवि ने अपने काव्यों में शशक का वर्णन क्रमशः ५, १ व २ बार किया है. अतः खरगोश का स्थान वर्णन के आधार पर गौण है. खरगोश के वर्णन के विश्लेषण के लिए संलग्न तालिकायें देखिये.

— — —

17 नैषध० 5/120, ह० च० पृ० 377 व 78

18 'उघात० शिशु० 5/25

19 बन्धुकलोहित रुधिरराजिरजित० ह० च० पृ० 416

20 'शैलेय सुकुमार०— ह० च० पृ० 420

21 'शशकैश्च० ह० च० पृ० 378

22 'शीतमासि शशकः परमंकः।'—नैषध 5/120' 'शशः शशांके'—वही० 22/94, 'शशांक शंकाम्'—किरात० 5/42, 'शशधर'—वही० 10/11. शशमिमादथ कालिक्यांगित'—नैषध० 4/73 'शशांक'—वही० 22/115

23 उत्तानमेवास्य बलक्षकुक्षिदेवस्य युक्तिः शशमंकमाह—नैषध० 22/80

24 'कर्णसुतकथैव सन्निहित-विपुलाचला शशेपगता च'—कादम्बरी० पृ० 57

तालिका-१

'शश' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (×)

तालिका-२

'शश' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (१६)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
भारवि	२	किरात०	५।४२. १०।११.
माघ	१	शिशु०	५।२५.
श्रीहर्ष	५	नैषध०	४।१३७. ५।१२०. २२।८०. ६४, ११५.
बाण-	६	ह० च०	पृ० ३७७, ७८, ४१०, १५, १६, २०.
भट्ट	२	कादम्बरी	पृ० ५७. ६६४.





शूकर
THE PIG

"वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्लवे ।"

—शाकुन्तम् २/६

संस्कृत-साहित्य में शूकर का स्थान गौण है. किन्तु इसका वर्णन काफी प्राचीन है. वैदिक साहित्य में शूकर को वराहः, दुस्वराहः एवं सूकरः शब्दों से कहा गया है.[1] संस्कृत-साहित्य में शूकर के लिए वराहः, सूकरः घृष्टिः, कोलः, प्रोत्रिन्ः, किरिः, दंष्ट्रीः, घोधिन्, स्तब्ध-रोमन्, क्रोड़ः, भूदारः, गृष्टिः, शूकरः व शूकरशावः शब्दों का प्रयोग देखा गया है.[2] वाल्मिकी रामायण में वराह एवं शूकर का उल्लेख आया है.[3]

शूकर मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत स्तनप्राणी श्रेणी के शूकर-समूह के सूकर जाति का प्राणी है. सामान्य भाषा में सूकर चौपाया जीव है.[4]

---

1 ऋक्० 1/61/7, अ० वे० 8/7/23, मै० सं० 3/14/19
ऋक्० 1/114/5
श० ब्रा० 2/1/4/3
ऋक्० 7/55/4, अ० वे० 2/27/2, 5/14/1
मै० सं० 3/14/21, वा० सं० 24/40

2 वराहः सूकरो घृष्टिः कोलः प्रोत्री किरिः किरिः
दंष्ट्री घोणी स्तब्धरोमा क्रोडोभूदार इत्यपि
—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

इ० सं० डि० आप्टे पृ० 191 ।
'पंडिता एवं जानंति सिंह शूकरयोर्बलम्'—सुभाषित
इ० स० आप्टे पृ० 560
स० इं० डि० आप्टे पृ० 343

3 'वराहाणां च संचयात्'—वा० रा० यु० 60/32
'सुकरा शुनकैः सह'—वही० उ० 35/30

4 जीवजगत् पृ० 618

सूकर एक गन्दा एवं भद्दा सा प्राणी है. इसकी खाल मोटी एवं बाल बड़े होते हैं. इसका थूथन आगे से चपटा होता है. इसके ऊपर के दाँत बाहर की ओर निकले होते हैं. इसके पैर छोटे एवं शरीर गोल होता है. यह धरती के अधिक नजदीक होकर खाता-पीता एवं सांस लेता है.[5]

सूअर मुख्यतः निम्नलिखित प्रकारों के होते हैं.—

१. बनैला सूअर—ये सूअर मैदानों से लेकर ऊँचे पर्वतीय वनों तक के क्षेत्र में विद्यमान हैं. इसके दांत बड़े एवं तीक्ष्ण होते हैं. ये सूअर आत्म-रक्षा में बड़े चतुर होते हैं एवं अपने दांतों की टक्कर से विरोधी का पेट चीर देते हैं. ये भी गाँव के सूअरों की भांति कीचड़ में लेटना पसंद करते हैं. ये सूअर शांतिप्रिय होते हैं एवं हमला न करते हुए स्वरक्षा में दौड़ जाते हैं, परन्तु घायल हो जाने पर शेर या हाथी से भी टक्कर ले लेते हैं. इनका मांस काफी मात्रा में खाया जाता है.

२. सूअर (Pig)—पालतू सूअरों के अनेक प्रकार भू-मण्डल पर विद्यमान हैं. हमारे देश में इनकी विशेष महत्ता नहीं, कारण कि मुसलमान सूअरों को स्पर्श नहीं करते एवं हिन्दुओं में कतिपय लोग इसका मांस खाना पसन्द करते हैं. इसी कारण भारतीय सूअर शरीर से काफी कमजोर एवं गन्दे होते हैं. ये विष्ठा खाना अधिक पसन्द करते हैं. अतः विशेष घृणा के शिकार हो गये हैं, पर विदेशों में इनकी ओर काफी ध्यान दिया जाता है. वास्तव में सूअर एक स्वच्छ प्राणी है बशर्ते उसे स्वच्छ वातावरण में रखा जाये.[6]

३. बनैल सानो—यह बनैला पशु नेपाल में पाया जाता है. यह शाकाहारी एवं सरल प्रकृति का प्राणी है. यह रात को बाहर निकलता है. यह समूह में रहने वाला जीव है. इसका मांस भी खाने योग्य होता है. यह अन्य सूअरों से अपेक्षाकृत छोटे आकार का होता है.

४. गाइना सूअर—यह सूअर दक्षिणी अमेरिका की उत्पत्ति है, जो बाद में व्यापारियों द्वारा यूरोप ले जाया गया. यह आकार में छोटा एवं दौड़ने में तेज होता है. इसके कान छोटे एवं गोल होते हैं. ये पाले जाने पर परमोपयोगी पशु है.[7]

सूअर का उत्पत्ति स्थान रहस्यमय रहा है. एक चीनी विद्वान के अनुसार

---

5 इन० ब्रि० भाग 17 पृ० 916

6 यथोपरि०, ब० स० भाग 2 पृ० 391

7 ए० किग० पृ० 559

चीन में २६०० बी० ईसा पूर्व में सूअर का पालन होता था.[8] सूअर के अवशेष भारत एवं यूरोप में प्राप्त हुए हैं किन्तु अमेरिका में नहीं[9] वैसे सूअर विश्व के सभी भागों में पाया जाता है, किन्तु डेन्मार्क, नीदरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, अर्जेन्टाइना, पौलैण्ड, कनाड़ा, जर्मनी, इटली व भारत में इसका बाहुल्य है. सामान्यतः सूअर को पाला जाता है किन्तु बनैल सूअर वनों में, गुफाओं में या गड्ढा खोदकर रहते हैं. पालतू सूअर बनैल सूअरों से रंग आकार एवं अन्य विशेषताओं के आधार पर भिन्नतायें रखता है.[10] पूर्वक सूअर का पालन उसके स्वास्थ्य द्रुतोत्पत्ति एवं विकास के साथ-साथ सूअरोत्पत्ति के लिए लाभप्रद है.[11] सूअर का प्रमुख खाद्य है—घास की जड़ें, मक्का, गेहूं, जौ, राई, जई व चारा इत्यादि. इसकी पाचन शक्ति बड़ी कमजोर होती है. अतः यह सेल्यूलोज को पचा नहीं सकता.[12]

शूकर का रंग कलछौंह होता है, इसके पट्ठों का रंग भूरा रहता है जो वृद्धावस्था में सलेटी हो जाता है. कतिपय शूकरों के शरीर पर कहीं-कहीं सफेद बालों का गुच्छा भी होता है.

सूअर का आर्थिक महत्व भी कम नहीं है. इससे मुख्यतः दो वस्तुयें प्राप्त होती हैं, प्रथम तो मांस एवं द्वितीय बाल. इसका मांस बहुत खाया जाता है. इंगलैण्ड सबसे अधिक सूअर के मांस का आयात करने लगा है. शूकर का मांस स्वादिष्ट बताया जाता है एवं लोग इसे बड़े चाव से खाते हैं. सूअर से दूसरी मुख्य वस्तु जो प्राप्त होती है वह है इसके बाल. इसके बाल बड़े कड़े होते हैं एवं सामान्यतः ब्रुश बनाने के काम आते हैं.

सामान्यतः सूकर का गर्भाधान काल १६ सप्ताह होता है जबकि गाइना सूअर का गर्भाधान काल दो माह या ८ सप्ताह मात्र होता है.[13]

संस्कृत काव्यों में शूकर

संस्कृत-काव्यों में शूकर को वराहः एवं सूकरः व दंष्ट्री नामों से कहा गया है.[14]

8 इन० ब्रि० भाग 17 पृ० 916
9 यथोपरि०
10 यथोपरि०
11 इन० ब्रि० भाग 17 पृ० 917
12 इन० चेम्बर भाग 10 पृ० 723
13 ए० किंग० पृ० 359
14 कादम्बरी पृ० 59, 83, 84, 93, कुमार. 8/25 ऋतु० 1/17

मानव एवं शूकर—मानव व शूकर का सम्बन्ध काफी पुराना है. वास्तव में मानव सदा पशुओं से प्रेम करता रहा है. इन्द्रपुत्र एवं राजा दशरथ द्वारा बनैले सूअरों को देखने का उल्लेख किया गया है.[15] शबर लोगों का सम्पर्क सूअर से अधिक रहा है. शबर युवक द्वारा सूअर के बालों के मध्य विष-औषधि की गुच्छी ले जाने का उल्लेख महाकवि बाण ने किया है.[16] आश्रम के बालकों के द्वारा सूअर के मुंह से कमल खींचने का वर्णन भी मिलता है.[17] किराता-र्जुनीयम् में एक विशेष प्रकार के सूअर का वर्णन किया गया है, जो वास्तव में एक दानव था एवं सूअर का रूप धारण कर अर्जुन के विरुद्ध युद्ध कर रहा था.[18] यह वर्णन ठीक उसी प्रकार का है जिस प्रकार रामायण में मारीच (राक्षस) मृग बनकर राम को धोखा देता है. एक दानव का पशु बन जाना एवं पुनः राक्षस बन जाना सत्य प्रतीत नहीं होता. अतः इसे कवि कल्पित मानना अधिक उचित एवं तार्किक है.

कार्य-कलाप—संस्कृत-काव्यकारों ने सूअर के कार्य-कलापों का यदा-कदा अपने काव्यों में उल्लेख किया है. सबसे प्रथम बात तो यह है कि बराह एक समुदाय में रहने वाला प्राणी है.[19] द्वितीय प्रमुख बात सूअर के बारे में कवि-गणों ने कही है वह यह है कि सूअर को कीचड़ से प्रेम है.

कादम्बरी में शबर सैनिकों से कीचड़ सने सूअरों के गमनागमन के मार्ग के बारे में कवि ने कहलवाया है.[20] वास्तव में कीचड़ सने सूअर यदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर निरन्तर आया जाया करें, तो एक कीचड़युक्त मार्ग बन जाता है. अतः कवि का वर्णन अनुभव सिद्ध एवं सूक्ष्म निरीक्षण का प्रतिफल ज्ञात होता है. वह कीचड़ में गड़े गहरे हल्दी एवं घास के तन्तुओं को बाहर निकाल फेंकते

किरात० 12/37

किरात० 13/1

15 मृगमाशु० किरात० 13/1, 'द्रुतवराह कुलस्यमार्गम्'–रघु० 9/59

16 'वराहवाल बलित बन्धनाभिर्नाशदमन'० ह० च० पृ० 414

17 ऋषिकुमारका०–कादम्बरी पृ० 121

18 किरात० 12/37

19 पल्लवोतीर्ण बराह यूथान्–रघु० 2/17

20 आर्द्र-पंक 'मलिना वराह पद्धति'—कादम्बरी० पृ० 84

हैं यह इनकी स्वाभाविक क्रिया है.[21] कुत्तों व सूअरों का पुराना साथ रहा है.[22] वास्तव में सूअर बड़ा भयंकर जीव है, वह अपने शत्रु को बुरी तरह से मारता है.

उपमित सूअर—अन्य पशुओं की भांति शूकर को भी कवियों ने उपमित किया है. सूअर वेशधारी दानवों की समता काले बादलों से की गई है.[23] भील के हाथों से निसृत गंध की तुलना सूअर के मांस की गंध से की गई है.[24] सूअर के दांतों की तुलना कमल की खाई हुई डंठलों से की गई है.[25] ऋतुसंहार में एक वर्णन आया है कि गर्मी से झुलसा हुआ सूअरों का एक झुण्ड अपने लम्बे नथूनों से नागर मोथे से घिरे हुए बिना कीचड़ वाले गड्ढे को खोदता हुआ ऐसा प्रतीत होता है, मानों धरती में घुसा जा रहा हो.[26] इस वर्णन का अध्ययन करने से ऐसा ज्ञात होता है कि भगवान के वराहावतार की जो कल्पना की गई हैं वह इस दृश्य को देखकर ही की गई है.

इस प्रकार सम्पूर्ण संस्कृत-काव्यों में सूअर का वर्णन बड़ा ही महत्वपूर्ण एवं काव्यात्मक है. सूअर का सबसे अधिक वर्णन महाकवि बाण ने किया है. उनकी कादम्बरी में ४ बार एवं हर्षचरित में ३ बार कुल ७ बार सूअर का उल्लेख हुआ है. दूसरा स्थान कालिदास का है जिन्होंने सूअर का ४ बार वर्णन किया है. तृतीय स्थान भारवि का है जिन्होंने सूअर का उल्लेख ३ बार किया है. इस प्रकार संस्कृत काव्यों में सूअर का कुल १४ बार उल्लेख है. काव्यों में सबसे अधिक 'वराह' शब्द का प्रयोग किया गया है. सूअर के वर्णन का विश्लेषण संलग्न तालिकाओं में दर्शनीय है.



21 'महावराह दंष्ट्रा समुत्स्त्रात धरणिमन्डला'–कादम्बरी पृ० 59

22 'क्षतहरति हरिद्राद्रवरज्यमाननवराह'० वही० पृ० 420
'वराह पतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्लवे'–शाकु० 2/6

23 'स तमससाद'० किरात० 12/53

24 विविध वन वराह०–कादम्बरी पृ० 103

25 दंष्ट्रिणो वनवराह० कुमार० 8/35

26 ऋतु० 1/17

तालिका—१

'शूकर' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (5)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
२	रघु.	२।१७, ५।५६
१	कुमार.	८।३५
१	ऋतु.	१।१७
१	शाकु.	२।६

तालिका—२

'शूकर' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (10)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
भारवि	३	किरात.	१२।३७, ५३. १३।१
बाणभट्ट	३	ह. च.	पृ. ८३, ८४, ४१४
,,	४	कादम्बरी	पृ. ५६, १०३, २१, ४२६

शाखामृग
THE MONKEY

"मर्कटा इव सर्वेषां मनो नैसर्गिकं चलम्"
—बुद्धचरितम् २६/४१

संस्कृत-साहित्य में शाखामृग का स्थान गौण रहा है. वैदिक साहित्य में वानर का उल्लेख विद्यमान है. ऋग्वेद में कपि शब्द का केवल एक बार उल्लेख मिलता है.[1] अथर्व वेद में भी कपि शब्द का प्रयोग हुआ है.[2] कपि शब्द के अतिरिक्त वैदिक साहित्य में शाखामृग के लिए पुरुषमृगः, पुरुष-हरितवः, मयुः एवं मर्कटः शब्दों का उल्लेख मिलता है.[3]

रामायण में वानर का उल्लेख अनेकधा हुआ है. वहां कपिः,[4] वानरः, प्लवंगः, हरिः व शाखामृगः शब्दों का प्रयोग हुआ है. हनुमानजी के लिए प्लवगाधिपः एवं प्लवगेश्वर शब्दों का प्रयोग मिलता है.[5]

रामायण में तो वानरों का उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण है. राम की सेना का एक भारी भाग वानरों से ही युक्त था. वाल्मीकि ने वानर सेना का सुन्दर वर्णन

---

1 ऋक्० 10/86/65

2 अ. वे. 3, 9, 4, 4, 32, 11

3 तै. स. 5, 5, 12, 1 मै. स. 3. 14, 16, वा. स. 24, 35
वा. स. 24, 29, मै. स. 3, 14, 8
तै. स. 5, 5, 12, 1, वा. स. 24, 31
तै. स. 5, 5, 11, 1, मै. स. 3, 14 11, वा. स. 24, 30

4 'कपि कुंजर'–वा. रा. कि. 5/34. वही. कि. 8/37
'हनुमान्नाम वानरः, वा. रा. कि. 3/21. 8/34
'राक्षसास्तु प्लंवगाना'–वा० रा० यु० 24/5
'नलं नीलं हनुमन्तमन्याश्च हरियूथपान्'–वा० रा० वा० 17/34. हरिपाद विनिर्मग्नो'—वही. कि. 74/37
शाखामृगाणामधिपं–वही० कि० 2/28

5 वा० रा० कि० 22/2. वही० कि० 2/5

प्रस्तुत किया है. जिसका हम विस्तारभय से यहाँ उल्लेख नहीं करेंगे अमरकोष में वानर को कपिः, प्लवंगः, शाखाः, मृगः, वलीमुखः, कीशः, वानरः एवं वनोकस नामों से कहा गया है.[6]

विश्व के चंचलतम पशुओं में से वानर का प्रमुख स्थान रहा है. उसकी चंचलता का 'मर्कटस्य सुरापानम्' कहकर बड़ा अच्छा मजाक उड़ाया गया है. वानर मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत वानर उपवर्ग के वानर-परिवार का जीव है. यह बुद्धिमान् है जिसे बुद्धिमता के आधार पर द्वितीय स्थान मिला है.[7] वानर के प्रमुख निवास सम्पूर्ण विश्व में फैले हुए हैं. ये सभी प्रकार की प्राकृतिक दशाओं में रह सकता है. भूगर्भीय प्रमाणों के आधार पर वानर की यूरोप में उपस्थिति सिद्ध हो चुकी है.[8] वानरवर्ग एक बहुत बड़ा पशुवर्ग है जिसमें अनेक उपवर्ग एवं परिवार सम्मिलित हैं. अतः यहां हम वानर के प्रकारों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेंगे.

१. लंगूर—लंगूर भारत में पाया जाने वाला प्रमुख वानर है. यह जंगली वानर है. यह समुदाय के समुदायों में इधर-उधर भटकता रहता है. रामायण में वर्णित राम की सेना इसी लंगूर परिवार की थी. बन्दर से यह कद में बड़ा होता है, यह दो-ढाई फीट लम्बा होता है. इनकी पूंछ दो फीट तक लम्बी होती है. इनका रंग राख के रंग या गंदला पीला होता है. इनका चेहरा, हाथ व पैर काले होते हैं.[9] सामान्य वानर की अपेक्षा यह सीधे स्वभाव का होता है. भारत के धार्मिक स्थानों में यह काफी पाया जाता है जहां इसे मारा नहीं जाता क्योंकि हमारी परम्परायें ऐसा करने में बाधक होती हैं.

राजस्थान के पुष्कर (अजमेर) एवं गलता (जयपुर) में लंगूरों का बाहुल्य है. लंगूर का प्रमुख खाद्य फल-फूल है. किन्तु यह अण्डा कीड़े-मकौड़े व पका खाना भी खा लेते हैं. मादा एक बार में एक बच्चा देती है.

२. बंदर—यह वानर भारत के उत्तर में अधिक पाया जाता है. दक्षिण भारत में इसका अभाव है. लंगूर की भांति इसकी पूंछ लम्बी न होकर छोटी होती है. इसका रंग भूरा एवं कुछ लालिमापूर्ण होता है. इसके बालों में सुनहरी झलक

---

6 'कपिप्लंगप्लवशाखामृगवलीमुखाः
मर्कटो वानरः कीशो वनौकाः ॥' इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

7 इन० ब्रि० भाग 11 पृ० 754 ए०

8 इन० चेम्बर० भाग 9 पृ० 496

9 इन० चेम्बर भाग 8 पृ० 362

होती है. इनके चेहरे की ललाई उम्र के साथ-साथ बढ़ती जाती है. ये वानर बड़े उत्पाती और बदमाश होते हैं. ये खेतों एवं बागों को बड़ा नुकसान पहुंचाते हैं. घरों में से ये कपड़े, साबुन, खाने की सामग्री को तुरन्त नजर बचाकर ले भागते हैं. ये शहरों एवं बस्ती के आसपास रहते हैं. अवसर पाकर ये काट खाते हैं एवं कभी-कभी छोटे बच्चों को उड़ा ले जाते हैं. यह रोटी, मिठाई, फल, पका खाना खाते हैं. मादा एक बार में एक बच्चा देती है. बच्चा मादा के पेट से चिपका रहता है.

३. नील वानर—भारत के दक्षिण में यह वानर पाया जाता है. यह लम्बाई में दो-ढ़ाई फीट होता है. इसकी दुम १० इन्च से लेकर एक फीट तक लम्बी होती है. इसका चेहरा बड़ा डरावना होता है क्योंकि इसके चेहरे के चारों ओर वानर-शेर की तरह बाल होते हैं. इसका रंग काला होता है पर कहीं-कहीं सफेद बालों की धारियाँ भी होती है. यह पन्द्रह या बीस के झुण्ड में इधर-उधर घूमते हैं. यद्यपि नील वानर देखने में बड़ा भयंकर लगता है, पर मनुष्य की आहट पर यह आक्रमण की अपेक्षा दौड़ना अधिक पसंद करता है.[10]

जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि वानर परिवार एक बहुत बड़ा परिवार है जिसका वर्णन यहाँ काव्यात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं, किन्तु फिर भी वानर का वर्णन करते समय उनका नामोल्लेख आवश्यक है. अतः विश्व के वानर प्रकारों में से कतिपय का उल्लेख करते हैं, वे हैं—

१-अलक वनमानुष. २—तवाँगु. ३—लजीला वानर. ४—बेबूरन. ५—मिरिकिन. ६—युकारी. ७—गिलहरी वानर. ८—गोल पुच्छ वानर. ९—हिपण्डर वानर. १०—गुरिल्ला वानर. ११—चिपांजी वानर. १२—ओरंगोटेंम वानर.

वानर के वर्गीकरण पर विचार करने के बाद हम वानर की सामान्य विशेषताओं पर विचार करते हैं. वानर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसके पूंछ होती है. केवल जिब्राल्टर वनमानुष के पूंछ नहीं पाई जाती वानर-वर्ग के अधिकांश जीवों का शरीर बालों से ढ़का रहता है. इनके हाथों व पैरों में पाँच-पाँच अंगुलियाँ होती हैं. अंगूठा परिमाण में छोटा होता है. अंगुलियों के छोर पर नाखून होते हैं. वानरों के मुख में दांत, कुन्तक, कुकुरदन्त एवं दूध की डाढ़ें और डाढ़ें होती हैं.[11] इनकी खोपड़ी गोल होती है. मनुष्य की भाँति इनके दो आँखें, दो कान व एक नाक होती है. यह अपनी टांगों पर सीधे खड़े हो सकते हैं किन्तु

10 जीव जगत् पृ० 724
11 जीव जगत् पृ० 717

यह हाथों के सहारे भागते हैं. वानर का पालन बड़ा कठिन कार्य है. अजायबघरों के अतिरिक्त अनुसंधान व मनोवैज्ञानिक लोग वानरों का पालन करते हैं. वानर का मस्तिष्क बड़ा विकसित होता है. इसमें सीखने की शक्ति तीव्र होती है. वानर को पकड़ने के लिए पिंजरों को प्रयोग में लाया जाता है.

पहले तो वानर बड़ा उधम मचाता है किन्तु बाद में सीखने लगता है. मदारी के पास रहने वाले वानर बड़े चतुर एवं समझदार होते हैं. सामान्यतः वानर उत्पाती जीव है जिसका उत्तम उदाहरण हितोपदेश व पंचतन्त्र की कथाओं में 'कीलोत्पाटी वानरः' कहकर दिया है.

वानर का माँस कई देशों में बड़े चाव से खाया जाता है. वानर मानव के मनोरञ्जन का अच्छा साधन बन गया है.

संस्कृत काव्यों में शाखामृग

संस्कृत-काव्यों में शाखामृग का स्थान मध्यम रहा है. काव्यों में वानर के लिए कपिः, मर्कटः, वानरः, वनमानुषः एवं गोलागूलः नामों का प्रयोग हुआ है.

वानर व मानव—वानर व मानव का सदा का साथ रहा है. अर्जुन के रथ की ध्वजा पर वानर का निशान था. अतः उसे कपिध्वज की संज्ञा दी गई है.[13] वृषभध्वज एवं कपिध्वज के भार को सहने में असमर्थ होकर इन्द्रजीत पर्वत विचलित होने लगा ऐसा उल्लेख भारवि ने किया है. मर्कट नामक एक राक्षस का भी उल्लेख है.[14]

कार्य-कलाप—वानर के कार्य-कलापों का उल्लेख विभिन्न प्रकार से किया गया है. वानरों के समुदाय की गुफा-द्वार पर उपस्थिति बताई गई है. गर्मी में वानर गुफाओं में प्रवेश पाते हैं.[15] ऐसा वर्णन कालिदास ने किया है. रघुवंश में

---

12 कादम्बरी पृ० 280, 273, 142, 127. ह. च. पृ. 161, 420, 138, 8.
किरात० 18/12, 10/3, ऋतु० 1/23
बु० च० 21/17. वही 26/41
कादम्बरी पृ. 59 व 387
कादम्वरी पृ. 370
ह, च. पृ. 41, 4211

13 'सुखमिवानुबभूव कपिध्वजः'–किरात. 18/3
कपिघ्वजः' वही. 18/12

14 किरात. 8/10, 'राक्षसो मर्कटो नाम'–बु. च. 2/17

15 वनमानुषमियुनाध्यासित तटगुहा मुखेन'–कादम्बरी पृ. 370. कपिकुलमुपयाति. ऋतु. 1/23

वानरों द्वारा पेड़ों से मार-मारकर राक्षसों की लौह-गदाओं के तोड़ने का वर्णन मिलता है.[16] उस समय वानर ताड़ी के वृक्षों को हिलाते हैं एवं डहुआ के फल खाने के लिए वे कूदते रहते हैं.[17] वानर अपने उद्यम से लोगों को व्याकुल कर देते हैं. एक स्थान पर लाल ततैयों के डंक मारने से कुपित हुए वानरों के द्वारा उनके छत्तों को नोंचने का उल्लेख मिलता है जिससे वानरों के क्रोध की पराकाष्ठा की एक झलक हमारे सामने आती है.[19] संध्याकाल में वानरों के चंचलता त्याग का उल्लेख मिलता है.[20] अन्य स्थान पर आश्रम के वानरों का चंचलता-रहित होकर मुनि कुमारों को फल देने का उल्लेख मिलता है.[21]

संस्कृत काव्यों में उपमित वानर—साहित्य में सादृश्य-मूलक अलंकारों का सदा बाहुल्य रहा है. इसी कारण सर्वत्र इनकी सत्ता विद्यमान रहती है. वानर को कवियों ने अनेक प्रकार से उपमित किया है. अनार वृक्षों पर वानरों को बैठे हुये देखकर उनके लाल गालो के कारण फूलों का भ्रम होता था.[22] यहां गालों की लालिमा को फूलों की लालिमा से समता प्रदर्शित की गई है. व्यापारी सोना तोलने के लिए जिस प्रकार चिरमिट्टी उठाते हैं उसी प्रकार वानर वृक्षों के मध्य चिरमिट्टी उठाते हैं.[23] सोना तोलने की चिरमिट्टी व वृक्षों से प्राप्त चिरमिट्टी दोनों ही छोटी वस्तुयें हैं एवं इनके उठाने का तरीका एकसा होता है. अतः उपमा सार्थक एवं सुन्दर है. बन्दरों के द्वारा तोड़े गये वृक्षों वाली विन्ध्याटवी को बन्दरों द्वारा तोड़ी गई अटारियों वाली रावण की नगरी लंका के सदृश बताया गया है.[24] यहाँ शालवृक्ष व अटारियों वाली रावण की नगरी लंका से सादृश्य

---

16 रघु० 12/73

17 प्रक्रीडितकपिकुलकरतल. कादम्बरी पृ 384
'केपिकुल-कम्पित. यु. वही. पृ. 56
'लकुचलम्पट गोलांगुल'—ह. च. पृ. 421

18 'कपिगिराकुलीकृतेन' कादम्बरी पृ. 273

19 'दशन कुपित.'—ह. च. पृ. 420

20 ह. च. पृ. 138

21 इहमिह कपिकुलमपगत-चापलमुपनयति

22 कादम्बरी पृ. 142
समारूढ कपिकुलकपोल. ह. च. पृ. 161
प्रमाणामि मुर्खरिव वानर

23 कादम्बरी पृ. उ. 389

24 क्वचिदशमुखनगरीव० यथोपरि. पृ. 59

बताया गया है. यहाँ शालवृक्ष व अटारियों को समान माना है एवं लंका व विन्ध्यावटी को एक सा बतलाया गया है. राजकुल वानरों से परिपूर्ण था, जिस प्रकार रामायण हनुमान, सुग्रीव व बालि आदि वानरों से युक्त थी.[25] यहां राजकुल रामायण दोनों में साम्य प्रदर्शित किया गया है. कुमुद नामक वानर सेना-पति की सेना द्वारा समुद्र पार करने की तुलना प्रवरसेन नामक कवि की कुमुद के समान उज्जवल कीर्ति के सेतु नामक प्रकृतकाव्य के द्वारा समुद्र पार करने से की गई है.[26] इसी प्रकार एक अश्वरोही के रोंगटों की तुलना लंगूर के मुंह पर स्थित काले रोंगटों से की गई है.[27] अश्वरोही के रोंगटे काले व खड़े थे उसी प्रकार लंगूर के मुख पर भी रोंगटें खड़े होते है एवं काले भी. अतः साम्य उचित ही है. मन की चंचलता को वानर की चंचलता से उपमित किया गया है.[28] चंचल वानर व मन दोनों को वश में करना कठिन कार्य है अतः उपमा तार्किक है, सत्य है. इस प्रकार वानर को कवियों ने उपमित किया है.

'वानर के मन में नारियल की इच्छा होती किन्तु जाबालि आश्रम वासियों के मन में ऐसा नहीं होता.[29] तात्पर्य यह है कि आश्रमवासी इच्छाओं से परे होते हैं. आश्रम में केवल वानर ही ऐसे होते हैं, जो नारियल की इच्छा करते हैं.

संस्कृत-काव्यों में वानर का सबसे अधिक वर्णन बाण ने किया है. उन्होंने कादम्बरी में ८ बार एवं हर्षचरित में ७ बार, कुल १५ बार वानर का उल्लेख किया हैं. कालिदास व अश्वघोष ने वानर का दो-दो बार वर्णन किया है. द्वितीय स्थान भारवि का है जिन्होंने वानर का तीन बार वर्णन किया है जबकि श्रीहर्ष ने केवल एक-एक बार. पद्यकारों में माघ एवं गद्यकारों में सुबन्धु एवं दण्डी वानर के बारे में पूर्णतः मूक है. इस प्रकार संस्कृत काव्यों में वानर का उल्लेख कुल मिलाकर केवल २३ बार हो पाया है. अतः वानर का उल्लेख काव्यों में मध्यम रहा है. संलग्न तालिकाओं में वानर के वर्णन का विश्लेषण किया गया है.

— — —

25 'रामायणमिव कपि कथासमाकुलम्' कादम्बरी पृ. 280
26 'सागरस्य परम्पारं कपिसेनेव सेतुना' ह. च पृ. 80
27 'गोलांगूल कपोल'. ह. च. पृ. 41
28 'मर्कटो इव सर्वेषां मनो नैसर्गिक चलम्'—बु. च. 26/41
29 'कपीनां श्री कलाभिलाष:' कादम्बरी पृ. 127

तालिका—१

'शाखामृग' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (3)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	रघु	१२।७३
१	ऋतु०	१।२३
१	मालविका.	४।गद्य

तालिका—२

'शाखामृग' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (21)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	२	बु. च.	२।१७. ६४।४१.
भारवि	३	किरात.	८।१०. १८।३, १२.
श्रीहर्ष	१	नैषध.	२१।८०.
बाणभट्ट	७	ह. च.	पृ. ८, ४१, ६८, १३८, ४२, ६१, ४२०.
,,	८	कादम्बरी	पृ. ५६, ५६, १२७ २०३, ८०, ३७०, ८४, ८६.

— — —

पक्षी–जगत
(Bird–Kingdom)

मयूर
THE PEACOCK

'केकोत्कण्ठाभवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापाः ।'
—मेघदूत उ० ३

सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में मयूर का स्थान प्रमुख रहा है. वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक संस्कृत-साहित्य तक में मयूर के वर्णन की अविरलधारा प्रवाहित होती रही है. वैदिक-साहित्य में मोर के लिये मयूरः शब्द का प्रयोग हुआ है.[1] वीर-काव्य-साहित्य में मोर के लिये मयूरः, शिखी, बर्हिणः शब्दों का प्रयोग मिलता हैं.[2] अमरकोष में मोर के लिये मयूरः बर्हिणः बर्ही, नीलकण्ठः, भुजंगभुक्, शिखावलः, शिखी, केकी व मेघनादानुपाली का उल्लेख मिलता है.[3]

वैज्ञानिकों की दृष्टि से मोर मेरुदण्डीय-उपजगत् के अन्तर्गत पक्षि-श्रेणी के मयूरवर्ग के मोर-परिवार का सदस्य है.

मोर विश्व के अनेक भागों में पाया जाता है, जिनमें भारत, लका, वर्मा, मलेशिया, जावा, इण्डोचीन, जापान एवं सिन्ध प्रमुख हैं. भारत में मयूर सभी भागों में विद्यमान है. राजस्थान राज्य में मयूर काफी पाये जाते हैं. राजस्थान के अतिरिक्त आसाम व हिमालय की तराई में मयूर का बाहुल्य देखा गया है.[5] मयूर एक मनोहर पक्षी है. भारतीय सरकार ने इसे 'राष्ट्रीय-पक्षी' का सम्मान

---

1 ऋक्० 3/45/1, मै० सं० 3/14/4 वाजसनेयी संहिता० 24/23/27. अथर्ववेद० 7/56/7.

2 'मयूरैः समदा नन्दति ।'—वाल्मीकि रामायण कि० 28/28 'प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवंगमा ·'—वही० 28/27 'प्रवृत्तनृतोत्सव बर्हिणानि ।
—वही० 28/21

3 'मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजंगभुक् शिखावलः शिखी केकी मेघनादानुलास्यपि'
—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

4 जीवजगत् पृ० 384

5 पायनियर हैण्ड बुक आफ इण्डियन बर्डस् 408, इन० ब्रिटे० भाग 17 पृ० 417, इन० चेम्बर्स० भा० 1० पृ० 498, बर्डबुक० भाग 14 पृ० 186

दिया है. मोर की दो जातियां प्रमुख हैं—१. भारतीय मयूर और २. बर्मा-मलाया आदि में रहने वाला मोर.

मयूर एक बड़ा ही मनोहर पक्षी है. इसी कारण भारतीय-सरकार ने इसे राष्ट्रीयपक्षी का सम्मान दिया है.

मोर की लम्बाई ४० इन्च से ४६ इन्च तक होती है. इसकी पूंछ ३८ से ४४ इन्च तक होती है.[6] इसकी कलंगी नीले रंग की होती है. इसकी गर्दन बड़ी मुलायम एवं लम्बी होती है. जब मोर अपनी पूंछ को फैलाकर नृत्य करता है तो बड़ा अभिराम लगता है. मोर की दुम भूरी होती है. दुम के सिरे पर चन्द्राकार चमकदार चिह्न होते हैं जिसमें मयूर की सुन्दरता का राज छिपा है. मादा की पूंछ छोटी होती है एवं भूरे रङ्ग की ही होती है. दोनों की चोंच हरछौंह, सिलेटी एवं पैर भूरे काले होते हैं. मोर का वजन ९ से साढ़े ग्यारह पौण्ड व मादा का वजन ६ से ९ पौण्ड तक होता है.[7] जापानी पालतू मोर सफेद रङ्ग के भी होते हैं. मोर आबादी वाले भागों में, बागों व खेतों में स्वतन्त्रतापूर्वक घूमते देखे जा सकते हैं. यह छोटी नदी व झरनों वाले स्थानों के साथ-साथ पहाड़ी भागों में रहना पसंद करता है.

मोर के प्रमुख खाद्य पदार्थ हैं—रसीली घास, अनाज, बीज, मेंढ़क, कीड़े-मकोड़े, छोटे सरीसृप व छोटे स्तनप्राणी. अतः मोर को सर्वभक्षी कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं.[8]

मोर का पालन बड़ा पुराना है. इसके पालतू बनने के बाद इसकी कई किस्मों का विकास हो गया है. मोर की बोली बड़ी मीठी मानी जाती है पर वैज्ञानिकों ने इसे दो प्रकार की बताया है. प्रथम तो ऊंची तथा कर्कश एवं द्वितीय छोटी ध्वनि. विभिन्न विद्वानों ने मोर की आवाज को 'मेंह आओ' (वर्षा आई), का आन, का आन, कोक-कोक, कोक-कोक-कोक कहा है.[9] मोर की ध्वनि को संस्कृत-भाषा में 'केका' कहते हैं.

मोर का घोंसला जमीन में झाड़ियों पर ही होता है. यदा-कदा बड़े वृक्षों के छेदों में खाली मकानों में एवं दूसरे पक्षी के खाली घोंसलों में भी मोर की उपस्थिति देखी गयी है.[10] मादा एक बार में ३ से १० तक अण्डे देती है जो भूरे

---

6 पा० हैण्ड पृ० 407

7 वही० पृ० 408

8 इन० वर्ड० भाग० 14 पृ० 186

9 का० के पक्षी० 14/15

10 पा० हैण्ड० पृ० 410

एवं बादामी रंग के होते हैं. मोर का गर्भाधान जून व अगस्त के मध्य वर्षा के आगमन पर निर्भर करता है, किन्तु इस विषय में विद्वान एवं वैज्ञानिक एक मत नहीं.[11] मोर एक से अधिक पत्नियों का पुजारी है, यह इसके राजत्व का प्रतीक है.

मोर से हमें दो वस्तुएं प्राप्त होती हैं एक तो इसके पंख व दूसरा मांस. इसके पंख से अनेक दवाइयों का निर्माण होता है. लोग मोर का माँस भी खाते हैं. कहते हैं राजा अशोक को मोर का मांस बहुत प्रिय था. उन्होंने पक्षियों से कतिपय को मारना मना कर रखा था पर मोर के बारे में उनको काफी सोचना पड़ा था कि क्या मोर को मारना अपराध है या नहीं. मोरों के आधिक्य से ही मौर्य साम्राज्य का नामकरण पड़ा. भारत में धार्मिकता मोर को मारने की सहमति नहीं देती, साथ ही राष्ट्रीय-पक्षी होने के नाते भारतीय सरकार ने मोर को मारना कानूनी अपराध भी घोषित कर दिया है

मयूर व मानव :—मयूर एवं मानव का सामीप्य संबन्ध रहा है. भगवान् शंकर के पुत्र स्कन्द की सवारी के रूप में मयूर का उल्लेख कवियों ने यत्र-तत्र किया है.[12] यक्ष मेघ से कहता है कि जब वह देवगिरि पर्वत पर पहुंचेगा तो उसकी गरज को सुनकर भगवान् कार्तिकेय का मोर नाच उठेगा जिसके झड़े हुए पंखों से चमकीली रश्मियाँ निकल रही होंगी.[13] वायु कार्तिकेय के मोर की शिखा का चुम्बन करती थी, एवं 'कोई फैले हुये पंख से चौड़ी पीठ पर चढ़े हुये चंचल रक्तवर्ण पताकायुक्त एवं अस्त्र को उठाकर रखने से डरावने कार्तिकेय की प्रतिमा का सूतिकागृह में निर्माण कर रही थी.'—इस प्रकार के महाकवि बाण कृत वर्णन मोर का स्कन्द का वाहन होना सिद्ध करते हैं.[14]

भगवान् शकर को नीलकण्ठ कहा गया है.[15] पौराणिक कथाओं में ऐसा वर्णन मिलता है कि जब समुद्रमंथन कर चौदह रत्न निकाले गये, उस समय विष

---

11 Game Birds of Indian Empire, P. 3 P. 76।
जीवजगत पृ॰ 388

12 'मयूरपृष्ठश्रयिणा' रघु॰ 6/4, 'भजते खलु षण्मुखं शिखी।' नैषध॰ 2/33, स्कन्दमिव शिखिक्रीडारम्भचंचलम्।'— कादम्बरी॰ पृ॰ 282

13 'धौतापांगं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं।' 'ज्योतिर्लेखा वलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी।' मेघ॰ 2/48

14 'षण्मुख-शिखण्डि-शिखा-चुम्बिभिः।' कादम्बरी। 'विकच पक्षपुट-विकटशिखण्डि पृष्ठमण्डलाधिरूढम् आलोल-लोहित-पाटघटित पताकाम्।' वही॰ पृ॰ 229

15 'नीलकण्ठ' कुमार॰ 12/26

का पान शंकर ने किया था एवं उसे गले में ही रोक लिया था. अतः भगवान् शकर का गला नीला हो गया. इसी कारण उन्हें नीलकण्ठ कहा है. इसी प्रकार कृष्ण को मोर-मुकटधारी' कहा है.[16] कालिदास ने मणिकण्ठक नामक मोर विशेष का नामोल्लेख किया है.[17] इसी प्रकार मयूरिका (एक लड़की का नाम) व मायूरी (संगीत विशेष) का मोर से सम्बन्ध प्रतीत होता है.[18] मयूरिका को संगीतकारों को बुलाने को कहा गया है तो मायूरी को संगी विशेष. अतः इनका मोर की ध्वनि से सम्बन्ध है.

मानव ने जब जब अपने को प्रसन्न या दुःखी पाया है, तब-तब उसने पशु-पक्षियों का सहारा लिया है. पूर्वमेघ में यक्ष मेघ को संदेश देता है कि प्रसन्नता के आंसुओं से पूर्ण आंखों वाले मोर उसका (मेघ का) स्वागत करेंगे.[19] महाराजा दशरथ द्वारा मोर पर बाण न चलाना, महारानी का मरते समय मोर की चिन्ता करना, वासवदत्ता द्वारा मोर को बचाने की बात कहना, किरातों द्वारा मोरपंख को शरीर व कपोल पर धारण करना, अग्निवर्ण का मतवाले मोरों से पूर्ण क्रीडा-पर्वतों में विहार करना, बालकों द्वारा सेवकों को मोर बनाकर खेलना, ये सब बातें पक्षियों के प्रति मानवीय प्रेम व रुचि के अनुपम उदाहरण हैं.[20] इसी प्रकार कादम्बरी द्वारा मोरों के धारागृह में ले जाने की बात करना एवं सुनन्दा द्वारा राजा सुषेण के उद्यान में मयूरों की उपस्थिति का वर्णन करना पक्षियों के प्रति मानव की रुचि के प्रमाण हैं.[21] अतः मोर मानव के मनोरजन में सहायक रहा है. सुख में प्रसन्न

---

16 'बर्हेणेव स्फुरित रुचिना गोपवेषस्य विष्णोः,'—मेघ० 1/15

17 'मणिकण्ठके शिखिनम् ।'—विक्रम० 5/23

18 'मयूरिके !' कादम्बरी पृ० 533
'मायूरी मदयति मार्जना मनांसि ।' मालविका० 1/21

19 'शुक्लापांगैः सजल नयनैः स्वागतीकृत्य केकाः ।' मेघ० 1/24

20 'मयूरं न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यी चकार ।' रघु० 9/67 'मातः मार्गलग्नं कस्य समर्पयामि गृहमयूरकम् ।'—ह० च० पृ० 284; विलासवति ! विलासय मयूरकिशोरकम् —वासवदत्ता पृ० 206; 'मयूरपत्रोज्ज्वलगात्रलेखा ।' सौ० नं० 10/12; 'रुचं शिखिपिच्छलाञ्छितकपोलभित्तिना ।' किरात० 12/41. 'प्रावृषि प्रमद बर्हिणेष्वभूत्कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः ।' रघु० 19/37. 'क्रीडारसेन नर्तयन्तो मयूरतां नयन्ति बालिशाः'—ह० च० पृ० 234

21 'कदलिके ! नय धारागृहं गृहमयूरान् ।' कादम्बरी पृ० 533
'कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यम् । रघु० 6/51

करने वाले पक्षी ही दुःख में दुःखी करते हैं. तभी तो उत्तरमेघ में यक्ष प्रिया-वियोग में मोर के पंखों में अपनी प्रियतमा के बालों की छटा देखकर दुःख प्रकट करता है.[22] विक्रमोर्वशीय में दुःखी राजा मयूरों से अपनी प्रिया के बारे में पूछता है.[23] चन्द्रापीड को कामपीड़ित कादम्बरी की दशा देखकर मोरों का मधुरालाप भी कालदूतों के अलाप के समान लगता है.[24] कादम्बरी द्वारा गृह-मयूरों के मुखों में ताम्बूल देना भी इसी बात को प्रकट करता है कि वह मयूर की केका सुनकर व्याकुलता को प्राप्त होती है, अतः ताम्बूल देखकर केका को रोकना चाहती है.[25] परिस्थितियों के अनुसार जीवधारियों की क्रियाओं में परिवर्तन आना एक स्वाभाविक क्रिया है, तभी तो शकुन्तला की विदाई वेला में एवं सीता का रोना सुनकर मोरों के द्वारा नृत्य क्रिया को छोड़ने की बात कही गई है.[26] महाराजा हर्ष की सेना के प्रयाण के समय डर जाने से झन-झन कंकण पहने हुये बालिकाओं के ताल देकर मनाने पर भी मन्दिर मयूरों ने नाचना छोड़ दिया.[27] ये बातें इस बात को प्रकट करती है कि पक्षी भी समयनुसार सुखी एवं दुःखी होते हैं.

अन्य पक्षियों की भांति मोर को भी मानव ने खिलौनों व चित्रों के रूप में प्रस्तुत किया है. अभिज्ञानशाकुन्तलम् में साध्वी द्वारा मिट्टी के बने मोर के लाने एवं भरत द्वारा उसी मोर को देखकर प्रसन्न होने की बात कही है.[28] कादम्बरी में मरकतमणि से बने स्तम्भों में लगे-मयूरों का उल्लेख मिलता है, तो सौन्दरनन्द में लकड़ी से बने मयूर का.[29] इस प्रकार मोर को मानव ने मनोरंजन का सहायक बनाकर प्राचीन संस्कृत-साहित्य में कला का प्रदर्शन किया है.

क्रिया—कलापः—हर पक्षी की अपनी अपनी स्वाभाविक क्रियाएं लोक में

---

22 'शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ।'—मेघ० 1/46

23 'बर्हिण! त्वामित्यभ्यर्थये आचक्ष्व मे तत्० विक्रम० 4/20–21

24 उन्मुक्तमदकलकेकाकोलाहलैः काननेषु कलापिभिः ।'-कादम्बरी० उ० पृ० 116'
'कलापिकेकाः कालदूतालापैः । वही० पृ० 2

25 'ताम्बूलवीटिकाशकलमुत्कोचमिव दन्त खण्डित शिखण्डिने ददती
— कादम्बरी पृ० 656

26 'परित्यक्तनर्तना मयूराः ।'—शाकु० 4/11 'नृत्यं मयूराः'—रघु० 14/69

27 'चलवलयावलीवाचाल बालिका० ।'—ह० च० पृ० 337

28 (प्रविश्य मृण्मयूरहस्ता) मातः ! रोचते मे एष भद्र मयूरः ।' शाकु० 7 गद्य

29 'मरकत मणि मयूरः'—कादम्बरी० उ० पृ० 31. 'मणिस्तम्भमयूरानालम्बसे' वही० पृ० 534. 'संरक्तकाठैश्च विनीलकण्ठै ।' सौ० नं० 7/11

देखी गई है. मोर की दो क्रियायें प्रमुख हैं. प्रथम तो उसका नाचना एवं द्वितीय उसका बोलना. इन दोनों क्रियाओं के बारे में सभी काव्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई है.

वर्षाकाल में बादलों की गड़गड़ाहट को सुनकर मोर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और उस काल में नृत्य करते देखे गये हैं. 'मेघ की गम्भीर ध्वनि को सुनकर 'मोर उन्मत्त होकर नाचने लगे,' 'सेना की धूल के मेघों को देखकर मोर मस्ती से नाचने लगे, 'शंख व मंगल वाद्यों को सुनकर मोर उसे बादल का गरजना समझकर नाच उठते हैं,' 'रथ की आवाज को बादलों की आवाज समझकर मोर कूकने लगे', मोर घने मृदंग-ध्वनि पर नाचता है' एवं हाथियों के गरजने को मेघ का गर्जन समझकर मोर नाचने लगे'—इस प्रकार के वाक्य हमारे संमुख दो बातें प्रस्तुत करते हैं. प्रथम तो यह कि मोर वर्षाकाल में अधिक नृत्य करते हैं और द्वितीय यह कि वे किसी भी प्रकार की गड़गड़ाहट पूर्ण ध्वनि को मेघों की गड़गड़ाहट समझकर नाच उठते हैं, जो संभवतः उनकी नासमझी का परिणाम है.[30] प्रातःकाल में मोरों के नृत्य करने की बात कादम्बरी में कही गई है.[31] वहीं मयूरों के नृत्य करने की नृत्यशालाओं का उल्लेख किया गया है.[32] महाराज नैषध के स्वागत में मोर के नृत्य का भी वर्णन मिलता है.[33] बाण ने प्रातःकाल में मोरों के नाचने और नाच के समय पंखों को गिराने की बात कही है.[34] इसी बात की पुष्टि महाकवि माघ ने मोरों के पंख हंसों से ईर्ष्या कर झड़ गये हैं' इस साहित्यक ढंग से की है. ये दोनों बातें महाकवि की सूक्ष्म अवलोकन शक्ति की प्रतीक है, शरदृऋतु में मोरों द्वारा नृत्य त्याग की बात कालिदास ने कही है.[35]

---

30 'जलदपंक्तिरनर्तयदुन्मदं कलविलापि कलापिकदम्बकम् ।'—शिशु० 6/31. सानन्दमनर्नात केकिभिः ।'—कुमार० 14/35. 'पुरोपकण्ठो पवनाश्रयाणां कलापिनामुद्धतनृत्यहेतौ'—रघु० 6/9. 'षड्ज संवादिनीः केकाद्विधाभिन्नाः शिखंडिभिः ।'—वही० 1/39; 'नृत्यतेस्म यत्केकिना मुरजनिस्वनैर्घनैः ।' नैषध० 18/27; वारिधरधीरवारणध्वनि हृष्टकूजितकलाः कलापिनः ।'–शिशु० 1²/5. 'समद शिखिरुतानि'—किरात० 10/25 ।

31 'नर्त्तितशिखण्डि मण्डले ।—कादम्बरी० पृ० 81

32 'शिखण्डिताण्डव-संगीतगृहे ।'—वही० पृ० 575.

33 'शिखिलास्म लाघवात् ।'—नैषध० 1/102

34 'शिखिण्डिनां-नृत्य-पक्षपातः ।' कादम्बरी पृ० 127

35 'नृत्य प्रयोग रहितांशिखिनः ।'—ऋतु० 3/13

मोरों की नृत्यकला के बाद मयूर की बोली पर विचार करते हैं. मोरों का बोलना भी वर्षाकाल में विशेष रूप में सुना गया है. मेघ को देखकर तपोवन के मोरों के बोलने का वर्णन मिलता है. प्रचण्ड पवन से छितराती हुई कलंगीवाले एवं बादलों को देखकर कें कें की ध्वनि करने वाले मोर का सुन्दर वर्णन कालिदास ने किया है.[36] अलका, कपिलवस्तु एवं उज्जयिनी में मोरों के बोलने का वर्णन कवियों ने किया है.[37] मयूर एक समुदाय में रहने वाला प्राणी है.[38] वह समुदाय में रहकर वन, पर्वत व नदी के कछारी भागों में ध्वनि करता पाया गया है.[39] गृह मयूरों की ध्वनि का भी उल्लेख मिलता है.[40] मयूरों द्वारा वर्षा ऋतु में मदकल करने एवं प्रातःकाल में बोलने का वर्णन मिलता है.[41] शरद् ऋतु में मोरों की ध्वनि कर्कश लगने लगती हैं क्योंकि इन दिनों वे समद नहीं होते[42] वास्तव में वर्षाकाल में मोरों का आलाप आनन्ददायी होता है, शरद् में नहीं.

मोर के नाचने व बोलने के अतिरिक्त उसकी अन्य क्रियाओं का वर्णन भी काव्यकारों ने यदा-कदा किया है. प्रभातकाल में मोरों के उड़ने व सन्ध्याकाल में उनके बसेरों की ओर आने के वर्णन मिलते हैं.[43] मोरों द्वारा अपनी निवास यष्टियों, स्वर्ण-यष्टियों, झुरमुटों व वृक्षों तथा गर्मी से संतप्त होकर पेड़ों की जड़ों

---

36 'आलोकयति पयोदान्प्रबलपुरोवात ताडित शिखण्डः । केका गर्भेण शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन ।। विक्रम० 4/28

37 'केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापाः'—मेघ० 2/3
'शिखिनां'-सौ० नं० 1/11 'मत्तमयूर मण्डलै-मण्डलीकृत ।' काद० पृ० 155

38 'पश्यन्ति नोन्नतमुखा गगनं मयूराः ।' ऋतु० 3/12

39 'मदमुखर मधुररव-विरावितान्तरैः' कादम्बरी० पृ० 385 'मयूरनाद प्रतिपूर्णकुञ्जे ।' बु० च० 10/15

40 भवननीलकण्ठकुलः कलकेका कलकलमुखरमुखैः क्रियमाणाकालकोलाहम्'
—वही० पृ० 110

41 'समदशिखिरुतानिः'—किरात० 10/25. 'शिखण्डिमण्डक-विरुतम्'
—कादम्बरी० 83

42 'परुषीकृत स्वरमयूरमयू रमणीयताम् ।' शिशु० 6/44 'विहाय वांछामुदिते मदात्ययादरक्तकण्ठस्य रुते शिखण्डिनः'—किरात० 4/25

43 'विबुद्ध शिखिकुले ।' कादम्बरी० पृ० 79 आवासवृक्षोन्मुख बर्हिणानि
— रघु० 2/17

के थांवले में बैठने के उल्लेख भी मिलते हैं.[44]

सांप व मयूर का स्वाभाविक शत्रुभाव है. मयूर सांप को खा जाता है. गोवर्धन पर्वत पर रहने वाले मयूरों के सचार के कारण सर्पों द्वारा वृन्दावन को छोड़ने की बात महाकवि श्रीहर्ष ने कही है.[45] चन्दन वृक्ष से लिपटी सर्पिणी को मोर के कोलाहल द्वारा कष्ट पहुंचाने का उल्लेख भी मिलता है.[46] मस्त मयूरों के कोलाहल से भयभीत सर्पों से परित्यक्त हुये शीतल चन्दन वन का वर्णन महाकवि बाण ने किया है.[47] हार को सांपकी कंचुकी समझकर मोर उसे खींच लिया करते हैं.[48] मोर व सांप का सदा का बैर रहा है परन्तु परिस्थितियों में मोर व सांप का सामीप्य भी देखा गया है. महाकवि कालिदास ने लिखा है कि गर्मी से तप्त होकर मोर सांपों की कुन्डली में गला डाले पड़े रहते हैं एवं सांप मोरों के नीचे कुंडली मार कर बैठ जाते हैं.[50] अतः सिद्ध होता है कि आपत्काल में शत्रु भी शत्रुता को छोड़ देते हैं.

मोरों की कामक्रीड़ा का वर्णन भी कवियों ने किया है. वर्षाकाल में मोर द्वारा मोरनी का चुम्बन करने की बात महाकवि कालिदास की एक अनूठी कल्पना है.[50] प्रियतमा मोरनी को आते देखकर मोर दूसरी मोरनी को अपनी पूंछ से ढक लेता है.[51] यह क्रिया मोर की एक समझदारी पूर्ण क्रिया है, जो उसे एक कपट-नायक के रूप में प्रस्तुत करती है. शाम के समय मोर द्वारा अड्डों पर बैठने का उल्लेख मिलता है.[52] मयूर की अनेक क्रियाओं का वर्णन करते हुये महाकवि कालिदास ने कहा है कि अड्डों के टूट जाने से यहां (अयोध्या) के मोर अब वृक्षों पर

---

44 'कृतयष्टि समारोहणेषु—बर्हिणेषु'—वासवदत्ता० पृ० 158 'हेममयीभिर्मयूर-यष्टिभिः कादम्बरी० पृ० 275 'यामध्यास्ते दिवस-विगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः।' —मेघ० 2/19।

'उष्णालुः शिशिरे निषीदति तपोर्मूलालवाले शिखी' —विक्रम० 2/22

45. गोवर्धनाचत्रकलापि० ।' नैषध० 11/107 ।

46 भुजंगत्राससह्यसंतापालिङ्गितचन्दन० ।—कादम्बरी० उ० पृ० 33 ।

47 'उन्मद-मयूर-कुल ।'—कादम्बरी० पृ० 417 ।

48 'भुजग-निर्मोक-शंकित-मयूर ह्रियमाणहारेण ।' वही० पृ० 273 ।

49 'कलापिनः' ऋतु० 1/116 ।

50 प्रवृत्तनृत्यं कुलमद्य बर्हिणाम् ।'—ऋतु० 2/16 ।

51 आयान्त्यां निजयुक्तौ० ।'—शिशु० 8/11 ।

52 वासयष्टिषु निशानिद्रालसा बर्हिणो ।'—विक्रम 3/2 ।

जाकर बैठते हैं और मृदंग न बजने के कारण उन्होंने नृत्य त्याग दिया है. अब ये उन जंगली मयूरों की भांति प्रतीत होने लगे हैं, जिनकी पूंछें वनाग्नि से जल गई हों.[53] उजड़ी अयोध्या की दशा को देखकर मोर दुःखी हैं, अतः उनकी यह दशा हो गई है. वास्तव से दुःखी जीव की क्रियाओं में आमूल परिवर्तन आ जाया करता है. तपोवन मोरों द्वारा यज्ञ की अग्नि को प्रज्ज्वलित करने की बात बाण ने कही है.[54] यह मोर की चतुरता का सुन्दर प्रमाण है.

उपमित मयूर—संस्कृत-साहित्य विश्व-साहित्यों में एक उत्कृष्ट साहित्य रहा है. इस साहित्य में हमें व्यावहारिकता से लेकर आध्यात्मिकता तक के विभिन्न पहलुओं का दर्शन होता है. प्राचीन काव्यकारों ने मानव का तो उल्लेख किया ही है किन्तु उन्हें पशु व पक्षी जगत् के प्रति भी जागृत पाया गया है. उपमादि अलंकार संस्कृत-साहित्य के शोभाधायक रहे हैं. अतः ये काव्यकारों को विशेष प्रिय हैं.

काव्यकारों ने हमारे राष्ट्रीय पक्षी मयूर को विभिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न रूपों में उपमित किया है. मयूर के समान घन (दृढ़) प्रीति के कारण उत्सुक दधीचि मालती के समीप आये.[55] यहां मयूर के मेघ प्रेम की समता दधीचि के मालती-प्रेम से की गई है. भाटों से मोरों की तुलना की गई है.[56] समुद्र तट पर रह कर जल का पान करने वाले मोरों की तुलना समुद्र मंथन के समय तट पर भगवान् शंकर के विषपान से की गई है.[57] साँयकाल में नृत्य करने वाले मोर की समता भगवान् शंकर के तांडव नृत्य से की गई है.[58] मधुर-मृदंग शब्द तथा लय की लास्य लीला से उद्विग्न होकर संगीतशाला में जाने वाली कादम्बरी की तुलना मयूर से की गई है.[59] मधुरध्वनि करने वाली रमणी के कंकणों की समता मोर की केका से की गई है.[60] बादलों की ध्वनि को मोरों

---

53 क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वम् । रघु० 16/14

54 'उपजात-परिचयैः कलापिभिः ।' कादम्बरी० पृ० 121

55 'शिखण्डीव घनप्रीत्युन्मुखः' ह. च. पृ. 65

56 'धर्मच्छेदात्पटुतरगिरो वन्दितो नीलकण्ठ' विक्रम० 4/13

57 'अमृतमन्थनसमयमिव तीरावस्थितशिति कण्ठपीयमानविषम्' कादम्बरी०

58 सन्ध्यासमय इव नर्तितनीलकण्ठः'–वासवदत्ता पृ० 245

59 'मयूरीव मुक्तधारं धारागृहमभिपतति' कादम्बरी उ० पृ० 28

60 'प्रचलत्कलापिकलशङ्कस्वना'–शिशु० 13/41. 'स्खलितचरणतल–ताडित–मणि सोपान जातगम्भीर–ध्वनि प्रहृष्टानामवरोधशिखण्डिनां केकारवैरनुगम्यमानः'–कादम्बरी पृ० 254

की ध्वनि से उपमित किया है.[61] राजा हर्ष के यहां उपस्थित बाण के श्वेत वस्त्र की समता मयूर की आंखों के कोने की धवलता से की गई है.[62] वर्षा काल में शब्द करके शरद् में चुप हो जाने वाले मयूरों की समता शत्रुओं के अपकारक बल के शांत हो जाने से की गई है.[63] मोरों के शत्रु शबर-सेनापति की तुलना शिखण्डी के शत्रु भीष्म से की गई है.[64] प्रदोषकाल में मयूरों के बैठने के दण्डो की चोटियों पर अन्धकार व्याप्त हो जाने से उस स्थान में मयूरों के नहीं बैठने पर भी मानों, वे उन पर बैठे हैं ऐसी प्रतीत होती है.[65] यहां मयूरों की अनुपस्थिति का मयूरों की उपस्थिति से साम्य प्रदर्शित किया गया है. मयूरों के मध्य बैठने के कारण पुण्डरीक की समता मयूरनिर्मित कही गई है.[66] मोर के गले की समता मरकत के कमण्डलु एवं कान के दन्तपत्र से भी बताई गई है.[67] वास्तव में मरकत का रंग मोर के गले के रंग से साम्य रखता है अतः तुलना सार्थक है, सुन्दर है. मोर पंख की तुलना अनेक पदार्थों से की है. चमकदार फूल व मोरपंखों को एकसा बताया है.[68] दमयन्ती के केश और मोरपंख आपस में बहस होने के कारण ब्रह्मा के पास न्याय के लिए गये थे.[69] यहां मयूर के पंखों की सुन्दरता से दमयन्ती के केशों की सुन्दरता का साम्य प्रदर्शित किया है. इन्द्रधनुष व मोरपंख को समान बतलाता है.[70] इन्द्र धनुष अनेक रंगों की साम्यावस्था है एवं मोरपंखों में भी अनेक रंगों की साम्यावस्था होती है. इन्द्रधनुष आसमान में फैला होता है एवं मोर के पंख भी गोलाकार रूप में फैले देखे जा सकते हैं, अतः

---

61 'मेघमया इव कृतशिखण्डिकुलकोलाहलाः' ह० च० पृ० 421

62 'शिखण्ड्यपाङ्गपाण्डुनी पौन्ड्रे वाससी वसानः'—वही० पृ० 145

63 'अदोऽयमालप्य शिखीव शारदो बभूव तूष्णीमहितापकारकः'—नैषध० 9/14

64 'भीष्ममिव शिखण्डिशत्रुम्'-कादम्बरी पृ० 95।

65 'मयूराधिष्ठितास्विव मयूरयष्टिषु'—कादम्बरी 299

66 'मयूरमय इवातिमनोहरे वसन्तजन्मभूमिभूते लतागहने कृतावस्थानम्:' —कादम्बरी०

67 'उद्ग्रीवमयूरं मरकतमणिकरकमिव वारिधाराभिः' ह० च० पृ० 424
'शिखिगलशितिना वामश्रवणाश्रयिता दन्तपत्रेण कालमेघपल्लवेन विद्युत् इव द्योतमाना' वही० पृ० 57

68 'भोः म्लानमानकेशरच्छविना मयूरपिच्छेन विप्रलब्धोऽस्मि'—विक्रम० 2 गद्य

69 अस्याः कचानां शिखिनश्च किंनु विधिं कलापौ विमतेरगाताम्—नैषध० 7/22

70 अभिनव—जलधरमिव—मयूर—पिच्छ—चित्र—चाप—धारिणम्'-कादम्बरी पृ० 94

साम्य सूक्ष्म निरीक्षण का परिणाम है, कल्पना मात्र नहीं कृष्ण का वक्षःस्थल चमकते हुए स्वर्ण-कुण्डलों के अग्रभाग में जड़े हुए पद्मराग मणियों की कांति बचपन के योग्य मयूर-पंख की माला धारण किए हुए के समान शोभता था.[71] यहां पद्मराग मणियों से युक्त माला की समता चित्र-विचित्र मयूर-पंख की माला से की गई है. मोर के रमणीय पंखों के समान नृत्यतुल्य विविध विलासों से चंद्रापीड के यौवन की तुलना की गई है.[72] मयूर कामावस्था में नृत्य करता है एवं यौवन कामावस्था होती है अतः, उपमा ठीक है, उचित है. राजाओं के मुकुट से रंग-बिरंगी किरणों का निकलना मयूर के पूंछ से निर्मित मुकुट से समता रखता है.[73] यहां मुकुट के किरणों की समता मोर के चित्र-विचित्र पंखों से की है. दशों दिशाओं की सुन्दरता की समता दशों दिशाओं में उड़ते मयूरों के हिलते हुये चंद्रकों से की गई है. नाचते हुए मोर के बर्हमण्डल की आकृति वाले मायुर आतपत्रों को माणिक्य के वृक्षों के वन से उपमित किया है,[74] वटवृक्ष को मोरपंख से निर्मित छत्र से उपमित किया गया है.[75] मदजल बिन्दुओं की समता मयूरपिच्छ से की गई है.[76] द्वारिका के प्रसादों पर बैठे मोरों की हरे रंग की पूंछें छप्पर के समान बताई गई है.[77] जैन साधुओं द्वारा मोर पंख धारण करने की समता पवन के द्वारा मोरपंखों को ग्रहण करने से की गई है.[78] यहां पवन मोर के पखों के द्वारा आचार के लिए ग्रहण किये मोर-पंख के साथ सम्बन्धित किया है.

प्राप्य वस्तुयें—काव्यकारों ने मयूर से प्राप्त होने वाली वस्तुओं के वर्णन की ओर भी रुचि प्रदर्शित की है. मोर से मुख्यतः उसकी पूंछ प्राप्त होती है. अतः उसी के प्रति कवियों ने विशेष रूप से ध्यान दिया है. प्रातःकाल में मोरों के द्वारा पूंछ को गिराने, शबर सेनापति, गाँव के लोगों, किरातों एवं क्षपणकों के द्वारा मोर पंख को ग्रहण करने व मोर की पूंछ में निर्मित ध्वजा, तीर इत्यादि के उल्लेख मयूर पुच्छ की प्राप्ति के सबल प्रमाण हैं.[79] मोर के वर्णन का विश्लेषण संलग्न तालिकाओं में दर्शनीय है.

---

71 अवाप बाल्योचितनीलकण्ठपिच्छावचडाकलनामिवोरः'—शिशु० 3/5
72 'विविध–लास्य–विलासयोग्यः कलाप इव शिखण्डिनो यौवनारम्भः प्रादुर्भवन्' कादम्बरी पृ० 234
73 'चडामणिमरीचिलिर्मायूराणीवाराजन्त राज्ञामातपत्राणि'—वही० पृ० 346
74 माणिक्यवृक्षकवनायमानम् मायूरातपत्रैः'—ह० च० पृ० 102
75 'शिखिपत्रजमातपत्रम्'—नैषध० 11/30
76 'बहुर्बाहचन्द्रकनिभम्'—किरात० 6/11
77 'हरिन्मणिश्यामतृणाभिरामैर्गृहाणि नीध्रैरिव यत्र रेजुः'—शिशु० 3/49
78 'कैश्चित् क्षपणकैरिव मयूरपिच्छवाहिभिः'—कादम्बरी पृ० 94
79 देखिये—ह० च० पृ० 26 शिशु० 20/46 रघु० 3/56

तालिका (१)

'मयूर' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (38)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
११	रघु.	१।३९, २।१७, ३।५६, ६।४,९,५१, ६७, १४।६९, १६।१४, ६४, १९।३७।
३	कुमार.	१।१५, १२।२६ व १४।३३।
५	मेघ.	१५, २४, ४८, ३९, ३, ४६।
६	ऋतु.	१।१३, १६, २।६ १९, ३।१२, १३।
३	शाकु.	४।१२, ७।गद्य, गद्य।
१०	विक्रम.	२।गद्य, २२, ३।२, ४।१, ३, गद्य. २० से २२. ७२, ५।१३।

तालिका (२)

'मयूर' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (98)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	२	बु. च.	७।५ व १०।१५।
,,	३	सौ. न.	१।११, ७।११ ब १०'१२।
भारवि	८	किरात.	४।१६, २५ ६।११, ७।२२, ३९, १०।२५, १२।४१ व १७।११।
माघ	१३	शिशु.	३।५, ५०, ४।७, ५०, ५६, ६।१९, ३१, ४४, ४५ ४९, १३।५, ४१ व २०।४६।
श्रीहर्ष	९	नैषध.	२।३३, ७।२२, ९।१४, ११।३०,३१,१०७, १५।५८ १६।५२ व १८।२७।
सुबन्धु	५	वासवदत्ता	पृ ५७, १९६, २९६, ४५ व ५१।
बाणभट्ट	१८	ह. च.	पृ. ३४, ५६, ६५, ८४, १०२, ११०, १०, ४५. २३४, ६१, ८४, ९९, ३५७, ४०९, २१, २४ ४१ व ५१।
बाणभट्ट	३९	कादम्बरी	पृ. ८१, ९० ९४, ९४, ९५, १२१, ४१, ५५, २१९ ५४, ६४, ७५, ८२, ८४ ९९, ३४७, ८५, ८५, ८८ ४१७, ४२, ४६, ५४, ५८, ५३३ ३३, ३४, ४४, ४६, उ० २८, ३१, ३३, ७०, ११६, २१ व २२।
दण्डी	१	द. च.	पृ. १३१।

चकोर
THE QUAIL

'चमत्कृतचकोरचलाचलाक्षि।'

—नैषध० ११/७५

संपूर्ण संस्कृत-साहित्य में चकोर का स्थान सर्वदा गौण रहा है. वैदिक साहित्य में चकोर के लिए तित्तिरः, तित्तिरिः एवं कपिञ्जल शब्दों का प्रयोग हुआ है.[1] अमरकोष में चकोर के लिए तित्तिरिः, कुक्कुभः, लावः, जीवंजीवः, चकोरकः कोयष्टिकः, टिट्टिभकः एवं वर्तकः शब्दों का उल्लेख किया गया है.[2] वैज्ञानिकों के मत में चकोर मेरु-दण्डीय-उपजगत् के मोर परिवार का सदस्य है.[3]

चकोर तिब्बत, फारस, उत्तरी-पश्चिमी भारत व नेपाल में बहुतायात से पाया जाता है.[4] आकार-प्रकार में चकोर बहुत कुछ तीतर से मिलता-जुलता होता है किन्तु तीतर की भांति यह चितकबरा नहीं होता. चकोर के रंग में बादामी एवं राखी रंग का मिश्रण होता है. इसके चेहरे पर आंखों से लेकर कपोल पर होते हुए एक काले रंग को चक्कर देखा जा सकता है. इसके पंखों का अधिकतर भाग बादामी होता है. इसकी चोंच व पैर लाल रंग के होते हैं.[5]

---

1 तै. स. 2/5/1/2. का. सं. 12/10. मै. सं. 2/4/1
वा. सं. 24/30/36 का. सं. 12/10 वा. सं. 24/20
श. ब्रा. 1/6/3

2 'तित्तिरिः कुक्कुभोलावो जीवं जीवश्चकोरकः।
कोयष्टिकष्टिट्टिभको वर्तको वर्तिकादयः॥'

इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

जीवजगत् पृ. 386

4 भारत में पक्षी पृ. 170

5 यथोपरि पृ. 170

चकोर के घोंसले जमीन पर किसी पत्थर या पेड़ के पास या घास फूस के मध्य होते हैं चकोर कीड़े-मकोड़े, दाना, बीज एवं दीमक खाता देखा गया है. यह अङ्गारे भी खाता है।

चकोर को आसानी से पाला जा सकता है. इसको पालने के बाद मुर्गों की भांति मानव के साथ-साथ घूमते देखा जा सकता है. इसको पिंजड़े में बंद करना आवश्यक नहीं होता. चकोर की मादा एक बारगी ८ से १२ तक अण्डे देती है.

भारतीय समाज में यात्राकाल में चकोर का बोलना शुभ माना जाता है.[7] चकोर समुदायों में इधर–उधर विचरण करते देखा गया है. यह सारस की भांति अधिक दूर तक उड़ने में असमर्थ रहता है अतः रुक–रुक कर उड़ता देखा गया है. साहित्य जगत् में चकोर का वर्णन मिलता है. चकोर एवं तीतर शब्दों को संस्कृत ज्ञान में एक दूसरे का पर्यायवाची माना है किन्तु वैज्ञानिकों की दृष्टि में यह दोनों अलग–अलग प्राणी हैं. वैसे वैज्ञानिकों के विभाजन में ये एक ही परिवार के सदस्य हैं.[8] चकोर का मांस खाया जाता है.

संस्कृत काव्यों में चकोर—संस्कृत काव्यों में चकोर के लिए चकोरः शब्द का प्रयोग हुआ है.[9]

मानव व चकोर—मानव व चकोर का साथ देखा गया है. राजकुलों में चकोर के भ्रमण का उल्लेख मिलता है.[10] दमयन्ती के द्वारा चकोर शिशु को रखने का उल्लेख भी मिलता है.[11] इससे सिद्ध होता है कि चकोर को मानव ने पाला है एवं मानव का चकोर से पुराना सम्बन्ध रहा है. बाणभट्ट ने एक ऐन्द्र-जालिक का नाम चकोराक्ष रखा है.[12]

क्रिया-कलाप—चकोर के क्रिया–कलापों का विभिन्न काव्यकारों ने वर्णन किया है. गंगा में चकोर के निवास का वर्णन मिलता है.[13] चकोर द्वारा मिर्च

---

6 भारत में पक्षी पृ. 169

7 यथोपरि पृ. 171

8 इ. सं. डि. आप्टे पृ. 532, जीवजगत् पृ. 384

9 रघु. 6/59. शिशु. 6/48. नैषध. 11/75
कादम्बरी. पृ. 512. वासवदत्ता. पृ. 191

10 उत्–कुजित–चकोर–कदम्ब–हारीत–कोकिलम्'–कादम्बरी. पृ. 272

11 'अयि ममैय चकोर शिशु' नैषध. 2/58

12 'ऐन्द्रयकश्वचकोराक्ष'–ह. च. पृ. 75

13 'आतेनुश्चकित. किरात. 7/39

व तण्डुल खाने का वर्णन बाणभट्ट ने किया है.[14] चन्द्रमा द्वारा चकोर को अपनी किरणें पिलाने का वर्णन श्रीहर्ष ने किया है.[15] चकोर द्वारा अपनी सहचरी को चग्गा देने का वर्णन मिलता है.[16] यह वर्णन इन पक्षियों के आपसी प्रेम पर प्रकाश डालता है. चकोर के द्वारा आरुक नामक फलों को कुतर डालने का वर्णन भी मिलता है.[17]

उपमित-चकोर—संस्कृत-साहित्य में चकोर की आंखों से दमयन्ती, इन्दुमती, बालचन्द्रिका एवं अन्य स्त्रियों की आंखों की तुलना की गई है.[18] पिंगलवर्ण आकाश के रंग को चकोर के नयन की कनीनिका के समान बताया गया है.[19] कमलिनी की कलिका व चकोर के नेत्र की तुलना की गई है.[20]

चन्द्रमा की किरणें वर्षाने वाले चुल्लु को चकोर की चोंच से उपमित किया है. इस प्रकार काव्यकारों ने चकोर को भिन्न-भिन्न प्रकार से उपमित किया है.

सम्पूर्ण काव्यों में चकोर का वर्णन २३ बार हुआ है, चकोर का वर्णन श्रीहर्ष व बाणभट्ट ने ८-८ बार, कालिदास व सुबन्धु ने २-२ बार एवं भारवि-माघ व दण्डी ने केवल १-१ बार किया है. वर्णन का विश्लेषण संलग्न तालिकाओं में दर्शनीय है.

———

14 'अचकित चकोर'. कादम्बरी पृ. 383, लवंगिके ! विक्षिप चकोर. यथोपरि. पृ. 5³3 ।

15 'चकोर'. नैषध. 22/42

16 'सहचरी'. ह. च: पृ. 419

17 'चकोरचञ्जु'. ह. च. पृ० 161

18 'चमत्कृतचकोरलाचलाक्षि'–नैषध. 11/75
'सा मत्तचकोर नेत्रा'–रघु. 7/25, तत्र.
'चकोरलोचना'–ह. च. पृ. 121

19 'चकोर-नयन'–कादम्बरी पृ. 512

20 'चंद्रिका'.–नैषध 22/40

तालिका (१)

'चकोर' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (2)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
२	रघु.	६।५९. ७।२५ ।

तालिका (२)

'चकोर' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (21)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
भारवि	१	किरात.	७।३९ ।
माघ	१	शिशु.	६। ४८ ।
श्रीहर्ष	८	नैषध.	४।५८, ७।३२, ३५, ११।७६, १२।६, २२।४०, ४२, ६९ ।
सुबन्धु	२	वासवदत्ता	पृ. १९१, २३२।
बाणभट्ट	४	ह. च.	पृ. ७५, १६१, ४०८, १९ ।
"	४	कादम्बरी	पृ २७२. ३८३, ५१२, ५३३ ।
दण्डी	१	द. च.	पृ. १२१ ।

हंस
THE SWAN

हंसश्रेणीरचितरशना नित्यापद्मा नलिन्यः।'

—मेघ० २/३

भारतीय-संस्कृत-साहित्य में हंस का स्थान सर्वदा प्रमुख रहा है. वैदिक साहत्य में ही नहीं अपितु आधुनिक संस्कृत साहित्य में भी हंस के वर्णन यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरे पड़े हैं. वैदिक साहित्य में हंस के लिये हँसः एवं आति शब्दों का प्रयोग हुआ है.[1] वाल्मीकि रामायण में हंस शब्द का उल्लेख अनेकथा हुआ हैं.[2] अमरकोष में हंसः श्वेतगरुत्, मानसौकसः शब्दों से हंस को कहा गया है. हंस के प्रकारों में राजहंसः व धार्तराष्ट्रः शब्दों का उल्लेख है.[3] वैज्ञानिकों की दृष्टि में हंस मेरु-दण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत पक्षिश्रेणी के हंसवर्ग के हंस-उपवर्ग के हंस परिवार का सदस्य है.[4]

हस विश्व के अनेक भागों में पाया जाता है. यह दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, यूरोप, एशिया. उत्तर अमेरिका व सोवियत रूस में पाया जाता है. भारत में यह पक्षी मौसम के अनुसार आता है. यह जाड़े के दिनों में कश्मीर के आस-पास देखा जाता है किन्तु फिर वापस चला जाता है.[5]

---

1 ऋक् 1.65, 5. अ० वे० 5. 12. 1. का० सं० 38, 1. मे० सं० 3. 11, 61 वा० स० 19, 74. तै० सं० 2, 6, 2, 1. ऋक्० 10, 95. 9

2 'कारंडैः सारसैः हंसैर्वंजुलर्जलकुक्कुटैः'—वा० रा० कि० 13/18
'हंससारसनादिताः'—वही० सु० 14/24
'दात्यूहशुकसंपुष्टा हंसासारसनादिताः' वही० उ० 42/12

3 'हंसास्तु श्वेतारुताचक्रांग मानसौकसः
राजहंसास्तु ते चंचुचरणैर्लोहितैः सिताः, इत्यमरः (सिंहाविवर्गः)

4 देखिये—जीवजगत् पृ० 347।

5 इन० बिट्रे० भाग 21 पृ० 630

हंस एक अत्यन्त सुन्दर पक्षी है. हंस की लम्बाई करीब ५ फीट तक होती है. इसके दोनों डेनों का फैलाव ७ फीट तक होता है. इसका वजन १८ से ४० पौंड तक होता है. इसकी गर्दन लम्बी एवं पैर छोटे होते हैं. यह पानी में निवास करता है.[6]

हंस के भोजन के बारे में दो बातें प्रमुख हैं. प्रथम तो यह कि वह मोती चुगता है. द्वितीय उसका क्षीर-नीर-विवेक. वास्तव में हंस न तो मोती ही चुगता है एवं न ही दूध को पानी से अलग कर सकता है. ये केवल साहित्य जगत् की कपोल कल्पित धारणायें हैं, सत्य नहीं.[7] वास्तव में हंस भी अन्य पक्षियों की भांति घास-फूस जड़ें, बीज तो खाता ही है, साथ ही केंचुए व मछलियों को भी चट करता देखा गया है. वह इनको पाने के लिये अपनी लम्बी गर्दन को पानी में गहरा डुबोता है.[8]

हंसों के अनेक प्रकार होते हैं अतः उनके रंगों में अन्तर होता है. सामान्य हंस का रंग दूध की भांति धवल होता है. सम्भवतः इसी कारण इसे धवल-वस्त्र-धारणी वीणावादिनी का वाहन कहा गया है. वृद्धावस्था में यह रंग हल्का हो जाता है एवं बादामी झांई से पूर्ण हो जाता है. इसके पैर व चोंच का नीचे का भाग काला या भूरा होता है. चोंच का रंग नारंगी होता है. इसकी उड़ने की गति बड़ी तेज होती है. दर्शकों का कहना है कि हंस उड़ते समय ४० से ५० मील की गति में होते हैं.[9] उड़ते समय में आंग्लभाषा के 'वी' (V) अक्षर के आकार में समुदायों में होते हैं. हंस की मादा गर्मी में अंडे देती है. मादा आकार में छोटी होती है एवं उसके वृद्धा होने पर चोंचे की जड़ में एक कुब्बज सा निकलता है. यों तो हंस की अनेक जातियां भूपटल पर उपलब्ध हैं किन्तु उनमें से कतिपय का संक्षिप्त वर्णन करना ही यहां सम्भव होगा.

१. राजहंस—यह हंस बड़ा प्रसिद्ध हंस है. इसकी चोंच लाल व पैर श्वेत होते हैं.

२. हंस—यह श्वेत रंग का पक्षी है जिसके वर्णन से हमारा सम्पूर्ण संस्कृत साहित्योद्यान भरा पड़ा है. हमारे देश में यह जाड़ों में कश्मीर प्रांत के कुछ भागों में देखा जा सकता है.

---

6 इन० ब्रिटे० भाग० 21 पृ० 630

7 देखिये जीवजगत् पृ० 347, का० के पक्षी० पृ० 48-50

8 इन० वर्ड० भाग 5 प्र० 815

9 वही० भाग 5 पृ० 813

३. सवन–यह हंस आकार में अन्य हंसों से छोटा होता है. इसका रंग राख के रंग से समानता रखता है. इसे संस्कृत-साहित्य में कलहंस के नाम से कहा गया है. हमारे देश में ये जाड़ों में पाया जाता है,

४. बड़ी बतख-यह सवन से कद में बड़ी होती है इसका रंग कत्थई एवं राखी होता है. भारत में यह जाड़ों में आकर पुनः उत्तर को प्रस्थान कर जाती है.

५. नीलसर–नीलसर हमारे यहां निवास करने वाली बतख है, जो निलछौंह गर्दन के कारण आसानी से पहिचानी जा सकती है. आकार में सवन के समान यानी दो फीट से ढाई फीट तक लम्बी होती है.

६. बुडार–यह उत्तर बिहार की झीलों में पाया जाने वाला हंस है जो पानी के भीतर काफी समय तक रह सकता है इसका सिर व गर्दन खैर रंग के होते है जो इसकी प्रमुख पहिचान है.

७. सीख-पर–इस बतख की दुम पर दो सींक जैसे-नुकीले पर निकले होते हैं. यह हमारे देश में जाड़े के दिनों में काफी संख्या में देखी जा सकती है. गर्मी में यह हिमालय की ओर चली जाती है.

८. चैती–भारतवर्ष में आने वाली छोटी बतखों में यह सबसे प्रसिद्ध है. इसकी पहिचान इसकी दोनों आंखों पर पड़ी हरी पट्टी से की जा सकती है.

९. नकटा–भारत में सर्वदा विद्यमान रहने वाली यह बतख अपने नाक पर उठे हुये कुब्बक के कारण बड़ी जल्दी ही पहचानी जाती है. यह छोटे तालों में एवं पास के पेड़ों में ही अपना जीवन व्यतीत करना पसन्द करती है.

इन सब प्रकारों के अतिरिक्त लालसर, तिदारी, हंसावर, पतेरा, गल आदि अन्य पक्षी भी हंस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं. उन सब का उल्लेख करना यहां सम्भव नहीं. अतः नामोल्लेख मात्र कर हंस की काव्यात्मक विशेषताओं पर विचार करेंगे.

संस्कृत काव्यों में हंसः–संस्कृत काव्यों में हंस के अनेक पर्यावाची नामों व प्रकारों का उल्लेख मिलता है. उनमें से प्रमुख नाम है. हंसः, कलहंसः, राजहंसः, चक्रांग, राजहंसी, पत्रस्थ, मराल, धार्तराष्ट्र, व कादम्बः,[10]

---

10 नैषध० 3/1
कादम्बरी० पृ० 164
कुमार० 17/36
नैषध० 3/68
नैषध० 3/6

हंस का निवासः—संस्कृत साहित्य में हंस के निवास के विषय में अनेक वर्णन उपलब्ध होते हैं. अलका में हंसों का निवास सर्वदा बतलाया है. वहां बारहों महीने कमल एवं कमलिनियों को हंसों की पांती घेरे रहती है.[1] यक्ष कहता है कि उसके घर में जो वापी है उसमें सर्वदा हंस विद्यमान रहते हैं एवं वे कदापि मान-सरोवर को प्रस्थान नहीं करते.[12] मेघदूत में ही हंसों के दशार्ण देश में रहने का उल्लेख मिलता है.[13] मानसरोवर को भी हंसों का निवास मानते हुए वर्षा ऋतु में उनके मानसरोवर चले जाने का वर्णन किया गया है.[14] वहां जाने वाले हंस क्रौंचरन्ध्र में से होकर जाते हैं.[15] विक्रमोवर्शीय के चौथे अंक में भी हंसों के मानसरोवर जाने का संकेत किया गया है.[16] कुमारसम्भव के १४वें व १७वें सर्ग में भी हंसों के मानसरोवर में रहने का उल्लेख किया गया है.[17] रघुवंश के छठे सर्ग के छब्बीसवें श्लोक में भी इसी बात का संकेत मिलता है. रघुवंश में सरयू नदी को हंस युक्त कहा है.[18] बाण ने उज्जयिनी एवं ब्रह्मलोक में निवास करने वाले हंसों का वर्णन किया है.[19] कुमार सम्भव में गंगा में हंसों का निवास बताते हुये कहा है कि शरदऋतु में गंगाजी में हंस

द० च० पृ० 1021 (1, 1)
कादम्बरी० पृ० 375
हृ० च० पृ० 141

11 'हंसश्रेणी रचितरशना नित्यापद्मा नलिन्यः' मेघ० उ० 2/3

12 प्रेक्ष्य हंसाः वही० उ० पृ० 16

13 'संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायि हंसा दशार्णाः' वही० पृ० 16 ।

14 हसेरभिमानसं घनभ्रमेण'—कुमार 14/35

15 सकलहंसगण शुचि मानसम् —किरात० 5/13

16 'हंसद्वारं भृगुपति यशोवर्त्मयत क्रौंचरन्ध्रम्'—मेघ० पृ० 61
'क्रौंचदिव हंसनिवहो निर्जगाम'—कादम्बरी० पृ० 173

17 'देखिये० विक्रम० अंक 4/30
'द्रष्टव्य-कुमार० 14/35. 17/36

18 'अथोर्मिलोलोन्मदराजहंसे'—रघु० 16/54
'सनूपुरक्षोमपदाभिरासीदुद्विग्रहंसा सरदंगनाभिः' वही० 16/46
देखिये० वही० 19/40

19 नूपुर व्याहाराहुतैर्भवनकलहंसकुलै हृ० च० पृ० 24
'भवन कलहंस कोलाहल'—कादम्बरी० पृ० 164

आ जाते है एवं कलरव करते हैं.[20] सुमेरुपर्वत पर हंसों की स्थिति बतायी गयी है.[21] इस प्रकार हंसों को अलका, उज्जयिनी, सरयू. गंग, गंधमादन पर्वत. सुमेरु पर्वत व मानसरोवर ये सभी स्थान प्रिय लगते हैं. तालाबों में हंसों के रहने के उल्लेख मिलते हैं.[22] नदियों एवं तालाबों के पास वाले तटों पर हंसों के भ्रमण के वर्णन भी मिलते हैं.[23] इन वर्णनों से हमारे सम्मुख दो बातें आती है प्रथम तो यह कि हंस वर्षाकाल में मानसरोवर को चले जाते हैं एवं द्वितीय यह कि हंस जल में रहने वाले प्राणी है एवं इन्हें शुद्ध जल ही प्रिय है. ऊपर जितने भी स्थानों में हंस का निवास बताया है ये सब स्थान हंसों के अस्थायी निवास हैं, स्थायी नहीं; जैसा कि वर्णन किया गया है, क्योंकि भारत में कोई हंस स्थायी रूप से निवास नहीं करता.

मानव एवं हंस—मानव एवं हंस का सामीप्य काव्यों में यत्र-तत्र-सर्वत्र वर्णित है. महाकवि श्री हर्ष ने तो एक ऐसे हंस की कल्पना की है जो मनुष्य की वाणी को समझता है एवं मानव वाणी में उत्तर भी देता है. नलदमयन्ती के प्रेम को बढ़ाने में उसका प्रधान हाथ रहा है. वह स्वर्णमय पंखों वाला हंस कहा गया है.[42] उसे देवताओं का अंश भी माना है.[25] हंस के संमुख गमन करने को अशुभ माना गया है.[26] यह विशेष प्रकार का हंस दमयन्ती के विरह से व्याकुल राजा नल के बगीचे में उपस्थित होता है एवं उसके द्वारा पकड़ लिया जाता है. बाद में वह करुणापूर्ण बातें मनुष्य वाणी में करता है तब उसे मुक्त कर दिया जाता है. वह प्रसन्न होकर नल के सामने दमयन्ती का वर्णन प्रस्तुत करता है एवं बाद में राजा की अनुमति से दम-

---

20 'तां हंसमाला: शरदीव गंगास्'-कुमार 1/30
'संमिलद्भिर्मरालैः सा कल कूजदभिरुन्मदैः'—वही० 10/33

21 'हिरण्यहंसव्रजवर्जितानाम्' कुमार 13/39
'अद्यापि हंसैरभिमानसं घनभ्रमेण' वही० 14/35
'उड्डीयामनकलहंसकुलोपमानि'—वही० 17/27
'धूमैर्विलोक्य मुदिता: खलु राजहंसा' वही० 17/36

22 'स्फुटकुमुदचितानां राजहंसाश्रितानि'—ऋतु० 3/21

23 'सौन्माद हंस मिथुनैरुपशोभितानि' वही० 3/11
'कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहामालिनी'—शाकु० 6/17

24 न जातारुच्छदजातरूपता द्विजस्य दृष्तेयमितिस्तुवन्मुहुः' नैषध० 1/129
'हिरण्यमयं हंसमबोधिनैषधः' वही० 1/117

25 'हंसोऽपिदेवाशतयासिन्दया': 3/57

26 शस्ता न हंसाभिमुखी पुनस्ते यात्रेति ताभिश्छलहस्यमाना वही० 3/9

यन्ती के पास नल का वर्णन करने के लिये प्रस्थान करता है. वह दमयन्ती को उसकी सखियों से दूर ले जाकर नल की प्रशंसा करता है एवं दमयन्ती के मन में नल के प्रति अनुराग उत्पन्न करन देता है. तदनन्तर वह नल के पास लौट आता है. इस प्रकार यह विशेष प्रकार का हंस नल दमयन्ती को प्रेम सूत्र में बाँधने में बड़ा सहायक होता है.

मानव ने जब-जब अपने को शांत एव प्रसन्न वातावरण में पाया है, तब-तब उसने कला का विकास किया है. रानियों द्वारा भवन के हंसों के पैरों को रंगने एवं पलंगों पर बने हंसों को सफेद वस्त्र पहिनाने के वर्णन इस बात के प्रमाण हैं.[27] कपड़ों पर हंसों के चित्रों के निर्माण का उल्लेख अनेक काव्यकारों ने यदा-कदा सर्वदा किया है. कुमार सम्भव में वधू के दुपट्टे को हंस के चित्रों से पूर्ण बताया है.[28] कांचन हंस से चित्रित अंशुक का उल्लेख किया गया है.[29] आभोग छत्र के शिखर पर हंस के चिन्ह की उपस्थिति मानव के पक्षियों के प्रति प्रेम का प्रमाण है.[30] एक ओर कादम्बरी अपने भवन में कलहंस की ध्वनि को विरहावस्था में पसन्द नहीं करती, वही कादम्बरी अन्यत्र हंसों को न मरने की बात कहती है एवं मरने से पूर्व उनकी विशेष चिंता करती है.[31] एक स्त्री अपने को युद्ध में बहने वाली नदियों की तरंगों में क्रीड़ा का सुख अनुभव करने वाली राजहंसी कहती है.[32] हर्ष चरित में एक दूत का नाम 'हंसवेग' रखा गया है जो सम्भवतः हंस की भाँति तीव्रगति से कार्य करने वाला रहा होगा.[33] वासवदत्ता में एक राजा को हंस कहा है एवं उसे हंस होते हुए भी अपक्षपाती कहा है जबकि हंस (पक्षी) पक्षपाती होता है.[34] कादम्बरी में एक गंधर्व को एवं दशकुमार चरित में एक राजा को 'हंस' नाम से कहा गया है.[35] महाराज इन्द्र की हंसों

---

27 भवनहंसाः-ह. च. पृ. 277
'मानसहंसकुलैश्चशयनीयैस्तारामुक्ताफलोपचीयमानैश्च' —वही. पृ. 245

28 वधूवुकूल कलहंसलक्षणम्' —कुमार. 5/67

29 'दृष्टवांशुके कांचनहंसचिन्हं' —बु. च. 6/59

30 'विततपत्रेण हंसेन सनाथीकृताशिखरम्' —वही. पृ. 385

31 'तस्माच्च भवनकलहंसरवमसहमाना प्रस्थिता' —कादम्बरी. उ. पृ. 28

32 'रणरुचितरंगिणीतरंगक्रीडादोहददुर्ललितराज हंसीम्' —ह. च. पृ. 195

33 'हंसवेगनामा दूतोतरंन्गस्तोरणमध्यास्ते' —वही. पृ. 382

34 'हंसेनाप्यपक्षपातिना' —वासवदत्ता पृ. 89

35 ज्येष्ठो हंसो नाम जगद्विदितो गन्धर्वः' —कादम्बरी पृ. 412
'राजहंसो नाम' ,, —पृ. 6

का नरेश कहा गया है.[36] हंसों को राही के रूप में वर्णित किया गया है.[37] हंसों को मानव द्वारा बांधे जाने एवं स्त्रियों के बिछुओं की ध्वनि सुनकर भागने के वर्णन भी मिलते हैं.[38] इस प्रकार हंसों का सम्बन्ध मानव से तो है ही साथ ही वे गंधर्व एवं देवों से भी सम्बन्धित किए गए हैं

क्रिया-कलाप—हंस की विभिन्न क्रियाओं का विभिन्न काव्यकारों ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से विवेचन किया है. हम उनका अध्ययन करने का प्रयास करते हैं.

हंसों के भोजन के विषय में दो बातें प्रमुख हैं कि वे पानी को छोड़कर दूध का पान करते हैं एवं मोती चुगते हैं. पर ये दोनों बातें वैज्ञानिक आधार पर असत्य सिद्ध हो चुकी हैं. जिसका हम पूर्वोल्लेख कर आये हैं. हंसों द्वारा कमल-नाल खाने का वर्णन महाकवि ने किया है, वे लिखते हैं कि मेघ के साथ कैलाश पर्वत को जाने वाले हँस कमल के किसलयों को पाथेय के रूप में ले जाते हैं.[39] विक्रमोवर्शीय में राजहंसी मृणाल को खींचती है जिसका आगे का भाग टूट गया है.[40] ऐसा वर्णन में है, कमलनाल को तोड़ने पर भीतर से एक सूत्र निकलता है, अतः निस्संदेह यह हंसों द्वारा मृणाल सूत्र भक्षण का संकेत है. हंसों के द्वारा कमल मधु (कमलनाल से प्राप्त दूध) पान का उल्लेख महाकवि ,बाण ने किया है. कादम्बरी द्वारा नलिनिका से कहलवाया गया है कि वह हंसों को कमलमधु दे.[41] हर्षचरित में हंसों द्वारा कमलमधु के पान करने का स्वाभाविक वर्णन करते हुए बाण लिखते हैं कि राजहंसों का समुदाय कमलों के मधुर मधु का सहपान करने से छककर गर्दन को कुण्डलित करके कोमल मृणालों द्वारा शरीर खुजलाते हुये, पंखों को फड़फड़ाकर कमल सरोवर को हवा देते हुए ऊंघ रहा है.[42] यहां कवि ने मधुपान करने गर्दन को कुण्डलित करने, शरीर को खुजलाने, पंखों की फड़फड़ाने एवं ऊंघने की क्रियाओं का एक साथ वर्णन किया है. कादम्बरी में भी कमलमधुपान कर मस्त हुए हंसों का अनेकधा वर्णन किया है.[42]

---

36 'चक्रांगपतंगशक्र' —नैषध. 3/68

37 'हंसपथिक सार्थसर्वातिथौ' —ह. च. पृ. 141

38 'मया बद्धो मरालः' —द. च. पृ. 110
'नूपुरमणिभंकाराकृष्ट सर कलहंसानि' —कादम्बरी. पृ. 418

39 'आकैलासाब्दिसकिसलयच्छेद' —मेघ. पृ. 11

40 'मृणालादिवराजहंसी' —विक्रम. 1/20

41 'नलिनिके! पायय कमलमधुरसं भवनकलहंसान्' —कादम्बरी. पृ. 532

42 दिवसावसानं —ह. च. पृ. 26

कमलहंस के बच्चों द्वारा निवार नामक अन्न को खाने का उल्लेख किया है. काक सर्प द्वारा हंसों की बलि खाने का वर्णन भी मिलता है. वासवदत्ता में भी हंसों को मृणालांकुर देने की बात कही गई है.[44] अतः काव्यात्मक वर्णन के आधार पर कमलनाल, कमलमधु व निवार को ही हंसों का खाद्य-पदार्थ स्वीकार किया जा सकता है.

हंस के रंग के बारे में सभी काव्यकारों का एक मत है. उन्होंने हंस के रंग को 'श्वेत' कहा है. रघु के यश की धवलता का उल्लेख करते हुए कालिदास ने हंस समुदाय को सर्वप्रथम स्थान दिया है.[45] शिव-पार्वती की शय्या को हंस के पंखों के समान शुभ्र बताया है.[46] बाण ने कादम्बरी में राजा तारापीड के शयनतल को 'हंसधवल' कहकर हंसों की धवलता का प्रमाण प्रस्तुत किया है.[47] हंसों के द्वारा नदियों के जलों को श्वेत बनाने एवं धवलपक्षधारी हंसों के कूजन से गुम्फित होकर दिशाओं का मेघों से शून्य होकर निर्मलता को प्राप्त कराने का वर्णन भी मिलता है. कादम्बरी में भवन कलहंसों से युक्त आंगन को श्वेत बतलाकर हंसों की श्वेतता की ओर संकेत किया है. हर्षचरित व ऋतुसंहार में कादम्बरी शब्द का प्रयोग श्याम हंस के वाचक के रूप में आया है. अतः काव्यात्मक वर्णन के आधार पर हंसों का श्वेत एवं श्याम होना सिद्ध होता है.

हंसों की प्रमुख क्रियाओं में उनकी ध्वनि प्रमुख है. हंसों की ध्वनि को मधुर कहा है.[48] नदियों एवं सरोवर हंसों के प्रमुख निवास हैं, अतः वहां पर ही

---

43 'कलहंसानाम्' —कादम्बरी पृ. 371
'क्वचिदरुण हंसोपात्तकमलवनमकरन्दम्' —वही. पृ. 374
44 'कलहंसपोतभुज्यमाननीवारबलिम्' —कादम्बरी पृ 120
'राजहंसे न जिह्रेषि बलिं याचितुम्' ह. च. पृ. 192
'मकरिके! देहि मृणालांकुर राजहंसशावेभ्य' —वासवदत्ता. पृ. 206
45 'हंसश्रेणीषु' —रघु. 4/19
46 'तत्रहंसधवला' —कुमार. 8/82
47 'हंसधवलशयनतले' —कादम्बरी. पृ. 286
48 'वाचं तदीयां परपीय मृद्वीं मृद्वीकया तुल्यरहां स हंस' —नैषध. 3/60
'हंसमुखरतयाश्रुतिमानन्दयति' —कादम्बरी. पृ. 377
'भवनकलहंसमालाभिर्वलितांगनेन' —कादम्बरी. पृ. 273
'क्वणत्कादम्बे'- —ह. च. पृ. 141
'सोन्मादकादम्बविभूषितानि' —ऋतु. 4/9

उनकी ध्वनि सुनी जाना स्वाभाविक है. अतः काव्यकारों ने गंगा, वेतवा एवं शिप्रा नदियों एवं पम्पासर में हंसों के कलरव का उल्लेख किया है.[49] महाकवि कालिदास ने शरद् ऋतु में हंसों की मधुर ध्वनि का वर्णन शरद् ऋतु वर्णन करते समय ऋतुसंहार में किया है. सम्भवतः उन्हीं के अनुकरण पर भारवि, माघ एवं बाणभट्ट ने भी शरद्ऋतु वर्णन के समय पर इस बात को नहीं भुलाया है.[50] इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि शरद्ऋतु में हंसों की ध्वनि मधुर होती है एवं शरद्ऋतु हंसों के कूजन का काल होता है. हंसों की ध्वनि को कतिपय स्थानों पर तिरस्कृत भी किया है भगवान् कृष्ण की रमणियों की वाणी को सुनकर हसों का कमलों में छुपना एवं अन्तःपुर में रमणियों के नपुर-रव के समाप्त हो जाने से भवन के हंसों का मूक एवं मन्द होना इस बात के उदाहरण हैं.[51] किरातार्जुनीयम् एवं हर्षचरित में हंस को ब्रह्मा एवं देवताओं के वाहन में वर्णित किया गया है.[52]

हंस के उड़ने के उल्लेख भी मिलते हैं. नल द्वारा पकड़े गये हंस के द्वारा उड़ने का प्रयास किया गया. नल द्वारा मुक्त होने पर हंस ने पंखों को ठीक किया. हंस ने दमयन्ती के पास जमीन पर गिरने के समय पंखों को फड़फडाया. अकाल में उड़ता हुआ एक कलहंस आया–ये सभी वर्णन हंस के उड़ने की क्रिया से सम्बन्ध

---

49 'कलहंसनादिनी' –किरात. पृ. 8/27
'उन्मवकलहंसकलकोलाहल मुखरित–कूलया वेत्रवत्या' –कादम्बरी. पृ. 17
'यश्च समदकलहंस सारसा' –वासवदत्ता पृ. 73
'मदमुखरराजहंसकुलकोलाहल मुखरितकूलपुलिनया' वही. पृ. 74
'पम्पासरः कलहंसकोलाहले' –कादम्बरी. पृ 81

50 'कुर्वन्ति हंस विरुतः, 'हंसैः सारससकुलैः प्रतिनादितानि' ऋतु. 3/8, 16
श्रुतिः श्रयत्युन्मदहंसानिःस्वनं –किरात. 4/25
'शरविहंसरवः परुषीकृतस्नरमयूरमयू रमणीयताम्' –शिशु. 6/44
'शरदमिवोत्पादितमानसजन्मपक्षिरवापनीतनीलकण्ठमदान्' –कादम्बरी. पृ. 54 में

51 'पतत्रिणां कुलानि' –शिशु. 8/12
'मन्दिर हंसेषु' -ह. च. पृ. 300
'स्त्रीणां विहाय वदनेषु शशांक लक्ष्मी काम्यं च हंसवचने मणिनुपुरेषु' –ऋतु. 3/27
'युवतिनूपुर' –कादम्बरी पृ. 300

52 'हंसा वृहन्तः सुरसप्रवाहा' –किरात. 18/19

रखते हैं.[53] भयभीत होकर हंसों द्वारा उड़ने का वर्णन महाकवि बाणभट्ट ने किया है.[54]

अभिज्ञानशाकुन्तल के छठे अङ्क में जब मातलि इन्द्रजाल के प्रभाव से बिदूषक को पकड़ लेता है तो विदूषक चिल्लाकर राजा से कहता है कि वह उसे शीघ्र बचावे. उस अवसर पर अपने बाण की प्रशंसा में राजा कहते हैं कि उनका तीर उसी प्रकार शत्रु को मारकर विदूषक को बचा लेगा जिस प्रकार हंस जलयुक्त दूध में से दूध को ही ग्रहण करता है एवं पानी को छोड़ देता है.[55] इस प्रकार महाकवि ने हंस के क्षीर–नीर–विवेक का संकेत किया है. इसी प्रकार का संकेत शिशुपालवध के सोलहवें सर्ग में भी उपलब्ध होता है, जो कोरी कल्पना मात्र है.

हंसों के स्वभाव से गद्‌गद होने, खेलवाड़ करने एवं रोने के वर्णन भी कवि कल्पना के चूडान्त उदाहरण हैं.[56]

शरदृऋतु में कामदेव का मयूरों को छोड़कर हंसों में प्रविष्ट होना इस बात को प्रमाणित करता है कि शरदृऋतु हंसों का गर्भाधान काल होना है.[57] राजहंसी द्वारा स्नानान्तर जल में स्थित चन्द्रविम्ब को राजहंस का चुम्बन करना उसकी कामुकता एवं अज्ञान का प्रमाण है. महाकवि श्रीहर्ष ने सुरत खेद के कारण थक कर सोये हुए हंस का स्वभावोक्ति पूर्ण वर्णन करते हुए लिखा है कि हंस सुरत खेद के कारण आलस्य युक्त होकर पंखों से सिर ढककर गर्दन टेढ़ी करके तथा एक पञ्जे का आलम्बन लेकर क्षण भर सो रहा था,[58] हंस-

---

53 पुनः पुनः प्रायसदुत्प्लवाय सः —नैषध. 1/125
'अधुनीत खगः स नैकधा तनुमुत्फुल्लतनूरुहीकृताम्' —वही. 2/2
'निवेवदेशाततधूतपक्षः पपात भूमावुपभैमि' —हंस वही. 3/1
'नभसि नलिनि लुब्धमुग्धकलहंस' —द. च. पृ. 143

54 'कलकूजितानुभयमानोत्रस्तहंससार्थोत्पतन व्यतिकरान्' —कादम्बरी. उ. पृ. 60

55 'हंसो हि क्षीरमादेत्ततन्मिश्रा वर्जयत्यपः' —शाकु. 6/28

56 'स्वभाव गद्‌देन भवनकलहंसानां कलरवेण' —कादम्बरी उ पृ. 59
'मनोरम राजहंस केलीविधित्सया तदुपकण्ठमरायत्' —द. च. पृ. 109
'बाष्पापवल्गितनयनं ताम्यति हंसीयुगलम्' —विक्रम. 4/2

57 'शिखिनो विहाय हंसानुपैति भदनो मधुरप्रगीताम्' —ऋतु. 3/13

58 अथा वलम्ब्य क्षणमेकपारिकां लदा निदद्रावुपल्वल खगः ।
स तिर्यगावर्जितकन्धरः शिरः पिधाय पक्षेण रतिक्लमालसः ॥
—नैषध.1/121

मिथुन के शयन का उल्लेख कादम्बरी में भी मिलता है.[59]

उपमित हंस—संस्कृत काव्यों में सादृश्य मूलकालंकारों का अपना विशेष महत्व है. हंस तो साहित्य जगत का प्रमुख पक्षी रहा है, फिर भला काव्यकार इसे उपमित करने में पीछे कैसे रह सकते थे. सभी काव्यकारों ने यदा कदा सर्वदा हंस की अनेक क्रियाओं को जीवाजीवों से उपमित कर पक्षी साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ा है. दमयन्ती, अवन्तीसुन्दरी उर्वशी, इन्दुमती एवं अमरांगनाओं की चाल की समता हंस की गति से की गई है.[60] दमयन्ती को हंस के समान गति से चलने वाली कहा है.[61] अवन्ति सुन्दरी को उद्यान में भ्रमण करने वाली हंसिनी कहा है.[62] पुरुरवा अपनी प्रिया की गति को चुराने के आरोप में हंस को उपालम्भ देता है एवं अपनी प्रिया की गति को 'हंसगति' कहता है.[63] रघुवंश में अज प्रिया—विलाप करते समय उसकी गति का कलहंसिनियों द्वारा लिया जाना बताता है.[64] अमरांगनाओं के विलास मन्थर गमन के राजहंसों की गति को जीतने का उल्लेख भारवि ने किया है.[65] इस प्रकार हंस की गति की तुलना स्त्रियों की चाल से की गई है.

हंस की ध्वनि से भी अनेक समतायें की गई है. स्त्रियों के नुपुर[66] एवं

---

59 'सुप्तहंसमिथुने' —कादम्बरी पृ. 590

60 'चिर निमज्जेह सतः प्रियस्य भ्रमेण यच्चुमबती राजहंसी' —नैषध. 22/120

61 हंसोऽप्यसौ हंसगतेः' —नैषध. 3/10

62 'उद्यानवनदीर्घिकामत्तमरालि' द. च. पृ. 101

63 'मदलेखपदं कथं नु तस्याः सकलं चौरगतं त्वया गृहीतम्' —विक्रम. 4/33
हंसगतिः वही. 4/20, 59

64 'कलहंसीषु मदालसं गतम्' —रघु. 8/59

65 'गतैः सहावैः कलहंसविक्रम.' —किरात. 8/29

66 पदे पदे हंसरुतानुकारिभिर्जनस्यचितं क्रियते समन्थम्' —ऋतु. 1/5
'सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या' —वही. 3/1
'चलत्पदाम्भोरुहनुपुरोपमा चुकूलकूले कलहंसमण्डली' -नैषध. 1/17
'कूजित राजहंसानां नेदं नूपुरशिञ्जितम्' —विक्रम. 4/30
'भवनकलहंस' —कादम्बरी. पृ. 656
'कलहंसकलालापमधुररवैः प्रतिवाचमिव' —वही. उ पृ. 10

67 क्वणितकनककांची मतहंसस्वनेषु' —ऋतु. 3/26
'ततः स कूजत्कल हंसमेखलाम्' —किरात. 4/11

करधनी[67] नामक आभूषणों की ध्वनि का हंस की ध्वनि से साम्य प्रदर्शित किया गया है. हंसों के कलरव की गंगा के कलरव से तुलना की गई है.[68] रानी यशोमति की पुत्री राजश्री की वाणी को हंस की वाणी के समान मधुर बताया गया है.[69] सावित्री की वाणी को हंस की वाणी से उपमित किया है.[70] उन्मत्तावस्था को प्राप्त राजहंसी की वाणी से कल्प सुन्दरी के कण्ठ स्वर की समता की गई है.[71] गौतमी के रोने की तुलना हंस से वियुक्त हंसी के रुदन से की है.[72]

द्वारपर स्थित कन्याओं को परशुराम के बाण से निर्मित मार्ग से होकर निकली हुई कलहंस पंक्ति से तुलना की है.[73] यशोमती के कटाक्षों द्वारा आकर्षित किये जाने को हंस द्वारा नीलकमलों को खींचे जाने से उपमित किया गया है.[74] यशोमती को मानसरोवर में रहने वाली हंसी भी कहा है.[75] महारानी विलासवती को मानसरोवर की 'हंसमाला' कहा गया है.[76] स्वयंबर के समय सुनन्दा के सहारे इन्दुमती के एक राजा के बाद दूसरे राजा के पास जाने की तुलना उस राजहंसिनी से की है जो लहर के सहारे एक कमल से दूसरे कमल तक प्रस्थान करती है.[77] यहां सुनन्दा व लहर, ,इन्दुमती व राजहंसी एवं कमल व राजा में साम्य बताया गया है अतः पूर्णोपमा है. उर्वशी को हंसनी से उपमित करते हुए कहा है कि वह राजा के मन को उसी प्रकार खींच रही थी जिस प्रकार

'कलहंसरमणीय' — ह. च. पृ. 314
'सलीलमुक्तकलहंसकुलकलालापप्रलापिनि' —वही. पृ. 14
'कलहंसनाद जर्जरितेन' —कादम्बरी पृ. 41

68 कुमार. 10/33

69 'हंसमधुरस्ववा शरदमित प्रावृट' —ह. च. पृ. 229

70 'कलहंसस्वना समुन्नतपयोधरान्' —ह. च. पृ. 48

71 'मत्तराजहंसीव कण्ठरागवल्गुवल्गुगभ्द्गेदां गिरम्' —द. च. पृ. 282

72 'हंसेन हंसीमिव विप्रयुक्ताम्' —बु. च. 9/27

73 'परशुराम शरविवरविनिर्गीता इव कलहंसपंक्तयः' —कादम्बरी पृ. 10

74 'हंसा कृष्याप्राणनीलोत्पलवनाः' —ह. च. पृ. 216

75 मानसानुवर्तनचतुरा हंसीव राजहंसस्य' —वही. पृ. 206

76 'हंसमालेव मानसस्य' —कादम्बरी पृ. 188

77 'तां सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाय।
समीरणोत्थेव तरंगलेखा पद्मान्तरं मानसराजहंसीम् ।। —रघु. 6/26

राजहंसी कमल का तन्तु खींच रही हो.[78] सरस्वती महर्षि के मुख के सम्पर्क का सुख प्राप्त करती है मानों राजहंसी मानसरोवर के कमलों के सम्पर्क का सुख प्राप्त कर रही है.[79] यहां सरस्वती को राजहंसी के सदृश बताया गया है. महाश्वेता के वक्षस्थल पर दो स्तन विद्यमान थे मानों गंगा के वक्षस्थल पर दो हंस शोभायमान हों.[80] यहां हंसों को स्तन कहा गया है. महाश्वेता एवं गंगा का साम्य है. बाण ने लिखा है कि जिस प्रकार कमलनाल के लोभ में कोई व्यक्ति हंस को मानसरोवर से दूर ले जाता है उसी प्रकार महाश्वेता की माला का दर्शन करने से लोभ के कारण कपिञ्जल का मन कामवेग से अत्यधिक संतप्त हुआ[81] यहां कपिञ्जल व हंस का साम्य प्रदर्शित किया गया है. मृणाल-धारी दधीचि को हंस से उपमित किया है.[82] महाभारत में धृतराष्ट्र वंश व पाण्डुवंश इन दोनों पक्षों में युद्ध का वर्णन है उसी प्रकार अच्छे सरोवर में श्वेत हंसों का पक्षपात होता था.[83] यहां धृतराष्ट्र व हंसों का एवं पक्षों व हंस के पंखों का साम्य बताया गया है. राजा तारापीड की जलक्रीड़ा को हंस की जल-क्रीड़ा से उपमित किया गया है.[84]

हंस के जोड़े से खड़ाउओं के जोड़े को उपमित करते हुए कहा है कि पैरों के पास पानी से धुला हुआ पवित्र खड़ाउओं का जोड़ा साथ लग गया हो.[85] तरंगों पर स्थित राजहंस से बुद्ध की समता करते हुए कहा है कि तरंगों पर चलने वाला राजहंस स्थिर ही रहता है उसी प्रकार भक्ति द्वारा आगे एवं पत्नी द्वारा पीछे खींचे जाने पर बुद्ध स्थिर ही रहे.[86] तीन लकड़ियों से निर्मित त्रिपादिका पर स्थित गंगाजल से भरे हुए बिल्लोरी कमण्डलु को श्वेत कमलों के मध्य स्थित राजहंस के समान बताया है.[87] बुद्ध ने मुकुट को काटकर इस प्रकार फेंका जिस

---

78 सुरांगना कर्षती खण्डिताग्रात्सूत्रं मृणालादिव राजहंसी' —विक्रम. 1/20
79 'राजहंसीव मानसे' —कादम्बरी पृ. 137
80 'एक हंसमिथुन-सनाथमिवगंगाम्' —वही. पृ. 396
81 'हंस इव दर्शिताशोमानसजन्मात्वया नीतः' —कादम्बरी पृ. 445
82 'हंस इव कृतमृणालधृतिः' —ह. च. पृ. 375
83 'भारतमिव पाण्डुधार्त्तराष्ट्रकुल- पक्ष-कृत-क्षोभम्' —कादम्बरी पृ. 375
84 'हंस इव कमलवनेषु' —वही. 184
85 'तोयक्षालित शुचिनाधोतपादुकायुगलेन हंसमिथुनेव' —ह. च. पृ. 177
86 'तुंगतरंगेष्विव राजहंसः' —सौ. न. 4/42
87 'राजहंसेनोपशोभानम्' —कादम्बरी पृ. 133

प्रकार कोई हंस को सरोवर में फेंक रहा हो.[88] यहां मुकुट के सौन्दर्य की तुलना हंस की सुन्दरता से की गई है.

हंस की धवलता की तुलना गंगा के उत्तरीय, यज्ञसूत्र, ज्योत्सना, सितपताका व यश की स्वच्छता से की है.[89] बुढ़ापे के बालों की सफेदी को हंस के पंखों की धवलता से उपमित किया गया है.[90] ग्रभोगछत्र की तुलना आकाश में पंख फैलाकर विश्राम करते हुये ब्रह्मा के वाहन हंस से की है.[91] चंवरों की तुलना हंसों से की है.[92] कुमार के वियोग में गोतमी को उस हंसी की तुलना दी है जो हंस से वियुक्त हो गई हो.[93]

सम्पूर्ण काव्यों में हंस का वर्णन कुल मिलाकर २७७ बार आया है. महाकवि बाणभट्ट ने हंस का वर्णन ६३ बार किया है जबकि श्रीहर्ष ने ८६ व कालिदास ने ४२ बार. दण्डी, सुबन्धु, भारवि, माघ व अश्वघोष ने हंस का वर्णन क्रमशः २०, ११, ११, १० व ४ बार किया है. इस प्रकार कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में हंस के वर्णन का अपना विशिष्ट महत्व है. हंस के वर्णन का विश्लेषण संलग्न तालिकाओं में दर्शनीय है.



88 'सरसीव हंसम्' —बु. च 6/57

89 'सरिदुत्तरीयमिव संहतिमत्स इतरंगरंगि कलहंसकुलम्' —किरात. 6/6
'हंसधवलाधरण्यामपतज्ज्योत्स्ना' —कादम्बरी पृ. 150
'हंससार्यैः सहैकीभूतैरिव' वही. उ. पृ. 57,
सहंसमालमिव सितपताकाभि' —वही. पृ .78
'हंसश्रेणीषु'-यशसामिव 4/19

90 'हंसशुक्लशिरोरुहैः' —कादम्बरी

91 'विश्रान्तिमिक बितत पक्षतिना वियति पितामहविभानहंसयूथेन' —ह. च. पृ. 384

92 सहंसपाते इव लक्ष्यमाणे' —कुमार. 7/42

93 हंसेन हंसीमिव वियुक्तां' —बु. च. 9/27

तालिका–१

'हंस' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (42)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
६	रघु.	४।१६. ५।७५. ६।२६. ८।५६. १६. ५४. ५६.
६	कुमार.	१।३७. ५।६७. ७।४२. १०।३३. १४।३३. १७।३४.
५	मेघ.	१।११. २५, ६१. २।३, १६.
१२	ऋतु.	१।५. ३।१. २. ८, ११, १३, १६, २१, २६, २७. ४।४, ६.
२	शाकु.	६।१७. २८.
१	मालविका.	२।१२.
१०	विक्रम.	१।२०. ४।२. ३, ६, २०, ३०, ३४, ४१, ५६, ७२,

तालिका—२

'हंस' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (235)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	३	बु. च.	६।५७. ५६. ६।२७.
,,	१	सौ. न.	४।२४.
भारवि	११	किरात	४।१, ४, २५, ३०, ५।१३. ६।४. ६. ८।२७, २६. १०।२५. १८।१६.
माघ	१०	शिशु.	६।४४. ७।२३. ४५, ५४. ८।१२. १२।४४, ६१. १३।२१. १६।१६. १७।२६.
श्रीहर्ष	८६	नैषध.	१।११७, २१, २५ से ३६, ४२. २।१ से १३. ३६, ५६ से ५८, ६० से ६५, ६७ से ७२, १०७ से ६, ३।१, ३ से १२, १६ से २२, ५७, ६०, ६८, ७६ से ७८, ६४. ६।७२. ८।३५. ६।१४, २७, ६६, १२८, ४४. ११।१५, ५०, ५४. १२।३५, १०२. १३।४०. १४।६०. १८।१६. २२।१६०.
सुबन्धु	११	वासवदत्ता	पृ. ७३, ७४, ८६, ६६, १११, ७६, २०६, १६. ५०, ५१, ५४.
बाणभट्ट	३६	ह. च.	पृ. ३, १४, २४, २६, २६, ३१, ४८. ५३, ५३, ६५, १०१, २, ४१, ४१, ६२, ७२, ६२. ६६, २०६, ६, १३, १६, २६, २७, २६, ४५, ८६, ८६, ६०, ६०, ६० ६०, ६०, ६६, ३००, १४, ३१, ८२ ८४.
बाणभट्ट	५४	कादम्बरी	पृ. ११, १७, २२, २७, ४१, ४२, ४६, ६८, ७८, ८१, १२०, ३३, ३७, ४८, ५०, ५०, ५१, ६४ ७३, ८३, ८४, ८८, ८६, ६६, १०८. २४२, ५३, ७२, ७३, ३००. ८, ७१, ७४, ७५, ७७, ६३, ६६, ४१२, १७, १८, ४५, ५३३, ४६, ६०, ६५६, उ० १०, १०, १६, २८, ५७, ५६, ६०, ६८, १३८.
दण्डी	२०	द. च.	पृ. ५, ६, १५, १८, २६, ५६, ६८, ८१, १००, १, ६. १०, ३२, ३६, ४३, २३७, ८२, ३६७, ४७४, ८३.

चक्रवाक
THE RUDDY GOOSE

'चक्रवाकसवृत्तिमात्मनः ।'
—कुमार० ८/५१

संस्कृत-साहित्य में चक्रवाक का वर्णन प्रमुख रहा है. वैदिक साहित्य में चकवा के लिए चक्रवाक: शब्द का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है.[1] बाल्मीकि रामायण में भी चकवा के वर्णन मिलते हैं.[2] अमरकोष में चक्रवाक को कोकः, चक्रः, चक्रवाकः एवं रथाङ्गाह्व नामों से कहा गया है.[3] शब्दकल्पद्रुम में चक्रवाक के द्वन्द्वचरः, भूरिप्रेमा, रात्रिविश्लेषगामी, कान्तः, कामुकः इत्यादि नाम दिये गये हैं.[4]

वैज्ञानिक की दृष्टि में चकवा हंसवर्ग के हंस-उपवर्ग के हंस-परिवार का सदस्य है.[5] संस्कृत साहित्य के वर्णनों में भी हंस व चक्रवाक को अनेक स्थलों पर एक साथ वर्णित किया है.[6] सामान्य लोग चक्रवाक को चकवा, चकई व सुरखाब नामों से भी पुकारते है.

नामोल्लेख करने के बाद अब हम चकवे की सामान्य-विशेषताओं पर विचार करेंगे. चकवा राजहंस से काफी साम्य रखने वाला पक्षी है. इसकी चोंच चपटी

---

1 ऋक् 2/39/3, मै० सं० 3/14/3, 13, वा० सं० 24/27. 32. अ० वे० 24/2/64

2 'महानदीनां पुलिनोपपातैः क्रीड़न्ति हंसाः सह चकवाकैः'-वा०रा०कि०30/31 'चक्रवाकगणाकीर्णा विभान्ति सलिलाशयाः'—वही० 30/51

3 कोकश्चक्रश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वयनामकः'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

4 शब्दकल्पद्रुम० 2/4/14

5 जीवजगत् पृ० 355

6 वा० रा० कि० 30/31, 63

होती है, जबकि राजहंस की चोंच चपटी नहीं होती.[7] इसकी ध्वनि भी राजहंस की ध्वनि से साम्य रखती है ऐसा वैज्ञानिकों का मत है.[8] चकवा लद्दाख, तिब्बत, मानसरोवर, द० यूरोप व एशिया-माइनर में पाया जाता है.[9] सर्दी के मौसम में ये सम्पूर्ण भारत में फैल जाते हैं. इसके बाद कश्मीर, मानसरोवर व हिमालय की ओर प्रस्थान कर जाते हैं.

चक्रवाक को बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है क्योंकि यह सारस-दम्पत्ति की भाँति जोड़े में रहता है. केवल रात में यह एक साथ नहीं रहता. यह दो फीट लम्बा पक्षी होता है. नर का सारा शरीर भूरे या सुनहरे रंग का होता है. सिर व गला बादामी रंग के होते हैं. इसके गले पर एक काली धारी होती है. मादा के गले में कंठा नहीं होता एवं रंग हल्का होता है. इसकी चोंच व पैर काले होते हैं. चकवे के पंखों में पीले, नारंगी, सुनहरी हरे एवं काले रंगों का साम्य होता है जो इसे अनुपम बनाते हैं.[10]

सुरखाब नदियों के किनारे पर निवास करते हैं. रात को इनकी आवाज नदी के तटों की ओर से निरन्तर सुनी जा सकती है. दिन में चकवे के समुदाय नदियों की तटवर्ती रेत में आराम करते भी देखे गये हैं. चकवे की मादा गर्मी में ८ से १० तक अण्डे देती है. जिसका रंग लालाई लिए पीला या गंदला सफेद होता है.

चकवा भी हंस व सारस की भांति अनेक पदार्थों का भक्षण करता है. जिसमें प्रमुख हैं—घास-पात, अनाज, जड़ें, सेवार, बीज, छोटी मछलियां व घोंघे[11] इसका प्रमुख भोजन जल से प्राप्त वस्तुयें ही हैं.

चकवे के पालन का प्रचलन नहीं है. चकवा व चकवी के अनेक आख्यान आर्य जगत् में प्रचलित हैं. चक्रवाक को दाम्पत्य-प्रेम का आदर्श उदाहरण माना जाता है. चक्रवाक की जोड़ी सदा एकसाथ रहती है जो उनके प्रगाढ़ प्रेम का प्रतीक है. चकवा-चकवी के विषय में एक बात बहुत विख्यात है कि दिन भर साथ-साथ रहने के बाद रात को उनको बिछुड़ना पड़ता है. साहित्य जगत् में इस विषय

---

7 पा० हैण्ड० आफ० इ० बर्ड्स० पृ० 524

8 दि० इ० बर्ड्स० पृ० 109

9 वही० पृ० 109, ब० ओ० सौ० पृ० 103

10 वही० 101, जीवजगत् पृ० 356, भारत के पक्षी पृ० 184, कालिदास के पक्षी० पृ० 24

11 ब० ओ० सौ० पृ० 103, जीवजगत् पृ० 356

पर काफी कुछ लिखकर साहित्यकारों ने चक्रवाक के प्रति अपनी सहानुभूति का प्रदर्शन किया है. इस विषय में अनेक किंवदन्तियां व कल्पनायें हैं जिनमें से कतिपय का उल्लेख करना यहां आवश्यक है ताकि हम वास्तविकता की ओर कदम बढ़ा सकें.

प्रथम किंवदन्ती यह है कि शाहजहां की मृत्यु के पश्चात् औरंगजेब से यह कहा गया कि उनके पिता-श्री की यह इच्छा थी कि उनकी मृत्यु के बाद ताजमहल जैसा ही एक मकबरा यमुना के दूसरी ओर बना दिया जावे. इस पर औरंगजेब ने उत्तर दिया कि उनके माता-पिता कोई चकवा-चकवी नहीं है जो कि उनकी समाधियां यमुना के दोनों किनारों पर हों.

एक दन्तकथा में कहा गया है कि चक्रवाक दम्पत्ति को किसी अपराध के कारण शापग्रस्त होना पड़ा है. इसी कारण रात को उनका वियोग हो जाता है क्योंकि उनको यह शाप मिला है कि वे एक दूसरे को देखते तो रहें पर आपस में न मिलें.[12]

एक अन्य किंवदन्ती पर सत्य का पर्दा डालने के लिये कल्पना की गई है कि चक्रवाक की जो 'कोंक-कोंक' की तीव्र ध्वनि है, वह चकवी की विरहपूर्ण ध्वनि है और यह कहती है—'चकवा आऊं' किन्तु शाप के कारण चकवा उत्तर देता है—'चकवी न आओ.' इस प्रकार चक्रवाक दाम्पत्य रात भर विरह में व्याकुल होकर अपना समय व्यतीत करते हैं एवं सूर्योदय की प्रतीक्षा करते हैं.

परन्तु क्या यह वास्तविकता है या कोरी कल्पना मात्र है. इसके बारे में सभी वैज्ञानिक एक मत नहीं है. ह्विलर महोदय ने अपनी पुस्तक "प.पुलरहैण्ड बुक आफ इण्डियन वर्ड्स" में लिखा है कि चकवा—चकवी दिन में एक साथ बैठे रहते हैं या खड़े रहते हैं किन्तु रात को भोजन की तलाश में इधर—उधर घूमते हैं[13] संभवतः इसी कारण 'नैशविरह' की कल्पना साहित्यकारों के मस्तिष्क में आयी.

स्टुअर्ट बेकर महोदय ने लिखा है कि रात को भोजन की खोज में चक्रवाक एक दूसरे को पुकारते हैं जिसे इस प्रकार समझा जाता है. चकवा पूछता है—'चकवी आऊं" तो चकवी कहती है—'चकवा नहीं आओ'.[14]

राओल महोदय ने अपने अनुभव के आधार पर लिखा है कि 'रात को ये

---

12 पा० हैण्ड० पृ० 525

13 यथोपरि

14 'डक्स एण्ड देयर ए—लाइज' पृ० 146

पक्षी दाना चुगने के लिए एक दूसरे से दूर हो जाते हैं एवं एक दूसरे को पुकारते हुए ज्ञात होते हैं.[15]

आर० एस० धर्मकुमारसिंह जी ने लिखा है कि रात में चकवे चिल्लाकर मगरमच्छ की सहायता करते हैं एवं उसे यह चेतावनी देते हैं कि शिकारी कहीं आसपास है.[16] अतः यह ध्वनि अचानक निकलती है जिसे साहित्यकारों ने कल्पना में ढाल दिया है.

इन सभी विचारों के आधार पर हमारे सम्मुख चार बातें आती हैं :—

१. चकवा रातिचर प्राणी है.

२. यह रात को ध्वनि करता है.

३. यह नदियों के किनारे निवास करता है.

४. यह रात्रि को ही भोजन की तलाश में निकलता है एवं दूर तक जाता है.

इन सब विचारों के आधार पर यह कहना उचित एवं सार्थक होगा कि चकवाक आंशिक रूप से रात्रि में चकवी से दूर रहता है क्योंकि उस समय वह भोजन की तलाश में होता है और फिर कहा भी तो हैं-'भूखे भजन न होइ गोपाला.' अतः पेट भरने की चिन्ता में पक्षी तो क्या मानव को भी घर-बार छोड़कर कमाना पड़ता है, विरह सहना पड़ता है. इस प्रकार चक्रवाक की सामान्य विशेषताओं पर विचार करने के पश्चात् हम इसकी काव्यगत विशेषताओं पर विचार करेंगे.

संस्कृत काव्यों में चक्रवाक

संस्कृत काव्यों में चक्रवाक के लिए चक्रः[17], चक्रावकः [18], रथांगनामा[19], कोकः[20], रथांगाह्व[21] व रथाङ्गः[22] शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

मानव एवं चक्रवाक—चक्रवाक का पालन नहीं होता किंतु फिर भी मानव ने चक्रवाक के प्रति विशेष सहानुभूति प्रकट की है एवं इसी कारण काव्यों में

---

15 'स्माल गेम शूटिंग इन बंगाल—(1899) पृ० 93

16 ब० ओ० सौ० पृ० 102

17 नैषध० 18/69

18 शाकु० 3 गद्य, ह० च० पृ० 81

19 विक्रम० 4/37, बु० च० 8/29

20 ह० च० पृ० 137

21 बु० च० पृ० 8/60

22 विक्रम० 4/37

अनेक ऐसे स्थल मिलते हैं जहां मानव एवं चक्रवाक के सम्बन्ध की स्पष्ट झलक दिखलायी देती है. तपस्या के लिए गए हुए अर्जुन द्वारा चक्रवाक की तलाश करने वाली चक्रवाकी को धीरज बंधाने की बात किरातार्जुनीयम् में कही गयी है[23] हर्ष-चरित में रक्षकपुरुष द्वारा चक्रवाक को आश्वासन देने की चर्चा है.[24] विक्रम राजा अपनी प्रिया के बारे में चक्रवाक से पूछते हैं कि उनकी प्रिया कहां गयी.[25] अभि-ज्ञानशाकुन्तल के तृतीय अंक में रात्रि की उपस्थिति होने पर चक्रवाक व चक्रवाकी के वियोग के साथ-साथ दुष्यन्त व शकुन्तला के वियोग की ओर संकेत किया गया है.[26] चौथे अंक में शकुन्तला की विदाई पर वह कमलिनी के पत्तों की ओट में छिपे चक्रवाक को न देख सकने के कारण घबराई हुई चक्रवाकी को देखकर अपनी सखियों से कहती है कि वह जिस कार्य के लिए प्रस्थान कर रही है वह पूरा होना कठिन है.[27] उस समय अनसूया उसे ढांढस बंधाती है कि चक्रवाकी सर्वदा प्रियतम से मिलने की आशा में रात बिताती है और उसे प्रातः प्रियतम मिल जाते हैं, अतः उसे ऐसा विचार नहीं करना चाहिए. शाकुन्तलम् के इस वर्णन से हमें शकुन्तला व दुष्यन्त के मिलने की बाधा के दर्शन तो होते ही हैं. साथ ही शकुन्तला व दुष्यन्त के गाढानुराग एवं काव्यकारों के पक्षी-प्रेम की झलक भी मिलती है. कादम्बरी द्वारा थके चक्रवाकों के विश्राम हेतु पुलिन बनवाये जाने का उल्लेख मिलता है.[28] साथ ही शाम को चक्रवाक व चकवी के वियोग से भीत कादम्बरी द्वारा चित्रलिखित चक्रवाक युगल को मृणालसूत्र से बांधकर वियोग को रोकने का वर्णन भी मिलता है.[29] ये उल्लेख पक्षीप्रेम व वियोगी की दशा पर प्रकाश डालते हैं. कामपीड़ा से

---

23 'स रथांगनामवनितां करुणैरनुबध्नतीमभिननन्द रुतैः'–किरात० 6/8

24 "भवनकमलिनीपालः कोकमाश्वासयन्नपरवक्त्रमुच्चैरपठत्–'विहग ! कुरु दृढं मनः स्वयं त्यज शुचमास्स्व विवेकवर्त्मनि । सह कमलसरोजिनीश्रिया श्रयति सुमेरुशिरो विरोचनः ।' ।।4।। ह० च० पृ० 276

25 रथांगनामन् वियुतो रथांगश्रोणिबिम्बया ।
अयं त्वां पृच्छति रथी मनोरथरातैर्वृतः ।। विक्रम० 4/37

26 'चक्रवाकवधुके आमन्त्रयस्व सहचरम् । उपस्थिता रजनी'–शाकु० 3 गद्य

27 'हला' प्रेक्षस्व नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारटति दुष्करं खल्वहं करोमि'–शाकु० 4 गद्य

28 'रजनी-जागरखिन्नस्य परिचितचक्रवाकमिथुनस्य स्वप्तुं क्रीडानदिकासु कमल-धूलिबालुकाभिर्बलिपुलिनानि कारयन्तीम्'–कादम्बरी० पृ० 544

29 'दिवसावसानेषु विश्लेषभीता मृणालसूत्रैश्चित्रभित्तिविलितानि चक्रवाकमिथुनानि संघट्टयति'–वही० उ० 31

व्याकुल सरस्वती चक्रवाकों के जोड़ों के विरहजन्य निःश्वास-धूम से स्पृष्ट न होने पर भी श्यामता को प्राप्त हुई.[30] ऐसा वर्णन बाण ने किया है. भवनवापी में निवास करने वाले चक्रवाकों का वर्णन भी मिलता है.[31] 'प्रियतमा वियोगी चक्रवाक मधुर तथा करुण स्वर में चिल्लाकर चन्द्रापीड को कादम्बरी के पास जाने को कहता है. 'पार्वती परस्पर क्रन्दन करने वाले चक्रवाक युगल को ढांढस बंधाती है ।' ये वर्णन भी मानव को चक्रवाक से सम्बन्धित करने में सहायक है.[32] दमयन्ती द्वारा चक्रवाक युगल की विरहावस्था देखकर दुःखी होना एवं दया प्रदर्शित करना मानव व चक्रवाक के सम्बन्धों को स्पष्ट करता है.[33]

क्रिया–कलाप—विश्वपटल पर हर जीवधारी कुछ न कुछ क्रिया अवश्य करता है. क्रिया करना जीवों की एक सामान्य विशेषता है. चक्रवाक भी अनेक क्रियायें करता है.

चक्रवाक व चक्रवाकी का विरह जगत् प्रसिद्ध है. काव्यकारों ने भी इस बात पर अधिक बल दिया है. इसी कारण चकवे व चकवी के विरह से सम्बन्धित क्रियाओं का उल्लेख बाहुल्य मिलता है. विरह होने पर व्याकुलता आती है एवं व्याकुल जीव आलाप–प्रलाप करता है. चक्रवाक व चकवी के आलाप-प्रलाप का सभी काव्यकारों ने वर्णन किया है. चकवा-चकवी का नाम पुकारता है. 'नदी के किनारों पर प्रियतम के विरह से व्याकुल होकर चकवी करुण विलाप करने लगी.' 'परस्पर अलग हुए चक्रवाक के समुदाय चीखें मारने लगे.' 'परस्पर वियोगवश चक्रवाक-दम्पत्तिगण शब्द कर रहे थे' इत्यादि वाक्य चक्रवाक गणों के करुणरुदन को प्रस्तुत करते हैं.[34] दशकुमारचरित में

---

30 'विघटमानचक्रवाकयुगलविमुष्टैरस्पृष्टानि श्यामतामाससाद विरहनिःश्वासधूमैः' —ह० च० पृ० 53

31 'भवनवापी० चक्रवाकमिथुनैः कूजितेन खेयते'–कादम्बरी० उ० पृ० 29

32 'चक्रवाकेष्वपि सहचरी विरहविधुरेषु कादम्बरीसमीपगमनोपदेशदायायेव कलक-रुणमुच्चैर्मुहुर्मुहुर्व्याहरत्सु'–कादम्बरी० उ० पृ० 40
'परस्पराक्रन्दिनी चक्रवाकयोः पुरा वियुक्ते मिथुने कृपावती'–कुमार० 5/26

33 'शोकश्चेत् कोकयोस्त्वं सुदति'—नैषध० 21/611. 'अथ रथचरणौ विलोक्य रक्तावति विरहासहताविवार्त्तैः'–वही० 21/44; सदय ! विलोक्य कोकयोर-वस्थाम्' वही० 21/145

34 'सहचरीनामग्राहं रथांगविहंगमाः'–नैषध० 19/35; शोककुलकोककामिनी-कूजितकरुणासु तरंगणीतटीषु'—ह० च० पृ० 137; समुपोढमोहनिद्रे च द्राघीयोवीचिविचलितवपुषि विरुवति विरहिनी चक्रवाकचक्रवाले'–कादम्बरी० पृ० 419; 'विरह–वाचाल–चक्रवाक-युगले तीरे' —वही० पृ० 590

चक्रवाक मिथुन के दयनीय शब्दों को सुनने की बात कही गयी है तो कुमारसम्भव में वियोगावस्था के काल में तालाब के पाट के बड़े होने का उल्लेख मिलता है.[35] कालिदास व दशकुमारचरित में भी विरह वेदना से संतप्त चक्रवाक गणों के विलाप का वर्णन किया गया है.[36] महाकवि बाणभट्ट ने एक विशेष बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है और वह यह कि उन्होंने अनिवार्य विरह वेदना से व्याकुल चक्रवाक के जोड़े के क्रन्दन को करुण और मधुर कहा है.[37] उन्होंने करुण में भी माधुर्य को पाया है. यद्यपि चक्रवाक विरह में बोलता है पर उसकी ध्वनि मधुर है. अच्छोद सरोवर, पम्पासरोवर, शिप्रानदी, यमुनानदी एवं अन्य नदियों में चक्रवाकों के कलरव की बात कही गयी है.[38]

इन सब वर्णनों से हमारे संमुख तीन बातें आती हैं :—

१. चकवा व चकवी दोनों विरह में आलाप-प्रलाप करते हैं.

२. इनकी ध्वनि करुण एवं मधुर होती है.

३. चक्रवाक नदी व तालाबों के किनारे रहते हैं.

चक्रवाक-दम्पत्ति के वियोग का कारण बतलाते हुए कादम्बरीकार ने चकवा-चकवी को राम के शाप से ग्रस्त बतलाया है तो नैषधीय चरित के प्रणेता ने ब्रह्मा की इच्छा बतलाया है.[39] नदियों की लहरों का तैरते हुए चक्रवाक पक्षी के तैरने से दो

---

35 'करुणं चकूवाकमिथुनरवमभ्यृणवम्'–द० च० पृ० 213; 'चकूवाकयोररपमन्तरमनल्पतां गतम्'—कुमार० 8/32

36 'विरह-वाचाल-चकूवाक-युगले–तीरे'—कादम्बरी० पृ० 590; 'चकूवाकरव-व्याकुल'—द० च० पृ० 100

37 'अनिवार्यविरहवेदनोन्मथ्यमानमानसाकुलेषु कलकरुणमुच्च व्याहरत्सु चकूवाकयुगलेषु'—कादम्बरी० उ० पृ० 15

38 'विरुवति विरहिणी चकूवाक चकूवाले'—वही० पृ० 519; 'अत्राविमुक्तानि रथांगनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि' - रघु० 3/3; 'कलक्वणितकलहंसचकूवाकचकूवालाकृान्तसरससुकुमारसैकतानि शिप्रातटान्यनुसरन्नातिदूरमिव चरणाभ्यामेव बभ्राम'—कादम्बरी० उ० पृ० 19; 'चकूवाक मिथुनाभिनन्दिताः सरितः' – ह० च० पृ० 81; 'पश्यन्यमुनां चकूवाकिनीम्'—रघु 15/20 'महापुरुषमिव प्रकट–मीन-मकर-कूर्म्म-चकूलक्षणम् — कादम्बरी० पृ० 375

39 'मूर्त्तिमदामशापग्रस्तानीव मध्यचारिणामालयोवयन्ते चक्रवाकनाम्नां पक्षिणां मिथुनानि ।' कादम्बरी० पृ० 71; 'कालोऽयं विधिना रथांगमिथुनं विच्छेत्तुमन्विच्छता ।' — नैषध० 21/148

भागों में विभक्त हो जाने, रात को चकवा-चकवी के जोड़े के अलग होने, प्रातःकाल में चक्रवाकी के एक किनारे से दूसरे किनारे पर आने एवं उज्जयिनी में कामिनियों के आभूषण के प्रकाश से अन्धकार नहीं होने के कारण चक्रवाक दम्पति के वियुक्त न होने के वर्णन चक्रवाक की अनेक क्रियाओं पर प्रकाश डालते हैं.[40] महाकवि कालिदास ने रघुवंश में अज-विलाप का उल्लेख करते समय 'देखो ! चन्द्रमा को रात्रि फिर मिल जाती है, चकवे-चकवी भी प्रातः मिल जाते हैं.' इस वाक्य में प्रातःकाल चकवा चकवी के मिलने की बात कही है जो वैज्ञानिक सत्य है.[41] सूर्य व चक्रवाक के सम्बन्ध को भी काव्यकारों ने प्रस्तुत किया है. शाम को सूर्य द्वारा पृथ्वी को छोड़कर चक्रवाक पक्षियों के हृदय में समावेश करने का वर्णन भारवि ने किया है.[42] सन्ध्याकाल में ही विरह से पीड़ित चकवी के कारण दुःखी होते हुए चकवे के द्वारा विकसित बन्धूक के समान अरुण वर्ण वाले बन्धू की भांति सूर्य में अपनी डबडबाई आंखों के लगाने का उल्लेख हर्षचरित में किया गया है.[43] सुबन्धु ने चक्रवाक पक्षियों के हृदय में दुःख स्थापित करने के कारण शाम के समय सूर्य तेज हीन बतलाया है.[44] निस्सन्देह सुबन्धु को पक्षियों के प्रति सहानुभूति प्रतीत होती है तभी तो उन्होंने पक्षियों को दुःखी करने वाले सूर्य को तेजहीन कहा है.

जलक्रीडारत अप्सराओं द्वारा चकवे को दूसरे किनारे पर भगाने की बात कही गयी है.[45] प्रातःकालीन वायु द्वारा चकवे के शब्द को फैलाने का उल्लेख है.[46] अतः चकवा रात को ही नहीं दिन को भी आवाज करता है वह बात सिद्ध होती है.

---

40 'तरच्चंक्रवाकसीमन्त्यमानस्रोतसः ।' ह० च० पृ० 226. 'चक्रवाक मिथुनं विडम्बयते ।'—कुमार० 8/61; 'सरिदपरतटान्तागता चक्रवाकी ।'—शिशु० 11/26; 'यस्याञ्चानुपजात–तिमिरत्वादविघटित-चक्रवाक मिथुना ।
—कादम्बरी० पृ० 164

41 'शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्त्रिणम् ।' —रघु० 8/56

42 'चक्रवाकहृदयान्यभितापः।' —किरात० 9/4

43 'सविधविरहव्याधिविधुरवधूबाध्यमानं बबन्ध बन्धाविव, विबुद्धबन्धूकभासि भास्वति सास्रां दृशं चक्रवाकचक्रवालम् । — ह० च० पृ० 314

44 'चक्रवाकहृदयसंक्रामित सन्तापतयेव मन्दिमानमुद्वहन् ।'
— वासवदत्ता–पृ० 150

45 'तीरान्तराणि मिथुनानि रथांगनामा नीत्वा विलोलिसरोजवनश्रियस्ताः ।'
—किरात० 8/56

46 'दूरप्रसारितकोकप्रियमारुते वहति ।' —वासवदत्ता० पृ० 39

नीलोत्पल वन के कारण चक्रवाक को अन्धकार का भ्रम होने का वर्णन है.[47] यह वर्णन चक्रवाक के अज्ञान पर प्रकाश डालते हैं.

चक्रवाक के भोजन विषयक उल्लेख भी काव्यों में मिलते हैं. 'चकवा आधी कुतरी हुयी नाल लेकर चकवी को भेंट करने लगा.' 'चक्रवाक जोड़े परस्पर मृणाल का आदान-प्रदान कर रहे थे.' 'कमलिनीके ! चक्रवाक शावकों को मृणाल एवं क्षीररस देओ.'—ये वाक्य इस बात को स्पष्ट करते हैं कि चक्रवाक को कमलनाल प्रिय है.[48]

चक्रवाकों के प्रेम व्यापार पर भी काव्यकारों ने ध्यान दिया है. बुद्धचरितकार स्त्रियों के महात्म्य को बताते हुए, चक्रवाक द्वारा चकवी के पीछे-पीछे जाने की बात कही है. वे लिखते हैं कि 'वह आज्ञाकारी चक्रवाक जल में अपनी पत्नी के पीछे-पीछे सेवक के समान जा रहा है.[49] नैषधकार ने चकवा-चकवी के प्रेम को देखकर केवल उनको ही कामशास्त्र के रहस्य का ज्ञाता कहा है तो माघ ने चकवे द्वारा चकवी को चूमने की बात कही है.[50] दमयन्ती के चकवीप्रेम से मग्न होने की चर्चा भी चक्रवाक के प्रेम-व्यापार पर प्रकाश डालती है.[51]

उपमित चक्रवाक—चक्रवाक की विभिन्न क्रियाओं को काव्यकारों ने यत्र-तत्र-सर्वत्र उपमित किया है. सपत्नीक नन्द एवं सपत्नीक दिलीप को चक्रवाक युगल से उपमित कर कवियों ने उनके गाढ़ानुराग का परिचय दिया है.[52] विलासवती एवं

---

47 'विकचनीलोत्पलकाननदर्शिताकाण्ड चक्रवाकतिमिरशङ्काभिः ।'
—वासवदत्ता पृ० 194

48 'अर्द्धोपभुक्तेन विशेषजायां संभावयामास-रथांगनामा ।'—कुमार० 3/37; 'घटमानचंचुच्युतमृणालकोटिभिरासन्नकमलिनीचक्रवाकमिथुनैः ।'—ह.च.पृ 385. 'ग्रासीकृत-सामान्यमृणाललता-विवरसंक्रामितानीव परस्परहृदयान्यादाय विघटमानेषु रथांगनाम्नां युगलेषु ।' कादम्बरी० 449, 'कमलिनिके' ! प्रयच्छ चक्रवाकशावकेभ्यो मृणालक्षीररसम् । —वही० पृ० 533

49 'दृश्यतां स्त्रीषु माहात्म्यं चक्रवाको ह्यसौ जले ।
पृष्ठतः प्रेष्यवद्भार्यामनुवर्त्यनुगच्छति ।।' —बु० च० 4/50

50 'जगति मिथुने चक्रावेव स्मरागमयारगौ ।' नैषध० 19/34,
'मुग्धायाः स्मरललितेषु चक्रवाक्या निःशंकदयिततमेन चुम्बितायाः ।'
—शिशु० 8/13

51 'निजपरिवृढं गाढप्रेमा रथांगविहङ्गभी ।
स्मरशरपराधीनस्वान्ता वृषस्यति सम्प्रति ।' —नैषध० 17/17

52 'रथांगनाम्नोरिव भावबन्धनम् ।' रघु० 3/24; 'स चक्रवाक्येव हि चक्रवाकस्तया समेतः प्रियया प्रियार्द्धः ।' —सौ० नं० 4/2

अन्य युवतियों के स्तन युगल को चक्रवाक युगल के सदृश बताया गया है.[53] युवतियों के स्तन पास-पास रहते हैं एवं चक्रवाकों का जोड़ा भी पास-पास रहता है. अतः उपमा उचित है. यक्षिणी का अपने साथी से बिछड़ी हुई चक्रवाकी से साम्य बतलाया है.[54] काषाय वस्त्रधारण किए हुए नन्द व सुगत को सुनहरे रंग वाले चक्रवाक युगल से उपमित किया है.[55] यहां रंग के आधार पर तो उपमा ठीक बैठती है किन्तु सुगत व नन्द दोनों नर हैं, अतः एक के नारी न होने के अभाव में उपमा सुन्दर नहीं बन पड़ी है. महाकवि कालिदास ने धारिणी को रात से उपमित करते हुए मालविका एवं अग्निमित्र को चक्रवाक युगल से उपमित किया है[56] रात की उपस्थिति में चक्रवाक युगल का मिलना संभव नहीं, ठीक उसी प्रकार महारानी धारिणी की उपस्थिति में मालविका व अग्निमित्र का मिलना संभव नहीं. अतः महाकवि की यह उपमा बिल्कुल ठीक है, सार्थक है. पुताई किए हुए भवन की दीवार पर थूके गये पान से निर्मित चिह्न को चक्रवाक युगल के समान बतलाया है.[57] यहां तो केवल कल्पना मात्र ही प्रतीत होती है, वर्णन में औचित्य ज्ञात नहीं होता. अश्वघोष ने बुद्ध के बारे में कहा है कि जिस प्रकार चक्रवाक किसी अन्य चक्रवाकी को नहीं चाहता, वैसे ही बुद्ध किसी अन्य स्त्री के अनुरागी नहीं हो सकते.[58] गंगा के किनारे बालू पर तपस्यारत पार्वती को चक्रवाकी के समान बताया है.[59] वास्तव में चकवी नदी के किनारे ही बैठी रहती है अतः उपमा उचित है. शिव पार्वती से पूछते हैं कि क्या वे चकवे के समान सच्चे प्रेमी

---

53 नीलोत्पलयोरिव चक्रवाकयोः।'—कादम्बरी० पृ० 214; 'पूर्णकुम्भौ चक्रवाकानुकारो पयोधरो।' ह० च० पृ० 8, 'हारलतामृणाललोभनीयचक्रवाकाभ्याम्।' —वासवदत्ता० पृ० 43. 'कर्पूरक्षोदमुष्टिच्छुरणपांशुलेनेव कान्तोच्चकुच-चक्रवाकयुगलविपुलपुलिनेनोरः स्थलेन स्थूलभुजायाम् पुञ्जितम्।' ह० च० पृ० 40; 'द्वन्द्वचराः स्तनानाम्' —रघु० 16/63

54 'दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।' —मेघ० 2/23

55 'सरः प्रकीर्णाविव चक्रवाकौ।' —सौ० नं० 10/4

56 'अहं रथांगनामेव प्रिया सहचरीव मे अननुज्ञातसंपर्काधारिणी रजनीव नौ॥'० —मालविका० 5/9

57 'तद्रसेन सुधाभित्तौ चक्रवाकमिथुनं निरष्ठीवम्।' —द० च० पृ० 243

58 'न स त्वदन्यां प्रमदामवैति स चक्रवाक्या इव चक्रवाकः।' —सौ० नं० 6/22

59 'सा चक्रवाकांकित सैकतायास्त्रिस्रोतसः कान्तिमतीत्य तस्थौ।' —कुमार० 7/15

नहीं है.[60] यहाँ भी शिव व पार्वती को चक्रवाक-युगल के समान बतलाने का प्रयास किया गया है. कादम्बरी की विरहावस्था को बतलाते हुए उसे चक्रवाकी की तरह मनोरथों से बिछुड़ने वाली कहा है एवं रात्रि के जागरण को चकवी के विरह से उपमित किया है.[61] दुःखी यशोधरा के विलाप को बाज के द्वारा घायल चक्रवाकी के विलाप से उपमित किया गया है एवं उसमें धरती पर गिरने को चकवे से वियुक्त चकवी से. दुःखरूपी सागर में व्रतों को तालाब के चक्रवाकों से उपमित किया है. चक्रवाकों के हृदयानुराग को प्रातःकालीन सूर्य के अनुराग (अरुणवर्ण) से उपमित किया गया है. इस प्रकार चक्रवास की विभिन्न क्रियाओं को काव्यकारों ने उपमित किया है.

सम्पूर्ण काव्यों में चक्रवाक का वर्णन कुल ८५ बार आया है. महाकवि बाण ने चक्रवाक का वर्णन ३४ बार किया है. द्वितीय-स्थान महाकवि कालिदास का है जिन्होंने १७ बार चक्रवाक का उल्लेख किया है. श्री हर्ष, अश्वघोष, सुबन्धु, दण्डी, भारवि एवं माघ ने चक्रवाक का वर्णन क्रमशः ११,६,५,४,३ व २ बार किया है. चक्रवाक के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में दर्शनीय है.



60 'चक्रवाकसमवृत्तिमात्मनः ।' —कुमार० 8/51

60 'चक्रवाकमया इव विघटन्ते मनोरथाः ।' —कादम्बरी० उ० पृ०

60 'चक्राह्वरण्य इव निशया सहापतति प्रजागरत्रासः । —वही० पृ० 31

61 'सा चक्रवाकीय भृशं चुकूज श्येनाग्रपक्ष-क्षतचक्रवाका'—सौ० नं० 6/30

'ततो धरायामपतद् यशोधरा विचक्रवाकेव रथांगसाह्वया । बु० च० 8/66

तालिका—१

'चक्रवाक' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (१७)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
५	रघु०	३।२४. ८।३०. १३।३१. १५।३०२. १६।६३.
६	कुमार०	३।३७. ५।२६. ७।१५. ८।३२. ३७, ५१.
१	मेघ०	२।२३.
२	शाकु०	३ गद्य व ४ गद्य.
१	मालविका०	५।६.
२	विक्रम०	४।३७. व ७१.

तालिका—२

'चक्रवाक' के वर्णन का कालिदासोतर काव्यों में विश्लेषण (६६)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्व-	५	बु० च०	१।७१. ४।५० ८।२६. ६० व १३।१३.
घोष	४	सौ० न०	४।२. ६।२२. ३० व १०।४.
भारवि	३	किरात०	६।८. ८।५६ व ६।४.
माघ	३	शिशु०	८।१३ व ११।२६, ६४.
श्रीहर्ष	११	नैषध०	१।१११. १७।१७. १८।६६. १६।१७, ३४, ३५, ६१।४३, ४४, ४५, ४८, १६१.
सुबन्धु	५	बासवदत्ता	पृ० ३६. ४३, १५०, १६४ व २२६.
बाण-भट्ट	११	ह० च०	पृ० ४०, ५३, ८१, १३७, ६६, २२६ ७६, ७६, ३१४ ८५ व ६१.
	२३	कादम्बरी	पृ० ७१, ८२, १६४, ६६, २१४, ५३, ३७५, ४१६, ४६, ८२, ५१६, २३, ३३, ४४, ६०, ६०. उ० १५, १६, २६, २६, ३०, ३१, ४०.
दण्डी	४	द० च०	पृ० ८, १००, २४३, ७६.

बलाका
THE BALAKA

'सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भन्वतं बलाका।'
—मेघ० १/१०

सम्पूर्ण-संस्कृत साहित्य में बलाका का स्थान सर्वथा गौण रहा है. वैदिक साहित्य में बलाका शब्द का उल्लेख मिलता है.[1] बाल्मीकि रामायण में भी बलाका के उल्लेख उपलब्ध हैं.[2] अतः बलाका का वर्णन प्राचीन है, अर्वाचीन नहीं. अमर-कोष में बलाका के दो नामों बलाका एवं विसकण्ठिका का प्रयोग मिलता है.[3] वैज्ञानिकों की दृष्टि में बलाका मेरु-दण्डीय उपजगत् के पक्षि श्रेणी के अन्तर्गत महाबक वर्ग (आर्डर सिरकानिफोरस) के महाबक उपवर्ग के बक परिवार का सदस्य है.[4]

बलाका एक विशालकाय पक्षी है. इसकी ऊंचाई २.५ फीट तक होती है. बलाका अनेक रंगों के संयोग से पूर्ण पक्षी है. इसका सिर, गर्दन नीचे का कुछ हिस्सा एवं कन्धे सामान्यतः धवल वर्ण के होते हैं. इसके सिर के बाल काले होते हैं. इसकी चोंच बड़ी तीखी एवं आंख के पास तक फैली सी प्रतीत होती है.[5] चोंच का रंग गंदला पीला होता है. मादा के रूप रंग में कोई विशेष अन्तर नहीं होता.

बलाका समुदाय में उड़ने वाला पक्षी है. यह उड़ते समय अपनी दोनों टाँगों को पीछे की ओर सीधा कर पंख फैलाकर अपने सिर को दोनों कन्धों के मध्य करके उड़ता है.[6] बलाका एवं बगुला दो ऐसे पक्षी हैं जिनको अनेक विद्वानों ने एक

---

1 तै० स० 5/5/16/1 मै० स० 3/14/3/14 वा० सं० 24
2 'दृष्टा बलाका घनमभ्युपैति'—वा० रा० कि० 28/25
3 'बलाका विसकण्ठिका'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)
4 'जीवजगत्' पृ० 325
5 इन० वर्ड० भाग-8 पृ० 200
6 इन० वर्ड० भाग-8 पृ० 200

ही मान लिया है.[7] परन्तु वास्तव में ये दोनों एक ही परिवार के दो भिन्न-भिन्न पक्षी है. इस संदर्भ में कतिपय प्रमाणों को प्रस्तुत करना उचित होगा.

१. अमरकोष में 'बलाकाविसकण्ठिका एवं 'अथ बकः कह्वः' कहकर दो अलग-अलग पक्षियों के नाम दिये गये हैं. अतः बक व बलाका एक नहीं मालूम होते.[8]

२. मनुस्मृति में भी बक और बलाका का पृथक् परिगणन किया गया है. अतः इन दोनों को एक नहीं माना जा सकता.

३. बक एक धूर्त पक्षी है एवं यह जल के मध्य एक टांग पर खड़ा रहता है. यह मछलियों को खाता है; किन्तु बलाका आकाश में उड़ने वाला सीधा-सादा पक्षी है.

४. बक दिन में अकेला रहता है एवं रात को समुदाय में आराम करता है किन्तु बलाका सर्वदा समुदाय में उड़ती देखी गई है.

५. महाकवि हाल ने गाथा सप्तशती के प्रथम शतक के चतुर्थ श्लोक में 'पश्य निश्चलनिष्पंद बिसिनी पत्रे राजते बलाका' कहा है. इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि बलाका कोई छोटा पक्षी है जो कमल पर बैठ सकता है, किन्तु बक बड़ा पक्षी होता है, एवं वह कमल पर नहीं बैठ सकता. **अतः यह स्पष्ट है कि बक व बलाका दो भिन्न-भिन्न पक्षी हैं एक नहीं.**

संस्कृत काव्यों में बलाका—संस्कृत काव्यों में बलाका के लिए केवल बलाका शब्द का ही प्रयोग देखा गया है.[9]

मानव एवं बलाका—मानव एवं बलाका का सामान्यतः साथ नहीं है. फिर भी मानव ने यदा-कदा बलाका के प्रति रुचि प्रदर्शित की है. कादम्बरी में स्फटिक निर्मित क्रमबद्ध बलाकाओं के मुख से निकलने वाली जलधारा का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि मानव ने बलाका की श्रेणी बद्धता एवं धवलता की ओर अपना ध्यान लगाया है.[10] महाकवि कालिदास ने मेघदूत के पूर्वार्द्ध में मेघ के साथ बलाकाओं के उड़ने की बात कहकर यात्रा के शुभ लक्षण के रूप में स्वीकार किया है.[11]

---

7 आप्टे 'ए० क्रेन'०, मोनियर विलियम्स०–'ए काईंड ऑफ क्रेन ऑर हेरन', कोलबुक–'ए स्माल क्रेन'

8 'बकश्चैव बलाकाश्च'–मनुस्मृति 5/14

9 'ऋतु० 3/12, मेघ 1/10

10 'क्वचित् स्फटिक० कादम्बरी० पृ० 613

11 'सेविष्यन्ते नयन सुभगं खे भवन्तं बलाका'—मेघ० पू० 1/10

कार्य-कलाप—हर जीव की कोई न कोई विशेष क्रिया हुआ करती है. बलाका की उड़ान के विशेष उल्लेख मिलते हैं. बलाकाओं द्वारा पंक्ति बांधकर उड़ने की बात महाकवि कालिदास ने की है. वर्षा काल में बलाकायें श्रेणी बांधकर उड़ती हैं एवं यह उनके गर्भाधान का काल माना जाता है.[12] कतिपय विद्वान् 'गर्भाधानक्षणपरिचयन्नुनमाबद्धमाला' का अर्थ 'गर्भ का आधान' नामक उत्सव विशेष से लेते हैं. अन्य विद्वान् इसे गर्भग्रहण करने का अवसर मानते हैं.[13] अधिकतर विचारकों के मत में वर्षाकाल को बलाकाओं का गर्भाधान काल ही स्वीकार किया गया है.[14] कालिदास ने ही वर्षाकाल में उड़ती हुई बलाकाओं की एक-एक करके गिनती करने वाले सिद्धों की बात कही गई है एवं बलाकाओं के पंक्तिबद्ध होकर उड़ने की बात को पुनः दोहराया है.[15] बलाकाओं का यह उड़ना वर्षाकाल में ही देखा गया है. इसका प्रमाण कालिदास द्वारा दिये गये शरद्ऋतु के वर्णन है जहां इस ऋतु में बलाकाओं द्वारा पंखों की वायु से आकाश को प्रकम्पित न करने का उल्लेख किया गया है.[16] इन वर्णनों के अध्ययन से हमारे सम्मुख निम्न तीन बातें आती हैं—

(१) बलाकाओं का गर्भाधान काल वर्षा ऋतु है.

(२) बलाकायें वर्षाऋतु में श्रेणीबद्ध होकर आकाश में विचरण करती रहती हैं.

(३) शीतकाल मे बलाकायें आकाश में नहीं उड़ती.

उपमित-बलाका—उमा-शंकर के विवाह में कालिदास ने सात माताओं का वर्णन प्रस्तुत करते समय स्वच्छ खप्परों से शरीर को अलंकृत करके चमकने वाली काली मां को बलाकाओं से युक्त काली मेघघटा से उपमित किया है.[17] यहां बलाकाओं की धवलता को खप्परों की उज्जवलता से एवं मेघ की श्यामलता को काली माता के कृष्णवर्ण से उपमित किया गया है. ठीक इसी उपमा से साम्य रखती हुई उपमा रघुवंश में ताड़का वध के प्रसंग में दी गई है. वहां कहा गया है

---

12 मेघ० पू० 1/10

13 गर्भस्याधानं तदैव क्षण: उत्सव: तस्मिन् परिचयात्'–मेघदूत टीका-मल्लिनाथ 'गर्भाधाने गर्भग्रहणावसरे क्षणं क्षणमात्र परिचय: संगमत्तानाम्'–क्षुमतिविजय

14 का० के पक्षी—पृ० 106–107

15 श्रेणीभूत० मेघ० पृ० 23

16 नभो बलाका० ऋतु० 3/12

17 ता सा० च० कुमार० 7/39

कि कानों में मनुष्य की खोपड़ियों के कुण्डलों को दोलायमान करती हुई वह काली ताड़का भगवान राम के सम्मुख इसी प्रकार उपस्थित हुई जिस प्रकार बलाकाओं की पंक्ति से पूर्ण कोई श्यामवर्ण मेघ घटा.[18] वासवदत्ता में मेघों के नीचे के भाग में उड़ती हुई बलाका पंक्ति को शंखों से उपमित करते हुए लिखा है कि तीव्र प्यास के आवेग से नीरधि जल पीने के समय मेघ ने पानी के अन्तःस्थित शंखों का पान कर लिया हो एवं अब वमन कर उन्हीं को बगुलियों के रूप में बाहर नि‹ाल रहा हो.[19] बलाकाओं की धवलता एवं शंखों की उज्जवलता में जो समता यहां प्रदर्शित की गई है, यह उचित है. शंख व बलाकाओं दोनों का जल में निवास भी यहां प्रदर्शित किया गया है.

सम्पूर्ण काव्यों में बलाका का कुल १६ बार वर्णन आया है. महाकवि कालिदास ने बलाका का ६ बार उल्लेख किया है. कालिदासोत्तर काव्यों में सुबन्धु व बाणभट्ट ने २ व एक बार बलाका का वर्णन किया गया है. बलाका के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिका-द्वय में देखा जा सकता है.

18 'ताडकाचलकपालकुण्डला कालिकेय निबिडा बलाकिनी'—रघु० 11/15
19 'अति तृष्णावेगपीत जलनिधि जलशंखमालां बलाकाच्छलाद्'० वासवदत्ता पृ.247

तालिका—१

'बलाका' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (6)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	रघु.	११।१५
१	कुमार.	७।३६
३	मेघ.	१।१०. १०. २३
१	ऋतु.	३।१२

तालिका—२

'बलाका' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों नें विश्लेषण (3)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
सुबन्धु	२	वासवदत्ता.	पृ. २४७. ४२०
बाणभट्ट	१	कादम्बरी.	पृ. ६१३

बक
THE HERON

'आस्थाननलिनी बकैः'

कादम्बरी० पृ० ३३१

विशाल संस्कृत-साहित्य में बक का स्थान वर्णन की दृष्टि में गौण है. अमर-कोष में बक के लिए बकः एवं कह्व नामों का उल्लेख है.[1] वैज्ञानिकों की दृष्टि में बक मेरु-दण्डीय उपजगत् के पक्षिश्रेणी के अन्तर्गत महाबक वर्ग का सदस्य है.[2] बक भी यूरोप, एशिया व अफ्रीका महाद्वीपों में सर्वत्र पाया जाता है.[3]

बगुले की अनेकानेक किस्में विश्व-पटल पर विद्यमान है जिनमें निम्न-लिखित प्रमुख हैं—१. आञ्जल. २. कछरिया. ३. गाय. ४. बगली.

बगुले का सर्वप्रिय भोजन मछली है, जिसकी तलाश में वह अडिग एक टांग पर खड़ा होकर ध्यान लगाता है. इसकी इस क्रिया के कारण ही पाखण्डी धार्मिक लोगों को 'बगुला-भगत' की उपाधि प्राप्त हो गई है. जिस प्रकार 'काक-चेष्टा' जगत् प्रसिद्ध है, वैसे ही 'बकःध्यानम्' भी ख्याति प्राप्त कर गया है. मछली के अतिरिक्त बक मेंढ़क, घोंघे, केंचुयें व जल से छोटे-बड़े सभी कीड़े बक की भोजन-तालिका में हैं.

बगुले पेड़ पर घोंसला बनाकर रहते हैं. ये शिकार के समय अलग-अलग रहते हैं. किन्तु रात को इन्हें एक ही वृक्ष पर समुदाय के रूप में देखा गया है.[4] इनकी ध्वनि 'कोंक-कोंक' होती है जो बड़ी कर्कश होती है. जिस वृक्ष पर बगुला निवास होता है वह जल्दी ही नष्ट हो जाता है. बगुले का घोंसला पेड़ों की टह-नियों और घास-फूस का बना होता है. मादा एक बार में ६ तक अण्डे देती है.

---

1 'अथ बकः कह्व':—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

2 जीवजगत्० पृ० 325

3 भारत के पक्षी० पृ० 210

4 इन० वर्ल्ड० भा० 8 पृ० 200

संस्कृत काव्यों में बक

संस्कृत काव्यों में बगुले के लिए बकः शब्द का प्रयोग हुआ है.[5]

कार्य-कलाप—शिशुपालवध में माघ ने कमलों व स्त्रियों के मुख में भेद बतलाते हुए बकों को कमलों के सम्पर्क में रहने वाला बतलाया है.[6] तात्पर्य यह है कि बगुले पानी में कमलों के पास निवास करते हैं.

उपमित-बक—नैषधीयचरितम् में चन्द्रमा को शंकर के मस्तक पर निवास करने वाली गगा के तट पर स्थित वन में बेंतों के खेत में रहने वाला बगुला कहा है.[7] यहां बक की श्वेतता एवं चन्द्रमा की धवलता में साम्य प्रदर्शित किया गया हैं. राजाओं को सभारूपी कमलिनी के बगुले कहा है.[8] राजाओं को बगुले कहना उनके अज्ञान व दुष्टत्व का प्रतीक है, क्योंकि संस्कृत-साहित्य में 'न शोभते सभा मध्ये हंसमध्ये बको यथा'—कहकर असंस्कृत व्यक्तियों के प्रति विचार प्रदर्शित किये हैं. दशकुमारचरित में धूर्त मंत्रियों को बगुला कहते हुए लिखा है कि वे मंत्री रूपी बगुले आपके पास से चोरी द्वारा प्राप्त धन को वेश्याओं के निवासों में भरते हुए आनन्द लूटते हैं.[9] वास्तव में बक भी धूर्ततापूर्ण ढंग से बेचारी भोली-भाली मछलियों का अपहरण करता है. अतः विचार साम्य है.

इस प्रकार सम्पूर्ण कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में बकः का कुल ४ बार वर्णन आया है. कालिदास के काव्यों में बक का उल्लेख नहीं. कालिदासोत्तर काव्यों में माघ, श्रीहर्ष, बाण व दण्डी ने बक का एक-एक बार वर्णन किया है. बक के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में देखा जा सकता है.

— — —

5 कादम्बरी० पृ० 331, नैषध० 22/138

6 कश्चिद् बिब्बोकैर्बक०–शिशु० 8/29

7 नैषध० 22/138

8 'आस्थाननलिनी बकैः'– कादम्बरी० पृ० 331

9 'तैरप्यैभिर्मन्त्रिबकै'—द० च० पृ० 17

तालिका–१

'बक' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (X)

तालिका–२

'बक' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (4)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
माघ	१	शिशु.	८।२६
श्रीहर्ष	१	नैषध.	२२।१३८
बाणभट्ट	१	कादम्बरी.	पृ. ३३१
दण्डी	१	द. च.	पृ. ८।१७

———

क्रौंच
THE COMMON CRANE

'मनोहरक्रौंचनिनदितानि ।'

—ऋतु० ४/८

संस्कृत-साहित्य में कौञ्च का वर्णन अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है. वैदिक साहित्य में क्रौञ्च को क्रुञ्च, क्रुज्च व क्रौञ्ज कहा गया है.[1] बाल्मीकि रामायण का क्रौञ्च का वर्णन तो सुविख्यात है.[2] अमरकोष में क्रौञ्च के क्रुङ् व क्रौञ्च दो नाम मिलते हैं.[3]

क्रौञ्च वैज्ञानिकों के अनुसार मेरु-दण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत पक्षी श्रेणी के क्रौञ्ज वर्ग के क्रौञ्च परिवार का सदस्य है.[4] परन्तु क्रौञ्च कौनसा पक्षी है, इस विषय में सभी विचारक एक मत नहीं. आधुनिक कोषकारों में मोनियर विलियम्स ने क्रौञ्च का अर्थ 'कुरलेव' तथा 'हेरन' (Heron) कहा है.[5] मैक्डानल व कीथ ने इसे 'स्नाइप' (Snipe) कहा है.[6] आप्टे ने भी इसे 'कुरलेव' या 'हेरन' ही माना है.[7] अतः इन सब के अनुसार क्रौञ्च, कुरलेव, स्पाइप या हेरन एक ही पक्षी हैं. कुरलेव को सामान्य भाषा में 'गुलिन्दा' कहा है जो टिटहरी-परिवार का सदस्य है.[8] यह समुद्र तट पर रहने वाला पक्षी है जो दल-दल में

---

1 मै० सं० 3/11/6, वा० सं० 19/73, तै० सं० 2/6/2/1

2 'यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्'—वा० रा० 2/15

3 'क्रुङ् क्रौञ्च'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

4 जीवजगत् पृ० 398

5 A Sanskrit English Dictionary 1959 P, 323

6 वै० इ० भाग–1 पृ० 198–199

7 सं० इ० डि० आप्टे पृ० 169

8 जीवजगत् पृ० 421

खड़ा होकर कीडे-मकोड़ों को खाता रहता है. क्रौञ्च का जो साहित्यिक वर्णन प्रस्तुत काव्यों में मिलता है वह गुलिन्दा की विशेषताओं से बिल्कुल भिन्न है. **अतः इसे गुलिन्दा मानना न्याय संगत प्रतीत नहीं होता. क्रौञ्च 'कॉमन क्रेन' ही प्रतीत होता है, जो राजस्थानी कूंझ' (कुरजां) गुजराती 'कुञ्ज' व पंजाबी 'कूंज' का शुद्ध रूप है. अतः कूंज को ही क्रौञ्च माना गया है.**[9]

क्रौञ्च लगभग एक मीटर लम्बा पक्षी होता है. इसके शरीर का रंग सलेटी होता है एवं इसके नीचे का भाग कलछौंह राखी होता है. इसके पंख कुछ काले से और गर्दन के नीचे का भाग गन्दा लाल होता है. इसकी चोंच कलछौंह व हरे रंग की होती है. इसके पैर काले रंग के होते हैं. इसका आकार करकरा से साम्य रखने के कारण यदा-कदा विवाद का विषय बनता है.

क्रौञ्च का निवास स्थाई नहीं. वैसे पाकिस्तान, अफगानिस्तान उत्तरी यूरोप व चीन में क्रौञ्च देखे गये हैं. भारत में यह थोड़े समय के लिये आता है एवं पुनः प्रस्थान कर जाता है. क्रौञ्च जलाशयों के निकट रहना पसंद करता है. समुदाय बनाकर उड़ना इसे अधिक प्रिय है. ये एक सीधी पंक्ति बांधकर उड़ते हैं. एवं देखने में अभिराम लगते हैं. इसकी आवाज सारस की भांति कर्कश होती है जिसे बड़ी सरलता से पहिचाना जा सकता है. क्रौञ्च प्रातः एवं सायं खेतों में समुदाय के रूप में चरते हैं. जिस खेत में कौञ्च चरने लगते हैं वह खेत तो बरबाद हो जाता है. यह हरी घास को बड़े चाव से खाते हैं. इसके अतिरिक्त इसकी भोजन तालिका में घोंघे, मछलियां व कीड़े मकोड़े हैं. क्रौञ्च के एक समुदाय में २०० से ३०० सदस्य होते हैं. इसकी मादा किसी दलदल वाले प्रदेश के निकट सूखी टहनियों के बीच दो अण्डे देती है. अण्डों का रंग, हरछौंह भूरा होता है.

राजस्थानी लोकगीतों में क्रौञ्च का वर्णन प्राप्त होता है. एक युवती द्वारा क्रौञ्च के पंख मांगकर प्रियतम के पास जाने एवं बाद में पंख वापस कर देने की बात कही गई है. एक अन्य गीत में अपने प्रियतम के आने की प्रतीक्षा में पुनः-पुनः मार्ग देखने से एक नायिका की गर्दन के लम्बे हो जाने का उल्लेख भी मिलता है.

संस्कृत काव्यों में क्रौञ्च

संस्कृत-काव्यों में क्रौञ्च का वर्णन अत्यन्त विरल है. महाकवि कालिदास ने अपनी रचना ऋतुसंहार में तीन बार क्रौञ्च का वर्णन किया है. हेमन्त ऋतु

---

9 **'वैसे इसका शुद्ध संस्कृत नाम क्रौञ्च है जो हमारे यहां सारस की जाति के प्रसिद्ध पक्षी हैं.'—जीवजगत् पृ०** 398

का उल्लेख करते हुये क्रौञ्च की ध्वनि का उल्लेख किया है.[10] कालिदास के इन वर्णनों से क्रौञ्च का धान के खेतों में रहना सिद्ध होता है. महाकवि बाण ने कार्तिकेय के चरित में सुनाई देने वाले क्रौञ्च दैत्य–पत्नियों के विलाप की तुलना अच्छोद सरोवर में ध्वनि करने वाले पक्षियों से की गई है.[11] इस वर्णन से क्रौञ्च पक्षियों का जल के पास रहना सिद्ध होता है.

धनुष की टंकार की समता क्रौञ्च की ध्वनि से करते हुए माघ ने लिखा है कि शरद्ऋतु में मदोन्मत्त बहुत से क्रौञ्च पक्षियों के कलरव के समान धनुष उच्च ध्वनि से टङ्कार करने लगा. इन सभी वर्णनों से हमारे सम्मुख ये बातें आती हैं-

(१) क्रौञ्च जलचर पक्षी है.

(२) क्रौञ्च की ध्वनि बड़ी तीखी होती है.

इस प्रकार प्रस्तुत काव्यों में क्रौञ्च का उल्लेख कुल मिलाकर ६ बार हुआ है. महाकवि कालिदास ने क्रौञ्च का तीन बार वर्णन किया है. माघ, सुबन्धु एवं बाणभट्ट ने क्रौञ्च का ऐक-एक बार वर्णन किया है. क्रौञ्च के वर्णन का विश्लेषण निम्नलिखित तालिकाओं में अवलोकनीय है.

10 'मनोहर क्रौञ्चनिनादितानि'—ऋतु० 4/8
'क्रौञ्चनादोपगीतः'—वही० 4/19
'क्रौञ्चनिनादराजितम्'—यथोपरि० 5/1
'अकुञ्जित क्रौञ्च सञ्चारे'—वासवदत्ता पृ० 249

11 'षण्मुखचरितमिव श्रूयमाण क्रौञ्चवनिताप्रलापम्'—कादम्बरी० पृ० 375

तालिका—१

'क्रौञ्च' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (३)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
३	ऋतु.	४।८. १९. ५।१

तालिका—२

'क्रौञ्च' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (3)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
माघ	१	शिशु.	२०।१९
सुबन्धु	१	वासवदत्ता.	पृ. २४९
बाणभट्ट	१	कादम्बरी	पृ. ३७५

सारस
THE CRANE

'दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानाम् ।
—मेघ० १।३१

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में सारस का स्थान सर्वदा गौण रहा है. वाल्मीकि रामायण में सारस से सम्बन्धित अनेक प्रकरण मिलते है.[1] अमरकोष में सारस के लिये पुष्कराह्व एवं सारसः शब्दों का प्रयोग हुआ है.[2] सारस, हंस, चक्रवाक ये सभी शब्द अनेकधा एक अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हैं.[3] सारस के अन्य पर्यायवाची भी संस्कृत साहित्य के शब्द कोशों में उपलब्ध होते हैं.[4]

वैज्ञानिकों के अनुसार सारस क्रौंच–वर्ग के क्रौंच परिवार का सदस्य है.[5] सारस भारत, चीन, वर्मा, साइबेरिया, तिब्बत एवं रूस के स्टेपीज प्रदेशों में पाया जाने वाला पक्षी है. इसे बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है क्योंकि इसकी गर्दन व टांगे लम्बी-लम्बी होती है. यह कर्कशध्वनि से बोलता है. सारस की लम्बाई ५ फीट से ५·५ फीट तक होती है. इसके सिर, गर्दन व पैर घूसर रंग के होते हैं. गर्दन का ऊपरी भाग सफेद होता है. इसके पंख भूरे होते हैं किंतु नीचे की ओर सफेदी लिये हुये होते हैं. चोंच सींग के रंग की होती है.

सारस सरोवरों के पासवर्ती भागों में निवास करते हैं. यह बरसात के दिनों में किसी द्वीप पर घोंसला बना लेते हैं. सारस का घोंसला यदि अधिक ऊंचे स्थान

---

1 'हंस सारसचक्रोहवः कुरेरश्च समेततः'–वा० रा० कि० 30/63
'हंससारसनादिताः'•वही० सु० 14/24

2 पुष्कराह्वस्तु सारसः–इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

3 'चक्रांगः सारसो हंसः–शब्दार्णवः,'–किरात० 8/31
की मल्लिनाथ कृत टीका

4 'सरसि भवः सारसः'–इति शब्दकल्पद्रुम

5 देखिये–जीवजगत्–पृ० 40

पर होता है तो इसका अर्थ घनी वर्षा आने की सम्भावना समझना चाहिये क्योंकि अधिक वर्षा आने पर ही यह घोंसले ऊंचे स्थानों पर बनाता है ताकि अपने अण्डों की आसानी से रक्षा कर सके.

सारस सर्वभक्षी जीव है. सामान्यतः यह मछलियां, घोंघे, मेंढक, कछुए, गेहूं, कमलनाल इत्यादि खाते पाया गया है.[6]

बचपन में पाले जाने पर यह मानव का साथी बन जाता है एवं अत्यन्त सहायक होता है.[7] पालतू सारस मनुष्य के पीछे-पीछे घूमने देखे गये हैं. यह अजनवी व्यक्ति को देखकर चंचु प्रहार भी कर देता है.[8]

सारस एक पत्नी-व्रत पक्षी है. वह अपनी मादा के साथ चोंच में चोंच डाले बैठा रहता है. जीवन के हर क्षेत्र में दोनों सदा साथ रहते हैं. यदि एक को मार दिया जाय तो दूसरा भी प्राणों की बाजी लगा देता है. वह मृतक की लाश को बड़ी मुश्किल से हटाने देता है. वह मृतक के लिये बहुत दुःख करता है एवं रोता भी है.[9]

मादा वर्षा काल में एक से तीन अंडे देती है. अण्डों का रंग लालिमा लिये सफेद होता है एवं कुछ अंडे बादामी चित्तियों वाले भी होते हैं.[10]

सारस भारतीय समाज में बड़े ही आदर के साथ देखा जाता है. सारस का दर्शन शुभ शकुन माना गया है. इसी कारण भारतीय लोग सारस को नहीं मारते एवं उसका सम्मान करते हैं. भारत के अनेक भागों में सारस से सम्बन्धित गीत गाये जाते हैं. राजस्थान में पुत्रोत्पति पर एक लोकगीत गाया जाता है जिसमें सारस को बुलाकर भात खिलाने की बात कही गयी है.[11] इस सम्मान के कारण ही सारस एक निर्भीक पक्षी बन गया है एवं जब तक इसके अत्यन्त करीब कोई व्यक्ति नहीं चला जाता, यह उड़ता नहीं. सारस उड़ने से पहले 'कें-कें' की आवाज कर झल्लाता

---

6 भारत के पक्षी० पृ० 215

7 पा० हैण्ड० 445

8 भारत के पक्षी-पृ० 215

9 गेम वर्ड आफ इन्डियन एम्पायर-स्टुवर्ड बेकर, भारत के पक्षी पृ० 215.
का० के पक्षी पृ० 162

10 जीवजगत् पृ० 403

11 का० के पक्षी पृ० 163
'जा ए रे बाई माई सारस न बुलाओ रे,
लाओ रे चौका चांवल सारस क जिमाओ रे ।। —एक राजस्थानी लोकगीत

है और जोड़े से उड़ जाता है. यह आकाश में अधिक दूर न जाकर कम ऊंचाई तक ही उड़ता पाया गया है. सारस की आयु काफी होती है. सौ वर्ष तक जीवित रहने वाले सारसों के उल्लेख भी मिलते हैं.[12] सारस की निम्न लिखित प्रमुख जातियां भू-पटल पर देखने में आती हैः—

(१) सारस (२) कूंज (३) करकरा

संस्कृत साहित्य में इनमें से किस सारस का उल्लेख है यह सिद्ध करना कठिन है. सभी विद्वान् इस विषय में एक मत नहीं. काव्यों में किये गये अनेक वर्णन इन सभी प्रकार के सारसों की सामान्य विशेषताओं के वर्णन है अतः उनको किसी एक श्रेणी में रखना संभव नहीं. अतः सारस शब्द का अर्थ सम्पूर्ण क्रौंच परिवार के पक्षियों से ही लिया जाना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि संस्कृत-साहित्य के काव्य-काल में पक्षी विज्ञान इतना विकसित नहीं था एवं काव्यकारों ने इनके विभाजन को प्रमुख न मानकर प्रसंगानुसार वर्णन को प्रमुख माना है.

संस्कृत-साहित्य में सारस—संस्कृत काव्यों में सारस के लिए लक्ष्मणः[13] एवं सारस.[14] शब्दों का ही प्रयोग हुआ है.

मानव व सारसः—सारस पाले जाने वाले पक्षियों में से रहा है अतः इसका मानव से सम्पर्क रहा है. कादम्बरी के उज्जयिनी वर्णन में कहा गया है कि सारस का स्वर मधुर होता है.[15] महारानी यशोमती के अन्तःपुर में लड़ खड़ाकर गिरने वाली प्रतिहारी की कमर से बंधी करधनी के बजने से उसी आवाज में गृहसारसियों के चिल्लाने का वर्णन इस बात का प्रमाण है कि सारस राजमहल में यत्र- तत्र-सर्वत्र घूमा करते थे.[16] अत्यन्त शीतल चन्दवृक्षों की छाया में बैठे गृह सारसों का वर्णन भी सारस को मनुष्य के करीब लाता है.[17]

सारस के क्रिया-कलापः—सारस के क्रिया-कलापों का मनोहर वर्णन काव्यकारों की लेखनी से बन पड़ा है. सभी काव्यकारों ने सारस की क्रियाओं का उल्लेख करते हुये उसकी ध्वनि पर विशेष ध्यान दिया है. सारसों की मधुर ध्वनि

---

12 देखिये-भारत के पक्षी, पृ० 215

13 शिशु० 4/59

14 रघु० 1/41, ऋतु० 1/19, कादम्बरी पृ० 68, किरात० 6/4

15 'गृहसारस-स्वरामृतेन'-कादम्बरी, पृ० 165

16 'स्खलित विशाल'.-ह० च० पृ० 282

17 'अतिशिशिरचन्दन-विटपिच्छया-निषण्ण-निद्रायमाणगृहसारसम्'
—कादम्बरी, पृ० 272

पर विशेष ध्यान दिया है. सारसों की मधुर ध्वनि सरोवरों व नदियों से आती हुई बतलायी गयी है. "सारसों की ध्वनि पम्पासर व क्षिप्रानदी की ओर से आ रही थी." ऐसे उल्लेख मिलते हैं. पम्पासरोवर में सारस 'कें–कें' की ध्वनि कर रहे थे क्षिप्रा नदी तट पर मदोन्मत्त कलहंस एवं सारस शब्द कर रहे थे, सारसों के मधुर-शब्दों से शरद ऋतु में सरोवर सुन्दर प्रतीत हो रहे थे, "सारस मधुर–मधुर कूजन कर रहे थे."[18] इस प्रकार के उल्लेख काव्यकारों ने किये हैं. इन उल्लेखों से हमारे सम्मुख दो बातें आती हैं. प्रथम तो यह कि सारस सरोवर एवं नदियों के तट पर बहुतायत से निवास करते हैं, एवं द्वितीय यह कि सारसों की ध्वनि मधुर होती है.

शरद् ऋतु के अतिरिक्त वर्षा ऋतु में भी सारस द्वारा मधुर कूजन करने का उल्लेख करते हुये मेघदूत में लिखा है कि क्षिप्रा नदी का वायु कामोन्माद के कारण मधुर सारस रव को प्रसारित करता हुआ सम्भोग से थकी हुयी स्त्रियों के श्रम को दूर करता है.[19] शरद ऋतु में सारसों द्वारा नदी तट पर भ्रमण करने का उल्लेख ऋतुसंहार में भी किया गया है.[20]

कादम्बरी में शुक द्वारा सारस का अस्फुट शब्द सुनकर सरोवर के कहीं दूर स्थित होने की बात कही गयी है.[21] लोक में भी मानव द्वारा सारस की ध्वनि सुनकर सरोवर की स्थिति का अनुमान लगाने के उदाहरण मिलते हैं. सरोवर में सारसों का पंक्तिबद्ध होकर रहना वर्णित किया गया है.[22] इन्द्रनील पर्वत पर सारसों के कूजन का वर्णन किया गया है एवं इसे अर्जुन के लिये मंगलकारी भी स्वीकार किया है.[23] सारसों के हाथी के द्वारा डरकर भागने की बात कही गई है.[24] सारस डरकर भागना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि वह उड़ने में अपने आपको

18 'सारसित–समद–सारसम्'– कादम्बरी, पृ० 68
'यश्चसमदकलहंस सारस रसित'–वासवदत्ता, पृ० 73
'सरस सारसरसितसारकासोर'–वही, पृ० 250
'सारसकुलैः प्रतिनादितानि'–ऋतु० 3/16

19 दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानाम्'–मेघ० पृ० 1/31

20 'कादम्बसारसकुलाकुलतीरदेशाः'–ऋतु० 3/8

21 'अस्फुटानि श्रूयन्ते सारस रसितानि'–कादम्बरी, पृ० 108

22 'सारसश्रेणीशेखरस्य'–द० च० पृ० 475

23 'स्फुट हंससारसविरावयुज'–किरात० 6/4

24 'द्रुतभीतसारसम्'–ऋतु० 1/19

कष्ट में पाते हैं. सारसों से टकराने वाली तरंगमालाओं का उल्लेख सारसों के किनारों पर तैरने का प्रमाण है.[25] इस प्रकार कवियों ने सारस की विभिन्न क्रियाओं का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत कर पक्षी समाज के प्रति अपनी रुचि का प्रदर्शन किया है.

उपमित सारस—सारस की विभिन्न क्रियाओं को काव्यकारों ने उपमित किया है. मेखला (करधनी) के मधुर शब्द से सारस के कूजन की तुलना की गयी है.[26] शंख की ध्वनि को तत्काल जगने वाले गृह सारसों की ऊंची आवाज से उपमित किया गया हैं.[27] आकाश में पंक्ति बनाकर उड़ने वाले सारस ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों बिना खम्भों के सहारे कोई बन्दनवार टंगी हो.[28] यहां बन्दनवार व सारसों की पक्ति को समान बताया गया है. भगवान् राम के विमान की ओर पंक्तिबद्ध आने वाली सारस श्रेणी ऐसी प्रतीत होती है मानों सीताजी की अगवानी करने आ रही हो[29] यहाँ सारस पंक्ति की समता अगवानी करने वालों से की गयी है क्योंकि अगवानी करने वाले भी वाहन के सम्मुख आकर उपस्थित होते हैं एवं शुभ लक्षण वाले भी होते हैं. एकमात्र अवशिष्ट तालाब से सारसों के अंतर्हित होने की तुलना कीर्तिमात्र अवशिष्ट रहने पर रसिकता के विनिष्ट होने से की है.[30] यही रसिकता व सारसों की उपस्थिति की समता बतलायी गयी है. इस प्रकार सारस को उपमित किया गया है.

सम्पूर्ण काव्यों में सारस का उल्लेख केवल २४ बार हुआ है. सबसे अधिक वर्णन महाकवि बाण ने किया है. उन्होंने कादम्बरी में ६ बार एवं हर्षचरित में सारस का वर्णन २ बार, कुल ८ बार सारस का वर्णन किया है. महाकवि कालिदास ने सारस का वर्णन ७ बार किया है. जबकि भारवि, सुबन्धु, दण्डी व माघ ने क्रमशः ३, ५, २ बार एवं १ बार किया है, सारस के ये सभी वर्णन काव्यकारों की पक्षियों के प्रति सहानुभूति के प्रमाण हैं. सारस के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में दर्शनीय है.

---

25 'विभिद्यमाना विससार सारसानुदस्य तीरषु तंरगसंहतिः'—किरात० 8/31

26 'रशना—रवाहूत—गृहसारस रसित सम्भिन्न'—कादम्बरी, पृ० 254
'परिक्कणत्सारसपंक्तिमेखलं'—किरात० 8/9

27 'तत्क्षणप्रतिबोधितानां गृहसरोजिनीसारसानामनुवर्त्यमान इव'
—कादम्बरी, उ० पृ० 59

28 'श्रेणीबन्धाद्वितन्व द्भिरस्तम्भां तोरणग्रजम्'।
सारसैः कलनिहार्दैः क्वचिदुन्नमिताननौ।' —रघु० 1/41

29 'प्रत्युद्व्रजन्तीयव खमुत्पतन्त्यो गोदावरी सारसपक्तयस्त्वाम्' —रघु० 13/33

30 '(सा) रसवत्ता विहता—सरसीव कीर्तिशेष गतवति भुवि विक्रमादित्ये'
-वासवदत्ता पृ० 5

तालिका-१

'सारस' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (७)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
२	रघु०	१।४१, १३।३३,
१	मेघ०	१।१३.
३	ऋतु०	१।१९, ३।८, १६.
१	मालविका०	३।६.

तालिका-२

'सारस' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (१७)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
भारवि	३	किरात०	६।४. ८।९, ३१.
माघ	१	शिशु०	४।५९.
सुबन्धु	३	वासवदत्ता	पृ० ५, ७३, २५०.
बाणभट्ट	२	ह० च०	पृ० १३९, २८२.
,,	६	कादम्बरी	पृ० ६८, १०८, ६५, २५४, ७२, उ० ५९.
दण्डी	२	द० च०	पृ० १००, ४७५.



कोकिल
THE INDIAN KOEL

'कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुते।'
— शाकु० ६/४

सम्पूर्ण-संस्कृत-साहित्य में कोयल का स्थान प्रमुख माना गया है. वैदिक-साहित्य से आधुनिक संस्कृत साहित्य पर्यन्त कोयल का वर्णन सर्वत्र विद्यमान है. वैदिक-साहित्य में कोयल के लिये पिकः व कोकः शब्दों का प्रयोग हुआ है.[1] वीरकाव्य-साहित्य में कोयल के लिये कोकिल शब्द का अधिक प्रयोग मिलता है.[2] अमरकोष में कोयल के लिये वनप्रियः, परभृतः, कोकिलः व पिकः का उल्लेख मिलता है.[3]

वैज्ञानिक की दृष्टि में कोयल मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत पक्षि-श्रेणी के शुक-पिक वर्ग के पिक परिवार की सदस्या है.[4]

कोयल अफ्रीका, सहारा (दक्षिणी), भारत, मलाया, दक्षिणी चीन, न्यूगाइना, इंगलैंड (दक्षिणी तट) व न्यूजीलड देशों में पायी जाती हैं.[5]

कोयल कोए के छोटे आकार का पक्षी है. नर चमकीला व काला एवं मादा कुछ सिलेटी रंग लिये होती हैं. पेट पर रंग हल्का एवं आंखों के आसपास अधिक गहरा होता है. दुम पर घनी भूरी एवं श्वेत धारियां होती हैं.[6] कोयल की लम्बाई

---

1 तै० सं० 5.5.15,1, मै० सं० 3, 14,20, वा० सं० 24, 39. ऋक्० 7. 104. 22, अ० वे० 5. 23, 4

2 'मतकोकिल संनादे' वा० रा० कि० 1/15 समाह्वयति कोकिल, वही० 1/23

3 'वनाप्रियः परभृतः कोकिलः पिक इत्यापि'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

4 देखिये—जीवजगत—पृ० 455

5 इन० ब्रिटे० भाग 6 पृ० 849, इन० चेम्बर० भाग 4, पृ० 288, भारत के पक्षी, पृ० 39

6 इन० चेम्बर० भाग 4, पृ० 288

करीब १७ इन्च होती है.[7]

कोयल का निवास स्थान गहरे वृक्षों के निकुञ्ज होते हैं. निकुञ्जों में बैठ कर कूजना इसे अधिक प्रिय है. कोयल अपना कोई घोंसला नहीं बनाती, वह तो अपने अण्डों को किसी अन्य पक्षी के घोंसले में रखकर अपने बच्चों का पालन करवाती है. अतः इसे अत्यन्त चतुर पक्षी माना है. नर कौवों के पास जाकर उत्पात मचाता है एवं कौवों को मादा सहित इधर-उधर उड़ाता है, तब मादा कोयल अंडे रख देती है. इसके साथ ही वे कौवे के अण्डों को दूर फेंक कर एक ध्वनि करती है और नर कोयल कार्य की सफलता को समझ कर कहीं दूर उड़ जाता है. कौवे शत्रु को भागा हुआ समझकर घोंसले पर लौट जाते हैं. कौवे अण्डों की पूर्ण रक्षा करते है एवं जब कोयल के बच्चे उड़ने योग्य हो जाते हैं तो वे किसी भी समय उड़ जाते है. पालन काल में यदि भाग्यवश कोई कौवे का बच्चा घोंसले में होता है तो कोयल का बच्चा अक्सर उसे नीचे गिरा देता है. बेचारा कौवा पूरा ध्यान रखकर उनका पालन करता है एवं उनके उड़ जाने पर दुःख भी प्रकट करता है. अपनी मूर्खता के कारण इस रहस्य को समझ नहीं पाता है.[8] कोयल का यह चातुर्य जन्मजात होता है एवं इसके बच्चे कौवों के बच्चों से अधिक ताकतवर होते है. यही कारण है कि यह कौवे जैसे धूर्त पक्षी को भी धोखा देने में सफल होती है.

कोयल एक बार में २ से ७ तक अण्डे देती है. विलायती कोयल २०-२५ अण्डे तक भी देती देखी गयी है. अण्डे नीलापन लिये हरे रंग के होते हैं, जिनपर कत्थई चित्तियां पड़ी होती हैं[9]

कोयल के मुख्य खाद्य पदार्थ—आम, जामुन एवं विभिन्न कीड़े-पतंगे. आम व जामुन खाना इसे अधिक प्रिय है. कोयल की बोली नर व मादा के आधार पर भिन्न होती है. नर की बोली 'कुहू—कुहू' एवं मादा की 'किकू-किकू-किकू' होती हैं. नर की ध्वनि बड़ी तेज होती है जो वसन्तागम से शरदागम तक सुनी जाती है.[10] कोयल को कूजन वर्षाकाल में भी जारी रहता है. किसी कवि का यह कथन 'अब तो दादुर बोलि हैं, भये कोकिला मौन" सत्य नहीं.

कोयल के मुख्य भेद दो हैः—

---

7 जीवजगत पृ० 456, भारत के पक्षी पृ० 39

8 देखिये—भारत के पक्षी पृ० 40-41. जीवजगत पृ० 456

9 देखिये–वही० 456, भारत के पक्षी पृ० 40, इन० वर्ड० भाग 3, पृ० 940

10 देखिये–भारत के पक्षी, पृ० 39

(१) काली चोंच वाली कोयल
(२) पीली चोंच वाली कोयल

ये दोनों ही बड़े शर्मीले जीव हैं किन्तु इनकी ध्वनि इनको पहिचानने में प्रमुख है. इन दो ों में भेद यह होता है कि काली चोंच वाली कोयल की आँखों पर लाल रंग के घेरे बने होते हैं एवं पीली चोंच वाली कोयल की पूंछ पर लाल निशान होते हैं[11]

संस्कृत–काव्यों में कोकिल :

संस्कृत-काव्यों में वर्णित पक्षी-वर्ग में कोकिल का प्रमुख स्थान रहा है. काव्यों में कोयल को कोकिलः, पिकः, परभृतः नामों से कहा गया है नर कोकिल को पुस्कोकिलः व मादा को अन्यभृता, अन्यपुष्ठा, परपुष्ठा नामों से कहा है.[12]

मानव एवं कोयल — मानव ने सदा से पक्षियों से सम्पर्क बनाये रखा है. अतः मानव की रचनाओं में मीठे स्वर से साध्वी-स्त्रियों के भी अधीर होने की बात कही गयी है.[13] भगवती-सरस्वती को कोयल का तिरस्कार करने वाली कहा है. वास्तव में देववाणी के सम्मुख कोकिल वाणी का महत्त्व ही क्या होता है ? शकुन्तला के पतिगृह-गमन के समय कोयल की वाणी से वन के साथियों द्वारा जाने की आज्ञा दी जाने की कल्पना महाकवि की एक उत्तम सूझ है.[14]

एक तरफ कोयल की ध्वनि आनन्ददायी कही गयी है, दूसरी ओर वही कोयल की ध्वनि कादम्बरी को कामपीड़ा काल में व्याकुल बना देती है.[15] अन्यत्र स्त्रियों द्वारा कोयल के कूजन से वशीभूत न होकर दिन में ही पतियों को प्राप्त करने की बात कही गयी हैं.[16] कामपीड़ा से व्याप्त दमयन्ती को सखी कहती है कि वह कोयल को क्यों नहीं चाहती, जबकि वह तो उसको तप्त करने वाले इन्दु को न चाहती हुयी अमावस्या (कुहू) की मुक्तकण्ठ से कामना करती है.[17] यहां

---

11 इन० बर्ड भाग 3 पृ० 940

12 शिशु 6/70, नैषध० 21/156, बु० च० 20/3. कादम्बरी उ० पृ० 29, नैषध० 20/89, विक्रम० 4/24, शाकु० 4/10, ऋतु० 6/23. रघु० 8/59, ऋतु० 6/27, सौ० नं० 7/7 वासवदत्ता० पृ० 92, कादम्बरी० पृ० 533, बु० च० 4/51,

13 'पुंस्कोकिलैः'–ऋतु० 6/23

14 'परभृतविरुतं'–शाकु० 4/10

15 'पिकवृन्दैः कलकलेनाकुलीक्रियते'—कादम्बरी पृ० 29

16 कोकिले स्त्री—शिशु० 6/70

17 'न किं पुनरिच्छसि कोकिलाम्'—नैषध० 4/107

सखि कोयल को चन्द्र का विरोधी बताती है, फिर वह दमयन्ती को अच्छी क्यों नहीं लगती. परन्तु कोयल की वाणी भी विरहणियों के ताप को उत्कट करने वाली होती है. अन्यत्र दमयन्ती की वाणी का अनुकरण करने वाली कोयलों का उल्लेख करते हुए श्री हर्ष ने कहा है कि कोयलें दमयन्ती की वाणी को भलीभांति उच्चारण नहीं कर पाती एवं इस कारण वे आम के बगीचे में बैठकर पुनः पुनः कण्ठस्थ करने का अभ्यास कर रही है.[18] 'मालविकाग्निमित्र' में पुरुरवा कोयल को पक्षियों में समझदार जाति कहता है एवं अपनी प्रिया के बारे में उससे पूछता है.[19]

इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि मानव पशु, पक्षियों को अपने सुख में प्रसन्न एवं अपने दुःख में दुःखी देखता है. साथ ही पक्षी भी मानव के सम्पर्क में रह कर उसकी भावनाओं के पारखी हो जाते हैं एवं समयानुसार व्ययहार करते हैं.

क्रिया-कलाप—हर पक्षी में अपनी रुचि, वातावरण एवं शारीरिक संरचना के आधार पर भिन्नतायें होती हैं. यहां हम साहित्यिक वर्णनों के आधार पर कोयल के विभिन्न क्रिया-कलापों का वर्णन करेंगे ।

मधुर स्वरा—कोयल की वाणी को अत्यन्त मधुर माना गया है. महाकबि कालिदास ने 'विक्रमोवंशीय'. 'मालविकाग्निमित्र' एवं 'कुमारसम्भव' में कोयल को मंजुस्वना, मधुर प्रलापिन, मधुर स्वरा एवं मधुरलापनिसर्ग पण्डिता आदि नामों से पुकारा है. ये सब नाम कोयल के मधुरालाप के कारण ही दिये गये हैं.[20] कोयल की बोली उसकी एक मुख्य विशेषता होने के कारण सभी काव्यकारों द्वारा यदा-कदा-सर्वदा वर्णित की गयी है. बुद्धचरित में आम के कुंज में कूकने वाली कोयल का उल्लेख करते हुये उसे हेममय पिंजडे में बन्द बताया है.[21] मत्तकोयल कूजने को सुनने की बात कही गयी है.[22] कोयल की कुक का एक सुनिश्चित समय एवं स्थान होता है. जेतवन. विध्याटवी, जाबल्याश्रम इत्यादि वन प्रदेशों में

---

18 परभृतयुवतीनां—नैषध० 21/156

19 'परभृता विहंगमेषु पण्डिता जातिरेषा'—विक्रम० 4 गद्य, यथोपरि० 4/24

20 'एवंगतेऽपि प्रियेव मे मंजुस्वनेति न मे कोपोऽस्याम्'-विक्रम०4 गद्य,
'परभृते ! मधुरप्रलापिनि'—वही० 4/24
'मधुरस्वरा परभृता'—मालविका० 4/2
'रतिदूतिपदेषुकोकिलां मधुरालापनिसर्ग पण्डिताम्'—कुमार० 4/16

21 'हेमपंजररुद्धो वा कोकिलो यत्र कूजति'—बु० च० 4/44

22 'मत्तस्य परपुष्टस्य स्वतः श्रूयतां ध्वनिः'—वही० 4/51

कोयल का कूकना इस बात को भी सिद्ध करता है कि कोयल वन प्रदेशों में अधिक निवास करती है.[23] अन्यत्र वृक्षों पर कोयल का बोलना भी इसी बात का प्रमाण है.[24] नैषधकार ने बावड़ी के किनारे कोयल के गाने की बात कही है.[25] पवन को कोयल की आवाज को यत्र-यत्र-सर्वत्र फैलाने में प्रमुख माना है.[26] कोयल की मीठी वाणी के उल्लेख विक्रमोर्वशीय व दशकुमारचरित में भी है.[27] बालकों द्वारा बारम्बार कुहू-कुहू शब्द का उच्चारण करने पर कुपित कोयल के बोलने का उल्लेख किया गया है जो निःसन्देह सूक्ष्म अवलोकन का परिणाम है.[28]

वसन्त व कोयल— वसन्त ऋतु व कोयल की कुहू-कुहू बोली का चोली-दामन का साथ है. इसका प्रमुख कारण है–वसन्त ऋतु में कोयल का कामपीड़ित होना, जिसका उल्लेख हम कर आये हैं. वसन्त को कोयल की कूक से जी लुभाने वाला कहा गया है[29] कालिदास की भाँति बाण का ध्यान भी पुंस्कोकिल की ध्वनि की ओर गया है.[30] राजा दुष्यन्त के द्वारा बसन्त न मनाने के कारण पुंस्कोकिल के गले में आकर उसकी आवाज का रुक जाने का वर्णन किया गया है.[31] इस प्रकार वसन्त ऋतु के साथ कोयल का सम्बन्ध रहा है.

शुक–काक–कोयल— कोयल, काक व शुक का एक साथ वर्णन यदा-कदा साहित्यकारों ने किया है. कोयल व कौए का तो रंग भी एक सा कहा गया है.

---

23 'कूजितकोकिलम्'—बु० च० 20/3
'कोकिलकुल-कल-प्रलापिनी'—कादम्बरी० पृ० 59
'उन्मदकोकिल-कुल-कलालाप-कोलाहालिभिः'–वही० पृ० 117
'पदपद कोकिल कूजितम्'''''वनस्थलीय'—रघु० 9/26
24 'नानामनोज्ञकुसुमद्रुमभूषितान्ताहृष्टान्य पुष्टानिनदाकुलसानुदेशान्'-ऋतु. 6/27
'पुंस्कोकिलनिनादित पादपानि' – बु० च० 3/1
25 'विलासवापीतटवीचिवादनात्पिकालिगीतेः'–नैषध० 1/102
26 'विस्तारयन्परभृतस्यवचांसि'—ऋतु० 6/24
27 'मदकलकोकिल कूजितरव झंकारमनोहरे'—विक्रम० 4/56
'कलकण्ठिका कलालापमाधुर्येण'—द० च०
28 'कूतुहलेनेव मुहुः कुहूरवं विडम्ब्य डिम्भेन पिकः प्रकोपितः'—नैषध० 9/38
29 'कोकिलालापरम्यः'–ऋतु० 6/37
'कोकिलरुताय'–वासवदत्ता० पृ० 26, ऋतु० 3/23
30 'पुंस्कोकिलः काकुवकणितेषु'–ह० च० पृ० 401
31 'कण्ठेषु स्वलितंगतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानांरुते'–शाकु० 6/4

कौए व कोयल के भेद को भर्तृहरि ने प्रस्तुत करते हुये लिखा है:—

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः ।
वसन्तसमवे प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ।

अतः कोयल व काक में रंगभेद नहीं, शब्द भेद ही प्रमुख हैं. कौए एवं कोयल की बोली का सुन्दर साहित्यिक वर्णन नैषधकार ने किया है कि काक अपनी वाणी में प्रश्नवाचक सर्वनाम 'किम्' का द्विवचन में 'कौ-कौ' कहता है जिसका तात्पर्य "कौन से दो ?" होता है. वह कोयल से मानों यह प्रश्न करता है तो कोयल उसका उत्तर 'तूही' कह कर देती है, कारण कि महाभाष्य में 'तातङ्' का आदेश 'तु' व 'ही' दो रूपों में होता है.[32] वृक्षों द्वारा कोकिल व कौओं को जीवनवृति देने का वर्णन मिलता है.[33] एक स्थान पर कोयल व तोतों के समुदाय की उपस्थिति बतायी है तो अन्यत्र कोयल द्वारा टेसू के फूलों को शुक समझकर उनको मारने दौड़ने की बात कही है.[34] ये दोनों बातें विपरीत मालूम होती हैं किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, कारण कि बिना सम्पर्क एवं सहवास के वैरभाव भी पनप नहीं सकते.

कोयल का परभृतत्व—जैसा कि हम कह आये हैं कोयल पक्षी जगत् का एक बुद्धिमान् जीव है अतः उसमें चातुर्य का पाया जाना उचित ही है. कोयल का अन्य पक्षियों द्वारा अण्डों का पालन करवाना तो सर्व विदित है. महाकवि कालिदास भी इस बात के जानकार थे, तभी तो उन्होंने महाराज दुष्यन्त से शकुन्तला की बात की तुलना परभृत व्यवहार से करवायी है एवं स्त्रियों को चतुर बताया है.[35]

कोयल का भोजन—अपने जीवन को बनाये रखने के लिये आहार की बड़ी आवश्यकता होती है कोयल भी अपने जीवन के लिये विभिन्न पदार्थों का भक्षण करती देखी गयी है. आम एवं जामुन कोयल के प्रिय खाद्य पदार्थ हैं बसन्त में आम की मंजरी खाने से मस्त कण्ठवाली कोयल के कूजन का वर्णन किया है.[36] कादम्बरी द्वारा पिंजरे में कोयल को आम की मंजरी देने की बात कही

32 नैषध० 19/60
33 'स्तुल्योपनीतपिककाकफलोपभोगाः'-वही० 11/25
34 'यत्कोकिलःपुनरयं मधुरैर्वचोभिर्यूनांमन. सुवदनानिहितं निहन्ति'-ऋतु० 6/22
35 'परभृताः खलु पोषयन्ति,'-शाकु० 5/22
36 'चूतांकुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलोयन्मधुरं चुकूज'-कुमार० 3/32

है.[37] वहीं कोयल के नख से विदीर्ण सहकार वृक्ष का वर्णन मिलता है.[38] मालविकाग्निमित्र में कोयल एवं भ्रमर को आम की मंजरी वाले स्थानों में एक साथ रहने वाला बताया गया है.[39] विक्रमोवंशीय में जामुन के रस के पीने से मस्त कोयल का उल्लेख मिलता है.[40]

प्रजनन—काव्यकारों ने कोयल के प्रजनन का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं किया है किन्तु यदा-कदा काम पीड़ित एवं मस्त कोयल का उल्लेख अवश्य किया है. आम मंजरी के रस में मदमस्त कोयल द्वारा अपनी प्रियतमा को प्यार से प्रसन्न होकर चूमने की बात कही है.[41]

इन सब क्रियाओं के अतिरिक्त काव्यकारों ने एक साथ अनेक क्रिया-कलापों का उल्लेख भी किया है. 'दूसरी सखी मत्त कोकिल को लेकर उसके पीछे गई जो हाथ में टेढ़े रखे हुए स्फटिक दण्ड पर बैठी थी. वह गा रही थी और कृष्णपक्ष की अपेक्षा काली भी थी, उसमें 'कुहू' शब्द और उसका अर्थ आपस के सम्बन्ध से स्पष्ट हो गये हैं.' इस वर्णन में एक साथ कोयल के बैठने, उसके गायन एवं रंग का उल्लेख किया गया है.[42] कादम्बरी में कोयल के चक्षुराग का वर्णन मिलता है.[43] मत्त कोकिलों द्वारा लवली लताओं के फूलों के मधुकणों को उड़ाकर उत्कट दुर्दिन बनाने का उल्लेख महाकवि बाण ने किया है.[44]

उपमित कोकील—कुकवियों की तुलना वृथा प्रलाप करने वाले कोयल से की है. जिस प्रकार कोकिल वाचल एव कामोद्दीपक होती हैं, उसी प्रकार कुकवि रागयुक्त दृष्टि वाले एवं असम्बद्ध प्रलापी होते हैं.[45] कदर्पकेतु की वाणी को कोयल

---

37 चूतलतिके ! देहि पञ्जरपुंस्कोकिलेभ्यश्चूतकलिकांकुराहारम्'—
—कादम्बरी० पृ० 533

38 'परभृत'—वही० पृ० 417

39 'मधुरस्वरा परभृता भ्रमरी च विबुद्धचूतसंगिन्यौ'—मालविका० 4/2

40 विक्रम० 4/27

41 'पुंस्कोकिलश्चूतरसासवेन मत्तः प्रियां चुम्बति रागहृष्टः'—ऋतु० 6/16

42 नैषध० 21/123

43 'चक्षुरागः कोकिलेषु'—कादम्बरी० पृ० 125

44 'उत्फुल्ल-पल्लव-लवली-लीयमान-मत्त-कोकिलोल्लासितमधु-शीकरोद्यामदुर्दिनेषु
—वही० पृ० 4

45 'कोकिला इव जायन्ते वाचालाः कामकारिणः'—ह० च० 4/4

वाणी से सम्बन्धित किया है.[46] कोयल की कूक को कामदेव का आदेश कहा है.[47] एक स्थान पर स्थिर न रहने वाली दुष्ट लक्ष्मी को कोयल से उपमित किया है.[48] वास्तव में ये दोनों ही चंचल एवं स्थिर होती हैं. दमयन्ती-शुर्पनखां-इन्दुमती-पार्वती-कल्पसुन्दरी-कालिन्दी व वसुमती की मधुर वाणी को ही नहीं अपितु गायकाओं, वेश्याओं एवं मुग्धानायिकाओं की वाणी को भी काव्यकारों ने कोयल की मधुर-वाणी से उपमित कर उसके मधुरत्व का प्रमाण दिया है.[49] पकड़ी गयी मालविका के समाचार बताते हुये कंचुकी उसकी दशा बिल्ली के पंजे में पड़ी कोयल के समान बताते हैं.[50] कामदेव के पांचों बाणों की तुलना कोयल के पञ्चम स्वर से की है.[51] कोयल को वसन्तऋतु की दुन्दुभि कहा गया है. यानी उसकी वाणी वसन्तागमन का प्रतीक है.[52] बंसियों की वाणी को कोयल की बोली में बजने वाली कह कर कोयल व वंशी का वाणीसाम्य प्रदर्शित किया गया है.[53] व्यवहार में भी दोनों मन को लुभाने वाले होते हैं अतः सादृश्य सम्यक् है, सुन्दर है. कोयल की नीली एवं गुलाबी आंखों से जामुन के रग की समता दी है.[54] इसी

---

46 'इवोत्कलिका'–वासवदत्ता० 27

47 'परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधुजनः'–रघु० 9/47

48 'कोकिलया काका इव कापुरुषा हस्तलक्ष्म्या विप्रलभ्यमानमात्मानं न चेतयन्ते' –ह० च० पृ० 335

49 'प्रातरालपति कोकिले कले'–नैषध० 18/151; कोकिलमञ्जुवादिनीम्'–रघु० 12/39; 'कलमन्यभृतासु भाषितम्'-वही० 8/59; 'अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रीरिवताड्यमाना' कुमार०1/25 (45); 'परभृतमतिमञ्जुलैः प्रलापैः'-ब० च० पृ० 283; 'सोत्कण्ठा कलकण्ठस्वनेन मन्दमन्दमुदंजलिरभाषत' वही० पृ० 59; 'कलक्वण-क्वणा' -वही० पृ० 21; 'गायकीयुमदनकलकोकिला-मञ्जुलध्वनिषु'–वही० पृ० 125; कोकिला इव मदकलाकाकली कोमला लापिन्यो'–ह० च० पृ० 224

'प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः'–रघु० 9/34

50 'यो विडाल गृहीतायाः परभृतिकायाः'–मालविका० 4 गद्य

51 'पिकस्वर एव स पञ्चमः'–नैषध० 4/94

52 'तरुणपरभृतः स्वनं रागिणामततुरतये वसन्तानकः'–शिशु० 6/67

53 वाद्यमानैः परभृततूर्यैः'–विक्रम० 4/12

54 'आमत्तकोकिल लोचनच्छविर्नीलपाटलः कषायमधुराः प्रकाममापीतो जम्बूफलरसः'–कादम्बरी० पृ० 53

प्रकार सन्ध्या को कोयल के नेत्रों के समान पिंगल वर्ण वाली कहा है.[55] कौओं से पालित कोकिल के समान वेश्याओं को धनादि से अत्यन्त परिपुष्ट बताया है. अतः कोयल व वेश्या से साम्य प्रदर्शित किया है,

इस प्रकार कोयल को अनेक काव्यकारों से विभिन्न प्रकार से उपमित किया है किन्तु उसकी वाणी को सभी काव्यकारों ने उपमित कर एकपक्षीयता को अपनाया है जो नवीनता से परे हैं. अतः उपमानों में अधिक सौन्दर्य नहीं आ पाया है जो कि आना चाहिये था.

सम्पूर्ण काव्यों में कोकिल का उल्लेख कुल १०५ बार हुआ है. कालिदास ने कोयल का वर्णन ३३ बार, श्रीहर्ष ने २३ बार एवं बाणभट्ट ने २२ बार किया हैं. इसके अतिरिक्त दण्डी, सुबन्धु अश्वघोष व माघ ने क्रमशः ९, ७, ६ व ५ बार कोयल का वर्णन किया है वर्णन का विश्लेषण निम्नलिखित तालिकाओं में दर्शनीय है.

55 'कोकिल-विलोचनच्छविबभ्र णिचारुयति सान्ध्येभुवनमर्च्चिषि'-काद० पृ० 512

तालिका—१

'कोकिल' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (३३)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
५	रघु०	८।५९. ९।२६. ३४, ४७ व १२।३९.
६	कुमार०	१।४५. ३।३२. ४, १४ १६, १६, व ६।२.
१०	ऋतु०	६।१६. २२ से २४, २६, २७, २९, ३४, ३५ व ३७.
४	शाकु०	४।१०. ५।२२. ६ गद्य. व ६।४.
२	मालविका०	४।गद्य व ५।१.
६	विक्रम०	१।३. ४।१२, गद्य, २८, ५६ व ७२.

तालिका–२

'कोकिल' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (७२)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	४	बु० च०	३।१. ४।४४. ५१ व २०।३.
,,	२	सौ० न०	७।७. व ११.
माघ	५	शिशु०	२।११६. ६।८६७. ७०. १६।५०.
श्रीहर्ष	२३	नैषध०	१।६. ६०, १००, २, २।४५. ४।६४, १०७. ७।४८. ८।६४, ६५. ६।३८. १३६. १०।१२६. ११।१२५. १२।१४. १८।१७. १५१. १६।६०. २०।८६, १२४, ५६ व २१।३, १२३.
सुबन्धु	७	वासवदत्ता	पृ० २६, २७, ६२, १११. १११, १७७ व २३३.
बाणभट्ट	५	ह० च०	पृ० ४, २२४, ३३४, ४०१ व २०.
,,	१७	कादम्बरी	पृ० ५३, ५६, ११७, २५, ७२, ३८३, ४१५. १७, ५४, ५१२, ३३, ३५. उ० २२, २६, ६७, १०० व १०१.
दण्डी	६	द० च०	पृ० २२, ५६, ६७, १००, १, ३, २१, २५, २८३.

— — —

चातक
THE CUCKOO

'अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः ।'
—मेघ० १/२३

संस्कृत-साहित्य में चातक का वर्णन गौण है. वैदिक-साहित्य में चातक शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है. वैदिक-साहित्य में कपिञ्जल शब्द का प्रयोग हुआ है, जो चातक, पपीहा, तीतर आदि का वाचक है. श्री आप्टे ने अपनी संस्कृत डिक्शनेरी में कपिञ्जल का अर्थ चातक व पपीहा किया है.[1] अमरकोष में चातक, सारङ्ग (शारङ्ग) व स्तोकक शब्दों को चातक के पर्यायों के रूप में लिखा गया है.[2]

वैज्ञानिकों की दृष्टि में चातक मेरु-दण्डीय उपजगत् के शुकपिक वर्ग के पिक परिवार का जीव है. इस परिवार में कोयल, महोख व पपीहा आते हैं. चातक भी एक प्रकार का पपीहा ही है किन्तु इसके स्वभाव में पपीहा के स्वभाव से भिन्नता है.[3] साहित्य में पपीहा व चातक में कोई भिन्नत्व प्रदर्शित नहीं किया गया है. **इस निबन्ध में हम पपीहा एवं चातक को एक ही मानते हुए अध्ययन करेंगे.** इससे पूर्व कि हम चातक का काव्यात्मक अध्ययन करें इससे पूर्व चातक व पपीहे के सामान्य भेद पर विचार करेंगे.

१. पपीहा शिकरे से मिलता-जुलता पक्षी है. इसके पर धूसर एवं सफेद, चोंच हरी, टांगे पीली एवं आंख की पुतली पीलापन लिये होती है. दूसरी ओर चातक के पैर काले, आँखें लाल, चोंच काली, एवं पैर नीले होते हैं. इसके सिर पर चोटी होती है.

---

1 'तै० सं० 2/5/1/1. मै० सं० ?/14/1 का० सं० 12/10 वा० सं० 24/20/38

2 'अथ शारङ्गः स्तोतकश्चातकः समा'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

3 भारत के पक्षी पृ० 47, का० के० पक्षी पृ० 83

२. पपीहा भारत में सदा निवास करता है जबकि चातक मौसमी पक्षी है. वह वर्षा ऋतु के बाद यहां नहीं रहता.

३. पपीहा गर्मी, वसन्त व वर्षा तीनों ऋतुओं में 'पीऊ-पीऊ' या 'पी पी करता है जबकि चातक केवल पावस में ध्वनि करता है.

४. पपीहा आकाश में उड़ते समय गाता है जबकि चातक किसी घास की ढेर की ओट में.

५. पपीहा लजीला पक्षी है जबकि चातक नहीं.

संस्कृत-साहित्य में वर्णित चातक को श्री हरिदत्त वेदालङ्कार ने तार्किक ढंग से समझाते हुए चोटीदार पपीहे को ही चातक स्वीकार किया है. उनका विचार सुन्दर है, सार्थक है.[4]

चातक की मादा एक बारगी कई अण्डे देती है. यह भी कोयल की भाँति अन्य पक्षियों के घोंसलें में अण्डे को रखकर आराम करता है. चातक की ध्वनि को विभिन्न विचारकों ने 'पी-पी' 'पियु-पियु' व 'पियु–पियु-पी-पी-पियु-पी–पी–पियु' कहा है.[5] चातक का प्रमुख भोजन चींटी, मछलियां, इल्लियां, भौंरे व अन्य कीट-पतंगें हैं. यह कई पक्षियों का पीछा करता हुआ देखा गया है. चातक को पालने के उल्लेख तो नहीं मिलते परन्तु चिड़ियाघरों में इसे पाला जाता है.

भारतीय-साहित्य में चातक के कई आख्यान व लोकगीत मिलते हैं.[6] भर्तृ-हरि ने इसके बारे में लिखा है कि यह स्वाभिमानी पक्षी वन में निवास करता है एवं या तो प्यासा ही मरता है या पुरंदर से पानी मांग कर ही पीता है.[7] चातक को हर बादल से पानी मांगने से मना भी किया गया है कारण कि मेघ जल देने वाला नहीं होता.[8] चातक के मेघ जल मात्र पीने की बात वास्तव में सही नहीं. यह केवल कवि कल्पित है. कहते हैं कि वर्षा का जल पीने के बाद चातक नहीं बोलते क्योंकि उनको इस जल से तृप्ति मिलती है. किन्तु कतिपय

---

4 देखिये—का० के० पक्षी पृ० 82

5 भारत के पक्षी पृ० 48. दि० इ० बर्ड्स पृ० 50

6 'ऊंची जात पपीहरा, पियत न नीचो नीर ।
कै जांचे घनश्याम से, कै दुःख सहे सरीर ।। —तुलसीदास

'रुत आयी रे पपीहा ! थारी बोलण री रुत आयी रे' -राजस्थानी लोकगीत.

7 एक एव खगो मानी, वने वसति चातकः ।
पिपासितो वा म्रियते याचते व पुरन्दरम् ।।

8 नीतिशतक० 51

विद्वानों का मत है कि चातक काम-पिपासा में चिल्लाता है एवं प्रणयोपरान्त भी यह कुछ समय तक कूजता रहता है.[9]

संस्कृत काव्यों में चातक

संस्कृत काव्यों में चातक के लिए कपिञ्जलः एवं चातकः शब्दों का प्रयोग हुआ है.[10]

मानव एवं चातक—राजकुल में चातकों के युद्ध की बात कही है एवं चातक का बांई ओर बोलना यात्रा के लिये शुभलक्षण स्वीकार किया गया है[11] इन दोनों वर्णनों से मानव व चातक के सामीप्य की एक झलक सामने आती है.

क्रिया-कलाप—हर पक्षी की कोई न कोई क्रियात्मक विशेषता हुआ करती है. चातक की मेघजल मात्र पीने की क्रिया उसकी प्रमुख विशेषता है जिसे कालिदास ने 'चातकव्रत' की संज्ञा दी है. विक्रमोर्वशीय में विदूषक द्वारा राजा को जो कि उर्वशी के प्रति अनुरक्त हैं, चातकव्रत करने वाला कहा है.[12] चातक केवल जलवाले मेघ से ही पानी मांगता है बिना जलवाले मेघों से नहीं.[13] चातक को पिऊ-पिऊ कर मेघों से प्यासे होने पर जल मांगने वाला कहा है.[14] चतुर चातक उड़ते-उड़ते ही मेघों से जल के कण ग्रहण कर लेते हैं.[15] बादलों के जल देकर चातकों के आर्तनाद से बचाने वाला एवं बिना मांगे जल देने वाला कहा है.[16] चातकों की उपस्थिति वर्षाकाल के आरम्भ की संसूचक होती है. कालिदास ने चातकों द्वारा मेघ को मार्ग की सूचना देने वाला कहा है.[17] चातक की इन क्रियाओं से दो बातें ध्यान में आती है. पहली तो यह कि चातक वर्षा-काल में ही भारत में आता है और दूसरी यह कि चातक मेघ को देखकर जल की मांग करता हुआ ध्वनि करता है. शरद्ऋतु में चातक आतंकित हो उठते

---

9 भारत के पक्षी पृ० 47

10 कादम्बरी० पृ० 84. मेघ० पृ० 10 उ० 57

11 आबद्धमेष-कुक्कुट–कुरर–कपिञ्जल–कादम्बरी० पृ० 271

12 'अतः खलु भवता.'–विक्रम० 2 गद्य

13 'अम्बुगर्भोहि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते'–रघु० 17/60

14 'तृषाकुलैश्चातक पक्षिणा'–ऋतु० 2/3

15 'अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणा:'-मेघ० पू० 23

16 'शमित चातकार्तस्वरा'–शिशु० 4/24

17 सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्'–मेघ० पू० 22

है.[18] कादम्बरी एवं हर्षचरित में चातक की ध्वनि का वर्णन मिलता है.[19] एक स्थान पर भ्रम में पड़े चातक का वर्णन करते हुए कहा गया है कि तमाल-वृक्ष को जलद समझकर चातक चिल्लाने लगे.[20] अभिज्ञान शाकुन्तलम् के सातवें अंक में चातक द्वारा रथ के अरों में से निकलने की बात कही है.[21] वास्तव में चातक जैसे पक्षी का रथ के अरों में से निकलना सम्भव नहीं जान पड़ता, अतः जर्मन विद्वान पिशेल द्वारा सम्पादित अभिज्ञान शाकुन्तलम् में किये गये–'अयमगाविवरेभ्यचातकै-र्निष्पातद्भिः' पाठ को सही मानते हुए चातकों को पर्वत-गुफा के छेदों से निकलना अर्थ मानना उचित जान पड़ता है.

उपमित चातक—मालविकाग्निमित्र में विदूषक की इच्छा को चातक की इच्छा से उपमित किया है.[22] अकुलीन लोगों को चातकों से उपमित किया गया है.[23] भगवान् शंकर की शरण में आने वाले देवताओं को चातक एवं शंकर को मेघ से उपमित करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार प्यास से चातकगण मेघों से जल की बूंदों को मांगते हैं वैसे ही शत्रुओं से सताये गये देवगण, शंकर से पुत्र उत्पन्न करवाना चाहते हैं.[2] यहां चातकगण व देवगण को एवं मेघ व शंकर को उपमित किया गया है. प्यास को शत्रुओं द्वारा दिये गये कष्ट से उपमित किया गया है. जल व स्कन्द की तुलना की गई है. यह पूर्णोपमा का एक उत्तम उदाहरण है.

सम्पूर्ण काव्यों में चातक का २० बार वर्णन आया है. कालिदास ने चातक का १२ बार वर्णन किया है. बाणभट्ट ने ६ बार एवं माघ व सुबन्धु ने एक-एक बार चातक का वर्णन किया है. भारवि, श्रीहर्ष एवं दण्डी चातक के बारे में चुप हैं. चातक के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में देखा जा सकता है.

---

18 'चकित चातके'–वासवदत्ता पृ० 250

19 'कपिञ्जल–कुल–कल–कूजितम्'–कादम्बरी० पृ० 84

20 'जलधर–जल–लुब्ध'०–कादम्बरी० पृ० 384

21 शाकु० 7/7

22 मालविका० 2 गद्य

23 चातका इव० ह० च० पृ० 235

24 कुमार० 6/27

तालिका–१

'चातक' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (12)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
२	रघु.	५।१७. १७।६०.
२	कुमार.	६।२७. १२।१.
४	मेघ.	१।१०. २२, २३, २।५७.
१	ऋतु.	२।३.
१	शाकु.	७।७.
१	मालविका.	२ गद्य.
१	विक्रम.	२ गद्य.

तालिका–२

'चातक' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (9)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
माघ	१	शिशु.	४।२४.
सुबन्धु	१	वासवदत्ता	पृ. २५०.
बाणभट्ट	३	ह. च.	पृ. ११०, ४१, २३५.
,,	४	कादम्बरी	पृ० ८४, २७१, ३८४; उ. ११६.

गरूड़
THE EAGLE

'उभयपक्षभाजौ द्विजराजौ हरिणाश्रितौच ।'

—नैषध २२/८६

संस्कृत-साहित्य में वर्णित पक्षी जगत् में गरुड़ का स्थान मध्यम रहा है वैदिक-साहित्य से लेकर आधुनिक नवीन संस्कृत-साहित्य तक गरुड़ के वर्णन की धारा अविरल रूप से प्रवाहित होती रही है. वैदिक साहित्य में गरुड़ को महासुपर्ण[1] सुपर्ण[2], श्येन[3] व तार्क्ष्य[4] नामों से संबोधित किया गया है. महाभारत व वाल्मीकि रामायण में गरुड़ विषयक अनेक कथायें मिलती हैं. महाभारत के आदि पर्व में गरुड़ों की उत्पत्ति, उनका सर्पों के साथ वैर सर्पों से बदला व विनता की दासीपन से मुक्ति विषयक कथायें दी गयी हैं.[5] गरुड़ की उत्पत्ति, सांपों के साथ वैर, गरुड़ से गीध की उत्पत्ति व गरूड़ के वेग विषयक वर्णन वाल्मीकि रामायण में भी मिलते हैं.[6] अमरकोष में गरुड़ के नौ नामों का उल्लेख हैं. वे हैं—गरूत्मान् गरुडः, तार्क्ष्यः, वैनतेयः, खगेश्वरः, नागान्तकः, विष्णुरथः, सुपर्णः एवं पन्नगाशनः.[7]

---

1 श० ब्रा० 12/2/3/7

2 ऋक्० 1/164/20, 2/42/2, अ० वे० 1/24/1, 22/7/2, तै० सं० 7/5/8/5, मै० सं० 4/9/19.

3 ऋक्० 1/3?/14, अ० वे० 3/3/4 तै० सं० 2/4/7/1

4 ऋक्. 1/3/93

5 महाभारत–आदि० 20-34

6 'विनतायस्तु गरुणोऽरुण एव च'–वा० रा० अर० 14/31
'भक्षयायास संक्रुद्धो गरुडः पन्नगानित:'–वही० युद्ध० 67/35
'वेनतेयाश्च नो जन्म सर्वेषां वानरर्षभाः'–वही० कि० 58/29
'वैनतेय गतिः परा'–वही० कि० 58/27

7 गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यो वैनतेयः खगेश्वरः ।
नागान्तको विष्णुरथः सुपर्णः पन्नगाशनः' ॥ –इत्यमरः (स्वर्ग वर्गः)

शब्दकल्प द्रुम में गरूड़ के २१ नामों का उल्लेख हैं.[8]

वैज्ञानिकों के मत में गरुड़ मेरुदण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत श्येन वर्ग के श्येन उपवर्ग के श्येन परिवार का सदस्य है.[9] गरुड़-विश्व के अनेक भागों में पाया जाने वाला पक्षी है. मुख्यत: उत्तरी अमेरिका, यूरोप, एशिया, अफ्रीका व दक्षिणी अमेरीका के सभी देशों में गरुड़ पाया जाता है. भारत में गरुड़ काफी पाये जाते हैं.[10]

गरूड़ शक्ति एवं वीरता का प्रतीक माना जाता है. इसी कारण यह अनेक देशों के साम्राज्यों का प्रतीक रहा है व सिक्कों तक में इसके चित्रों का प्रयोग किया गया है. इण्डोनेशिया की वायु सेना का नाम 'गरूड़ इण्डोनेशियन–एयर-वेज' है. इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति के वायुयान का नाम 'गरुड़' है. प्राचीन रोम व ग्रीक के खंडहरों में 'गरुड़' के चित्र बने पदक मिले हैं.[11] अतः गरुड़ का विश्व में अच्छा सम्मान रहा है भारतीय साहित्य में इसे विष्णु का वाहन कहा है.[12]

गरुड़ की सामान्य विशेषताओं पर विचार करने से पूर्व गरुड़ के प्रकारों पर संक्षिप्त विचार करना आवश्यक है अत: गरुड़ के प्रकारों पर विचार करेंगे. वर्ड-बुकइनसाइक्लोपीडिया में गरुड़ के ७ प्रकारों के नाम दिये हैं किन्तु सामान्यत: गरुड़ को मोटे तौर पर २ प्रकार का ही मान कर वर्णन किया गया है. और वे हैं:–

१. गरुड़ या पक्षीराज गरुड़ २. उकाब या छोटा गरुड़.

(१)पक्षीराज गरुड़ :—पक्षीराज गरुड़ बड़े आकार का होता है. इसकी लम्बाई ३५ इन्च के लगभग होती है एवं वजन ८ पौंड के करीब. मादा ४२ इन्च तक लम्बी होती है एवं वजन में १२ पौंड तक होती है.[13] इसके पंखों का रंग उकाब की अपेक्षाकृत अधिक भूरा होता है. इसके पंख पीछे की ओर काफी दूर तक फैले होते है.

(२) उकाब :—वह बड़ा भयंकर जीव है. इसकी शारीरिक संरचना चील से काफी साम्य रखती है. इसकी पूंछ गोलाई लिये होती है इसकी लम्बाई करीब

8 शब्दकल्पद्रुम० 2/509
9 देखिये-जीवजगत् पृ० 363
10 इन० ब्रि० भाग 7 पृ० 822, इन० वर्ड भाग 2 पृ० 4
भारत के पक्षी० पृ० 149, द० स० ए० भाग 2 पृ० 165
11 इन. ब्रि. भाग 7 पृ. 822, भारत के पक्षी. पृ. 151
12 महाभारत. आदि. 33/13–16
13 इन. वर्ड. भाग 2 पृ. 4

२५ इन्च व मादा की २८ इन्च तक होती है. इसका रंग बादामी एवं भूरे का सम्मिश्रण होता है. उकाब का सिर चपटा होता है एवं इसके पर पैरों को ढके रहते हैं. उकाब इतना बहादुर पक्षी है जो खरगोश, बतख व भेड़ों तक को उठा ले जाता है.[14]

गरुड़ आसमान का पक्षी है यह सदा आकाश में तीव्रता से उड़ता फिरता है. ऊंचे-ऊंचे पर्वतों व पेड़ों पर यह यदा-कदा बैठा देखा जा सकता है. इसके घोंसले ऊंचे पेड़ों पर होते हैं. इसके घोंसलों में अनेक छोटे बड़े जीवों के अस्थिपंजर घास फूल, टहनियां इत्यादि देखे जा सकते हैं[15]

गरुड़ के खाद्य पदार्थों के बारे में एक लम्बी तालिका विचारकों ने प्रस्तुत की है वे हैं:—सांप, मांस, मछली, छिपकली, मेंढ़क, भेड़, मेमना, बन्दर, भेड़िया, खरगोश, चूहे, बतख, तीतर, कुररी एवं सभी छोटे बड़े जीव एवं सरीसृप.[16]

गरुड़ का पालन संभव नहीं. यह विशुद्ध गगनचर पक्षी है. इसकी आवाज 'केक-केक-केक-की' या कुक-कुक-कीर-कीर' ध्वनि से साम्य रखती है.[17]

गरुड़ की मादा नवम्बर से जून के मध्य अण्डे देती है. अण्डे १ से ३ तक हो सकते हैं. अण्डे का रंग हल्के राख जैसा या सफेद होता है. इसमें कभी-कभी नीली या बैंगनी झाँई भी देखने को मिलती है[18] गरुड़ का अण्डों पर ३४-३५ दिन बैठे रहना आवश्यक होता है. मादा व नर दोनों बारी-बारी से अण्डों को गर्मी पहुंचाते हैं. गरुड़ के बच्चे दो सप्ताह में उड़ने योग्य हो जाते हैं.[19]

---

14 जीवजगत् पृ. 366,
भारत के पक्षी. पृ. 150

15 वही. वही.

16 का. के. पक्षी. पृ. 116–117
भारत के पक्षी. पृ. 149–50
जीवजगत्–पृ. 365–66
इन. ब्रि. भाग 7 पृ. 822
इन. वर्ड. भाग 2 पृ. 4
ब. स. ए. भाग 2 पृ. 168
ब. ओ. सी. पृ. 25
पा. हैण्ड. पृ. 366

17 वही. पृ 365–66, दि. इन. बर्डस–स. 6, पृ. 69

18 का. के. पक्षी. पृ. 116, जीवजगत्–पृ. 366

19 इन. वर्ड. भाग पृ. 4

संस्कृत काव्यों में गरुड़

काव्यकारों ने गरुड़ को सुपर्णः,[20] वैनतेयः,[21] अहिशत्रु:[22] तार्क्ष्यः,[23] गरुत्मान्,[24] गरुड़:,[25] अरुणानुजः,[26] विनतातनूजः[27] व पन्नगारिः[28] शब्दों से कहा है.

गरुड़ व मानव :—मानव भूपटल पर रहने वाला जीव है तो गरुड़ नभ में विचरण करने वाला पक्षी. अतः इन दोनों का सम्पर्क तो कठिन है किन्तु फिर भी मानव ने गरुड़ के बारे में रुचि प्रदर्शित की है और इसी कारण मानव ने उसका वर्णन किया है. भगवान् कृष्ण के ध्वज में मानव ने गरुड़ का चिह्न रक्खा है एवं कृष्ण को गरुड़ध्वज कहा है.[29] विक्रमोर्वशीय में राजा अपने रथ के तीव्र वेग को देखकर गरुड़ को जीतने की बात कहता है.[30] अतः मानव व गरुड़ का सम्बन्ध स्वीकार किया जा सकता है, भले ही वह पास का न हो.

क्रिया कलाप :—काव्यकारों ने गरुड़ के क्रिया-कलापों का काफी वर्णन किया है. नैषधकार ने गरुड़ की क्रियाओं पर प्रकाश डालते हुए उसे दोनों पंखों से युक्त पक्षीराज एव भगवान् विष्णु के आश्रित कहा है.[31] गरुड़ व इन्द्र के युद्ध का उल्लेख मिलता है जो युद्ध अमृत की प्राप्ति के लिये किया गया था.[32] किराता-र्जुनीय में भगवान शंकर द्वारा उपस्थित करवाये गये गरुड़ों द्वारा आकाश में व्याप्त होकर वनस्पति एवं पर्वतों को प्रकम्पित करने के उल्लेख मिलते हैं.[33]

---

20 कादम्बरी. पृ. 7
21 द. च पृ. 333
22 द. च. पृ. 343
23 रघु. 6/49
24 बु. च. 13/54
25 रघु. 11/27
26 कादम्बरी. पृ. 95
27 नैषध. 3/37
28 शिशु. 3/23
29 'पयांसि भक्त्या गरुडध्वजस्य ध्वजानिवोच्चिक्षिपिरे फणीन्द्रा'—शिशु. 3/77
30 'वैनतेयमप्यासादयेयम्'–विक्रम. 1 गद्य
21 उभयपक्षभाजौ द्विजराजौ हरिणाश्रितौ च'–नैषध. 22/89
32 'गरुडामहेन्द्रसमरः'–वही. 21/160
33 गरुत्मतां संहतिभिविहायः क्षणप्रकाशाभिरिवावतेने'–किरात. 16/43

किन्तु ये सभी उल्लेख कल्पनाप्रसूत है, सत्य नहीं. रघुवंश में गर्भवती रानियों को स्वप्न में गरुड़ आकाश में ले जाता हुआ वर्णित किया गया है.[34] सर्पों को वश में करने वाली विद्या को गारुड़ी विद्या कहा है. इस विद्या से मनुष्य को विषरहित करने के उल्लेख मिलते हैं.[35] कादम्बरी में उज्जयिनी के निवासियों के लिए कहा गया है कि वे गारुड़ी विद्या जानते हुये भी भुजंग संगम (गणिकादि संगम) से डरते थे.[36]

गरुड़ व सांपों का वैर माना है.[37] कृष्ण के पास निवास करने वाले गरूड़ द्वारा सांपों को भयभीत करने की बात कही गयी है.[38] रघुवंश में गरुड़ भय से कालिय नाग के द्वारा यमुना जल में निवास की बात कही है.[39] राम व लक्ष्मण के सर्पबंधनों को काटकर मुक्त करने में गरुड़ का हाथ रहा है, इस प्रकार काव्यकारों द्वारा गरुड़ की विभिन्न क्रियाओं का काल्पनिक एवं वास्तविक दोनों प्रकार का वर्णन प्रस्तुत किया गया है.

उपमित गरुड़ :—संस्कृत काव्यकारों ने गरुड़ की विभिन्न क्रियाओं को सजीव व निर्जीव वस्तुओं से उपमित किया है. विनतापुत्र गरुड़ से कुबेर शूद्रक एवं अर्थपति को उपमित किया गया है. काव्यकार तीनों के बारे में लिखते हैं कि गुरु में पक्षपात करने वाले कुबेर नामक द्विज विनता के पुत्र गरुड़ के समान हुए गरुड़ ने अपनी माता को जिस प्रकार आनन्दित किया उसी प्रकार शूद्रक ने अपने अधीनों को आनन्दित किया एवं अर्थपति कुबेर से उसी प्रकार उत्पन्न हुये जिस प्रकार विनता के गर्भ से पक्षियों के अधिपति गरुड़.[40] राजा चिन्तामणि के पुत्र कन्दर्पकेतु को विनता पुत्र की भांति आनन्दित करने वाला बतलाते हुए गरुड़ से

'जस्तृणानीव वियन्निनाय वनस्पतीनां गहनानि वायुः'—वही. 16/44
'हिमाचलः क्षीव इवाचकम्पे'—वही. 16/46

34 'उह्यन्ते स्म सुपर्णेन वेगाकृष्टपयोमुचा'— रघु. 10/61

35 'पितेन च मया वैनतेयनागतेन निर्विषीकृतम्'—द. च. पृ. 333

36 'संगृहीत गारुडेनापि भुजंगभीरुणा'—कादम्बरी. पृ. 157

37 'फणावतस्त्रासयितु रसायास्तलं विवक्षन्निवपन्नगारि''—शिशु 3/23

38 'त्रस्तेन तार्क्ष्यातिकल कालिदयेन मणिं निसृष्टं यमुनौकसो यः'—रघु 6/49

39 'गरुडायातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबन्धनः'—वही. 12/76

40 'क्रमेण कुबेरनामा वैनतेय इव गुरुपक्ष पाती द्विजो जन्म लेभे' —ह. च. पृ. 72
'वैनतेय इव विनतानन्दजनन.'—कादम्बरी. पृ. 13
'अभूतसुपर्णो विनतोदरादिव'—वही. पृ. 7

उपमित किया गया है.[41] तपोवन से स्वामी जाबालि की तुलना अपने प्रभाव के स्वामी—गरुड़ से की है.[42] शबर सेनापति की समता अनेक सांपों के दांतों को तोड़ने वाले गरुड़ से की है.[43] राजवर्धन एवं हर्षवर्धन को अरुण (गरुड़ का भाई) एवं गरुड़ के समान एक ही बतलाया है.[44] पाँडवों के पराक्रम को याद कर नत-मस्तक होने वाले सुयोधन को गरुड़ के पराक्रम से नतमस्तक होने वाले सांप से उपमित किया गया है.[45] यहां पाण्डवों को गरुड़ व सुयोधन को उनके पराक्रम से भीत सर्प कहा गया है. बड़े-बड़े राक्षसों से युद्ध करने वाले राम को बड़े-बड़े सांपों के हनन करने वाले गरुड़ से उपमित करते हुए कहा है कि बड़े सर्पों पर आक्रमण करने वाला गरुड़ क्या कभी जल के छोटे-छोटे सांपों पर आक्रमण करता है?[46] भैरवाचार्य के नाक की तुलना गरुड़ के नाक से करते हुए नाक के अग्रभाग को झुका हुआ कहा है.[47] भगवान् शंकर द्वारा गरुड़ का आविर्भाव करके सर्पों को नष्ट करने की तुलना नेता द्वारा शत्रुकृत राष्ट्र के भेद निवारण से की है.[84] मुनि की तुलना गरुड़ से करते हुए कहा है कि वह मुनि राक्षसों से न डरा न सिकुड़ा जैसे कौए के शब्दों से गरुड़ न डरता है, न सिकुड़ता है.[49] कुमार द्वारा राजाओं को सुरंग मार्ग से स्त्रियों के समीप लाने की समता गरुड़ द्वारा सांपों को लाने से की गयी है.[50] चन्द्रापीड के अश्व इन्द्रायुध, नल के अश्व एवं बुद्ध के अश्व—कन्थक के वेग की समता गरुड़ के वेग से की गयी हैं.[51] ये सभी वर्णन वास्तविक हैं क्योंकि गरुड़ का वेग काफी तेज होता है एवं अश्व का वेग भी. यदि गरुड़ को नभ का

---

41 'वैनतेयमिव स्वप्नभावोपात्तसकल-द्विजाधिपत्यम्—वही. 134

42 'तार्क्ष्य इव विनताऽऽनन्दकर:'—वासवदत्ता पृ. 23

43 'अरुणानुजमिवोद्धृतानेक महानाग-दर्शनम्'—वही. पृ. 95

44 'अरुण गरुडाविव हरिवाहन विभक्त शरीरौ'—ह. च. पृ. 232

45 'तवाभिधानाद् व्यथते नताननः'—किरात. 1/24

46 किं महोरगविसर्पिविक्रमो राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते' —रघु. 11/27

47 'तार्क्ष्य तुण्डकोटिकुब्जाग्रघोषम्' —ह. च. पृ. 176

48 'तमाशु चक्षुः श्रवसां समूहं मन्त्रेण तार्क्ष्योदयकारणेन' —किरात. 16/42

49 'मुनिर्न तत्रास न संचुकोच रावै गरुत्मानिव वायसानाम्' —बु. च. 15/34

50 ह. च पृ. 324

51 'आकृष्य च तमहिमिवाहिशत्रुः स्फुरन्तमुनैवभितिरन्ध्रपथेन स्वैरेण संनिधिम-नैषम्'—द. च. पृ. 343

राहु की तुलना करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार गरुड़ ब्राह्मणों को खाने से गले में लगी जलन के कारण उन्हें छोड़ देता है उसी प्रकार संभवतः यह राहु चन्द्रमा को छोड़ देता है क्योंकि इसके भक्षण से उसका गला जलने लगता है.[53] आकाश में विचरण करने वाले गरुड़ की समता समुद्र में विद्यमान सुमेरु पर्वत से की है.[54] जब रामचन्द्र अपने भाइयों सहित विवाह कर लौट रहे थे उस समय तीव्र वायु के कारण धूल उड़ी एवं उसने सूर्य के चारों ओर एक मण्डल सा बना लिया वह मण्डल गरुड़ के द्वारा मारे गये सर्प के समान एवं सूर्य सर्प मणि के समान प्रतीत हो रहा था.[55] विष्णु युक्त गरुड़ की मूर्ति की सुन्दरता से उज्जयिनी की मनोहरता को उपमित किया गया है.[56] गरुड़रत्नों की गरुड़-पंखों से समता बतलाते हुये कहा है कि छत्रों में गरुडरत्न पिरोये गये थे जैसे विष्णु के नाभि-कमलों में गरुड़ पंख लगे रहते हैं.[57] इस प्रकार काव्यकारों ने गरुड़ की क्रियाओं को उपमित किया है.

सम्पूर्ण काव्यों में गरुड़ का उल्लेख कुल ४६ बार हुआ है, सबसे अधिक गरुड़ का वर्णन बाणभट्ट के काव्यों में मिलता है. उन्होंने गरुड़ का १३ बार वर्णन किया है. महाकवि माघ, श्री हर्ष, भारवि, श्री कालिदास, अश्वघोष, दण्डी व सुबन्धु ने क्रमशः ७, ६, ६, २, २ व १ बार गरुड़ का वर्णन किया है. इस प्रकार सभी काव्यकारों ने गरुड़ के प्रति अनुराग प्रदर्शित किया है इसका प्रमुख कारण कवियों का ईश्वर के प्रति विशेष प्रेम रखना है. पन्नगाशन के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकालों में स्पष्ट किया गया है.

अश्व एवं अश्व कोरती का गरुड़ भी कहें तो अनुचित न होगा.[52] गरुड़ एवं

---

52 'गरुड-सम-जव-इन्द्रायुधनामा तुरंगभः'—कादम्बरी. पृ. 237
'जव-प्रति-पक्षमिव गरुत्मतः'—वही. पृ. 242
'विना पतत्रं विनता तनूजैः'—नैषध. 3/37
'उपेयिवासं प्रतिमल्लतां रयस्यते जितस्य प्रसभं गरुत्मतः'—वही. 1/63
'तार्क्ष्योपमजवं तुरगम्'—बु. च. 6/5

53 'गरुड वद्द्विजवासनमोज्झित '—नैषध. 4/71

54 'गगनार्णवमन्तरा०'—शिशु 20/54

55 'वैनतेनशमितस्य भोगिनो भोगवेष्टित इव च्युतो मणिः' —रघु. 11/59

56 'गरुड मूर्तिरिवच्युतस्थितिरमणीया'—कादम्बरी. पृ. 161

57 'नारायणनाभिपुण्डरीकैरिवश्लिष्ट गरुड पक्षैः'—ह. च पृ. 100

तालिका—१

'गरुड़' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (6)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
५	रघु०	६।४६. १०।६१. ११।२७. ५६. १२।७६.
१	विक्रम०	१ गद्य.

तालिका—२

'गरुड़' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (40)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	२	बु० च०	६।५. १३।५४.
भारवि	६	किरात०	१।२४. १६।४२ से ४६.
माघ	९	शिशु०	३।२३, ७७, ५।१३, २०।५४ से ५९.
श्रीहर्ष	७	नैषध०	१।३२, ६३. ३।३४, ३७. ४।७१. २१।१६०, २२।८९.
सुबन्धु	१	वासवदत्ता	पृ० २३.
बाणभट्ट	५	ह० च०	पृ० ७२, १००, १७६, २३२, ३२४.
,,	८	कादम्बरी	पृ० ७, १३, ९५, १३४, ५७,६१, २३७. ४२.
दण्डी	२	द० च०	पृ० ३३३, ३४३.

गृध्र
THE VALTURE

'गृध्रपक्षपवनेरितध्वजम् ।'
—रघु० ११/२६

संस्कृत-साहित्य में गृध्र का वर्णन बहुत कम देखने में आया है. वैदिक-साहित्य में गृध्रः व सुपर्णः शब्द गृध्र के वाचक रहे हैं.[1] वीरकाव्य साहित्य में गृध्र के जो वर्णन मिलते हैं उनमें रामायण का 'जटायुरभियोग' नामक सर्ग प्रसिद्ध है.[2] अमरकोष में गीध के दो नाम गृध्र व दाक्ष्यं मिलते हैं.[3] वैज्ञानिकों के मत में गीध मेरु-दण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत श्येन वर्ग के श्येन-उपवर्ग के गृध्र परिवार का सदस्य है.[4]

गृध्र शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के गृध्र् (लालच करना) धातु से मानी जाती है जो आंग्लभाषा के Greedy का पर्याय है.

गीध परिवार एक छोटा परिवार है किन्तु इसमें भी अनेक किस्में हैं. जिनमें चमरगीध, राजगीध एव गोबरगीध प्रमुख हैं. गीध भारत, चीन, मिश्र, यूरोप व अफ्रीका के अनेक देशों में पाया जाता है[5] यह एक भयानक पक्षी है जिसका आकार विशाल है. इसकी लम्बाई ३५ इञ्च के करीब होती है यह काले व सफेद पंखों से युक्त होता है. गीध की आंखें भूरी, चोंच काली एवं डेने सफेद होते हैं जिनमें काले रंग की छाया होती है. राजगीध के शरीर में कालापन अधिक एवं चमरगीध में धवलता अधिक होती है.

गीध की मादा आकार में गीध के समान ही होती है एवं देखने में खूबसूरत

---

1 ऋक्० 1/118, अ० वे० 7/95/1 ऋक्० 1/164/20 अ० वे० 1/24/1

2 'जटायुरिति मां विद्धि'०–वा० रा० अ० 14/32
'गृधः सम्पतते शीर्षं० महाभारत'–भीष्म 3/31

3 'दाक्षाय्य गृध्रौ' —इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

4 जीवजगत्० पृ० 378

5 इन० ब्रि० भाग 23 पृ० 269

नहीं होती. गीध का प्रमुख खाद्य है—मृत जीव. एक जीव के मरते ही अनेक गीध मिलकर उसे बहुत जल्दी ही चट कर जाते हैं.[6] यह दृश्य भारतीय देहातों में अत्यन्त सुलभ है. गीध खाते समय जमकर खाते हैं. यहाँ तक कि हड्डियों को भी चबा डालते हैं. मुर्दों का भक्षण करने से इसके शरीर से उत्कट दुर्गन्ध निकलती रहती है. इसका प्रमुख निवास मुर्दालय है अर्थात् जहां अधिक मुर्दे मिल सकें उसी प्रान्त में गीधों को पेड़ों पर बैठे देखा जा सकता है. शिकारी लोग पेड़ों पर गीध की उपस्थिति से शेर व चीते के निवास का आसानी से पता लगा लेते हैं. शेर आदि हिंसक पशुओं द्वारा खाने के बाद अवशिष्ट मुर्दों पर रात्रि में इनका पूर्ण अधिकार रहता है [7] गीध शुद्ध जंगली जीव है. इसका पालन नहीं होता क्योंकि यह एक गन्दा पक्षी है. जिस प्रकार जानवरों में लकड़बघा भंगी है उसी प्रकार पक्षि-समाज में गीध. भारतीय समाज में गीध को अशुभ पक्षी माना गया है. गोबरगीध गोबर एवं मल खाता है.

राजगीध के अण्डे देने का समय दिसम्बर से अप्रैल का है. गोबर गीध की मादा फरवरी से अप्रैल एवं चमर गीध की मादा सर्दी में अण्डे देती है. गीधों के घोंसले पेड़ों पर ही होते हैं. जिनमें चिथड़े, ऊन, लकड़ियां व बाल आदि का सम्मिश्रण होता है.[8]

गतिशील गीधों का रतिकार्य आकाश में ही अनेक कलाबाजियों के माध्यम से होता है.[9] गिद्ध की दृष्टि सब पक्षियों से तीक्ष्ण होती है. यह तीन-चार मील तक आसानी से देख सकता है. यह देख कर ही अपने भोजन की तलाश करता है.[10] गीध आकाश में कोसों उड़ता है एवं केवल सूर्य-स्नान ही करता है. सूर्य-स्नान से इसके शरीर से बदबू कम आने लगती है.[11]

संस्कृत काव्यों में गृध्र

संस्कृत काव्यों में गीध के लिये गृध्र शब्द का ही प्रयोग हुआ है.[12]

मानव एवं गीध—यद्यपि मनुष्य ने सदा सर्वदा गीध को हीन भाव से ही

---

6 पा० हैण्ड० पृ० 45
7 यथोपरि, ए० किग० पृ० 439 व 551
8 ब० ओ० सौ० पृ० 46, पा० हैण्ड० पृ० 357
9 ब० ओ० सौ० पृ० 39
10 भारत के पक्षी पृ० 159, इन० ब्रि० भाग–23 पृ० 262
11 भारत के पक्षी पृ० 160
12 रघु० 1/54 शिशु० 18/22 ह० च० पृ० 456

देखा है किन्तु फिर भी साहित्य जगत् में मानव व गीध के आपसी सम्बन्ध के कतिपय उदाहरण उपलब्ध होते हैं. गीध के पंख से युक्त बाण का उल्लेख मिलता है.[13] क्षत्रिय कुमार द्वारा गीध को मारने का वर्णन कालिदास ने किया है जबकि अश्वघोष एक पर्वत का वर्णन करते हैं जिसका नाम 'गृध्रकूट' है.[14]

गृध्र-विशेष : जटायु—गृध्रराज जटायु का नाम भारतीय-साहित्य में अमर रहेगा. जटायु एक गृध्र विशेष है जिसके मन से मानवता के लिये दया एवं दानवता के लिये क्रोध की भावना स्थित है. रघुवंश के बारहवें सर्ग में राक्षसराज रावण सीताजी को चुराकर ले जाता है. इस प्रसंग में जटायु का वर्णन आता है कि वह रावण के साथ भयंकर युद्ध करता है एवं उसका मार्गविरोध करता है.[15] राम व लक्ष्मण सीता की खोज में पंख कटे जटायु से मिलते हैं.[16] यह मरणासन्न जटायु राम व लक्ष्मण को यह सूचित करता है कि लंकाधिराज दशानन जानकी का हरण कर ले गया है. जटायु के रक्त से सने होने का वर्णन इस बात को स्पष्ट करता है कि वह जी जान से रावण के साथ लड़ा है.[17] इसके पश्चात् जटायु के देह-त्याग व राम द्वारा पिता की मृत्यु के समान जटायु की मृत्यु पर दुःख प्रकट करने का वर्णन कवि ने किया है. तदनन्तर कवि जटायु के दाह-संस्कार का भी उल्लेख करते हैं.[18] इस प्रकार जटायु एक नेक गीध के रूप में हमारे सम्मुख आता है. इन सभी वर्णनों में यदि सत्य का अन्वेषण करें तो यही विचार आता है कि सम्भवतः काव्यकारों ने पक्षी-प्रेम को प्रदर्शित करने मात्र के लिये ये वर्णन किये हों. हां, मानव या दानव के साथ गीध की झड़प सम्भव है किन्तु यह बात कुछ कम समझ में आती है कि क्या उस समय वहां जटायु मात्र ही उपस्थित था ? दूसरे गीध नहीं ? यदि दूसरे गीध वहां उपस्थित थे तो वे सीता को रावण से अवश्य छुड़ा सकते थे. एक ही गीध का एक स्थान पर रहना ठीक जान नहीं पड़ता क्योंकि यह एक सामुदायिक पक्षी है. दूसरे जटायु में जो दया के भाव व मानव के प्रति सहायता का दृष्टि-कोण प्रदर्शित किया गया है वह गीध में सम्भव नहीं. अतः जटायु

---

13 शिशु० 18/22

14 'क्षत्रियकुमार'०–विक्रम. गद्य 5

15 जहार सीतां पक्षीन्द्र'०–रघु. 12/53

16 'तौ सीतान्वेषणौ गृध्र'० —वही. 12/54

17 'स रावणा हृता'० —यथोपरि. 12/55

18 यथोपरि. 12/56

विषयक यह आख्यान कपोल कल्पित है, साहित्य का विषय है, सत्य नहीं. जटायु के भाई सम्पाति से राम के मिलने का भी वर्णन मिलता है.[19] इस प्रकार मानव व गीध के सम्बन्धों को कवि कालिदास ने वर्णन किया है. यह सम्पूर्ण आख्यान रामायण पर आधारित है.

गीध के क्रिया-कलाप—गीध के क्रिया-कलापों का कवियों ने सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है. मांस का टुकड़ा समझकर मणि को लेकर भागने वाले गीध का वर्णन मिलता है.[20] यहां गीध के मूर्खत्व का प्रमाण प्रस्तुत किया गया है. अनेक गीधों द्वारा सांपों को चोंच में दबाकर आकाश में चक्कर लगाने का भी उल्लेख मिलता है.[21] चिता के धूम से मलिन यमराज की पताकाओं पर गीधों द्वारा दृष्टि ड़ालने का वर्णन मिलता है.[22] कुमार सम्भव में तारक व उनके साथियों के ऊपर गीधों के बारम्बार मण्डराने का वर्णन किया गया है. रघुवंश में राक्षसों की सेना की पताकाओं का गीध के पंखों की फड़फड़ाहट से हिलने का वर्णन उपलब्ध है.[23] शाकुन्तलम् में चोरों को प्राणदण्ड देने की कल्पना करते हुए सिपाही मछियारे से कहते हैं कि वह गीधों का भोजन बनेगा.[24] इन सभी वर्णनों से समारे सम्मुख दो बातें आती है—

१. गीध मांस प्रेमी जीव है जो मांस की तलाश में इधर-उधर उड़ता रहता है.

२. गीध का सिर पर उड़ना अशुभ लक्षण है. तारक के सिर पर गीधों का मण्डराना उसकी मृत्यु का संदेश था.

उपमित गीध—मालविकाग्निमित्र में राजा को गीध से उपमित किया गया है. मालविका को चाहने वाले राजा को विदूषक उस गीध्र के समान बतलाया है जो बूचड़ खाने पर मांस के लोभ से मण्डराता है, पर उसे भय है.[25] यहां राजा को गीध, मालविका को मांस एवं रानी को भय का कारण बतलाया है. जिस

---

19 'तस्याः सम्पातिदर्शनात्'. —यथोपरि. 12/60

20 'मणिराषिशंमिकना गृध्रेणाक्षिप्तः' —विक्रम. 5 गद्य

21 गृधश्च बहव. ह. च. पृ. 126

22 'बहुचिताधूमधूसरित.' ह. च. पृ. 456

23 'अपाति गृध्रै'. —कुमार. 15/29

'गृध्रपक्षनवनेरित ध्वजम्' —रघु. 11/26

24 'गृध्रवलिर्भविष्यसि' —शाकु० 6 गद्य

25 'भवानपि'. —मालविका. 2 गद्य

प्रकार कूचड़खाने से मांस का टुकड़ा प्राप्त करना गीध के लिये कठिन है उसी प्रकार राजाधिराज के लिये महारानी धारिणी की कैद से मालविका को प्राप्त करना दुष्कर है. राजाओं को धनरूपी ग्रास करने वाले गीध कहा है.[26] आकाश में मणि लेकर उड़ने वाले गीध को घने बादल के खण्ड से उपमित किया है एवं मणि को मंगल तारे से.[27] गीध काले रंग का पक्षी है एवं बादल भी. दोनों ही नभचर हैं. इसी प्रकार मणि लाल होती है एवं मंगल तारा भी. अतः उपमा सुदंर है, सार्थक है.

दो किरात सेनाध्यक्षों के युद्ध को दो गृध्रों के युद्ध से उपमित किया गया है.[28] वास्तव में गीध व किरात दोनों ही कृष्णवर्ण के एवं लड़ाकू प्राणी हैं. कवि की कल्पना साकार है.

सम्पूर्ण संस्कृत काव्यों में गीध का कुल मिलाकर १९ बार उल्लेख मिलता है. गीध का सबसे अधिक वर्णन महाकवि कालिदास ने किया है. उनके काव्यों में १२ बार गीध का वर्णन आया है. बाणभट्ट ने गीध को तीन बार याद किया है जबकि अश्वघोष, सुबन्धु एवं दण्डी ने एक-एक बार ही गीध पर कृपा की है. श्रीहर्ष गीध के प्रति मौन धारण किये हुये हैं. गीध के वर्णन का विश्लेषण संलग्न तालिका-द्वय में दर्शनीय है.



26 'धन-पिशित-ग्रास-गृध्रै' –कादम्बरी. पृ. 331

27 गृध्रयोः तयो.–बासवदत्ता. पृ. 253

28 नवत–मिवलोहितांग.–विक्रम. 5/4

तालिका—१

'गृध्र' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (12)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
६	रघु०	११।२६. १२।३५ से ५६, ६०.
१	कुमार०	१५।२६.
१	शाकु०	६ गद्य.
१	मालविका०	१ गद्य,
३	विक्रम०	५ गद्य, ४, ग.

तालिका—२

'गृध्र' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (7)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	१	बु० च०	२१।४१.
माघ	१	शिशु०	१८।२२.
सुबन्धु	१	वासवदत्ता०	पृ० २५३.
बाणभट्ट	२	ह० च०	पृ. २८२, ४५६.
,,	१	कादम्बरी.	पृ. ३३१.
दण्डी	१	द. च.	पृ. १२६.

श्येन
THE FALCON

'आद्दाना भृशं पादैः श्येनाव्यानशिरेनभः ।'
—कुमार० १६/२८

संस्कृत-साहित्य में श्येन का वर्णन गौण रहा है. वैदिक साहित्य में बाज को श्येन एवं तीव्रगामी बाज को क्षिप्र श्येन नामों से कहा गया है.[1] वीरकाव्य साहित्य में बाज विषयक वृतांत मिलते हैं. श्येन व कबूतर का सम्बन्ध महाराजा शिवि की कथा से है.[2] अमरकोष में बाज के लिये पत्री एवं श्येनः शब्दों का प्रयोग हुआ है.[3] वैज्ञानिकों के अनुसार बाज मेरु-दण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत पक्षि-श्रेणी के श्येन-वर्ग श्येन उपवर्ग के श्येन-परिवार का पक्षी है.[4]

श्येन विश्व के अनेक भागों में निवास करने वाला पक्षी है. यह मुख्यतः उत्तरी अमेरिका, यूरोप, फिलीपाइन, अफ्रीका, मलाया, वर्मा, लंका, एशिया-माइनर, मध्य एशिया एवं भारत के विभिन्न भागों में पाया जाता है.[5]

श्येन का आकार गृह-काक से बड़ा होता है. यह लम्बाई में २० इञ्च का पक्षी है. मादा व नर एक रंग रूप के होते हैं. श्येन के पंखों का ऊपर का भाग गहरा सलेटी पूर्ण भूरा होता है व सिर व गर्दन के भाग काले होते हैं. इसकी आँखें काली होती हैं. इसकी चोंच घुमावदार होती है एवं सिलेटी रंग की होती है. टांगे पीली या नारंगी रंग की होती है. बाज के पंख बड़े मजबूत होते हैं.[6]

---

1 ऋक्० 1/32/4 अ० वे० 7/41/2 तै० सं० 2/4/7/1 मै० सं० 3/11/11 श० ब्रा० 10/5/2/10

2 'श्येनः कपोतानत्तीति स्थितिरेषा सनातनी' –महाभारत (वन पर्व) 31/20

3 'पत्री श्येनः'–इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

4 जीवजगत्० पृ० 366

5 इन० वर्ड० भाग 6 पृ० 15, ए किंग. पृ. 958 ब. स. ए. पृ. 168–69

6 ब. ओ. सो. पृ. 54 भारत के पक्षी. पृ. 147, जीवजगत्. पृ. 367

बाज की मादा को जुर्रा कहते हैं जो बड़ी चतुर होते हुए भी शीघ्र पालतू बना ली जाती है.[7]

वाज मांसाहारी पक्षी होने के नाते छोटे–बड़े जानवर, चिड़िया, सरीसृप, कबूतर, वनमुर्गी, खरगोश, कुररी, उल्लू, मैना, चूहे, छिपकली व टिड्डी इत्यादि को खाकर अपना पेट पालता है.[8] यह तीव्रगामी से तीव्रगामी पक्षी को आकाश में झपट लेता है एवं अपनी तीक्ष्ण चोंच से उसे चीरकर खा जाता है.

श्येन की मादा मार्च से जून के बीच पेड़ की टहनियों में घोंसला बनाकर ३–४ अण्डे देती है. इसके अण्डे सफेद रग के होते हैं एवं उन पर चित्तियाँ भी होती हैं.

बाज अन्य पक्षियों के लिए बडा ही डरावना पक्षी है. छोटे-छोटे पक्षी तो इसको देखते ही होश खो बैठते हैं. बाज एक लड़ाकू पक्षी रहा है. इसे अनेक राजा-महाराजा अपने हाथ पर लिये घूमा करते थे जिनमें प्रमुख हैं–अकबर, गुरु गोबिंद-सिंह, सम्राट फ्रेडरिक–द्वितीय (जर्मनी), महारानी एलिजाबेथ–प्रथम. इटली के साहित्य में भी ऐसे वर्णन मिलते हैं जिनमें वहां के सम्राटों द्वारा बाज को लेकर घूमने के वर्णन प्रमुख हैं. राजस्थानी कहावतों में बाज की शान को 'रजपूती शान' कहा है.[9]

बाज को बोली की' ....की..................की............''लम्बी आवाज होती है.

बाज के अनेक प्रकार इस भू–पटल पर विद्यमान हैं. उन सबका यहां वर्णन करना सम्भव नहीं, अतः उनका नामोल्लेख मात्र करते हैं–

(१) लगर.	(२) सकेर.
(३) बहरी.	(४) शाहीन.
(५) शिकरा.	(६) वाशा.

संस्कृत-साहित्य में श्येन शब्द का प्रयोग इन प्रकारों के अर्थ में सर्वदा होता रहा है अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में श्येन शब्द इन सभी पक्षियों की विशेषताओं को सामान्य रूप से प्रदर्शित करने में सहायक हो सकेगा.

संस्कृत काव्यों में श्येन

संस्कृत काव्यकारों ने बाज के लिए श्येनः शब्द का ही प्रयोग किया है.[10]

---

7 भारत के पक्षी पृ. 148
8 ब. औ. सो. पृ. 56, भारत के पक्षी पृ. 147
9 'बाज झपट कर वास, रजपूती सो राजिया'–राजिया के दोहे
10 रघु० 7/46–कादम्बरी० पृ० 115

श्येन व मानव के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में संस्कृत काव्यकार मौन हैं.

क्रिया-कलाप—कालिदास ने रघुवंश में श्येन के क्रिया-कलापों का वर्णन करते हुए उन्हें युद्ध से सम्बन्धित बताया है. अज के विवाहोपरान्त उसके विरोधी राजाओं के साथ होने वाले युद्ध में राजाओं के कटे हुए सिरों का बहुत देर तक भूपटल पर न गिरने का कारण बतलाते हुए महाकवि ने लिखा है कि राजाओं के सिर युद्ध स्थल से उड़ने वाले बाजों के पंजों में फंस जाते थे अतः वे देर में पृथ्वी पर गिरते थे.[11] दूसरे स्थान पर शिव के धनुष भंग के बाद परशुराम के आगमन पर अपशकुनों का वर्णन करते हुए बाज के कारण मटमैली दिशाओं का उल्लेख किया गया है.[12] कुमारसम्भव में भी देवासुर-संग्राम के प्रसंग में बाजों द्वारा पंजों में राजाओं के सिरों को लेकर आकाश में भ्रमण करने का वर्णन किया गया है.[13] कादम्बरी में हारीत एक अन्य कुमार से शुक के विषय में कहता है कि वह (शुक) किसी बाज के मुख से छूटकर आ गिरा है.[14] बाज के झपटने का वर्णन दण्डी ने किया है.[15] इन वर्णनों के आधार पर हम निम्न निष्कर्षों पर पहुंचते हैं.

(१) श्येन युद्ध स्थल में उड़ते हैं.
(२) इनके पंख मटमैले होते हैं.
(३) श्येन कटे हुए सिरों को लेकर आसानी से गगन में उड़ सकते हैं.
(४) यह छोटे-छोटे पक्षियों का कट्टर शत्रु है.

उपमित श्येन—आग के जलने से वन के नष्ट होने की समता बाज के द्वारा विनिष्ट पक्षियों के घोंसलों से की गई है.[15] रोती हुई स्त्री की समता बाज के द्वारा घायल चक्रवाकी से की है.[16] नन्द की तुलना बाज के भय से अलग हुए पक्षी से की है.[17] युद्ध के कारण आकाश में अनेक तीर व्याप्त होने लगते हैं एवं उससे जो ध्वनि निकलती है उस ध्वनि को बाज पक्षी के रोने की ध्वनि से उपमित किया गया है.[18] इस प्रकार विभिन्नावसरों में काव्यकारों ने श्येन को उपमित किया है.

---

11 'हृतान्यपि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि चिरेणपेतुः' —रघु० 7/46
12 'श्येनपक्ष परिधूसरालकाः' —यथोपरि. 11/60
13 'श्येन-मुख-परिभ्रष्टेनवाऽनेन भवितव्यम्' —कादम्बरी. पृ. 115
14 'श्येनपातोत्क्रोशपातादीनि' —द० च० पृ० 8/46
15 'क्वचिच्छकुनिकुलकुलायपातिनः श्येनाः' —ह० च० पृ० 87
16 'चूकूजश्येनाग्रपक्षक्षत चक्रवाका' —सौ० नं० 6/30
17 'अवशः खलु'० —यथोपरि० 8/20
18 'ररास विरसं व्योम श्येन प्रतिखश्छलात्' —कुमार० 16/12

सम्पूर्ण काव्यों में श्येन का कुल १० बार वर्णन आया है. श्येन का सबसे अधिक उल्लेख महाकवि कालिदास ने किया है. उन्होंने श्येन का ४ बार वर्णन किया है. कालिदासोत्तर कालीन साहित्यकारों में अश्वघोष व बाणभट्ट ने श्येन का दो-दो बार एवं श्रीहर्ष व दण्डी ने एक-एक बार श्येन का उल्लेख किया है. प्रस्तुत तालिकाओं में श्येन के काव्यात्मक वर्णन का विश्लेषण देखा जा सकता है.

तालिका (१)

'श्येन' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (4)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
२	रघु०	७।४६ व ११।६०
२	कुमार०	१६।१२, २८.

तालिका (२)

'श्येन' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (6)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	२	सौ० न०	६।३० व ८।२०.
श्रीहर्ष	१	नैषध०	१६।१२.
बाणभट्ट	१	ह० च०	पृ० ८७.
,	१	कादम्बरी	पृ० ११५.
दण्डी	१	द० च०	पृ० ८।४६.

कपोत
THE PIGEON

तां कस्यांचिद् भवनवलभौ सुप्तपारावतायाम्
—मेघदूत, पृ० ४२

संस्कृत साहित्य में कपोत का स्थान सर्वथा गौण रहा है, वैदिक साहित्य में कपोत के उल्लेख मिलते हैं.[1] वीरकाव्य साहित्य में भी कबूतर के उल्लेख मिलते हैं.[2] अमरकोष में कबूतर के लिये तीन नाम—पारावतः, कलरवः व कपोत मिलते हैं.[3]

कबूतर विश्व के अनेक भागों में पाया जाने वाला पक्षी है. यह मुख्यतः एशिया, अमरीका एवं यूरोप के देशों में निवास करता है.[4]

कबूतर देखने में बड़ा ही सुन्दर पक्षी है. इसके शरीर का रंग सिलेटी होता है. इसकी गर्दन पर एक सुनहरे रङ्ग का चमकीला कण्ठा होता है. इसके डैनों पर गहरे रङ्ग की दो-तीन पट्टियां बनी होती हैं. इसके पैर हल्के-गुलाबी होते हैं. आंख की पुतली नारंगी होती है. चोंच की जड़ पर एक सफेद रंग का निशान होता है. मादा व नर में कोई विशेष अन्तर नहीं होता.

कबूतर मानव का निकटवर्ती साथी है. यह खंडहरों, मन्दिरों, मस्जिदों व घरों में सब जगह देखा जा सकता है. कबूतर मकान में किसी छज्जे पर या किसी ऊंची आड़ वाले स्थान में रहना पसंद करता है. यह अपना कोई घोंसला नहीं बनाता. गर्भाधानकाल में कुछ कूड़ा-करकट एकत्रित करके अण्डों की रक्षा करता है. कबूतर की मादा साल के किसी भी भाग में अण्डे दे देती है बल्कि यों कहें कि

---

1 ऋक्० 1/30/4, अ० वे० 29/135/12
मै० सं० 3/14/4, वा० सं० 25/23/38

2 'श्येनः कपोतानत्तीति स्थितिरेषा सनातनी ।।'–महाभारत ।

3 'पारावतः कलरवः कपोतः'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः) वन 31/20

4 इन० वर्ड० भाग 14, पृष्ठ 410

वह साल भर अण्डे ही देती है तो अधिक उचित होगा. कबूतर एक पत्नीव्रती पक्षी है जो अपना सारा समय अपनी मादा के पास में ही व्यतीत करता है. यह अण्डों पर बैठकर बराबर अपनी मादा की सहायता करता है. यह अपनी मादा को बहुत प्रेम करता है एवं किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव न करता हुआ अपने सच्चे प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करता है.

कबूतर पक्षी-जगत में सम्भवतः एक मात्र पक्षी है जो शाकाहारी है. यह फसलें, बीज, अनाज, फल, जड़ें, इत्यादि खाकर अपना जीवन यापन करता है.[5] यह दानों को एक तीव्रगति के साथ अपने गले में भर लेता है एवं बाद में अपने बच्चों को एक-एक करके दाना खिलाता है.

कबूतर का पालन काफी पुराना है. एक स्थान से दूसरे स्थान तक संदेश ले जाने में इसका प्रमुख स्थान रहा है. इसके पैर में पत्र बांध देने पर यह निश्चित स्थान पर पत्र पहुंचा देता है. प्राचीन समय में जगत प्रसिद्ध सुन्दरी रानी क्लियोपेट्रा ने अपना प्रेम-पत्र कबूतर के साथ ही भेजा था.[6] बादशाह अकबर के यहां भी संदेशवाहक कबूतरों का संचय था. कबूतर को शांति का प्रतीक माना है. हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय पं० नेहरू को सफेद कबूतरों से विशेष प्रेम था. वे अपने जन्मदिन 'बाल-दिवस' पर सफेद कबूतर उड़ाया करते थे.

कबूतर की आवाज बड़ी ही अच्छी 'गुटर-कूं गुटर-कूं' की ध्वनि होती है. जिसे हमारे घरों में सुबह शाम सुना जा सकता है. रात को कबूतर एक बड़े समुदाय में किसी मकान के छज्जे पर या बिजली व टेलीफोन के तारों पर विश्राम करते हैं.

कबूतर की कई किस्में होती हैं. जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

१. लक्का.
२. बगदादी.
३. मुदबी.
४. गिरहबाज.
५. लोटन.
६. शीराजी.

कबूतर का मांस खाने के काम आता है. लकवे के बीमार को लक्का कबूतर का माँस खिलाया जाता है और कबूतरों के पंखों की हवा में रखा जाता है.

संस्कृत काव्यों में कपोत

कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में कपोत के लिये कपोतः,[7] पारावतः.[8]

---

5 इन० वर्ड० भाग 14, पृष्ठ 410, इन० ब्रिटे० भाग 19, पृष्ठ 920

6 भारत के पक्षी० पृ० 81

7 ह० च० पृ० 81,–नैषध०3/41

8 कुमार० 10/6, सौ० न० 6/30,–कादम्बरी० पृ० 79

पारापत:[9] कलरव:,[10] व विटंक:[11] नामों का उल्लेख मिलता है.

मानव व कपोत—मानव व कबूतर का साथ बड़ा प्राचीन है. अग्निदेव द्वारा कबूतर बनकर शिव पार्वती के शयन कक्ष में जाने का वर्णन कुमार संभव में मिलता है.[12] बुद्धचरित में अन्त:पुर विलाप के प्रसंग में स्त्रियों द्वारा आसक्त कपोतों से लम्बी सांस लेने का वर्णन किया गया है.[13] सौन्दरनन्द में भार्याविलाप के अन्तर्गत यशोधरा को कबूतरों से कूजन में होड़ करने वाली कहा है. अ : मानव व कबूतर का सम्बन्ध रहा है.

कार्य-कलाप—कबूतर की क्रियाओं का वर्णन भी काव्यों में उपलब्ध होता है. महाकवि कालिदास ने कुमार सम्भव के नवम सर्ग के आरम्भ में भगवान शंकर के सुरतकक्ष में उपस्थित कबूतर की विभिन्न क्रियाओं के बारे में लिखा है कि वह कबूतर सुन्दरियों की भांति मीठा बोलता था. लालरंग की आंखों को इधर-उधर घुमाता था. कभी कंठ ऊंचा कर लेता था तो कभी झुका लेता था और बार-बार अपनी पूंछ को सिकोड़ लेता था.[14] श्री हर्ष ने नैषधीय चरित में कबूतर के बोलने को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हुये लिखा है कि कबूतर पाणिनि के व्याकरण का अध्ययन करने वाला है. इसकी गर्दन पर भूषण का एक चिन्ह है जो शब्दों की सिद्धि के लिए एकत्रित की गई खड़ियाओं में से अवशिष्ट भाग के समान है. इसने जो कुछ पढ़ा था वह अब यह भूल बैठा है एवं सिर हिलाता हुआ 'घु' संज्ञा को दोहराता है जो इस काठ की स्लेट पर बार-बार लिखने के कारण इस पर असर कर गई थी एवं वर्तमान से याद आ गई है.[15] यही व्याकरण के अन्तिम अंश 'घु' संज्ञा की समता को कबूतर की हुंकार के तुल्य बतलाने का प्रयास किया गया है. वन भाग में आने वाली कबूतर की हुंकार का वर्णन श्री हर्ष ने किया है.[16]

---

9 नैषध० 19/12

10 नैषध० 18/22

11 कादम्बरी पृ० 264

12 'पारावतं वपुः प्राप्य ।'—कुमार० 10/6

13 'प्रसक्तपारावतदीर्घनिस्वनाः' बु० च० 8/37

14 'सुकान्तकान्तामणितानुकारम् । कूजन्तमाघूर्णितरक्तनेत्रम् ।।
प्रस्फारितोन्नम्रविनम्रकण्ठम् । मुहुर्मुहुर्न्यञ्चितचारुपुच्छम् ।। कुमार० 9/2

15 नैषध० 19/61

16 'कपोतहुंकारगिरा वनाली ।।' वही० 3/14

हर्षचरित में कबूतर के आर्तस्वर का उल्लेख मिलता है.[17] कबूतर रात को महलों के छज्जों पर बैठते हैं. मेघदूत में यक्ष उज्जयिनी नगरी के छज्जों पर कबूतरों के साथ मेघ को विश्राम करने का आदेश देते हैं,[18] मालविकाग्निमित्र में गर्मी से तप्त महलों के छज्जों पर कबूतरों के न बैठने का उल्लेख किया गया है.[19] कादम्बरी में प्रभात वर्णन करते हुये महाकवि बाणभट्ट ने कबूतरों द्वारा महलों पर बैठने का वर्णन किया है.[20] नल के महल पर भी कबूतरों की कांतिमय पंक्ति के उड़ने का वर्णन किया है.[21] राजमहलों में कबूतरों के बैठने के दड़बों की उपस्थिति बतलाई गई है.[22] दशकुमार चरित में कबूतरों की सुरत क्रीड़ा का भी वर्णन मिलता है.[23] इन वर्णनों के आधार पर हमारे सम्मुख निम्नलिखित बातें आती हैं—

१. कबूतर 'घु'-घु' की ध्वनि करता है.
२. कबूतर मकान के ऊंचे भागों में बैठना पसन्द करता है.
३. यह एक समुदाय में रहने वाला पक्षी है.
४. प्राचीन लोगों का कबूतर से प्रेम था, अतः वे उनके बैठने के लिये दड़बे बनवाते थे.
५. कबूतर का मादा से पक्का प्रेम होता है. कलह करने वाले एवं यौवन मद से मस्त कबूतरों के पेड़ों पर बैठने से फलों के झड़ कर गिर जाने के वर्णन भी काव्यकारों ने किये हैं.[24] इस प्रकार कवियों ने कबूतर की विभिन्न चेष्टाओं को साहित्य में स्थान दिया है.

उपमित कपोत—संस्कृत साहित्य में सादृश्यमूलक अलंकारों का अपना

---

17 'कातरकपोतकूजितानुबन्धबधिरितविश्वे' ह० च० पृ० 81
18 'तां कस्याञ्चिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां' मेघ० 1/42
19 सौधान्यत्यर्थतापाद् बलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि ।' –मालविका० 2/12
20 'तरूणां शिखेरषु पारावतमालायमानासु । –कादम्बरी पृ० 79
21 'उच्चलत्कलरवालिकैतवाद्वैजयन्तविजयार्जिता जगत् ।।' नैषध० 18/22
22 'विटकः वेदिका ।'–कादम्बरी० पृ० 264
हाटाकविटंकमंकितम् । नैषध 18/24
23 'प्रवृत्तकुह्वरपारावतत्रासना ।' द० च० पृ० 230
24 'अन्योन्यकलहकुपित-कपोत-पोत-पक्ष-पाली-पातित-कुसुमैः ।'
–कादम्बरी पृ० 384
'आलीयमाननव-यौवन-मद-मत्त-पारावत-पक्ष-क्षेप पर्य्यस्तकुसुमस्तबकैः ।'
—वही० पृ० 384

स्थान है कपोत को भी काव्यकारों ने अनेक संदर्भों में जीवों व निर्जीवों से उपमित किया है. कबूतर की मीठी बोली को संभोग के समय बोली गई सुन्दरियों की वाणी से उपमित किया गया है.[25] तारों को कबूतरों से उपमित करते हुये कहा गया है कि प्रातः चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर तारे रूपी कबूतर भी उड़ गये.[26] वास्तव में सवेरा होने पर तारे दिखलाई नहीं देते एवं कबूतर भी उड़ जाते हैं, अतः उपमा उचित है. कबूतर की समता उजले चन्द्रमा से की है.[27] बन्दर के लाल कपोलों से कबूतर के लाल पंख की सम्बद्धता प्रदर्शित की गई है.[28] इसी प्रकार अमृत-कुण्ड की नई फेन के पिंड से कबूतर का साम्य बतलाया गया है.[29] महलों पर विद्यमान रहने वाले बन्दरों को महलों में निवास करने वाले कपोतों से उपमित किया गया है.[30] कबूतरों से युक्त आन्तरिक महलों को कमलों से युक्त बन (कमल वन) के समान बताया है अर्थात् कबूतरों को कमलों के समान माना है[31] मिट्टी की समता बूढ़े कबूतर की गर्दन के रोमों से की है.[32] आकाश के रंग व कबूतर के पंखों के रंग का साम्य वर्णित है.[33] इसी प्रकार कबूतरों के पंखों के रंग से राख की समता भी की गई है.[34] कई स्थानों पर धुंये के रङ्ग से कबूतर को उपमित करते हुये सूने प्रदेश में डालियों पर बैठे हुये सफेद कबूतरों की पंक्ति ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों आज भी उनमें तपस्वियों के अग्हिोत्रों से उठे हुये धुंये की रेखायें अंकित हों. छनों से बाहर की ओर निकलती हुई टांड में बैठे कबूतरों और उनके (टांडों के) छेदों से निकलने वाले धुंये इन दोनों में यह निश्चित करना कठिन था कि

---

25 'सुकान्तकान्तामणितानुकार ।' —कुमार० 9/2
'पारावतैः कूजनलोलकण्ठैः ।' –सौ० नं० 6/30

26 'तदधिगमनात् तारापारापतैरुड्डीयतः ।' –नैषध 19/12

27 'शुभ्रांशुवर्णम् ।' कुमार 9/3

28 'शवपिशितप्ररूढ़प्रसरा इव कपिपोतकपोल-कपिलपक्षतयः कानन कपोताः पेतुः ।' —हृ० च० पृ० 356

29 'तं वीक्ष्य फेनस्य चयं नवोत्थमिवाभ्यनन्द-स्क्षणमिन्दुमौलिः ।'–कुमार० 9/4

30 'प्रासादैरिव सपारावतैः ।' —कादम्बरी० पृ० 386

31 'सौध-शिखरावतीर्णप्रचलित-पारावत-कुलतया स्थलोत्पालिनीनवनशोभितेनेव ।' —वही० पृ० 273

32 'जरठकपोतकन्ध रातनूरुहप्रकर विपाण्डुरद्यु ति ।' शिशु० 17/52

33 'जरत्पारावत-पक्षधूसरे नभसि ।' —कादम्बरी० पृ० 202

34 'तदिदं कणशो विकीयते पवनैर्भस्मजगोतकबुंरम् ।' –कुमार० 4/27

कौन धुंआ है और कौन कबूतर, कोयल से परिपूर्ण कामदेव की चिता आकाशरूपी सौध में स्थित श्वेत कबूतर सा अलंकृत हो रहा था, इत्यादि वाक्य कहे गये हैं.[35] अगरु के धुंये की कबूतर के रंग से समता बाण ने की है.[36] शाम को अस्त होने वाले सूर्य के रंग की समता कपोत के रक्त से की गई है.[37]

इस प्रकार काव्यकारों ने कपोत को अनेक प्रकार से उपमित किया है. इन वर्णनों में काफी सत्यता है. इसके आधार पर हमें निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं–

१. कबूतर सामान्यत: राखी या सफेद रंग के होते हैं.

२. कबूतर के पैर लाल रंग के होते हैं.

३. कबूतर ऊंचे स्थानों, जिनमें प्रासाद, पेड़ व टांड़े प्रमुख हैं; बैठता है.

संपूर्ण संस्कृत काव्यों में कपोत का वर्णन ३६ बार आया है. बाणभट्ट ने कपोत का १३ बार वर्णन किया है. कालिदास ने १० बार कपोत का वर्णन कर तृतीय स्थान पाया है. श्रीहर्ष ने ५ बार, माघ ने ४ बार, अश्वघोष ने एक-एक बार कपोत का वर्णन किया है. वर्णन का विश्लेषण सलग्न तालिकाओं में अवलोकनीय है.



35 'चिरशून्येऽद्यापि यत्र शाखानिलयंचिरनिभृतपांडुकपोतपंक्त्योलग्नतापसाग्निहोत्र-धूमराज्य इव लक्ष्यन्ते तरवः ।' —कादम्बरी० पृ० 64

श्वेत-पारावत इव अम्बरमहाप्रासादस्य ।' —वासवदत्ता० पृ० 178

'धूपैर्जालविनि:सृतर्वलभयः संदिग्ध पारावताः ।' —विक्रम० 3/2

36 'कृष्णागुरुधूमरक्तैरिव पारावतैः ।' —कादम्बरी० पृ० 184

37 पारावत पाद पाटलरागो रविरम्बर तलादलम्बत ।' —वही० पृ० 147

तालिका—१

'कपोत' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (10)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
७	कुमार०	४।२७. ६।१ से ४. १०।६ व ७.
१	मेघ०	१।४२.
१	मालविका०	२।१२.
१	विक्रम०	३।२.

तालिका—२

'कपोत' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (27)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	१	बु० च०	८।३७.
,,	१	सौ० च०	६।३०.
माघ	४	शिशु०	३।५१, ५५. ४।३२. १७।५२.
श्रीहर्ष	५	नैषध०	३।१४. १८।२२. २४. १६।१२, ६१.
सुबन्धु	१	वासवदत्ता	पृ० १७८
बाणभट्ट	५	ह० च०	पृ० ८१, २४८, ५५६ व ४२४. उ० पृ० ३२.
,,	६	कादम्बरी	पृ० ६४, ७६, १४७, ८४, २०२, ७३, ३८४, व ८४. ८६.
दण्डी	१	द० च०	पृ० २३०.

— — —

हारीत
THE GREEN PIGEON

'भारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यका ।'

—रघु० ४।४६

सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में हारीत का स्थान सर्वथा गौण रहा है. अमरकोष में नभचर पक्षियों का उल्लेख करते समय 'हारीत' का नाम लिखा गया है.[1] वैज्ञानिकों के मन में हारीत मेरु-दण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत पक्षी श्रेणी के कपोत उपवर्ग के कपोत परिवार का पक्षी है.[2]

हारीत के अनेक भेद हैं अतः यह विश्व के अनेक भागों में पाया जाता है; जिनमें भारत, वर्मा, स्याम, लंका, चीन, मलाया, जावा, बोर्निया, फिलिपाईन, थाईलैण्ड व इण्डोनेशिया प्रमुख हैं[3]

हारीत की लम्बाई १३ इञ्च से १८ इञ्च तक होती है. यह कबूतर के बराबर का पक्षी है. इसके सिर का ऊपरी भाग धूसर, आंख की पुतलियां नीली एवं आंख के चारों ओर गुलाबी धारी होती है. इसकी चोंच आगे से मुड़ी होती है. चोंच का अगला हिस्सा सफेद होता है. पैर नारंगी व पीले रंग के होते हैं. इसके पर हरे रंग के होते हैं.[4] इस प्रकार हारीत एक विभिन्न वर्णात्मक लक्षणों वाला पक्षी होता है. इसकी मादा भी आकार-प्रकार में प्रायः ऐसी ही होती है.

हारीत का प्रमुख निवास पेड़ है. यह पीपल, बट, सेमल, पाकड़ इत्यादि ऊंचे-ऊंचे पेड़ों पर रहता है. वास्तव में इसे वृक्षों पर रहना ही प्रिय है. यह धरती

---

1 'तेषां विशेषा हारीतो मद्गुः कारण्डवः प्लवः'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

2 जीवजगत० पृ० 453

3 का० के पक्षी० पृ० 81, 96–97 भारत के पक्षी० पृ० 84, द० स० ट्रा० को० पृ० 324

4 का० के पक्षी० पृ० 82 ब० ओ० सौ० पृ० 228 जीवजगत पृ० 454

पर बहुत कम देखा गया है. यदि यह धरती पर आता भी है तो लकड़ी की किसी टहनी को निरन्तर पैरों में दबाये रखता है.[5] कुछ विचारक इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि यह बात सही नहीं. हारीत पृथ्वी पर भी विचरण करता है.[6] जो लोग यह कहते हैं कि हारीत पृथ्वी पर नहीं उतरता, वे इसके दो कारण बतलाते हैं. प्रथम तो यह कि हारीत एक फलाहारी जीव है अतः इसे नीचे आने की आवश्यकता ही नहीं होती क्योंकि फल तो इसे पेड़ों पर मिल ही जाते हैं. पानी पीने की इसे आवश्यकता ही नहीं रहती कारण कि यह रसीले फल खाता है. दूसरे अधिक फल खाने से यह मोटा हो जाता है एवं इसे उड़कर पृथ्वी तक आने में कष्ट होता है.

हारीत का प्रमुख भोजन फल है. फलों में अञ्जीर, बड़, पीपल, सेमल इत्यादि प्रमुख हैं.[7] पालतू हारीत सत्तू व भात भी खाते हुए देखे गये हैं.

हारीत का घोंसला पेड़ों पर काफी ऊंचाई पर होता है यह हरी पत्तियों व पेड़ों की टहनियों की सहायता से बनाया जाता है एवं इसके पैंदे में मुलायम घास भरा होता है. मादा एक बार में सामान्यतः दो अण्डे देती है जो कि चमकीले सफेद रंग के होते हैं.[8] अण्डे देने का समय फरवरी से अप्रेल के मध्य होता है. कौआ हरियल (हारीत) के घोंसले का प्रमुख शत्रु है जिसका निवारण हारीत बड़ी वीरता से करता है. हरियल बड़ा शर्मिला जीव है जो मानव की उपस्थिति पर या तो चुप हो जाता है यह कोयल की भांति तीव्र ध्वनि नहीं करता. इसकी ध्वनि 'वुह-वुह' 'गुर-गुर' या 'गुम-गुम' के समान होती है. हारीत का कूजन बड़ा मधुर एवं कर्णप्रिय होता है.

संस्कृत काव्यों में हारीत

संस्कृत काव्यों में हरियल के लिए केवल 'हारीतः' शब्द का प्रयोग हुआ है.[9]

मानव व हारीत—मानव व पक्षियों का तो सदा-सदा का साथ रहा है. अतः हारीत मानव के सम्पर्क में क्यों नहीं आता ? कादम्बरीकार ने तो जाबालि

---

5 जीव-जगत पृ० 453, भारत के पक्षी० पृ० 82-83, का० के पक्षी० पृ० 95, द० व० ट्रा० को० पृ० 324 ब० ओ० सौ० पृ० 230

6 यथोपरि. पृ० 230, पा० हैण्ड पृ० 389

7 का० के पक्षी० पृ० 95, ब० ओ० सो पृ० 230 जीवजगत पृ० 453 भारत के पक्षी पृ० 85

8 यथोपरि. पृ० 84, द० व० ट्रा० को० पृ० 324 ब० जीव-जगत पृ० 454 ओ० सौ० पृ० 230

9 रघु० 4/46, कादम्बरी पृ० 587

के पुत्र का नाम ही 'हारीत' रखा है.[10] यह उलनेख इस बात को स्पष्ट करता है कि हारीत दक्षिण भारत में पाया जाता है क्योंकि कालीमिर्च के पेड़ दक्षिण-भारत में अधिक हैं एवं वैज्ञानिकों ने भी हारीत का दक्षिण-भारत में पाया जाना स्वीकार किया है. भवन में रहने वाले हारीत को खाने के लिए मिर्च देने का उल्लेख मिलता है.[11]

क्रिया-कलाप--काव्यकारों ने हारीत की क्रियाओं का सम्यक् वर्णन किया है. कालिदास ने रघुवंश के चौथे सर्ग में रघु की दिग्विजय के प्रसंग में मलय पर्वत का वर्णन किया है. यहां कालीमिर्च की झाड़ियों में हारीत पक्षियों के उड़ने का उल्लेख किया है.[12] यह वर्णन हारीत द्वारा कालीमिर्च खाने एव उसके दक्षिण भारत में पाये जाने पर प्रकाश ड़ालता है. राजकुल एवं वनों में हारीत के निवास करने एवं कूजन करने के वर्णन मिलते हैं.[13]

उपमित हारीत—वृद्ध हारीत पक्षी के रंग से सूर्य के घोड़ों की तुलना करते हुए उन्हें हरे (श्याम) रंग का बतलाया है.[14] हारीत पक्षी के रंग से अधो-वस्त्र की समता प्रदर्शित की गई है.[15]

सम्पूर्ण काव्यों में हारीत का कुल ८ बार वर्णन आया है. कालिदास के काव्यों में हारीत का केवल एक बार उल्लेख आया है. कालिदासोत्तर काव्यों में केवल बाणभट्ट ने ७ बार हारीत का वर्णन किया है. अन्य कालिदासोत्तर काव्य-कारों ने हारीत का वर्णन नहीं किया. हारीत के वर्णन का उल्लेख प्रस्तुत तालिकाओं में दर्शनीय है.

— — —

10 'हारीतनामा मुनिकुमारकः।' कादम्बरी पृ० 109

11 पल्लविके ! भोजनमरिचाग्रपल्लव दलानि भवन हारीतम्' —यथोपरि पृ०533

12 'मारीचोद्भ्रान्त हारीता मलयाद्रेरुपत्यका' —रघु० 4/46

13 हारि-हारीत-रुचि-रमणीयैः।' —कादम्बरी० पृ० 383

'उत्-कूजित-चकोर-कादम्ब-हारीत-कोकिलम्' —वही० पृ० 272

पञ्जर-हारीत-रुत-श्रवण-कृत-दुष्टस्मितं।' —यथोपरि० पृ० 545

14 'जरठ-हारीत-हरित-हये-हरितवाजिनि।' —यथोपरि० पृ० 587

15 हारीत हरितानिविडनिपीडितेनाधरवाससा।' —ह० च० पृ० 40

तालिका (१)

'हारीत' के वर्णन का कालिदास काव्यों में विश्लेषण (1)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	रघु०	४।४६

तालिका (२)

'हारीत' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (7)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
बाणभट्ट	१	ह० च०	पृ० ४०
,,	६	कादम्बरी.	पृ० १०९, २७२, ३८३, ५४५, ८७ उ. १९

कुररी
THE TERN

'प्रनष्टपोता कुररीव दुःखिता ।'
—बुद्धचरितम् ८/५१

संस्कृत-साहित्य में कुररी का उल्लेख विरल है. वैदिक साहित्य में कुररी का उल्लेख नहीं मिलता. वीरकाव्य साहित्य में कुररी के उल्लेख मिलते हैं.[1] अमरकोष में कुररी का नाम नहीं मिलता. संस्कृत के विचारक कुररी एवं कुरर को एक ही पक्षी मानते हैं. कुररी आंग्ल 'Tern' का पर्याय एवं कुरर Osprey का पर्याय है.[2] 'कालीदास के पक्षी' नामक पुस्तक के रचयिता श्री हरिदत्त वेदालंकार ने कुरर एवं कुररी को एक ही माना है. आधुनिक कोषकारों में मोनियर विलियम्ज ने कुरर को Osprey कहा है. आप्टे ने कुरर को Osprey व कुररी को मादा आस्प्रे कहा है, परन्तु इन विचारकों के मत सर्वमान्य नहीं कहे जा सकते. अमरकोष में कुररः व उत्क्रोश दो शब्द मिलते हैं जो समानार्थक हैं.[3] आयुर्वेद के ग्रन्थों में कुरर शब्द का अनेकधा प्रयोग हुआ है.[4] यहां हम कुररी (टर्न) व कुरर (आस्प्रे) की सामान्य विशेषताओं पर विचार करना उचित समझते हैं ताकि विचारों में स्पष्टता व प्रामाणिकता आ सके.

कुररी—वैज्ञानिकों ने कुररी को दो प्रकार का बतलाया है. पहली—बड़ी कुररी एवं दूसरी—कलपेटी कुररी. 'बड़ी कुररी' १६ इञ्च लम्बी चिड़िया है जिसमें उसकी दो फंकी दुम भी शामिल है. इसके सारे शरीर का रंग हल्का सलेटी होता

---

1 'वेपंती कुररीमिव ।'—वा० रा० यु० 49/9;
क्रोशन्ती कुररीमिव०'—महाभारत० 1/64/12;
भागवत पुराण० 10/10/15

2 जीवजगत० पृ० 438 व 483

3 'उत्क्रोशकुररौ समौ'—इत्यमर :

4 चरक-संहिता० 27/36 सुश्रुत संहिता० 7/9

है जो कहीं हल्का एवं कहीं गहरा होता है. निचला हिस्सा राख से भी हल्का रहता है. गर्मियों में इसकी कनपटी से सिर तक का भाग चमकीला काला हो जाता है. 'कलपेटी कुररी' कुछ छोटी होती है. इसका रंग हल्का सिलेटी होता है. इसके नीचे का भाग दुम तक काला रहता है.[5]

(२) कुरर (मछारंग)--यह लगभग २० इञ्च का पक्षी है जिसके नर व मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं. इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा गाढा भूरा और नीचे का सफेद रहता है. इसका सिर सफेद मायल रहता है जिस पर दोनों ओर एक एक गाढ़ी पट्टी पड़ी रहती है. मछारंग भारत का मौसमी पक्षी है जो यहां जाड़े में आकर गर्मी आने पर वापस चला जाता है. आदतों में यह भारतीय शिकारी चिड़ियों से साम्य रखता है और मछलियां खाकर अपना पेट पालता है.[6]

संस्कृत काव्यों में कुररी

संस्कृत-साहित्य में कुररी के लिए कुररी, कुरर व उत्क्रोश शब्दों का प्रयोग हुआ है.[7]

कार्य-कलाप—संस्कृत काव्यकारों ने कुररी के कतिपय कार्य-कलापों का वर्णन किया है. विन्ध्याटवी वर्णन करते हुए बाणभट्ट लिखते हैं कि कहीं कुरर की मतवाली टोलियां मिर्च के पत्तों को नोंच नोंच कर खाती थी.[8] पेड़ पर कुररी व कुरर पक्षियों के कलरव करने के उल्लेख किरातार्जुनीयम्, हर्षचरित व कादम्बरी में मिलते हैं.[9] राजकुल में रहने वाले अनेक पक्षियों के नामों के साथ बाणभट्ट ने कुरर का उल्लेख किया है एवं आपसी युद्ध का वर्णन किया है.[10] दण्डी ने कुरर के कहकने का उल्लेख किया है.[11] इस प्रकार संक्षिप्त में काव्यकारों ने कुरर व कुररी की क्रियाओं का वर्णन किया है.

उपमित कुररी—कुररी की विलाप करने की क्रिया मात्र को कवियों ने उपमित किया है. रघुवंश के चौदहवें सर्ग में जब लक्ष्मण श्री रामचंद्र के आदेश

---

5 जीवजगत० पृ० 438

6 यथोपरि पृ० 383

7 किरात० 5/25, बु० च० 8/51, रघु० 14/68, द० च० पृ० 8/46, कादम्बरी० पृ० 84

8 'मदकल-कुररकुल-दश्यमान-मरिच-पल्लवा ।' —कादम्बरी० पृ० 55

9 'कुररी गण० किरात० 5/25 कुरर-कुलक्वणितम् ।' —कादम्बरी० पृ० 271

10 'आबद्ध-मेष-कुक्कुट-कुरर-कपिञ्जल वर्तिका युद्धम्' —कादम्बरी० पृ० 84

11 'कुररीणामिवाकाशे शब्द श्रूयते' — विक्रम० 1/3

से सीताजी को वाल्मीकि आश्रम के निकटवर्ती निर्जन वन में छोड़ आते हैं. उस समय सीता डरी हुई कुररी के समान बहुत जोर से विलाप करती है. यहां सीता के रोने की तुलना कुररी के रोने से की गई है. विक्रमोर्वशीय के प्रथम अंक में कालिदास ने उर्वशी के अपहरण की चर्चा की है कि स्वर्ग से लौटती हुई उर्वशी को मार्ग में ही राक्षसों ने जब बन्दी कर लिया तो अप्सरायें उसकी सहायता के लिए चिल्लाने लगी. उनका चिल्लाना ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों कुररी पक्षियों का एक समूह अकस्मात् चिल्ला उठा हो.[12] इसी से साम्य रखता हुआ वर्णन बुद्धचरित में भी मिलता है. गौतम के निष्क्रमण के पश्चात् गौतमी जो विलाप करती है वह ऐसी मालूम होती है मानों कुररी के बच्चे कहीं खो गये हों एवं वह उसके दुःख में रो रही हो.[13] इन सभी वर्णनों के आधार पर हमारे सम्मुख निम्नांकित बातें उपस्थित होती हैं—

(१) कुरर मिर्च खाने वाला पक्षी है.

(२) कुरर व कुररी दोनों ही पेड़ों पर कलरव करते हैं.

(३) कुरर युद्धशील बहादुर पक्षी है.

(४) कुररी विलापशील पक्षी है.

(५) कुररी भयभीत होने वाला डरपोक पक्षी है.

अतः काव्यात्मक वर्णनों के आधार पर भी कुरर व कुररी भिन्न-भिन्न जाति के पक्षी हैं, एक ही पक्षी के नर व मादा रूप नहीं.

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्यों में कुरर व कुररी का कुल ६ बार वर्णन आया है. बाणभट्ट ने कुररी का ४ बार व कालिदास ने २ बार वर्णन किया है जबकि अश्वघोष, भारवि व दण्डी ने एक-एक बार ही. कुररी के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में देखा जा सकता है.

---

12 'प्रनष्टपोता कुररीव दुःखिता' —बु० च० 8/51

तालिका–१

'कुररी' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (2)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	रघु.	१४।६८
१	विक्रम॰	१।३

तालिका–२

'कुररी' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (7)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	१	बु. च.	८।५१
भारवि	१	किरात.	५।२५
बाणभट्ट	१	ह. च.	पृ. ८२
,,	३	कादम्बरी.	पृ. ५५, ८४, २७१
दण्डी	१	द. च.	पृ. ८।४६

— —:—



शुक
THE PARROT

'नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरुणामधः'
—शाकुन्तलम् १/१४

सम्पूर्ण-संस्कृत-साहित्य में शुक का मध्यम स्थान रहा है. वाल्मीकि रामायण में तो एक सर्ग का नाम ही शुक-सर्ग है.[1] अमरकोष में शुक के लिए कीरः एवं शुकः केवल दो नामों का उल्लेख है.[2]

वैज्ञानिकों की दृष्टि में शुक मेरुदण्डीय-उपजगत् के पक्षी-श्रेणी के शुक उपवर्ग के शुक-परिवार का सदस्य है.[3]

शुक विश्व के अनेक भागों में पाया जाने वाला पक्षी है. मुख्यतः न्यूजीलैण्ड, अफ्रीका, लंका, बर्मा भारत, मलेशिया, जावा, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका व फिलीपाइन में शुक-परिवार की अनेक जातियां निवास करती हैं.[4]

शुक छोटे-बड़े कई कदों का होता है. तोते की लम्बाई १६ इञ्च से १'–७" तक देखी गयी है[5] इसके पंखों में भी कई भिन्नतायें होती हैं. इसकी चोंच छोटी, मजबूत, तीखी एवं आगे से हुक के समान मुड़ी होती है. चोंच के ऊपर का भाग नीचे के भाग पर काफी दूर तक चढ़ा रहता है. इसका सिर बड़ा होता है. इसके पंजे बड़े उपयोगी होते हैं. इनमें से प्रथम व चतुर्थ पंजा पीछे की ओर मुड़ा होता है जबकि द्वितीय व तृतीय आगे की ओर. इनकी सहायता से यह टहनियों

---

1 वा० रा० शुकसर्ग (25)

2 'कीरशुकौ' इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

3 जीवजगत् पृ० 462

4 इन० ब्रि० भा० 17 पृ० 335, इन० चेम्बर० भा० 5 पृ० 429. इन० वर्ड बुक भा० 14 पृ० 160, एनीमल किंगडम पृ० 1043

5 जीवजगत पृ० 462

को आसानी से एवं मजबूती से पकड़ सकता है, शुक के रंग के विषय में भिन्नतायें हैं, किन्तु सामान्यत: इसकी चोंच लाल होती है. इसकी पूंछ हरी-नीली व डैने हरे-नीले होते हैं. इसके नीचे का भाग हरा-लाल रंग का होता है एवं नर की गर्दन के चारों ओर काली, लाल या गुलाबी पट्टी (कंठी) होती है.

शुक पक्षी जगत् का संभवत: सबसे बुद्धिमान् जीव है.[6] यह मानव की बोली की नकल करने में बड़ा चतुर होता है. इस विषयक अनेक कथायें प्रचलित हैं. सिखलाने पर यह अनेक प्रकार के तमाशे करते हुए देखा गया है. शहरों में ज्योतिष के चमत्कार दिखलाने वाले शुक के सम्मुख कई लिफाफे रखते हैं एवं तोता इशारे पर उनमें से एक लिफाफा उठाकर देता है. शुक चिढ़ने पर अपने पंजे से हाथ को पकड़ कर बुरी तरह काट खाता है. यदि पिंजड़े का दरवाजा खोलकर पिंजड़े में हाथ डालकर शुक के पैर को छूआ जावे तो वह हाथ को बड़े ही सुन्दर ढंग से पकड़ता है, मानों वह हाथ से हाथ मिला रहा हो. अपनी इन विशेषताओं के कारण उसे भारतीय समाज में बड़ा ऊंचा स्थान मिला हुआ है. तोते की सामान्य ध्वनि 'टर्र-टर्र' होती है. घरों में शुक को 'राम-राम' 'सीताराम', 'राधेश्याम', इत्यादि शब्दों के पाठ पढ़ाये जाते हैं. चोरों के घर में घुसने पर 'काका ! घर में चोर घुस गये' ऐसा वाक्य तोतों के मुख से सुना गया है.

एक कथा बड़ी प्रचलित है. एक बार पंडित मन्डनमिश्र से शास्त्रार्थ करने के लिए शंकराचार्य पधारे. कहते हैं जब वे गांव की पनघट पर एक बाला से मिश्रजी के घर का पता पूछ रहे थे तो उस बाला ने संस्कृत में उत्तर दिया—

जगद्ध्रुवस्यात् जगद्ध्रुवस्थात्
शुकांगना यत्र गिरो गिरन्ति,
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा
जानाहि तं मण्डनपंडितौकः ।

इसे सुनकर शंकराचार्य ने बड़ा आश्चर्य किया कि जिस घर के शुक के इतने उच्च विचार हैं उस घर का स्वामी तो पता नहीं कितना बुद्धिमान् होगा । इस प्रकार भारतीय गृहों में शुक की उच्च स्थिति रही है.

अपनी तीखी चोंच की सहायता से शुक अनेक पदार्थों का रसास्वादन करता है. इनके मुख्य खाद्य पदार्थ हैं—वनस्पति, बीज, फल, फूल, गन्ना, ताड़ी, मिर्च, नारियल, छिपकली, मेंढक एवं अन्य कीड़े-मकोड़े. यह कड़ी से कड़ी चीज को खा सकता है. इसी कारण इसे लोहनिर्मित पिंजड़े में बन्द किया जाता है. तोते बगीचों

---

6 भारत के पक्षी पृ० 99

एवं खेतों में अनाज को बहुत नुकसान पहुचाते है.[7] पिंजड़े से निकलने के बाद तोता कभी पीछे नहीं लौटता, उसे पिंजड़े का बन्धन कदापि प्रिय नहीं; भले ही उसे द्राक्षा खिलायें, मधु पिलायें, हाथ से सहलायें या प्रेम व्यवहार करें. तोता चंचलता के कारण कभी किसी का नहीं होता—

द्राक्षा प्रदेहि मधु वा वदने विधेहि ।
देहे विधेहि किमु वा करलालतानि ।
जातिस्वभावचपलः पुनरेष कीर—
स्तत्रैव यास्यति कृशोदरि मुक्तबंधः ।।

—सुभाषित रत्नभाण्डागार–२२७

शुक की स्वामीभक्ति पर आधारित एक औपदेशिक एवं लोकप्रिय कथा 'शुकसप्तति' नामक ग्रन्थ में मिलती है. जिस में एक मदनसेन नामक स्त्री में आसक्त व्यक्ति का वर्णन है. एक बार वह विदेश गया हुआ था, इसी बीच उसकी पत्नी ने व्यभिचार करने का विचार किया किन्तु उसके घर में एक शुक था, उसने मदनसेन की पत्नी को ७० दिन तक कहानियां सुनाकर व्यभिचार करने से रोके रक्खा और इसी बीच उसका पति वापस आ गया.

शुक के द्वारा वाणी का अनुकरण किये जाने के कारण जगत् में ऐसा करने वाले को "तोता रटंत" करने वाला कहा जाता है. शुक की बोली बड़ी तेज, तीखी एवं कर्कश होती है, जिसे एक बार सुनने के पश्चात् सरलता से पहचाना जा सकता है.

संस्कृत काव्यों में शुकः

कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में तोते के लिये शुकः[8] व कीरः[9] नामों का प्रयोग हुआ है.

मानव व शुकः—मानव व शुक का साथ रहा है. मानव ने इसकी बुद्धिमानी एवं चातुर्य को समझा एवं इसे पालतू बनाया. काव्यों में मानव एवं शुक से सम्बन्धित अनेक कथायें मिलती हैं. कादम्बरीकार महाकवि बाणभट्ट ने एक मन्त्री का नाम 'शुकनास' रक्खा है.[10] (यहां शुकनास का अर्थ बुद्धिमान् व्यक्ति से है, जिसकी नाक शुक के समान सुन्दर हो) वह चन्द्रापीड़ को एक उपदेश देता है जिसे

---

7 **अतिवृष्टिरनावृष्टिः मूषिकाः शलभाः शुकाः ।**
प्रत्यासन्नश्च राजनः षडेता ईतयः स्मृताः ।।

8 **शाकु० 1-14, रघु० 5-74, कादम्बरी पृ० 125**

9 **नैषध० 21–22**

10 **'अमात्यो ब्राह्मणः शुकनासोत् नामासी' । कादम्बरी० पृ० 178**

'शुकनासोपदेश' कहा गया है. महाकवि बाणभट्ट ने अपनी कृति कादम्बरी में दो विचित्र तोतों का उल्लेख किया है, जो मानव समाज से सम्बन्धित थे. अतः उनका संक्षिप्त परिचय देना यहां अनुचित न होगा.

शुक-विशेष : वैशम्पायनः—वैशम्पायन एक विचित्र शुक के रूप में उपस्थित होता है, वास्तव में कादम्बरी में तीन जन्मों की कहानियां है अतः वैशम्पायन के तीन रूप हमारे सम्मुख आते हैं. वर्तमान शुक प्रथम जन्म के राजा पुण्डरीक हैं. द्वितीय जन्म में वे वैशम्पायन (मंत्री शुकनास) के रूप में पैदा होते हैं एवं उसी जन्म में किसी मुनि के शापवश वे तृतीय बार वैशम्पायन शुक (तोता) के रूप में उपस्थित होते हैं. वैशम्पायन-नामक यह शुक चाण्डाल कन्या द्वारा शूद्रक के दरबार में उपस्थित किया जाता है.[11] चाण्डाल कन्या राजा शूद्रक से कहलवाती है कि यह चमत्कारी एवं सम्पूर्ण भूतल का एक उत्कृष्ट रत्न है जिसे वह प्रस्तुत करना चाहती है.[12] राजा के सम्मुख उस शुक को प्रस्तुत करते हुए उसे सम्पूर्ण शास्त्रों विद्याओं, कलाओं से पूर्ण बतलाया जाता है.[13] वह तोता अपना दाहिना पैर ऊंचा करके शुद्ध संस्कृत में राजा का अभिवादन करता बतलाया गया है.[14] राजा इसकी इन विचित्र क्रियाओं को देखकर आश्चर्य करता है तो उसका मंत्री कहता है कि यह आश्चर्य का विषय नहीं, क्योंकि शुक-सारिका द्वारा रटी-रटाई बातों को पुनरुक्त करना तो प्रसिद्ध है.[15] वास्तव में प्राचीन काल में वे मनुष्यवत् बोला करते थे किन्तु अग्निदेव के शाप से इनकी वाणी से स्पष्टता नष्ट हो गयी है.[16] तदनन्तर शूद्रक शुक को अन्दर प्रवेश कराने का आदेश देता है.[17] भोजनानन्तर वे वैशम्पायन को लाने की आज्ञा प्रदान करते हैं.[18] पिंजड़े में बन्द शुक को वहां

---

11 चाण्डालकन्यका पंजरस्थं शुकमादाय देवं विज्ञापयति—कादम्बरी० पृ० 23

12 विहंगमश्चायमाश्चर्य्यभूतो निखिल-भुवनतलरत्नमिति—वही० पृ० 36

13 देखिये:—'देव ! विदित सकलशास्त्रार्थः राजनीतिप्रयोगकुशलः.........सकल-भूतलरत्नभूतोऽयं वैशम्पायनो नाम शुकः' । वही० पृ० 36–37

14 'दक्षिणं चरणमतिस्पष्टवर्ण-स्वर-संस्कारया गिरकृत जयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्य्यामिमां पपाठ– स्तनयुगमश्रुस्नातं.........भवतो रिपुस्त्रीणाम्' ।
—वही० पृ० 38

15 शुकशारिकाप्रभृतयो विहंग-विशेषा यथाश्रुतां वाचमुच्चारयन्तीत्यधिगतमेन देवेन। वही० 39

16 अग्निशापात्त्वस्फुटालापता शुकनामुपजात—वही० पृ० 40

17 वैशम्पायनः प्रवेश्यतामभ्यन्तरम्—वही० पृ० 43

18 अन्तःपुराद् वैशम्पायनमादायागच्छ—वही० पृ० 51

लाया जाता है. तदनन्तर राजा उससे बातचीत करते हैं. सर्वप्रथम वे उसके भोजन की तृप्ति के बारे में पूछते हैं. उसका उत्तर देते हुए वैशम्पायन अंगूर, जामुन, आमला व अनार के रसास्वादन की बात कहता है. इसी मध्य वह राजा से एक मजाक भी करता है कि जब सब खाद्य सामग्रियां देवियों ने अपने हाथों से लाकर दी थी तो वे अमृततुल्य क्यों नहीं होती.[19] इस पर राजा "अच्छा, अच्छा" कहकर बात का क्रम भंग कर देता है. वह राजा को अपने जन्म, पिता व माता की मृत्यु, उसका बचना, जाबालि मुनि के पुत्र द्वारा उसका जाबालि-आश्रम में जाना इत्यादि का पूरा पूरा विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है.[20] अन्त में कहानी समाप्त होने पर शुक का देहान्त हो जाता है एवं उसके स्थान पर पुण्डरीक आकाश मार्ग से उतर आता है. इस प्रकार महाकवि बाणभट्ट ने बड़े ही सुन्दर ढंग से वैशम्पायन का सहारा लेकर शुक की क्रियाओं (नकल करना), पिंजड़े में बन्द होना, जामुन, अंगूर, अनार, आमला इत्यादि खाना, (कोटरे में निवास करना) का सम्यक् प्रदर्शन किया है जो उनके सूक्ष्मनिरीक्षण एवं परिपक्व अनुभव का परिणाम है.

एक अन्य शुकः परिहासः – कादम्बरीकार ने शुक वैशम्पायन के अतिरिक्त एक अन्य शुक का भी वर्णन प्रस्तुत किया है.[21] यह शुक मनोरंजन का कारण बनता है. इसे कालिन्दी नामक सारिका ने ठुकरा दिया है. कालिन्दी व परिहास के वार्तालाप का विस्तृत वर्णन किया गया है.

कादम्बरी के अतिरिक्त अन्य काव्यों में भी मानव व शुक से सम्बन्धित बातों का वर्णन मिलता है. रघुवंश में राजा द्वारा राज्याभिषेक के समय तोतों को मुक्त करने की बात कही गयी है.[22] सज्जन-मनुष्यों को तोतों द्वारा मधुर-मधुर बातें

---

19 'देव ! किं वा नास्वादितम् ?·········जम्बूफलरसः·········दाडिमबीजानि,········· द्राक्षफल·········प्राचीनामलकी·········फलानि ।'·········सर्वमेव देवीभिः स्वयं करतालोपनीयमानममृतायते इति'—वही० पृ० 53

20 'एकस्मिनश्च जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात् सुनुरभवम्' वही० पृ० 76, प्रसववेदनया जननी मे लोकान्तरमगमत्' वही० पृ० 76, तातमपगतासुमकरोत्—वही० पृ० 103, पुंजितस्य महतः शुष्कपत्रराशेरुपरि पतितमात्मानमपश्यम् । अंगानि येन मे नाशीर्य्यन्त' वही० पृ० वही०, 'मां गृहीत्वातपोवनाभिमुखं शनैः शनैरगच्छद्' वही० पृ० 116

21 'परिहासनामा शुको मदनपरवशो'—वही० पृ० 56

22 ·········पंजरस्था शुकादयः । लब्धमोक्षास्तपा देशाद्यथेष्टगतयोऽभवन'
—रघु० 17/20

करके भुलावे में डालने, तोतों को बुद्ध धर्म व संघ की शरण में जाने एवं शबर युवकों द्वारा कान में शुक के पंखों को धारण करने के उल्लेख भी मानव व शुक के पारस्परिक सम्पर्क को स्पष्ट करते हैं.[23]

क्रिया-कलाप :—अभिज्ञानशाकुन्तलम् में आश्रम की पहिचान करवाते हुए महाकवि कालिदास ने लिखा है कि पेड़ों के नीचे शुकों के कोटरों से गिरे हुए इंगुदी के धान के दाने बिखरे पड़े हैं.[24] इस वर्णन से हमारे सम्मुख तीन बातें आती हैं. प्रथम तो यह कि शुक पेड़ों के खोखलों में निवास करते हैं. दूसरी यह कि नीवार या इंगुदी नामक धान विशेष का वे भक्षण करते हैं. तृतीय बात यह है कि वे खाद्य पदार्थों का दुरुपयोग करते हैं तभी तो उनके कोटरों से बाहर निवार के दाने बिखरे पड़े हैं. इसी प्रकार के वर्णन महाकवि बाण ने भी किए हैं. शुकों के द्वारा फलों व अनार दानों को कुतर-कुतर कर डालने से पृथ्वीतल के गीले होने के वर्णन कादम्बरी में मिलते हैं.[25] हर्ष चरित में शरीफे व कटहल के कच्चे फलों को निठुरता से कुतर कर गिराने का वर्णन किया गया है.[26] इन सब वर्णनों से तोतों द्वारा खाद्यपदार्थों को विनष्ट करने की आदत प्रमाणित होती है, जो वैज्ञानिक सत्य है.

तोतों द्वारा बातों को दोहराने का वर्णन काव्यकारों ने अनेकधा किया है. रघुवंश में इन्दुमती स्वयंवर में जाने वाले राजा को प्रातः जगाये जाने पर पिंजड़े में बन्द तोते ने राजभवन के लोगों के वचनों का अनुकरण किया.[27] वासवदत्ता में शुक द्वारा वचनों के अनुकरण का वर्णन करते हुए लिखा है कि रमणियां पालतू शुकों के द्वारा सुरतकाल के प्रियवचनों का उच्चारण सुनकर लज्जित हो गयी थीं.[28] वास्तव में शुक के कानों में जो भी पड़ता है वह उसी की पुनरावृत्ति करता

---

23 विपरीतजिह्वाजनितमाधुर्यैरोष्ठमात्रप्रकटितरागैः राजशुकालापैः शिशोरिव मुग्धविलोभ्यभानस्य' ह० च० पृ० 397 'कुर्वाणैस्त्रि संरणपठैःप रमोपासकैः शुकरपि' वही० पृ० 423 अवतंसितैकशुकपक्षकप्रभाहरित।यमानेन ।' वही० पृ० 413

24 'नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरुणामधः' शाकु० 1–14

25 'शुक–शत–मुख-नख-शिखर–शकालित–फलस्फीतैः' कादम्बरी० पृ० 384, शुककुल–दलितदाडिमफलद्रवद्रीकृतं तलैः' वही० पृ० 56

26 'सदाफलकटफलविशसननिः शूकशुकशकुन्तशातितशलाखः'—ह० च० पृ० 420

27 'अनुवदतिशुकस्ते मजुवाक्पंजरस्थः ।' रघु० 5–74

28 'क्षणदागतसुरतवैयात्यवचनसंस्मारकगृहशुकचाटुव्याहृतिक्षणजनितमन्दाक्षासु ।' —वासवदत्ता० पृ० 37

है. निद्रा में कहे गये शब्दों तक की नकल तोते कर लेते हैं.[29] अतः शुक वास्तविकता को उद्घाटित करने में बड़े सहायक होते हैं. शुक द्वारा पराशर के चरित का गान करना, प्रातःकाल में शुक-सारिका द्वारा मंगलगीतों को गाना एवं शुक का पानी मांगना—ये सब वर्णन शुक के वाक्-चातुर्य के ज्वलन्त उदाहरण हैं.[30] आश्रमवासी शुकों द्वारा आहुतियां तक देने का वर्णन किया गया है.[31] कादम्बरी में तोते की चोंच को लाल रंग का बतलाया है.[32]

इन सब वर्णनों से शुक की बुद्धिमत्ता एवं वाक् चातुर्य पर तो प्रकाश पड़ता ही है, साथ ही काव्यकारों के विलक्षण सूक्ष्म-निरीक्षण का भी ज्ञान होता है.

उपमित शुकः—सभी काव्यकारों ने शुक की दो विशेषताओं को यत्र-तत्र-सर्वत्र उपमित किया है. प्रथम तो शुक के शरीर का हरितवर्ण एवं द्वितीय उसके चंचु की लालिमा. कालिदास ने महारानी की चोली के रंग को शुक के उदर के समान श्याम बताया है.[33] अभिज्ञानशाकुन्तल में भी महाकवि ने शकुन्तला द्वारा प्रणय-पत्र लिखे जाने वाले कमलिनी के पत्ते को सुग्गे के पेट के समान कोमल बतलाया है.[34] कादम्बरी में सेनापति के उत्तरीय को शुक के पखों के समान हरे रंग का बतलाया गया है.[35] शाक द्वीप पर उत्पन्न होने वाले शाक नामक वृक्ष के पत्तों के रंग को तोते के पंख के समान बतलाया है.[36] अगस्त्याश्रम के चारों ओर कदली वृक्ष से निर्मित बाड़ को सुग्गे के समान हरितवर्ण का कहा है.[37] आकाश मार्ग में उड़ती हुई शुक श्रेणी को सुन्दर हरे-हरे पत्तों से निर्मित पल्लवों वाली

---

29 श्रुतस्यवुत्स्वापगिरस्तदक्षराः पठद्भिरत्रासि शुकैर्वनेऽपि सः'—नैषध० 12–25

30 'कालदेशविषया सहात् स्मरादुत्सुकं शुकपितामह शुकः' वही० 18-25, यस्याञ्च निशावसाने प्रबुद्धस्यतारतमपि पठतः पंजरभाजः शुक-सारिकासमूहस्याभिभूत. कादम्बरी० पृ० 165, क्रीडा वेश्मनि चैष पंजरशुकः क्लान्तो जलं याचते। विक्रम'० 22-2

31 'अनवरतश्रवस-गृहीत—वषट्कार-वाचाल-शुककुलम् ।' कादम्बरी० पृ० 119

32 'मुखरागः शुकेषु ।' वही० पृ० 125

33 'शुकोदरश्याममिदं स्तनां शुकम् ।' विक्रम० 4–17

34 'एतस्मिञ्छुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे ।' शाकु० 3 गद्य

35 'एषोऽस्य शुक-पक्षित-हरित-रागोत्तरीयांशुकप्रान्तेन बलाहकः ।' कादम्बरी० पृ० 261

36 शाकः शुकच्छदसमच्छविपत्रमालभारी हरिष्यति तरुस्तव तत्र चित्रम् ।' – नैषध० 11–38

37 दिशि-दिशि शुकहरितैश्च कदलीवनैः श्यामलीकृत परिसरम्' कादम्बरी० पृ० 63

माला से उपमित किया गया है.[38] किरातार्जुनीयम् में महाकवि भारवि इन्द्र धनुष से शुकावलि की समता करते हुये लिखते हैं कि तोतों की पंक्ति प्रवाल के टुकड़ों के समान अरुणवर्ण चंचुओं में पीनवर्ण धान की फलसंयुक्तशिखा धारण करती हुई प्रस्फुटित शिरीष के पुष्प सवर्णा इन्द्र के धनुष का अनुसरण कर रही है.[39] यहां शुक की रक्त चोंच, पीतवर्णा धान की बाली, हरित-शरीर एवं अनेक रंगों वाली गले की रेखाओं की उपस्थिति में आकाश में उड़ने के कारण अनेक रंगों की साम्यावस्था होने से शुक को इन्द्र धनुष से उपमित किया गया है, कारण कि इन्द्र धनुष में भी अनेक वर्णों को साम्यावस्था होती है. अतः उपमा सुन्दर एवं सार्थक है.

श्रीकण्ठनामक जनपद का उल्लेख करते हुये बाणभट्ट ने अनार के दानों की लालिमा को शुक की चोंच के रक्तवर्ण से उपमित किया है.[40] नैषधकार ने तोते की चोंच को उसी के द्वारा भक्षित बिम्ब फल के समान लाल एवं परों को कच्चे बिम्बफल के समान हरा बतलाया है.[41] यहां पक्के बिम्ब व चोंच एवं कच्चे बिम्बफल व शुक के पंखों का साम्य प्रदर्शित किया गया है. हंस व मनुष्य की वाणी से तोते की वाणी का साम्य प्रदर्शित किया गया हैं.[42] इस प्रकार सभी काव्यकारों का ध्यान शुक की चोंच के रक्त व शरीर के हरे रंग पर गया है या यों कहें कि सभी काव्यकारों ने एक दूसरे का अनुकरण कर पुनः पुनः शुक की विशेषताओं का वर्णन किया है तो अनुचित न होगा.

इस प्रकार कालिदास एव कालिदासोत्तर काव्यकारों ने शुक का कुल ४७ बार वर्णन किया है. बाणभट्ट ने तोते का सबसे अधिक बार यानी ३१ बार वर्णन किया है. कालिदास, श्रीहर्ष, भारवि, दण्डी, माघ एवं सुबन्धु ने शुक का वर्णन क्रमशः ६-६-१-१-१-१ बार किया है अश्वघोष के काव्यों में शुक का वर्णन नहीं मिलता. शुक के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में अवलोकनीय है.

---

38 'हरितपत्रमयीव गरुद्गणैः
स्रगवनद्धमनोरमपल्लवा ।
शुकावलिः ।

— शिशु० 6–53

39 'शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमलाधनुः श्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति ।' किरात० 4-36

40 'बीजलग्नशुकचंचुरागाणामिव'—ह० च० पृ० 161

41 तामन्वगाद शितविम्बपाकचंचोः स्पष्टं शलाटुपरिणत्युचितच्छदस्य । कीरस्य ।।

—नैषध० 21-122

42 'स कीरवन्मानुषवागवादीत् ।' वही० 3–12

तालिका-१

'शुक' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (६)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
२	रघु०	५।७४. १७।२०.
२	शाकु०	१।१४. ४।ग.
२	विक्रम०	२।२२. ४।१७.

तालिका-२

'शुक' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (४०)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
भारवि	१	किरात०	४।३६.
माघ	१	शिशु०	६।५३.
श्रीहर्ष	६	नैषध०	२।१५, ३।१२, ११।१८. १२।२५. १८।२६. २१।१२२.
सुबन्धु	१	वासवदत्ता	पृ० ३७.
बाणभट्ट	६	ह० च०	पृ० १६१, २२७, ३६७, ४१३. २३. ५६६.
,,	२४	कादम्बरी	पृ० २३, ३६ से ४०, ४३, ५१, ५३, ५६, ६३, ७६, १०३, ३, १६, १६, २५. ६५. ७८. २६१, ३८४, ५६२. उ० पृ० १६२.
दण्डी	१	द० च०	पृ० १००.

उलूक
THE OWL

'दिवान्धर स्फुटलब्धरूपमालोकतालोकमुलुकलोकः।'
—नैषध० २२।३७

संस्कृत-साहित्य में उलूक का वर्णन मध्यम स्थान रहता है. वैदिक साहित्य में उलूक का उल्लेख मिलता है.[1] वीरकाव्य साहित्य में भी उलूक के वर्णन उपलब्ध हैं. रामायण में गृध्र व उलूक की आपसी बातचीत का वर्णन मिलता है.[2] अमरकोष में उल्लू के लिए उलूकः, वायसारातिः, पेचकः व घूकः नामों का का उल्लेख है.[3] वैज्ञानिकों के अनुसार उलूक पक्षि-श्रेणी के उल्लू उपश्रेणी के उल्लू उपवर्ग के उल्लू परिवार का सदस्य है.[4]

उल्लू एक बड़ा ही डरावना पक्षी है. यह रात्रि को अपना कार्य क्षेत्र रखता है एवं इसी कारण इसे 'रात का राजा' की उपाधि से विभूषित किया गया है. उल्लू के अनेक प्रकार विश्व-पटल पर विद्यमान हैं. इसकी आंखें बन्दर की भाँति सामने की ओर होती हैं, अगल-बगल में नहीं, जिससे वह केवल सामने की ओर देख सकता है. उल्लू की गर्दन व पंख दोनों में कोमलता होती है. यह अपनी गर्दन को बड़ी सरलता से इधर-उधर घुमा सकता है. इसके उड़ते समय पंखों की आवाज नहीं होती.[5] सामान्यतः उल्लू चितले रंग के होते हैं. इनमें प्रकारों के आधार पर कुछ-कुछ अन्तर होता है. उल्लू के कान बड़े-बड़े होते हैं जिसकी सहा-

---

1 ऋक्० 10/165/4. वा० सं० 24/23 मै०सं० 3/14/4. अ०वे० 6/19/2 तै० सं० 5/5/18/1.

2 'गृधोलूकविवाद तं पृच्छति स्म रघूत्तमः' —वा० रा० 3/29

3 उलूकेतु वायसारातिपेचको, घूकस्य —इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

4 जीवजगत् पृ० 477

5 ब० ओ० सौ० पृ० 241–252. इन० ब्रि० भाग–16 पृ० 979 इन० वर्ड० भाग–13 पृ० 673

यता से यह हल्की से हल्की आवाज भी आसानी से सुन सकता है. इसकी आंखें बड़ी-बड़ी होती हैं जिनसे यह रात को कम प्रकाश में भी आसानी से देख सकता है. दिन में उल्लू बांई आंख को बन्द रखता देखा गया है.

उल्लू एशिया माइनर, रूस, अफ्रीका, पश्चिमी एशिया, द० प० एशिया, यूरोप व दक्षिणी एवं उत्तरी अमेरिका में पाया जाने वाला प्रायः विश्वव्यापी पक्षी है.

उल्लू खण्डहर, कब्र व श्मशान वाले स्थानों, पेड़ों व पर्वत की गुफाओं में एवं बिजली के खम्भों पर बैठा देखा जा सकता है. यह शाम होने पर ही बाहर निकलता है. दिन में यह सामान्य रूप से किसी गाढान्धकार मय झाड़ी या गुफा में विश्राम करता है.[6]

उल्लू एक शिकारी पक्षी है. यह अनेक जीव-जन्तुओं को खाकर अपना पेट भरता है. उल्लू की भोजन-तालिका में चूहे, मेढ़क, खरगोश, मछली, छछूंदर, गिलहरी, टिड्डी, गोबरैला व अनेक छोटे पक्षी हैं.[7] मोर की भांति यह भी सर्व-भक्षी पक्षी है.

भारतीय समाज में उल्लू का घर में निवास करना अशुभ माना जाता है एवं इसका बोलना किसी अप्रिय घटना का प्रतीक माना जाता है. इतना ही नहीं इसे मूर्खता का प्रतिरूप माना जाता है एवं मूर्खों को 'काठ का उल्लू' और 'उल्लू का पट्ठा' कहा जाता है. एक ओर उल्लू को इतना अपमानित एवं नीच पक्षी माना है तो दूसरी ओर इसे 'लक्ष्मी' का वाहन कहा है. तात्पर्य यह है कि यदि अधिक धन से प्रेम हो मूर्खता की ओर प्रवृति होने लगती है, ऐसा काव्यकारों का मत हैं. परन्तु वास्तव में उल्लू के साथ अन्याय किया गया है. उल्लू जितना निडर और पराक्रमी पक्षी शायद ही कोई हो. इसकी शक्ल देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं. जातकों में एक कथा मिलती है कि एक बार पक्षियों की एक सभा हुई जिसमें सर्वसम्मत्ति से उल्लू को राजा स्वीकार किया गया किन्तु यह मत कौवे को नहीं भाया और उसने कांव-कांव करके इसका विरोध किया. भला उल्लू इसको कब सहन करने वाला था, वह भगा और कौवे का पीछा करने लगा. कहते हैं कि उसी दिन से उल्लू-परिवार व काक-परिवार में वैर पनप गया जो निरन्तर चलता आ रहा है. कुछ भी हो अपनी वीरता व अद्भुत गुणों के कारण उल्लू आज भी 'रात का राजा' बन बैठा है, भले ही कौवा उसका कितना भी विरोध करे.

---

6 वि० इ० वर्ड स० पृ० 62

7 इन० ब्रि० भाग–16 पृ० 979, इन० वर्ड० भाग–12 पृ० 673. ब०ओ०सौ० पृ० 241–252

पञ्चतन्त्र में भी एक प्रकरण कौवे व उल्लू से सम्बन्धित है, जिसे 'काकोलूकीयम्' कहते हैं. जिसमें कथाओं का संग्रह है जो संख्या में १६ हैं. हितोपदेश में भी कौवे व उल्लू से सम्बन्धित कथायें उपलब्ध हैं. एक स्थान पर आधी रात को उल्लू द्वारा कौवे को मारे जाने का वर्णन किया गया है.[8] वास्तव में उल्लू को ईश्वर ने रात को देखने की जो शक्ति दी है वह बेचारे कौए के लिए अभिशाप बन गई है क्योंकि वह तो रात को देख नहीं सकता और उसे उल्लू का भोजन बनना पड़ता है. इसी कारण उल्लू को 'वायसाराति' नाम दिया गया है.

प्राचीन यूनान में उल्लू को सरस्वती का वाहन माना जाता था[9] प्रसिद्ध कवियों में कीट्स, टेनिसन व ई. एच. रिचार्ड्स ने उल्लू की बड़ी प्रशंसा की है. उल्लू को अनेक देशों में बुद्धिमत्ता का प्रतीक माना है.[10]

उल्लू की मादा एक बारगी २ से १२ तक अण्डे देती है जो किस्मों के अनुसार विभिन्न रंगों के होते हैं एवं गोल होते हैं. उल्लू की ५२५ किस्मों का होना बताया गया है.[11] यहां हम उल्लू की कतिपय किस्मों का नामोल्लेख मात्र करना उचित समझते हैं:—

१. बार्न-आउल.
२. दी-रॉक-ईगल-आउल.
३. ग्रेट-हार्नड-आउल.
४. दीर्घकर्ण उल्लू (लान्ग इयर्ड आउल)
५. पिगमी उल्लू.
६. चित्तीदार उल्लू.
७. लघुकर्ण उल्लू (शॉर्ट इयर्ड आउल)
८. लार्ज मोटेल्ड वुड-आउल.
९. भूरा-मत्स्य-उल्लू (ब्राउन फिश-आउल)

संस्कृत काव्यों में उलूक

संस्कृत काव्यों में उलूक को कौशिकः, उलूकः, निशाचरः व दिवाभीतः नामों से कहा गया है.[12]

---

8 'कौशिकेन हतज्योतिर्निशीथ इव वायसः' –हितोपदेश (सन्धि 4/51)

9 भारत के पक्षी० पृ० 158

10 इन० बर्ड० भाग–13 पृ० 673

11 यथोपरि० भाग 13 पृ० 673

12 नैषध० 22/35 कादम्बरी० पृ० 98, ह० च० पृ० 424. ह०च०पृ० 22/37 वासवदत्ता० पृ० 219 कादम्बरी० पृ० 58. कुमार० 1/12

मानव व उल्लू—यद्यपि मानव व उल्लू का कोई सीधा सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता किन्तु काव्यकारों ने यदा-कदा मानव को उल्लू से सम्बन्धित करने के प्रयास किये हैं. इन्द्र व विश्वमित्र को कौशिक की उपाधि से अलंकृत किया गया है तथा कणाद को उलूक कहा है[13] नैषधीयचरित के बाइसवें सर्ग में नल दमयन्ती को अन्धकार की परिभाषा के सम्बन्ध में बतलाते हुए वैशेषिकों के मत का प्रतिपादन करते हैं. वे तर्क देते हैं कि वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद (औलूक या उल्लू) है एवं उलूक का नेत्र (दर्शन) ही अन्धकार के तत्त्व का निरुपण करने में समर्थ हो सकता है.[14] शबरों के लिए उल्लुओं को ही उपदेशक माना है.[15] अतः मानव व उलूक का सम्बन्ध अवश्य है.

कार्य-कलाप—उलूक की विभिन्न क्रियाओं का काव्यकारों ने वर्णन किया है. महाकवि श्रीहर्ष ने उल्लुओं द्वारा दिन के प्रकाश को अन्धकार समझने की बात कही है.[16] तात्पर्य यह है कि दिन उलूकों के लिए तो रात के ही समान है क्योंकि वे दिन को देख नहीं सकते. बाणभट्ट ने उल्लुओं द्वारा सर्वदा जातक कथाओं को सुनकर आलोक ग्रहण करने की बात कही है.[17] बाण का यह वर्णन वास्तविक नहीं जान पड़ता क्योंकि उलूक जातक कथायें कैसे सुन सकता हैं क्योंकि एक तो वे दिन को बाहर ही नहीं निकलते एवं दूसरे वे मानव से दूर ही रहते हैं. अतः बाणभट्ट का यह वर्णन कथा-साहित्य की बात है, कोरी कल्पना है. शाम के समय पुराने वृक्षों के कोटरों से निकलकर उल्लुओं के बाहर आने के वर्णन सुबन्धु व बाण ने किये हैं.[18] श्मशान व विन्ध्याटवी में उल्लुओं के विचरण करने का भी वर्णन मिलता है.[19] इन सब वर्णनों पर हमारे सम्मुख तीन बातें आती है.

१. उलूक अन्धकार में रहने वाला पक्षी है.

२. उलूक शाम के समय ही बाहर निकलता है.

३. उलूक श्मशान, खण्डहर एव पेड़ों के खोखलों में निवास करते हैं.

---

13 नैषध० 5/64, 22/35

14 नैषध० 22/35

15 दिवान्धकार स्फुटलब्ध रूपमालोक—नैषध०22/17

15 ,उपदेष्टारः सदसतां कौशिकाः' —कादम्बरी पृ० 98

17 हृ० च० पृ० 424

18 'कुटुम्बिनि कौशिककुले' —हृ० च० पृ० 138

19 'उलूकद्रोणशकुनि'० —वासवदत्ता पृ० 219

उपमित उलूक—संस्कृत-साहित्य में कल्पना एवं उपमा दो मुख्य विशेषतायें हैं जो हर वर्णन में विद्यमान रहती है, फिर भला उल्लू काव्यकारों द्वारा उपमित क्यों नहीं किया जाता. अन्धकार व उल्लू की समता करते हुए कालिदास ने कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में हिमालय वर्णन करते हुए कहा है कि हिमालय की लम्बी गुफाओं में दिवस में भी अन्धकार रहता है वह ऐसा प्रतीत होता है मानों अन्धकार भी दिन से डरने वाले उल्लू के समान गुफाओं में आकर छिप गया हो.[20] शाम को विचरण करने निकले हुए उल्लू की समता नन्दनवन में विचरण करने वाले इन्द्र से की गई है.[21] अन्यत्र उल्लू व इन्द्र को उपमित करते हुए कहा है कि जिस प्रकार अस्थिर नेत्र दृष्टि उल्लू सूर्य के नेत्र के सम्मुख देखने में असमर्थ रहता है उसी प्रकार इन्द्र भी रावण को न देख सकने के कारण अमरावती को छोड़कर हिमालय की गुफा को अपनाता है.[22] श्रीहर्ष लिखते हैं कि नल के सौंदर्य को देखकर व स्वयं को देखकर इन्द्र अपने आप को उल्लू समझने लगे.[23] यहां वास्तव में नल के सौन्दर्य की प्रशंसा मात्र करने के लिए इन्द्र को नीचा दिखलाया गया है. अन्यत्र अन्धकार की मलिन एवं अग्राही सम्पत्ति की त्रिशंकु की मलिन राज्य समृद्धि से समता करते हुए विश्वामित्र को उल्लू से उपमित किया गया है.[24]

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्यों से उलूक का कुल चौदह बार वर्णन आया है. बाणभट्ट ने उलूक का पांच बार वर्णन किया जबकि श्रीहर्ष, सुबन्धु, माघ व कालिदास ने क्रमशः चार, दो, दो व एक बार, अश्वघोष, भारवि एवं दण्डी उलूक के विषय में कुछ नहीं कहते. उलूक के वर्णन का विश्लेषण संलग्न तालिकाओं में अवलोकनीय है.

---

20 'दिवाकराद्ररक्षति'० —कुमार० 1/12

21 'नन्दनवनमिव संचरत्कौशिकम्' —वासवदत्ता पृ 163

22 शिशु० 1/53

23 नैषध० 5/64

24 नैषध० 22/37

तालिका–१

'उलूक' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (1)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	कुमार०	१।१२

तालिका–२

'उलूक' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (13)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
माघ	२	शिशु०	१।५३, ११।६४
श्रीहर्ष	४	नैषध०	५।६४, १६।४०, २३।३५ से ३७.
सुबन्धु	२	वासवदत्ता०	पृ० १५६ व १६३.
बाणभट्ट	३	ह० च०	पृ० १३८, २१६ व ४२४.
,,	२	कादम्बरी	पृ० ५८ व ६८.

कलविंक
THE SPARROW

'कलविंककंधराधूसरासु तारकासु।'

—ह० च० पृ० २६६

संस्कृत-साहित्य में गौरैया का वर्णन अत्यन्त विरल है. गौरया को वैदिक साहित्य में कलविङ्क कहकर पुकारा गया है.[1] अमरकोष में इसे चटकः व कलविंकः नामों से कहा गया है एवं मादा को चटका नाम दिया गया है.[2] वैज्ञानिकों के अनुसार यह तूती परिवार का सदस्य है.[3]

गौरैया हमारा जाना पहिचाना पक्षी है जो हमारे घर के आंगन में आसानी से देखा जा सकता है. नर का रंग गहरा भूरा होता है. इसकी चोंच पर काली धारियाँ होती हैं. इसका सिर भूरा एवं सिलेटी रंग का होता है. मादा गर्दन से लेकर नीचे तक का भाग नर से मिलता जुलता होता है. इसके पंखों पर काली एवं सफेद धारियां होती हैं. नर व मादा दोनों की आंख के ऊपरी भाग में बादामी रंग की एक तिरछी रेखा होती है.

गौरैया दुनिया के सभी भागों में पाया जाने वाला पक्षी है. इसका मानव से शताब्दियों का साथ रहा है यह कबूतरों की भांति घर में किसी आड़ वाले स्थानों में अपना घोंसला बनाकर रहती है. गौरया बड़ा ही चंचल एवं झगडालू पक्षी है. यह १०–१५ के समुदाय में सदा-सर्वदा चीं-चीं चूं-चूं करता रहता है एवं जमकर झगड़ा करता है. कबूतरों की भांति इनका भी कोई अण्डे देने का खास समय नहीं. साल के किसी भी भाग में यह अण्डे दे देती है. गौरया यदा-कदा धूल में नहाती देखी गई है जो वर्षा आने का प्रतीक माना गया है. घाघ व भड्डरी के ग्रन्थों में इसके उल्लेख मिलते हैं घर में लगे शीशे में देखकर यह छोटा सा पक्षी अपने प्रतिबिम्ब पर बारम्बार प्रहार करता देखा गया है[4] गौरया

---

1 तै० सं० 2/5/1/2 मै० सं० 3/14/1 का० सं० 12/10

2 'चटकः कलविंकः स्यात् तस्य स्त्री चटका' —इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

3 जीवजगत्० पृ० 510

4 ब० ओ० सो० पृ० 383

अनेक प्रकार के कीड़े मकोड़े खाता है. यह अनाज व बीज भी खाते हुए देखा गया है.[5] मानव के अत्यन्त निकट होने पर भी गौरया के प्रति कोई विशेष साहित्यिक वर्णन नहीं हो पाये हैं.

संस्कृत काव्यों में कलविङ्क

संस्कृत काव्यों में गौरया के लिए चटकः व कलविङ्कः नामों का उल्लेख मिलता है.[6]

कार्य-कलाप—कलविंक के द्वारा चूं-चूं की ध्वनि करने के उल्लेख मिलते हैं.[7] केवल इसी एक क्रिया का उल्लेख काव्यकारों ने किया है.

उपमित कलविङ्क—बाणभट्ट ने अपनी कृति हर्षचरित में प्रातःकालीन तारों की समता कलविंक के धूसर वर्ण वाले कन्धरा से की है.[8] यहां प्रातःकाल तारों के मन्द हो जाने से उनका धूसर वर्ण होना स्वाभाविक है, अतः उपमा सुन्दर है, सार्थक है.

सम्पूर्ण कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में कलविंक का कुल तीन बार ही वर्णन आया है. कालिदास के काव्य व नाटकों में कहीं भी चटका का उल्लेख नहीं हुआ. कालिदासोत्तर काव्यों में बाणभट्ट के कलविंक का दो बार एवं सुबन्धु ने एक बार वर्णन किया है. कलविंक के काव्यात्मक वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिका द्वय में देखा जा सकता है.

---

5 इन० बर्ड० पृ० 594

6 वासवदत्ता पृ० 232 ह० च० पृ० 211

7 'चटका संचार्यमाणवाचाटचाटकैरक्रियमाणचाटव': —ह० च० पृ० 419
वासवदत्ता पृ० 332

8 'कलविंक कन्धराधूसरासु तारकासु' ह. च. पृ. 299

तालिका—१

'कलविंक' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (X)

तालिका—२

'कलविंक' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (3)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
सुबन्धु	१	वासवदत्ता०	पृ. २३२.
बाणभट्ट	२	हर्षचरित०	पृ. २९९ व ४१९.

सारिका
THE MYNA

'पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पंजरस्थाम् ।'
—मेघ० २।२५

भारतीय साहित्य में सारिका का स्थान गौण रहा है. वैदिक-साहित्य में सारिका के लिए शारिः शब्द का प्रयोग देखा गया है.[1] वीरकाव्य साहित्य में भी सारिका के उल्लेख मिलते हैं.[2] पौराणिक साहित्य में भी यत्र-तत्र सारिका के वर्णन उपलब्ध होते हैं.[3]

शब्द कल्पद्रुम में सारिका के १५ नामों का उल्लेख किया गया है. वे हैं—पीतपादा, गोराटी, गोकिराटिका, शारिका, सारी, शारी, चित्रलोचना, मधुरालापा, पूती, मेघाविनी, गोराष्टिका, गोकिराटी, गोरिका व कलहप्रिया. ये सभी नाम सारिका की सामान्य विशेषताओं के आधार पर रखे गये हैं. वैज्ञानिकों की दृष्टि में सारिका मेरु-दण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत पक्षि श्रेणी के मैना-परिवार की सदस्या है.[4]

सारिका की अनेक जातियां भू-मण्डल पर विद्यमान हैं. मुख्यतः यह बर्मा, थाईलैण्ड, मलाया, लंका, संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, अफ्रीका, हवाई-द्वीप हंगरी, स्विटजरलैण्ड, यूरोप के अनेक भाग, पाकिस्तान, अफगानिस्तान व भारत के अनेक भागों में निवास करती है.[5]

सामान्य मैना का ऊपरी भाग मटियाला एवं भूरा होता है. इसका सिर एवं गर्दन नीलापन लिए होते है. इसकी चोंच पीली एवं आंखों के पासवर्ती भाग चमकीले पीले होते हैं. इसकी आंखें गहरी लालिमा से पूर्ण भूरी होती हैं. इसके

---

1 तै० सं० 5/5/12/1 मै० सं० 3/14/14. वा. सं. 24/33
2 'मन्य प्रीति विशिष्टा सा मत्तो लक्ष्मण सारिका' —वा० रा० अर० 53/22
3 'महाभारत'० 13/54/11
4 जीवजगत्० पृ० 5/9
5 ब० ब० द्रा० को० पृ० 146. ब० ओ० सौ० पृ० 392

पैर पीले होते हैं.[6] इसकी लम्बाई ६ इञ्च के लगभग होती है.[7]

मादा व नर में विशेष अन्तर नहीं होता.[8] यह समुदाय में रहने वाला पक्षी है जो भारतीय घरों में फिरता हुआ आसानी से देखा जा सकता है. यह बड़ा ही वाचाल पक्षी होता है. शुक की भांति सारिका भी मनुष्य की नकल तो करती ही है साथ ही इसे अन्य पक्षियों की नकल करते हुए भी देखा गया है. भारतीय घरों में शुक के साथ-साथ सारिका का भी पालन होता है, परन्तु यह शुक की भांति अधिक लोकप्रिय नहीं. सारिकायें बाहरी दुश्मन का डटकर सामना करती हैं. वैसे ये आपस में भी बहुत झगड़ती देखी गई हैं परन्तु दुश्मन से मुकाबले के समय सब एक हो जाती हैं. मैनायें रात्रि में बिजली के तारों व मकानों के छज्जों पर विश्राम करती हैं. यदा-कदा ये रात को भी चिल्ला उठती हैं.[9]

सारिका मोर की भांति सर्वभक्षी पक्षी है. यह कीड़े-मकोड़े, मरी हुई छिपकलियां, टिड्डी, झींगुर, फल-फूलों का रस, अन्न व विभिन्न बीजों को खाकर खेती के लिए कौए की भांति अत्यन्त सहायक है[10]

सारिका का घोंसला सामान्यतः पेड़ों पर ही होता है, परन्तु यह घरों में भी घोंसले बना लेती है. इसके घोंसले में सांप की केंचुली, छिपकली, काठ के टुकड़े, कागज, चिथड़े व रुई का बाहुल्य होता है.[11] मैना एक बार में विभिन्न जातियों के अनुसार २ से ६ तक अण्डे देती है. अण्डे देने का समय मई से अक्टूबर तक होता है.[12]

विश्व में मैना की अनेक जातियां हैं. जिनमें पहाड़ी, देसी किलंहडा, दरिया, तेलिया, अबलखा, गुलाबी एवं पवई प्रमुख हैं.

संस्कृत काव्यों में सारिका

संस्कृत-काव्यों में सारिका का स्थान गौण रहा है. संस्कृत काव्यकारों ने

---

6 ब० ओ० सौ० पृ० 392. द० ब० ट्रा० को० पृ० 146

7 यथोपरि. यथोपरि.

8 ब० ओ० सौ० पृ० 392. द० ब० ट्रा० को० पृ० 146

9 भारत के पक्षी. पृ० 102

10 यथोपरि. पृ. 103. ब० ओ० सौ० पृ० 394 द० ब० ट्रा० को० पृ० 146

11 भारत के पक्षी. पृ० 103. द० ब० ट्रा० को० पृ० 146. ब० ओ० सौ० पृ० –393

12 यथोपरि० द० ब० ट्रा० को० पृ० 146

13 नैषध. 6/60

इसे शारी,[13] सारिका,[14] शारिका,[15] शब्दों से कहा है.

मानव एवं सारिका—मानव एवं सारिका के सम्बन्ध को प्रकट करने वाले अनेक वर्णन काव्यकारों ने किये हैं. मेघदूत में यक्ष मेघ को अपनी प्रिया के विषय में बतलाते हुए कहता है कि उसकी सखी पिंजड़े में विद्यमान सारिका से पूछ रही होगी कि क्या उसे कभी भी अपने स्वामी की याद नहीं आती ? वह तो उसको अतिप्रिय थी.[16] यहां विरहकाल में सारिका को सहारा देने वाली माना गया है नैषधकार ने सारिका के द्वारा भी नल के गुणों के वर्णन का उल्लेख किया है.[17] मैना को दूत बनाने का भी वर्णन मिलता हैं.[18] मुनि द्वारा मैना व तोते को वन में विद्या पढ़ाने का उल्लेख अश्वघोष ने किया हैं.[19] सारिकाओं द्वारा अभिसारिकाओं को मधुर वचन बोलकर जगाने एवं हरिणिका द्वारा सारिकाओं को उपदेश दिये जाने के वर्णन भी उपलब्ध हैं.[20]

सारिका विशेष : कालिन्दी—कादम्बरीकार ने शुक की भांति सारिका विशेष का भी वर्णन किया है. बाणभट्ट ने कादम्बरी 'शुकसारिकाभ्यां कुतुहलवर्णन' ११ के अन्तर्गत कालिन्दी नामक सारिका एवं परिहास नामक शुक के वार्तालाप का वर्णन किया है. कालिन्दी अचानक उपस्थित होती है एवं साथ की शुक परिहास. वह सारिका क्रोध में भरकर कादम्बरी से शिकायत करती है कि एक बदमाश तोता उसका पीछा करता है अतः उसे उसका (शुक) का निवारण करना चाहिए. वह शुक को मिथ्याभिमानी, अधम एवं दुर्विनीत भी कहती है.[21]

---

14 मेघ. उ. 25, नैषध. 1/103 कादम्बरी. पृ. 300

15 बु. च. 21/32 ह. च. पृ. 389, 423

16 पृच्छन्ती वा मधुर वचनां सारिकां पंजरस्थां,
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ।। —मेघ. उ. 25

17 'सारिकास्तथैव तत्पौरुषगायनीकृताः —नैषध. 1/103
श्रुत्वा स नारीकरवर्ति शारीमुखात् स्वभाशंकत यत्र हृष्ठम्' —वही. 6/60

18 'पंजरस्थ शुकसारिका दूतीः करोति' —कादम्बरी. पृ. 661

19 'शारिकां च शुकं चैव विद्यां शेतवके वने ।
मुनिः प्रपाठयामास— 11, बु. च. 21/32

20 'कलप्रलापपरागबोधितचकिताभिसारिरकासुसारिकासु' —वासवदत्ता. पृ. 62
'हरिणिके ! देहि पंजर शुकसारिकाणामुपदेशम्' —कादम्बरी. पृ. 533

21 सारिका सक्रोधमवादीत्—भर्तृदारिके ! — कादम्बरि !
कस्मान्ननिवारयस्येनमलीकसुभगामिमानिनमतिदुर्विनीतं मामनुबध्नन्तंविहंगापसदम्'—वही. पृ. 561

सारिका आगे कहती है कि यदि वे इस शुक का निवारण न करेंगी तो वह आत्म-हत्या कर लेगी.[22] तदनन्तर महाश्वेता के पूछे जाने पर मदलेखा सारिका का वृतान्त बतलाती है कि कादम्बरी ने परिहास नामक शुक से इस कालिन्दी नाम सारिका का पाणिग्रहण करवाया है.[23] किन्तु आज प्रातः सारिका ने शुक को तमालिका से वार्तालाप करते देखा अतः यह रुष्ट हो गई है एवं 'परिहास' से न वार्ता करती है, न स्पर्श करती है एवं न ही उस पर दृष्टिपात ही करती है.[24] तदनन्तर चन्द्रापीड सारिका की कठिनाई को कादम्बरी के सम्मुख रखता हुआ सारिका का पक्ष लेता है. दूसरी ओर शुक परिहास सारिका की तीव्रबुद्धि, राज-भवन में रहने से वाक् पटुता एवं धूर्त्तता की ओर संकेत करता है. इस प्रकार सारिका एवं शुक के मनोमालिन्य का एक दृश्य महाकवि ने प्रस्तुत किया है. इस वर्णन में सारिका की बुद्धिमत्ता, चपलता एवं वाक्पटुता पर प्रकाश डालने का सफल प्रयास किया गया है. कवि ने इस वर्णन को कुतहल वर्णन कहा है अतः यह मानव के मनोरञ्जन से सम्बन्धित है. इस वर्णन में नारी व नर की सामान्य विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है. कादम्बरी के उत्तरार्ध में कालिन्दी व परिहास के पिंजड़े से मुक्त करने का वर्णन मिलता है.[25] अतः शुक सारिका पालन अत्यन्त प्राचीन है, आज का ही नहीं.

इन वर्णनों से स्पष्ट है कि मानव व सारिका का सम्बन्ध रहा है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता.

कार्य-कलाप—हर जीवधारी की कुछ न कुछ क्रियात्मक विशेषता होती हैं. सारिका की सबसे बड़ी क्रिया है-वाणी का अनुकरण. सारिका भी शुक की भांति मानव-वाणी एव अन्य पक्षियों की वाणी की नकल करने में अत्यन्त पटु है. शयनगृह से निवास करने वाली सारिका द्वारा सम्भोग समय के विस्रम्भालाप को अन्य लोगों के सम्मुख प्रकाशित कर अन्तःपुर की कामनियों को लजाने का वर्णन

---

22 यदि मामनेन परिभूयमानामुपेक्षसे ततोऽहं नियतमात्मानमुत्सृजामि'
—वही. पृ. 561

23 'कालन्दीति नाम्ना सारिका, एतस्य परिहासनाम्नः शुकस्य भर्तृदारिकयैव पाणिग्रहणपूर्वकं जायापदं ग्राहिता'—वही. पृ. 561

24 ततः प्रभृति संजातेर्ष्या कोपपराङ्मुखी नैनमुपसर्पति,—न स्पृशति, न विलोकयति, सर्वाभिरस्माभिः प्रसाद्यमानापि न प्रसीदती'ति ।'
—वही. पृ. 562

25 'पजंरबन्ध दुःखाब्दवराकोकालिन्दी सारिका शुकश्च परिहासोत्कावपि भोक्तव्यौ'
—वही उ. पृ. 138

मिलता है.[26] सारिकाओं द्वारा बुद्ध के शीलों का उपदेश देने, वेद व सुभाषित पाठ करने एवं छात्रों की गलतियों पर उनको टोक कर गुरुओं को विश्राम देने के वर्णन विभिन्न काव्यकारों ने किए हैं.[27] तोता और मैना की आपसी बहस एवं वृक्षों पर निवास सम्बन्धी उल्लेख भी मिलते हैं. वासवदत्ता में सारिका द्वारा देर से घर आने वाले शुक पर क्रोध करने एवं "क्या किसी अन्य सारिका के पास गया था" ? इस प्रकार का प्रश्न पूछने का वर्णन है.[28] जामुन के वृक्ष पर एवं राजकुल में शुक सारिका के आलाप-प्रलाप करने का उल्लेख मिलता है.[29] चंपक व आम की शाखाओं व हाथी दांत की खूंटी पर सारिका के बैठने का वर्णन किया गया है.[30]

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्यों में सारिका का कुल मिलाकर २६ बार वर्णन हुआ है. सारिका का सबसे अधिक वर्णन बाणभट्ट ने कुल १८ बार किया है. श्रीहर्ष, सुबन्धु व अश्वघोष ने सारिका का उल्लेख क्रमशः ३, ३ व १ बार किया है, कालिदास के काव्यों व नाटकों में सारिका का केवल एक बार उल्लेख है. भारवि, माघ व दण्डी के काव्यों में मैना का वर्णन कहीं भी नहीं है. काव्यों में सारिका के ये उल्लेख कवियों के पक्षी प्रेम के चूड़ान्त उदाहरण है.

---

26 'शुक-सारिका-प्रकाशित-सुरत-विस्रम्भालापलज्जितावरोध-जनेन'-वही. पृ. 273

27 'शारिकाभिरपि धर्मदेशानां' —ह. च. पृ. 423

'अनेक-सारिकोद्घुश्यमान-सुब्रह्मण्यम्' —कादम्बरी. पृ. 119

'बहुसुभाषित जल्याकजिह्वांश्च शुकशारिका प्रभृतीन्पक्षिणः ?'-वही. पृ. 388

'शुक- सारिकारब्धाध्ययन दीयमानोपाध्यायविश्रान्ति सुखानि' —वही. पृ. 79

जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः
स सारिकैः पंगरर्तिभिः शुकैः ।

'निगृह्यमाणा वटवः पदे पदे
यजूंषि सामानि च यस्य शंकिता ।। कादम्बरी पृ. 6

28 'शारिका काचिच्चिरादागतं शुकं प्रकोपतरलाक्षरमुवाच'-कितव !
शारिकान्तरमन्विष्य सभागतोऽसि । कथमन्यथा रात्रिरियती तवं इति ।
—वासवदत्ता. पृ. 85

29 'तत्र जंबूतरशिखरे मिथः कलहायमानयोशुकसारिकयोः कलकलम्' —वही. पृ. 85

'लालप्यमान-शुक-सारिकम ।' —कादम्बरी पृ. 272

30 कुसुमरजोराशिशार सारिकाश्रित शिखरैः' —वही. 384

'भवनसरुकार–शाखा बलम्बितपंजरेषु शुकसारिका निवहेषु' —वही. पृ. 300

'यत्र पुस्पशरशास्त्रकारिसारिकाध्युषितनागदन्तिका' —नैषध. 18/15

तालिका–१

'सारिका' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (1)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	मेघ०	२/२५.

तालिका–२

'सारिका' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (25)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	१	बु. च.	२१/३२.
श्रीहर्ष	३	नैषध.	१/१०३. ६/६०. १८/१५.
सुबन्धु	३	वासवदत्ता	पृ. ३२, ८५, ८५.
बाणभट्ट	३	ह. च.	पृ. ७९, ३८८, ४२३.
बाणभट्ट	१५	कादम्बरी	पृ. ६, ७९, ११९, २७२, ७३, ३००, ८४, ८८,५३३, ६१, ६१, ६१, ६२, ६६१. उ०–१३८.



काक
THE CROW

'नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।'

—मेघ० १/२५

भारतीय–साहित्य में कौवे के वर्णन गौण रहे हैं, फिर भी वैदिक साहित्य से अब तक के साहित्य में काक का उल्लेख यत्र-तत्र–सर्वत्र व्याप्त रहा है. वैदिक साहित्य में काक को ध्वांक्षः व कुषीतकः नामों से कहा गया है.[1] रामायण में कौवे को वायसः, करकः व दात्युहः शब्दों से कहा है.[2] अमरकोष में कौवे के लिए काकः, करटः, अरिष्टिः, बलिपुष्टः, सत्कृतप्रजाः, ध्वांक्षः, आत्मघोषः, बलिभुज्, वायसः नामों का उल्लेख किया गया है.[3] वैज्ञानिकों की दृष्टि में कौआ मेरु–दण्डीय उपजगत् के अन्तर्गत पक्षि–श्रेणी के शाखाशायी वर्ग के काक–परिवार का सदस्य है.[4]

कौआ विश्व के अनेक भागों में पाया जाता है. न्यूजीलैण्ड के अतिरिक्त शायद ही कोई ऐसा देश हो जहां कौवे न पाये जाते हों.[5] दक्षिण भारत में कोडाई-केनाल पर्वतीय भागों में (पल्ली पर्वत श्रेणी) कौआ नहीं पाया जाता. कहा जाता है कि इस स्थान पर कोई कौआ आ भी जाता है तो उसका देहावसान हो जाता है. सम्भवतः इस स्थान का प्राकृतिक वातावरण कौवे के लिए अनुकूल नहीं. भुपटल पर कौवे की अनेकानेक किस्में देखी गई हैं. उनमें से कतिपय निम्नलिखित हैं—

१. भारतीय गृह काक.

२. अफ्रीकी पाइट काक.

---

1 अ० वे० 11/9/9. 12/4/8 तै० सं० 5/5/13/1

2 'वायस पादमगतः प्रहृष्टमभिकूजिति'–वा० रा० कि० 1/55. 'दात्युहशुकसंघुष्टा'–यथोपरि. उ. 42/1

3 'काके तु करटादिष्टबलिपुष्टसकृत्प्रजाः'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

4 जीवजगत्. पृ. 554

5 इन० वर्ड० भाग 3 पृ. 924

३. फिश कौआ.

४. जैवेरिंग कौआ.

५. द्रोण काक.

इनमें से प्रथम जिसे हम भारतीय गृह काक कहेंगे हमारे देश में पाया जाने वाला कौआ है जो भारतीय बस्तियों में आसानी से देखा जा सकता है. द्वितीय प्रकार का कौवा अफ्रीका में पाया जाता है. उसे अफ्रीकी पाइड कौआ कहते हैं. फिश कौआ संयुक्त राज्य अमेरिका में पाया जाने वाला पक्षी है. जेवेरिन्ग कौआ जैमिका के पर्वतीय भागों में होता है. द्रोणकाक बड़े आकार का कौवा है जो विश्व के अनेक भागों में देखा गया है.

कौवे का रंग काला या सलेटी होता है. कौवे की लम्बाई १८ इञ्च से १९ इञ्च तक होती है. इसके पंख काले होते हैं एवं चोंच मजबूत व तीखी होती है.[6] इसका सिर गोल व आंखें छोटी-छोटी होती हैं.[7] इसकी आंखें सर्वदा इधर-उधर घूमती हैं. कौवे की आंख के बारे में एक कहावत है कि इसकी एक आंख को भगवान् राम ने तीर मारा था. अतः अब इसकी एक आंख की पुतली ही बारी-बारी से एक दूसरी आंख में घूमती रहती है. पर इसमें सत्यता नहीं. कौवे की मादा कौवे से आकार में कुछ ही छोटी होती है. इसके पंख भी कम होते हैं एवं रंग कुछ हल्का होता है. कौवे का प्रमुख निवास पेड़ों से घिरे भाग हैं. यह घनी झाड़ियों या पेड़ों की चोटी पर घोंसले बनाते पाये गये हैं.[7]

कौआ मांसहारी जीव है. यह छोटी चिड़ियां, अण्डे कीड़े-मकोड़े, अनाज एवं रोटी खाता देखा गया है. कौआ किसान का अनाज खाकर तो उसे हानि पहुंचाता है किन्तु वह इतने अधिक कीड़े-मकोड़ों को खा जाता है जो कि फसल को अधिक हानि पहुंचाने वाले होते हैं. वैज्ञानिकों का अनुमान है कि एक सामान्य खेत से एक ऋतु में कौवे १९ बुशल कीड़े-मकोड़ों को खा जाते हैं.[8]

सामान्यतः कौआ एक जंगली पक्षी है अतः इसका पालन नहीं किया जाता है. यह अजायबघरों में पाला जाता है. मादा एक बार में चार से छः अण्डे देती है जो नीली झांयी पूर्ण हरे होते हैं एवं उन पर भूरे धब्बे पड़े होते हैं.[9]

---

6 इन० वर्ड० भाग 3 पृ. 924

7 वही० भाग 3 पृ. 924

8 यथोपरि.

9 इन० ब्रिटे० भाग 6 पृ० 759, इन० वर्ड० भाग 3 पृ. 924, जीवजगत् पृ. 555

कौआ बहुत ही चालाक पक्षी माना गया है. इसकी चेष्टायें बड़ी चंचल होती हैं. तभी तो 'काक-चेष्टा' की चर्चा हो पाई हैं. कौवे की बोली कांव-कांव बड़ी ही भद्दी एवं कर्णकटु होती है. राजस्थानी लोकगीत साहित्य में कौवे को बड़ा महत्व मिला है. प्रेमी की याद करने वाली युवती कौवे के उड़ने से अपने प्रेमी के आने की सूचना का अनुमान लगाती है. वह कौवे को सम्बोधन कर उड़ने को भी कहती है.[10] वह कौवे के गुणों को गाने. सोने की चोंच मढ़वाने, गले में हार पहनाने एवं घुंघरू पहनाने की बात करती है एवं उसे कहती है कि यदि उसके प्रियतम आ रहें हों तो वह उड़ जावे.[11] बाहर जाते समय कौवे का बोलना अनिष्टकारक माना जाता हैं. कौवे द्वारा मनुष्य को छूना भी बुरा माना जाता है एवं कौवे का पालन करने वाले भीलों को हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है.

कौवे से मानव को कोई उपयोगी वस्तु प्राप्त नही होती. इसके मरने से खेतों को खाद अवश्य मिलता है. हां, प्राचीन समय में इसके पंखों का उपयोग तीर बनाने में अवश्य होता रहा है. कौवे के विषय में बावेरु जातक में एक प्रसंग आता है. एक वार एक कौआ किसी व्यापारी जहाज पर पुनः पुनः आ जाता. समुद्र में और जाता भी कहां ? जहाज के कप्तान को इस पर बड़ा क्रोध आया कि यह कौवा कहां से जहाज पर आ गया परन्तु जहाज जब बेलीलोन पहुंचा और वहां के लोगों ने जब इस कौवे को देखा तो वे कौतुहल में पड़ गये कि यह कितना सुन्दर काले चमकीले पंखों वाला सुन्दर पक्षी है जो उनके देश में नहीं पाया जाता. उन्होंने काफी रुपया देकर उसे खरीद लिया. तब कप्तान को कौवे की महिमा का ज्ञान हुआ.

संस्कृत काव्यों में काक

प्रस्तुत काव्यों में कौवे के लिए काकः, द्रोणः, दात्युहः, वायसः एवं बलिपुष्टः शब्दों का प्रयोग हुआ है.[12]

मानव व कौआ—मनुष्य एक बुद्धिमान् जीव है अतः उसका सभी पशु-पक्षियों पर सदा से प्रभुत्व रहा है. कादम्बरी में एक सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है

10 'उड़-उड़रे म्हारा काला रे कागला, कद म्हारा पीऊजी घर आवे।'
—राज० लोकगीत

11 'थारा जनम-जनम गुण गाऊं रे कागा, सोना री चोंच मण्डाऊं गल में हार पहनाऊं, घूघरा बन्धाऊं'
—राज. लोकगीत

12 ह. च. पृ. 245. वासवदत्ता. पृ. 132, ह. च. पृ 138, वासवदत्ता. पृ. 76, कादम्बरी पृ. 642, ह. च. पृ. 444, शिशु. 2/116

कि लोग कौवे को पुत्र प्राप्ति के लिए दधि मिश्रित भात की बलि देते हैं.[13] चाण्डाल बालक एवं भीलों द्वारा कौवे के पंखों को धारण करने के उल्लेख मिलते हैं.[14] बुद्धचरित में लोहे के कौवे का भी वर्णन है. मानव ने यदा-कदा अपने बुद्धिबल से पशु-पक्षियों को चित्रों व मूर्त्तियों में ढाला है एवं अपना मनोरञ्जन किया है.

क्रिया कलाप—हर जीवधारी इस भूपटल पर कुछ न कुछ क्रिया अवश्य करता है कौवे की भी कुछ ऐसी ही क्रियायें हैं जिनका काव्यकारों ने उल्लेख किया है. कौवे की कांव-कांव से परेशान होकर क्षीणपुण्य व्यक्ति कहता है कि कौआ दुधारे वृक्ष पर बैठकर व्यर्थ कांव-कांव कर रहा है.[15] कौआ कांव-कांव करके देवी की आराधना में प्रवृत्त होना महाकवि बाण की सूझ है.[16] उपवन के वृक्षों पर नींद में अलसाए कौए खेतों में कांव-कांव करने लगे. यहां कौओं की नींद व ध्वनि का एक साथ वर्णन किया गया है.[17] राजमहल के ऊपर फहराती हुई चञ्चल पताका की झालर पर बारम्बार पञ्जा रखने में प्रयत्नशील कौवे का वर्णन महाकवि श्रीहर्ष के अतिसूक्ष्म अवलोकन का परिणाम है.[18] क्या ये कौवे मेरे ऐसे बाज को पकड़ सकते हैं.[19] इस प्रकार का वाक्य कहकर बाज की शक्ति के सम्मुख बेचारे कौवे का बड़ा मजाक उड़ाया है. वीरवर्ति-वेतम-लताओं में छिपे हुए कृष्णकाक रति समय उत्तम हो कुह-कुह शब्द किया करते थे उनके इन शब्दों से आकृष्ट हो सुर-मिथुन उनकी सुरत-क्रीड़ा की प्रशंसा किया करते थे.[20] इस विशाल वाक्य में कौवे की सुरत-क्रीड़ा एवं उसकी सहायक क्रियाओं का उल्लेख किया गया है. इसी वाक्य में कौवे के काले होने एवं उसके निवास-स्थल के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है. अन्तःपुर के ऊपर-ऊपर उड़ते हुए कौवों की कांव-कांव के क्षण भर भी बन्द न होने का उल्लेख किया गया है.[21]

उपमित काक—उपमा संस्कृत साहित्य का प्राण है. उपमालङ्कार पर सभी

---

13 रजतपात्र-परिगृहीतं-वायसेभ्योवध्योदनबलिमदात्'-कादम्बरी. पृ. 201

14 'काकपक्षधरैः'-यथोपरि. पृ. 94

'वायसैरसैरिव' —बु० च० 1/14

16 'सर्वतः कठोरवायस गणेन.' —कादम्बरी. पृ. 642

17 'निद्राविद्राणद्रोण. ह. च. पृ. 138

18 'यादेष सौधाग्रनटे'०-नैषध. 12/21

19 'किमेते काकः द. च. पृ. 245

20 'तीरप्ररुढवेतसलताभ्यन्तरलीन दात्युह'०-वासवदत्ता. पृ. 75

21 'व्याक्रोशवायसानाम्'—ह. च, पृ. 281

काव्यकारों ने लेखनी चलाई है. अपरान्ह के आतप की समता नवजात कौवे के मुख से की है.[22] उड़ते हुए कौवों की मण्डली को भैंसे की काले लोहे की किंकणी से उपमित किया गया है.[23] राजा लोगों द्वारा कौवों के समूह से कोयलों के समूह के समान शिशुपाल से शीघ्र ही अलग हो जाने की बात कही है.[24] यहाँ शिशुपाल को कौआ व राजाओं को कोयलों के समान बतलाया गया है. एक स्थान पर द्रोणाचार्य से जय की कामना करने वाले कौरव सैनिकों की भांति कृष्ण-काक (द्रोणकाक) द्वारा वासवदत्ता प्राप्ति की कामना करने की बात कही गई है.[25] यहां द्रोणाचार्य एवं कृष्ण काक एवं वासवदत्ता व विजयकांक्षा की समता की गई है. कौवों की जीवों से एवं गरुड़ व मुनियों की समता बताते हुए कहा है कि कौओं के डर में गरुड़ न डरता है, न सिकुड़ता है, ठीक उसी प्रकार जीवों के कांपने पर भी मुनि से डरे न सिकुड़े.[26]

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्यों से कौवों का उल्लेख कुल मिलाकर ३० बार हो पाया है. यद्यपि महाकवि कालिदास के काव्यों व नाटकों में कौए का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता किन्तु फिर भी कौए के वर्णन की एक झलक कवि के कतिपय वर्णनों में स्पष्ट है. प्रथम तो पूर्वमेघ के २३वें श्लोक में 'गृहबलिभुक्' शब्द का जो प्रयोग किया गया है वह सभी वैज्ञानिकों व विचारकों की दृष्टि में कौवा ही है.[27] द्वितीय वर्णन रघुवंश के बारहवें सर्ग में जयन्त का उल्लेख है, वहां भी वाल्मीकि रामायण की पूर्व कथा के प्रसंग में 'ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः' वाक्य का अर्थ कौए के अर्थ में ही ठीक बैठता है. अतः यदि 'गृहबलिभुक्' एवं 'ऐन्द्रिः' को कौए का वाचक मान ले तो अनुचित न होगा.

कालिदासोत्तर काव्यों में बाणभट्ट ने कौए का १० बार वर्णन किया है. इनके अतिरिक्त सुबन्धु, श्रीहर्ष, दण्डी, अश्वघोष व माघ ने क्रमशः सात, चार, तीन, तीन व एक बार कौवे का वर्णन किया है.

— — —

22 'बालवायसास्यारुणेऽपरान्हमातपे' —ह. च पृ. 95

23 'उपरि कालमहिष'० —यथोपरि. पृ. 263

24 'बलिपुष्टकुलादिवान्यपुष्टै'० —शिशु. 2/116

25 'सैनिका इव द्रोणाशासूचकाः' —वासवदत्ता, पृ. 132

26 'मुनिर्न तत्रास न संकुकोच.' —बु. च. 13/54

27 'नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्या' —मेघ० पृ. 23
देखिये का. के. पक्षी. पृ. 178 व 79

तालिका—१

'काक' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (2)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	मेघ.	१।२३.

तालिका—२

'काक' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (1)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	३	बु. च.	१।१४. १३।५४. १४।१४.
माघ	१	शिशु.	२।११६.
श्रीहर्ष	४	नैषध.	११।१२५. १२।२१. १६।१२. ६१.
सुबन्धु	७	वासवदत्ता	पृ. ५६, ७५, ९२, १३२, ५४, ६२, २१९.
बाणभट्ट	६	ह. च.	पृ. ९५. १३८ २६८, ८१, ३३५, ४४४.
बाणभट्ट	४	कादम्बरी	पृ. ३०, ९४, २०१, ६४२.
दण्डी	३	द. च.	पृ. ४९, २४५, ४१०.

कुक्कुट
THE COCK

'ताम्रचूडो युद्धकोलाहलो महानासीत् ।'
—द० च० पृ ३६४

भारतीय-साहित्य में मुर्गे का स्थान गौण रहा है. वैदिक-साहित्य में मुर्गे को कृकवाकु, कुक्कुट व कुटरु नामों से कहा है.[1] अमरकोष में मुर्गे को कृकवाकुः, ताम्रचूडः, कुक्कुटः व चरणायुधः नामों से कहा है.[2] वैज्ञानिकों के मत के अनुसार मुर्गा मयूर वर्ग के मयूर-उपवर्ग के मयूर परिवार का सदस्य है.[3]

मुर्गा भारत, स्पेन, लेटिन-अमेरिका इत्यादि अनेक देशों में पाया जाता है मुर्गा देखने में बड़ा ही सुन्दर पक्षी होता है. नर दो से ढाई फीट लम्बा एवं चमकदार पोशाक वाला होता है. मादा डेढ़ फीट के करीब होती है. नर का सिर व गर्दन सुनहरी या पीली, कमर गहरी भूरी व डैने कत्थई काले व नीले रंगों से युक्त होते हैं. मुर्गे के सिर पर लाल रंग की चोटी होती है जो इसकी सुन्दरता को बढ़ाने में प्रमुख स्थान रखती है. मुर्गा बहुपत्नीक पक्षी है अतः अतः यह राजा-महाराजाओं की तरह बड़े ठाठ से रहता है एवं इसकी चाल में राजसी अकड़ होती है

भारत के घर-घर में मुर्गी पालन होने लगा है. इसके अण्डे बहुतायत में खाये जाते हैं. मुर्गी का मांस बड़ा स्वादिष्ट बताया जाता है.

मुर्गे के विषय में कई कथायें प्रचलित हैं. एक दन्तकथा में कहा गया है कि एक व्यापारी के पास एक मुर्गी थी जो नित्य सुबह एक अण्डा देती थी. व्यापारी उसे बेचकर काफी पैसा प्राप्त करता था. एक बार उसके मन में लालच आया

---

1 अ वे. 5/31/2 मै. सं. 3/14/15 वा. सं. 24/35. वा. सं, 1/16. तै. सं. 5/5/17/1

2 'कृकवाकुस्तामचूडः कुक्कुटश्चरणायुधः'—इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

3 'जीवजगत'. पृ. 388

ग्रौर उसने सोचा कि रोज-रोज मुर्गी एक-एक ग्रण्डा देती है, क्यों नहीं एक ही दिन इसका पेट चीरकर सब ग्रण्डे निकाल लूं ग्रौर एक साथ बहुत सा सपो प्राप्त कर लूं. उसने छूरी लेकर मुर्गी ा पेट चीर डाला. मुर्गी मर गयी ग्रौर व्यापारी ग्रपनी मूर्खता पर बड़ा दुःखी हुग्रा. इसी प्रकार मुर्गी द्वारा सोने का ग्रण्डा देने की कथायें भी प्रचलित हैं. एक बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्न भी यदा-कदा पूछा जाता है. प्रश्न है कि एक टेढ़े छप्पर पर एक मुर्गा बैठकर ग्रण्डा देता है वह दाहिनी ग्रोर गिरेगा या बायें ग्रोर. उत्तरदाता यदि समझदार है तो सोच समझकर उत्तर देता है–'मुर्गा ग्रण्डा दे हीनहीं सकता. ग्रण्डा तो मुर्गी देती है.' परन्तु यदि जल्दबाजी में उत्तरदाता उत्तर देगा तो ग्रवश्य दायें या बांये कह डालेगा.

'ग्रकबर-बीरबल-विनोद' में भी एक रोचक कथा ग्राती है. एक बार बादशाह ने सब मन्त्रियों को एकत्रित कर कहा कि सामने जो पानी का छोटा सा कुण्ड है उसमें एक मुर्गे का ग्रण्डा पड़ा है उसे जो मन्त्री निकालकर लायेगा उसे भारी इनाम दिया जायेगा. एक-एक करके सभी मंत्रियों ने डुबकी लगा कर ग्रण्डे को निकालने का प्रयास किया परन्तु सभी ग्रसफल रहे. ग्रन्त में बीरबल का नम्बर ग्राया उसने पानी के पास जाकर डुबकी न लगाकर तेज ग्रावाज में कहा कुकड़ूं कूं. बादशाह ने पूछा बीरबल क्या बात है ? बीरबल ने उत्तर दिया—'जहांपनाह ! सब मुर्गियां पानी में से निकल गयी हैं, ग्रब मुर्गा निकला है उसके पास ग्रण्डा कहां ? बादशाह बीरबल की बुद्धिमत्ता पर दंग रह गये.

पालतू मुर्गे झुण्डों में रहते हैं एवं बड़े झगड़ालू प्रवृति के होते हैं. मुर्गों की लड़ाई मानव मनोरञ्जन का साधन सा बन गया है, वन मुर्गे बड़े शांतिप्रिय एवं एकान्त सेवी होते हैं.[4]

मुर्गे सामान्यतः प्रातःकाल में बोलते हैं जो सुबह होने की सूचना के रूप में माना जाता है. लोगों की ऐसी धारणा है कि मुर्गे प्रातःकाल में ही बोलते हैं. महाकवि तुलसीदास ने भी 'उठे लखनु निसि विगत सुनि ग्ररुण-शिखा धुनि कान' कह कर इस बात की पुष्टि भी की है. वास्तव में यह धारणा धारणा ही है, सत्य नहीं. मुर्गे के बोलने का कोई निश्चित समय नहीं होता. रात के बारह बजे भी मुर्गो की ध्वनि सुनी गयी है. प्रातःकाल में तो हर पशु-पक्षी ही बोलता है. ग्रतः मुर्गे के प्रातःकाल बोलने व बाद में चुप रहने की बात सत्य नहीं है.

मुर्गे से प्राप्त होने वाली वस्तुग्रों में उसका मांस सबसे प्रमुख है. मुर्गी के

---

4 इन वर्ड. भाग 3 पृ. 600

अण्डे भी बहुत मात्रा में खाये जाते हैं. मुर्गी के अण्डों का व्यापार एक विश्व-व्यापी व्यापार है

राजस्थानी लोकगीतों में मुर्गों को अमृत के समान मीठा बोलने वाला कहा है. 'बोल्यो-बोल्यो कूकडो रै बोल्यो अमृत बैण'—कोकगीत अत्यन्त प्रचलित है.

संस्कृत काव्यों में कुक्कुट

संस्कृत काव्यों में कुक्कुट के लिये कुक्कुटः, ताम्रचूडः एवं कृकवाकुः शब्दों का प्रयोग हुआ है.[5]

मानव व कृकवाकु—मानव व मुर्गे का सदा-सदा का साथ रहा है क्योंकि मानव ने इसे पालतू बनाकर अपने सम्पर्क में रखा है. भीलों के घरों में मुर्गों के एकत्रित होने का उल्लेख मिलता है.[6] मानव ने पशु-पक्षियों को एक मनोरञ्ज के साधन के रूप में भी पाया है. कादम्बरी में राजकुल में युद्ध करने वाले मुर्गों का उल्लेख है. दशकुमार चरित में मुर्गों के युद्ध का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करते हुये महाकवि दण्डी ने लिखा है कि वणिकों की एक विशाल बस्ती में एक लोग एकत्रित होकर मुर्गों का युद्ध करा रहे थे एवं इस कारण वहां अत्यन्त कलरव हो रहा था.[7] एक व्यक्ति का मत था कि पूर्वदेशीय नारिकेल जाति के कुक्कुट के साथ पश्चिमी देशीय बलाका जाति के कुक्कुट का युद्ध कराना पुरुषों की अज्ञानता है क्योंकि पश्चिमी देशीय कुक्कुट बड़े आकार का एवं बलवान् होता है.[8] इसी प्रसंग में मुर्गों के क्रोध में आकर अपनी तेज चोंच व पंजों से लड़ने एवं पश्चिमी देशीय मुर्गे के पराजित होने के वर्णन किये गये हैं.[9] इन सभी वर्णनों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं. कि मुर्गे व मानव का सामीप्य सम्बन्ध रहा है.

कार्य-कलाप—हर्षचरित व कादम्बरी में कुक्कटों की ध्वनि को सुनकर बस्ती का अनुमान लगाये जाने का वर्णन है.[10] इससे पता चलता है कि मुर्गे गांवों में निवास करते हैं. शोक में व्याकुल होकर मुर्गे के गला फाड़ने एवं सिप्रा नदी के किनारे घोंसलों में कुक्कुटों के घूं घूं शब्द करने के वर्णन मिलते हैं.[11] लोभी

---

5 वासवदत्ता. पृ. 157 कादम्बरी. पृ. 271 द. च. पृ 365 ह. च. पृ. 299

7 'समासादित-कुक्कुटेषु-किरात-गृह-निष्कुटेषु' —वासवदत्ता पृ. 157

7 ताम्रचूडयुद्धकोलाहलोमहानासीत्' —द. च. पृ 364

8 अन्नवं च कथमिव नारिकेल जाते' —द. च. पृ. 365

9 यथोपरि. पृ. 366

10 'कुक्कुटटितानुमीयमानसंनिवेश'० —ह. च. पृ. 411

11 ततः सुचेव. —ह च. पृ. 299

मुर्गों द्वारा रक्त वर्ण गजमुक्ताओं को अन्न समूह समझकर खाने एवं जलमुर्गों के बली खाने के उल्लेख बाणभट्ट ने किये हैं.[12] अशोक वृक्ष की छोटी-छोटी शाखाओं में कुत्ते के भय से छुपने वाले मुर्गों का उल्लेख मिलता है.[13] मुर्गों के घोंसलों में रहने के वर्णन वासवदत्ता में मिलते हैं.[14] इन वर्णनों के आधार पर हमारे सम्मुख निम्नलिखित बातें आती हैं :—

(१) मुर्गे बस्तियों में काफी मात्रा में रहते हैं.

(२) मुर्गों की आवाज तेज होती है.

(३) कुत्ता मुर्गों का निकटतम शत्रु होता है.

(४) मुर्गे घोंसला बनाकर भी रहते हैं.

उपमित कुक्कुट—नैषधीयचरित में शाम का वर्णन करते हुये'- प्रिये ! मुर्गों की शिखाओं से क्या पश्चिम दिशा अकस्मात् लाल हो गयी है'—वाक्य कहकर शाम की लाली का मुर्गे की चोटी की लालिमा से साम्य बतलाया गया है.[15] हर्षचरित में वत्स के विमलवंश की प्रशंसा में उन्हें कुक्कुट व्रत करने वाला बतलाया है एवं कुक्कुट भक्षण के निषेध का वर्णन किया गया है.[16]

सम्पूर्ण काव्यों में कुक्कुट का कुल अठारह बार वर्णन आया है. कालिदास के काव्यों में कुक्कुट का कहीं भी उल्लेख नहीं है. कालिदासोत्तर काव्यकारों में बाणभट्ट, दण्डी, सुबन्धु, व श्री हर्ष ने क्रमशः आठ, पांच, चार, व एक बार मुर्गे का वर्णन किया है. मुर्गे के वर्णन का विश्लेषण संलग्न तालिकाओं में अवलोकनीय है.



12 'विदलित–वन–करि' —कादम्बरी. पृ. 639

'अरण्यकुक्कुटोपभुज्यमान वैश्वदेव–बलि पिण्डम्' —यथोपरि. पृ. 120

13 'शाखन्तराल–निरन्तर–विलीन–रक्त–कुक्कुट–कुलैः' —यथोपरि. पृ. 638

14 'कतिपय दिवसप्रसूतकुक्कुटीकुटीकृत' —वासवदत्ता. पृ. 232

15 '.........किकुक्कुट पेटकस्य ।' —नैषध. 22/35

16 'कृतकुक्कुटव्रता अप्यवैडालवृतयः' —हर्षचरित. पृ. 69

तालिका (१)

'कुक्कुट' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (×)

तालिका (२)

'कुक्कुट' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (18)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
श्रीहर्ष	१	नैषध०	२२।५.
सुबन्धु	४	वासवदत्ता०	पृ० ७६, १५७, २३१ व ३२.
बाणभट्ट	३	ह० च०	पृ० ६६, २६६ व ४११.
,,	५	कादम्बरी	पृ० १२०, २७१, ६३४, ३८, ३६.
दण्डी	५	द० च०	पृ० १६०, ३६४, ६५, ६६, ६६, ६६.

******

कङ्क
THE KANKA

'वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकंकपत्रे ।'

—रघु० २/३१

भारतीय वाङ्मय में कंक के वर्णन बहुत ही न्यून हैं. वैदिक साहित्य एवं वीरकाव्य-साहित्य में कंक के उल्लेख विद्यमान हैं.[1] विभिन्न संस्कृत कोषों में कंक का नामोल्लेख किया गया है. जहां इसे लोहपृष्ठः, बाणपत्रार्ह पक्षकः, दीर्घपादः, संदेश-वदनः, खरः, रणालङ्करणः, क्रूरः, आमिषप्रिय. मल्लकः, कर्कटस्कन्धः, पर्कटः, कमलच्छदः व प्रियापत्यः नामों से कहा गया है.[2] वैज्ञानिकों की दृष्टि में कंक बक परिवार का प्राणी है.

कंक भारत के सभी भागों में पाया है. यह बगुले के आकार का प्राणी है जिसकी चोंच बड़ी पैनी होती है.[3] इसके पंखों का रंग लाल होता है. इसके शरीर पर बैगनी रंग के निशान होते हैं. सीना व गर्दन लाल व भूरे रंग की धारियों से होता है. यह देखने में बड़ा मनोहर होता है. यह नदियों. झीलों, धान के खेतों, नहरों के किनारों व दलदल वाले भागों में विचरण करता देखा गया है. कंक तालाबों

---

1 तै० सं. 5/4/11/1 वा० सं. 24/31 मै० सं० 3/1/12. सा० सं० 2/9/6/1
'कंक पत्र परिच्छन्ना महेन्द्रा शनि संनिभाः' —वा० रा० कि० 8/23
यथोपरि. 60/26. यथोपरि० उ० 58/31. महाभारत० 11/6/5

2 'लोहपृष्ठस्तु कंकः स्यात्'—इत्यमरः
'कंकस्तु कर्कटस्कन्धः पर्कटः कमलच्छदः
दीर्घपादः प्रियापत्यो लोहपृष्ठस्य मल्लकः ।।—वै० कोष
'डल्हणाचार्य' (सुश्रुत टीका) सूत्रस्थान अ० 46
राजनिघण्टु (19/17) व का. के. पक्षी० पृ० 153 से 155

3 पा० हैण्ड पृ० 515

व झीलों में होने वाले मेढ़क, मछली, कीड़े, मकोड़े एवं जल में उत्पन्न होने वाले सभी जीवों को खाता है. इसकी मादा वर्षा काल में अण्डे देती है. मादा देखने में विशेष सुन्दर नहीं होती.

संस्कृत-काव्यों में कंक—संस्कृत काव्यों में कंक का उल्लेख विरलतम है. महाकवि कालिदास ने रघुवंश के द्वितीय सर्ग में कंक का उल्लेख करते हुये कहा है कि राजा दिलीप ने जब सिंह पर बाण चलाना चाहा तो उसकी अंगुलिया कंक पक्षी के परों वाले बाण के निम्न भाग में चिपक गयी.[4] यहां कालिदास ने कंक के पंखों से निर्मित बाण मात्र का उल्लेख किया है उसके स्वरूप के बारे में कुछ नहीं कहा. कालिदास के अतिरिक्त सुबन्धु ने वासवदत्ता में कंक का दो बार नाम लिया है. श्मशान में मानव के मांस को खाने वाले कंकों के भक्षण का उल्लेख किया है एवं अन्यत्र पकमय तालाबों में कंकों की अनुपस्थिति बतलायी है एवं सारस व कंक का एक साथ नाम लिया है. इन दो वर्णनों से हमारे सम्मुख तीन बातें आती हैं :—

(१) कंक एक मांस भक्षी पक्षी है.
(२) कंक सारस की जाती से साम्य रखता है.
(३) कंक का निवास जल पूर्ण तालाब होते हैं.

प्रस्तुत काव्यों में कंक के वर्णन का विश्लेषण तालिका द्वय में दर्शनीय हैं.

4 'वामेतरतस्य कर: प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषित कंक–पत्रे'० रघु० 2/31

तालिका—१

'कंक' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (1)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	रघु०	२।३१.

तालिका—२

'कंक' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (2)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
सुबन्धु	२	वासवदत्ता	५,२१३.

कारण्डव
THE COOT

'तप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते ।'
—विक्रमोर्वशीयम्. २/२२

भारतीय साहित्य में कारण्डव का स्थान सर्वथा गौण रहा है वीर-काव्यों में कारण्डव के उल्लेख मिलते हैं.[1] अमरकोष में पक्षियों के विभिन्न नामों को बतलाते हुये कारण्डव का भी नाम लिया गया है[2] कारण्डव पक्षी का नाम अनेक कोशों में प्राप्त होता है किन्तु उसके स्वरूप के बारे में कहीं कुछ भी नहीं कहा गया है. अतः कारण्डव का श्रेणी विभाजन करना कठिन है. सर्वप्रथम कतिपय वर्णनों के आधार पर कारण्डव के स्वरूप निर्धारण का प्रयास करते हैं. हलायुध कोष में कारण्डव का नाम कारण्डव के साथ आया है. मोनियर विल्यज ने अपने कोश में कारण्डव को एक प्रकार की बतख कहा है. कारण्डव के बारे में निम्नांकित तथ्य विचारणीय हैं :—

(१) हंस उपवर्ग के अधिकाँश पक्षी पानी में ही रहते हैं परन्तु कारण्डव सामान्यतः पानी के किनारे पाये जाते हैं.

(२) हंस उपवर्ग के पक्षियों के पैर लम्बे नहीं होते एवं शरीर के अनुपात में छोटे होते हैं परन्तु कारण्डव के पैर शारीरिक अनुपात में बड़े होते हैं.[3]

(३) हंस–उपवर्ग के पक्षियों में काले रंग का अभाव रहता है जबकि कारण्डव में काले रंग का बाहुल्य होता है.

अतः कारण्डव हस–परिवार का पक्षी नही हो सकता. हां इतना अवश्य है कि इसे देखकर बतख का भ्रम अवश्य हो सकता है.

जीव शास्त्र के ग्रंथों का सम्यक् अध्ययन करने पर एक अन्य पक्षी जिसे

---

1 'रथाङ्गहंसानत्यूहाः कारण्डवा परे' —वा० रा० 2/103/43

2 'तेषां विशेषा हारीतो मद्गु कारण्डवः प्लवः' —इत्यमरः (सिंहादिवर्गः)

3 का० के० पक्षी० पृ० 169

टिकारी (Coot) कहते हैं हमारे साहित्यकारों द्वारा वर्णित कारण्डव की विशेषताओं से अत्यन्त साम्य रखता है. यह पक्षी बतखों से साम्य तो रखता ही है साथ ही इसके डैने काले व सिलेटी रंग से युक्त होते देखा गया है.[4] रामायण की तिलकाख्या टीका में कारण्डव को 'जलकुक्कुट' कहा है. इसी प्रकार वैधक भिघण्टु में 'जलकुक्कुटः कारण्डवे' कह कर कारण्डव का जल-कुक्कुट-परिवार से सम्बन्ध बताया है.[5] हमारा टिकारी पक्षी भी वैज्ञानिकों की दृष्टि में जल-कुक्कुट परिवार का पक्षी है.[6] अतः कारण्डव व टिकारी एक ही प्रतीत होते हैं. इसका हंस उपवर्ग के पक्षियों से सम्बन्ध जोड़ना सार्थक एवं तार्किक ज्ञात नहीं होता.

संस्कृत काव्यों में कारण्डव

संस्कृत काव्यों में कारण्डव शब्द अनेक स्थानों पर आया है. रामायण में कारण्डव शब्द मिलता है.

कार्य कलाप—महाकवि कालिदास ने दो स्थानों पर कारण्डव के कार्यों का वर्णन किया है. शरद्-ऋतु के प्रसंग में कारण्डवों की चोंचों के प्रहारों से नदियों की तरंगों में विक्षोभ उत्पन्न होने का वर्णन मिलता है.[6] विक्रमोर्वशीय में ग्रीष्म ऋतु की दोपहर में प्राणियों पर पड़ने वाले प्रभाव को बतलाते हुये कारण्डव के द्वारा धूप से तप्त जल का त्याग कर तट पर उगी हुयी कमलिनी का सेवन करने की बात कही गयी हैं.[7] दशकुमार चरित में कारण्डव में द्वारा सारस, चक्रवाक व कलहंस के साथ कलरव करने का उल्लेख मिलता है.[8] कारण्डव द्वारा कमलों को हिलाने का उल्लेख दण्डी ने किया है.[9]

इस प्रकार संस्कृत काव्यों के कारण्डव का केवल चार बार वर्णन हुआ है. महाकवि कालिदास ने कारण्डव का दो बार वर्णन किया है एवं दण्डी व अश्वघोष ने एक-एक बार कारण्डव के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में दर्शनीय है.

— — —

4 जीव जगत पृ॰ 408. ब ओ. सौ॰ पृ॰ 159

5 यथोपरि पृ॰ 160

6 'कारण्डवाननविघट्टितवीचिमालाः' —ऋतु॰ 3/8

7 'तप्तं वारि विहाय तीरं नलिनीं कारण्डवः सेवते॰ विक्रम॰ 2/22

8 'केलिलोलकलहंस॰ द॰ च॰ पृ॰ 100

9 'पद्यमानि कारण्डव घट्टितानि॰' —सौ॰ नं॰ 10/38

तालिका—१

'कारण्डव' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (2)

संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
१	ऋतु०	३।८.
१	विक्रम०	२।२२.

तालिका—२

'कारण्डव' के वर्णन का कालिदासोत्तर काव्यों में विश्लेषण (2)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
अश्वघोष	१	सौ० न०	१०।३८.
दण्डी	१	द० च०	पृ० १००.

———

खञ्जन
THE WAG TAIL

संस्कृत साहित्य में खंजन का वर्णन अत्यन्त विरल है. अमरकोष में खंजनः व खञ्जरीटः शब्द मिलते हैं.[1] वैज्ञानिकों के मत में खंजन शाखाशायी वर्ग के खंजन परिवार का सदस्य है.[2]

खंजन चितकबरे रंग का एक बड़ा ही सुहावना एवं चंचल पक्षी है. खंजन को खंजरीट व खिडलिच भी कहते हैं. खंजन भारत में मौसमी चिड़िया है जो अगस्त व सितम्बर में हमारे मैदानों में देखी गयी है. खञ्जन समय-समय पर रंग बदलने वाला पक्षी है अतः इसके रंग का ठीक-ठीक वर्णन करना सम्भव नहीं. इसे रंग के आधार पर चार प्रकार का बतलाया गया है :—.

(१) चितकबरा खंजन.

(२) सफेद खंजन.

(३) भूरा खंजन.

(४) पीला खंजन.

खंजन घने वनों में रहने वाला पक्षी नहीं है. यह तो जलाशयों के किनारे, घर के आंगन में, गौशालाओं में या फिर खेत-खलियानों में इधर-उधर फुदकता देखा गया है.

इसकी मादा मई से जुलाई के मध्य जमीन पर लकड़ियों के बीच या फिर घास-फूस में चार पांच अण्डे देती है. इसके अण्डे राखी रंग के होते हैं जिन पर बादामी रंग की बुदकियां होती है. हिन्दी साहित्य में खञ्जन के विषयक उल्लेख मिलते हैं.[3]

संस्कृत काव्यों में खञ्जन

संस्कृत-काव्यों में खंजन को खंजनः व खञ्जरीटः शब्दों का प्रयोग हुआ है.[4]

---

1 'खंजरीटस्तु खञ्जनः' – इत्यमरः (सिंहादिवर्ग)

2 जीव जगत० पृ० 504

3 "खंजन नैन, रूप रस माते",—सूरदास०

'निरख सखी, ये खञ्जन आये'—मैथिलीशरण गुप्त०

मानव व खंजन—खंजन पक्षी के दर्शन के शुभा-शुभ फल पर विचार करने का उल्लेख वासवदत्ता में मिलता है.[5]

कार्य कलाप—खंजन पक्षियों के इधर-उधर विहार करने का वर्णन किया है.[6] वासवदत्ता मे मकरन्द कामपीड़ित कन्दर्पकेतु को समझाते हैं. इसी सन्दर्भ में राजकुमार की प्रशंसा में कहा गया है कि उन जैसे लोग ही मित्रों का उसी प्रकार सर्दी के आरम्भ में खञ्जन पक्षी लोगों को खुश करते हैं.[7]

उपमित खंजन—दमयन्ती के नयनों की समता खंजन के नेत्रों से करते हुये खंजन के समान सुन्दर नेत्रों वाली कहा है.[8]

सम्पूर्ण संस्कृत काव्यों में खंजन का कुल ६ बार वर्णन आया है. खंजन का सुबन्धु एवं श्री हर्ष ने ३-३ बार वर्णन किया है. कालिदास के काव्यों में व नाटकों में खंजन का वर्णन नहीं मिलता खञ्जन के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में दर्शनीय है.

---

4 वासवदत्ता० पृ० 128 नैषध० 11/13 वासवदत्ता० पृ० 249
5 'केचित्खंजना इव संवत्सरफलदर्शिनः'—वासवदत्ता० पृ० 128
6 'अनन्तरमखंजनखंजरीटे ।'—यथोपरि० पृ० 249
7 'सुखं जना०' वासवदत्ता० पृ० 61
8 'खंजन मंजु नेत्रे' —नैषध 11/113
'हशावितः खेलतु खंजनद्वयी'—यथोपरि० 9/112

तालिका—१

'खंजन' के वर्णन का कालिदास के काव्यों में विश्लेषण (X)

तालिका—२

'खंजन' के वर्णन का कालिदासोतर काव्यों में विश्लेषण (6)

कवि	संख्या	काव्य	वर्णन का क्रम
श्री हर्ष	३	नैषध.	९।११२ १०।११६. ११।११३.
सुबन्धु	३	वासवदत्ता.	पृ० ६१,१२८ व २४७.

उपसंहार

उपसंहार

हमने पिछले अध्यायों में काव्य, काव्यकार, काव्यों में प्रकृति-चित्रण एवं पशु-पक्षियों का विवेचनात्मक वैज्ञानिक एवं साहित्यिक अध्ययन किया. हमारा यह अध्ययन निम्नलिखित बातों से सम्बन्धित होगा:—

(१) किसी पशु या पक्षी का किस काव्य में कितने बार वर्णन हुआ.

(२) कितने काव्यों में किसी पशु या पक्षी का वर्णन है.

(३) किस पशु या पक्षी का सबसे अधिक वर्णन किस कवि ने किया है और क्यों किया है?

(४) आधुनिक युग में पशु-पक्षियों का मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा एवं उनका आपसी सम्बन्ध क्या है?

(५) पशु-पक्षि किस प्रकार राष्ट्र की अमूल्य धरोहर हैं?

(६) पशु-पक्षियों के वर्णन में काव्यकार कहां तक सफल हो पाए हैं एवं कहां तक उनके विचार सत्यासत्य हैं.

कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में कुल २२ पशुओं का वर्णन आया हैं. उनके कुल उल्लेख १७०५ बार हुये हैं. इसी प्रकार इन काव्यों में २५ पक्षियों के उल्लेख कुल मिलाकर ९८२ बार आये हैं. इस प्रकार सम्पूर्ण काव्यों में पशु-पक्षियों का सम्मिलितोल्लेख २६८७ बार हो पाया है. प्रस्तुत काव्यों में जिन पशुओं के वर्णन हैं वे हैं—गज, गण्डक, अश्व, खर, उष्ट्र, धेनु, वृषभ, महिष, अज, मेष, मृग, सिंह, व्याघ्र, मार्जार, ऋक्ष, तरक्षु, शृगाल, वृक, श्वान, शश, सूकर, एवं शाखामृग. जिन पक्षियों का वर्णन हैं उनके नाम इस प्रकार हैं–मयूर, चकोर, हंस, चक्रवाक, बलाका, बक, क्रौञ्च, सारस, कोकिल, चातक, गरुड, गृध्र, श्येन, कपोत, हारीत, कुररी, शुक, उलूक, कलविङ्क, सारिका, काक, कुक्कुट, कंक, कारण्डव व खंजन. कालिदास के काव्यों में सतरह पशुओं का वर्णन आया हैं एवं कालिदासोत्तर काव्यों में २२ का. कालिदास के काव्यों में पशुओं का ४७९ बार

वर्णन आया है एवं कालिदासोत्तर काव्यों में १२२६ बार. कालिदास के काव्यों में २१ पक्षियों का वर्णन है जबकि कालिदासोत्तर काव्यों में २५ का. कालिदास के काव्यों में पक्षियों का २०८ बार वर्णन आया है एवं कालिदासोत्तर काव्वों में ७७२ बार.

सामान्य रूप से वर्णन का विश्लेषण करने के पश्चात् अब हम काव्यकारों व काव्यों के आधार पर पशु-पक्षियों के वर्णन का विश्लेषण करते हैं—

कालिदास के काव्यों में पशु-पक्षिदों के वर्णन का विश्लेषण (1705)

महाकवि कालिदास ने गज, अश्व, खर, उष्ट्र, धेनु वृषभ, महिष, मेष, मृग, सिंह, व्याघ्र, मार्जार, ऋक्ष, शृगाल. श्वान, सूकर व शाखामृग इन १७ पशुओं का अपने काव्यों में वर्णन किया है. उनके काव्यों में गण्डक, अज, तरक्षु, वृक एवं शश— इन ५ पशुओं के वर्णन नहीं मिलते. कालिदास ने रघुवंश में १३ (गज, अश्व, खर, उष्ट्र, धेनु. वृषभ, महिष, मृग, सिंह, व्याघ्र, शृगाल, सूकर व शाखा-मृग), कुमारसम्भव में १३ (गज, अश्व, खर, धेनु, वृषभ, महिष, मेष, मृग, सिंह, व्याघ्र, शृगाल, श्वान, व सूकर), मेघदूत में ४ (गज, अश्व, वृषभ व मृग), ऋतु-संहार में ६ (गज, धेनु, वृषभ, महिष, मृग, व्याघ्र, ऋक्ष, सूकर व शाखामृग), शाकुन्तल में ७ (गज. अश्व, महिष, मृग. सिंह, मार्जार व शाखामृग) एवं विक्र-मोर्वशीय में ४ (गज, अश्व, मृग व सिंह) पशुओं के वर्णन किये हैं.

कालिदास के रघुवंश में ६ (गण्डक, अज, मेष, मार्जार, ऋक्ष, तरक्षु, वृक, श्वान व शश), कुमार सम्भव में ६ (गण्डक, उष्ट्र, अज, मार्जार, ऋक्ष, तरक्षु, वृक, शश व शाखामृग), मेघदूत में १८ (गण्डक, खर, उष्ट्र, धेनु, महिष, अज, मेष, सिंह, व्याघ्र, मार्जार, ऋक्ष, तरक्षु, शृगाल, वृक, श्वान, शश, सूकर व शाखामृग), ऋतुसंहार में १३ (गण्डक, अश्व, खर, उष्ट्र, अज, मेष, व्याघ्र, मार्जार, तरक्षु, शृगाल, वृक, श्वान एवं शश.), शाकुन्तल में १५ (गण्डक, खर, उष्ट्र, धेनु, वृषभ, अज, मेष, व्याघ्र, ऋक्ष, तरक्षु, शृगाल, वृक, श्वान शश व शाखामृग), मालविकाग्निमित्र में १५ (गण्डक खर, उष्ट्र, धेनु, महिष, अज, मेष, व्याघ्र, ऋक्ष तरक्षु, शृगाल, वृक, श्वान, शश व सूकर) व विक्रमोर्वशीय में १८ (गण्डक, खर, उष्ट्र, धेनु, वृषभ, महिष, अज, मेष, व्याघ्र, मार्जार, ऋक्ष, तरक्षु, शृगाल, वृक, श्वान, शश, सूकर व शाखामृग) पशुओं के वर्णन नहीं मिलते.

कालिदास के काव्यों के आधार पर पशुओं के इस वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में देखा जा सकता है.

"कालिदास के काव्यों के आधार पर पशुओं का विश्लेषण" (479)

क्र. सं.	काव्यों का नाम / पशुओं के नाम	रघु०	कुमार.	मेघ.	ऋतु	शाकु.	मालविका.	विक्रम.	योग
१.	गज	७६	५०	१२	६	४	४	१३	१६५
२.	गंडक	—	—	—	—	—	—	—	—
३.	अश्व	५०	१९	१	—	४	३	१	७८
४.	खर	४	१	—	—	—	—	—	५
५.	उष्ट्र	१	—	—	—	—	—	—	१
६.	धेनु	४३	१	—	१	—	—	—	४५
७	वृषभ	५	८	१	१	—	१	—	१६
८.	महिष	१	१	—	१	१	—	—	४
९.	गज	—	—	—	—	—	—	—	—
१०.	मेष	—	१	—	—	—	—	—	१
११.	मृग	३१	१४	५	६	१८	२	५	८१
१२.	सिंह	४४	७	—	२	५	१	२	६१
१३.	व्याघ्र	२	१	—	—	—	—	—	३
१४.	मार्जार	—	—	—	—	१	२	—	३
१५.	ऋक्ष	—	—	—	१	—	—	—	१
१६.	तरक्षु	—	—	—	—	—	—	—	—
१७.	शृगाल	३	२	—	—	—	—	—	५
१८.	वृक	—	—	—	—	—	—	—	—
१९.	श्वान	—	२	—	—	—	—	—	२
२०,	शश	—	—	—	-	—	—	—	—
२१.	सूकर	२	१	—	१	१	—	—	५
२२.	शाखामृग	१	—	—	१	—	१	—	३

कुल योग ४७९

महाकवि कालिदास के काव्यों में मयूर. चकोर, हंस, चक्रवाक, बलाका, क्रौञ्च, कोकिल, चातक गरुड, गृध्र, श्येन, कपोत, हारीत, कुररी, शुक, उलूक, सारिका. काक, कङ्क व कारण्डव इन २१ पक्षियों के वर्णन मिलते हैं. उनके काव्यों में बक कलविंक, कुक्कुट व खंजन इन चार पक्षियों के वर्णन नहीं मिलते.

कालिदास के रघुवंश में १६ (मयूर, चकोर, हंस, चक्रवाक, बलाका, सारस, कोकिल, चातक, गरुड, गृध्र, श्येन, हारीत, कुररी, शुक, काक व कारण्डव), कुमार-सम्भव में १० (मयूर, हंस, चक्रवाक, बलाका, कोकिल, चातक, गृध्र, श्येन, कपोत व उलूक), ऋतुसंहार में ८ (मयूर, हंस, बलाका, क्रौञ्च, सारस, कोकिल, चातक व कारण्डव), शाकुन्तल में ७ (मयूर, हंस, चक्रवाक, कोकिल, चातक, गृध्र व शुक), मालविकाग्निमित्र में ७ (हंस, चक्रवाक, सारस, कोकिल, चातक, गृध्र व कपोत) एवं विक्रमोर्वशीय में ११ (मयूर, हंस, चक्रवाक, कोकिल, चातक, गरुड, गृध्र, कपोत, कुररी, शुक, कारन्डव) पक्षियों का वर्णन उपलब्ध होता है.

कालिदास के रघुवंश में ९ (बक, क्रौञ्च, कपोत, उलूक, कलविंक, सारिका, कुक्कुट, कारण्डव व खंजन), कुमार संभव में १५ (चकोर, बक, क्रौञ्च, सारस, गरुड, हारीत, कुररी, शुक, कलविंक, कंक, कारण्डव व खंजन), मेघदूत में १६ (चकोर, क्रौञ्च, कोकिल, गरुड, गृध्र, श्येन, हारीत, कुररी, शुक, उलूक, कलविंक, कुक्कुट, कंक, कारण्डव व खंजन) ऋतुसंहार में १७ (चकोर, चक्रवाक, बक, गरुड, गृध्र, श्येन, कपोत, हारीत. कुररी, शुक, उलूक, कलविंक, सारिका, काक, कुक्कुट, कंक व खंजन), शाकुन्तल में १८ (चकोर, बलाका, बक, क्रौञ्च, सारस, गरुड. श्येन, कपोत, हारीत, कुररी, उलूक, कलविंक, सारिका, काक, कुक्कुट, कंक, कारण्डव व खंजन), मालविकाग्निमित्र में १८ (मयूर, चकोर, बलाका, बक, क्रौञ्च, गरुड, श्येन, हारीत, कुररी, शुक, उलूक, कलविंक, सारिका, काक, कुक्कुट, कंक, कारण्डव व खंजन) एवं विक्रमोर्वशीय में १४ (चकोर, बलाका, बक, क्रौञ्च, सारस, श्येन, हारीत, उलूक, कलविंक, सारिका, काक, कुक्कुट, कंक व खंजन) पक्षियों के वर्णन नहीं मिलते. कालिदास के काव्यों के आधार पर पक्षियों के वर्णन का यह विश्लेषण प्रस्तुत तालिका में देखा जा सकता है.

कालिदास के काव्यों के आधार पर पक्षियों का विश्लेषण (208)

क्र. सं	काव्यों का नाम पक्षियों का नाम	रघु.	कुमार.	मेघ.	ऋतु.	शाकु.	माल.	विक्रम.	योग
१.	मयूर	११	३	५	६	३	—	१०	३८
२.	चकोर	२	—	—	—	—	—	—	२
३.	हंस	६	६	५	१२	२	१	१०	४२
४.	चक्रवाक	५	६	१	—	२	१	२	१७
५.	बलाका	१	१	३	१	—	—	—	६
६.	बक	—	—	—	—	—	—	—	—
७.	क्रौञ्च	—	—	—	३	—	—	—	३
८.	सारस	२	—	१	३	—	१	—	७
९.	कोकिल	५	६	—	१०	४	२	६	३३
१०.	चातक	२	२	४	१	१	१	१	१२
११.	गरुड़	५	—	—	—	—	—	१	६
१२.	गृध्र	६	१	—	—	१	१	३	१२
१३.	श्येन	२	२	—	—	—	—	—	४
१४.	कपोत	—	७	१	—	—	१	१	१०
१५.	हारीत	१	—	—	—	—	—	—	१
१६.	कुररी	१	—	—	—	—	—	१	२
१७.	शुक	२	—	—	—	२	—	२	६
१८.	उलूक	—	१	—	—	—	—	—	१
१९.	कलविंक	—	—	—	—	—	—	—	-
२०.	सारिका	—	—	—	—	—	—	—	१
२१.	काक	१	—	१	—	—	—	—	२
२२.	कुक्कुट	—	—	—	—	—	—	—	—
२३.	कंक	१	—	—	—	—	—	—	१
२४.	कारण्डव	—	—	—	१	—	—	१	२
२५.	खंजन	—	—	—	—	—	—	—	—
								कुलयोग	२०८

कालिदासोत्तर काव्यों में पशु-पक्षियों के वर्णन का विश्लेषण (982)

अश्वघोष—महाकवि अश्वघोष के काव्यों में गज, अश्व, खर, धेनु, वृषभ, महिष, मेष, मृग, सिंह, व्याघ्र, ऋक्ष, तरक्षु, श्वान एवं शाखामृग इन १४ पशुओं का वर्णन आया है. उनके काव्यों में गण्डक, उष्ट्र, अज, मार्जार, शृगाल, वृक, शश व सूकर इन ८ पशुओं का वर्णन नहीं आया है. अश्वघोषरचित बुद्धचरित में १४ (गज, अश्व, खर, धेनु, वृषभ, महिष, मेष, मृग, सिंह, व्याघ्र, ऋक्ष, तरक्षु, श्वान व शाखामृग) एवं सौंदरनन्द में ८ (गज, अश्व, धेनु, वृषभ, मेष, मृग, सिंह व व्याघ्र) पशुओं का वर्णन मिलता है बुद्धचरित में ८ (गण्डक, उष्ट्र, अज, मार्जार, शृगाल, वृक, शश व सूकर) व सौन्दरनन्द में १४ (गण्डक, खर, उष्ट्र, महिष, अज, मार्जार, ऋक्ष, तरक्षु, शृगाल, वृक, श्वान, शश, सूकर व शाखामृग) पशुओं का वर्णन नहीं मिलता.

अश्वघोष के काव्यों में मयूर, हंस, चक्रवाक, कोकिल, गरुड, गृध्र, श्येन, कपोत, कुररी, सारिका, काक व कारण्डव—इन १२ पक्षियों का वर्णन आया है. एवं, चकोर, बलाका. बक, क्रौञ्च, सारस, चातक, हारीत, शुक, उलूक, कलविंक कुक्कुट, कंक व खंजन इन ११ पक्षियों का वर्णन नहीं मिलता.

बुद्धचरित में १४ (गज, अश्व, खर, धेनु, वृषभ, महिष, मेष, मृग, सिंह, व्याघ्र, ऋक्ष, तरक्षु, श्वान व शाखामृग) एवं सौन्दरनन्द में ८ (गज, अश्व, धेनु, वृषभ, मेष, मृग, सिंह व व्याघ्र) पशुओं के वर्णन मिलते हैं जबकि बुद्धचरित में ८ (गण्डक, उष्ट्र, अज, मार्जार, शृगाल, वृक, शश व सूकर) एवं सौन्दरनन्द में १४ (गण्डक, खर, उष्ट्र, महिष, अज, मार्जार, ऋक्ष, तरक्षु, शृगाल, वृक, श्वान, शश, सूकर व शाखामृग) पशुओं का वर्णन नहीं मिलता. बुद्धचरित में ११ (मयूर, हंस, चक्रवाक, कोकिल, गरुड, गृध्र, कपोत, कुररी, सारिका, काक व कारण्डव) एवं सौन्दरनन्द में ६ (मयूर, हंस, चक्रवाक, कोकिल, श्येन व कपोत) पक्षियों का वर्णन उपलब्ध है जबकि बुद्धचरित में १४ (चकोर, बलाका, बक, क्रौञ्च, सारस, चातक, श्येन, हारीत, शुक, उलूक, कलविंक, कुक्कुट, कंक व खंजन) एवं सौंदरनन्द में १९ (चकोर, बलाका, बक, क्रौञ्च, सारस, चातक, गरुड, गृध्र, हारीत, कुररी, शुक, उलूक, कलविंक, सारिका, काक, कुक्कुट, कंक, कारण्डव व खञ्जन) पक्षियों के वर्णन नहीं मिलते.

भारवि—जैसा हम पहले कह आये हैं भारवि की एक मात्र रचना है—किरातार्जुनीयम्. इस काव्य में उन्होंने १३ पशुओं का वर्णन किया है जिनके नाम इस प्रकार हैं—गज, अश्व, खर, धेनु, वृषभ, महिष, मृग, सिंह, शृगाल, वृक,

शश, सूकर व शाखामृग एवं ६ पशुओं का वर्णन नहीं किया गया है वे; हैं–गण्डक, उष्ट्र, अज, मेष, व्याघ्र, मार्जार, ऋक्ष, तरक्षु एव श्वान.

किरातार्जुनीयम् में ८ पक्षियों के वर्णन मिलते हैं और वे हैं--मयूर, चकोर, हंस, चक्रवाक, सारस गरुड, कुररी व शुक. जिन पक्षियों के नाम किरातार्जुनीयम् में नहीं मिलते वे हैं--बलाका, बक, कोकिल, चातक, गरुड, गृध्र, श्येन, कपोत, हारीत, शुक, कलविंक, सारिका, काक, कुक्कुट, कंक, कारण्डव व खंजन.

माघ—भारवि की भांति माघ की भी एक ही रचना प्राप्त होती है-शिशुपालवधम्. महाकवि ने अपनी इस कृति में १३ पशुओं का वर्णन किया है जिनके नाम इस प्रकार हैं– गज, अश्व, खर, उष्ट्र, धेनु, वृषभ, महिष, मेष, मृग, सिंह, शृगाल, श्वान व शश. माघ ने ६ पशुओं का वर्णन नहीं किया है, वे हैं—गण्डक, अश्व, व्याघ्र, मार्जार, ऋक्ष, तरक्षु, वृक, सूकर व शाखामृग.

शिशुपालवध में १५ पक्षियों के वर्णन उपलब्ध हैं - मयूर, चकोर, हंस, चक्रवाक, बक, क्रौञ्च, सारस, कोकिल, चातक, गरुड, गृध्र, कपोत, शुक, उलूक व काक. जिन पक्षियों के वर्णन माघकाव्य में नहीं मिलते वे हैं—बलाका, श्येन, हारीत, कुररी, कलविंक, सारिका, कुक्कुट, कंक, कारण्डब व खंजन.

श्रीहर्ष—श्रीहर्ष की एक मात्र काव्य कृति है--नैषधीय चरितम्. श्रीहर्ष ने इस में १२ पशुओं का वर्णन किया है और वे हैं—गज, अश्व, खर, उष्ट्र, धेनु, महिष, अज, मेष, मृग, सिंह, शश व शाखामृग. श्रीहर्ष ने १० पशुओं का वर्णन नहीं किया है, वे हैं—गण्डक, वृषभ, व्याघ्र, मार्जार, ऋक्ष, तरक्षु, शृगाल, वृक, श्वान व सूकर.

श्रीहर्ष ने १५ पक्षियों का वर्णन किया है और वे हैं—मयूर, चकोर, हंस, चक्रवाक, बक, कोकिल, गरुड़, श्येन, कपोत, शुक, उलूक, सारिका, काक, कुक्कुट व खंजन. जिन १० पक्षियों का उल्लेख श्रीहर्ष ने नहीं किया; वे हैं–बलाका, क्रौञ्च, सारस, चातक, गृध्र, हारीत, कुररी, कलविंक, कंक व कारण्डव.

सुबन्धु—गद्य कवि सुबन्धु की एक मात्र कृति है--वासवदत्ता. इस काव्य में ११ पशुओं के वर्णन मिलते हैं–गज, गण्डक, अश्व, धेनु, अज, मृग, सिंह, मार्जार, ऋक्ष, शृगाल एवं श्वान. खर, उष्ट्र, वृषभ, महिष, मेष, व्याघ्र, तरक्षु, वृक, शश, सूकर, एवं शाखामृग–इन ११ पशुओं का वर्णन सुबन्धु ने नहीं किया.

पक्षियों में सुबन्धु ने २० पक्षियों का वर्णन किया है, वे हैं–मयूर, चकोर, हंस, चक्रवाक, बलाका, क्रौञ्च, सारस, कोकिल चातक, गरुड़, गृध्र, कपोत, शुक,

उलूक, कलविंक, सारिका, काक, कुक्कुट, कंक व खञ्जन वासवदत्ता में बक, श्येन, हारीत, कुररी एवं कारण्डव इन ५ पक्षियों का उल्लेख नहीं मिलता.

बाण भट्ट—बाण भट्ट ऐसे कवि हैं जिन्होंने गज से लेकर शाखामृग तक सम्पूर्ण पशुओं यानी २२ पशुओं का वर्णन किया है. महाकवि ने अपने काव्यों में २२ पक्षियों का वर्णन किया है, वे हैं—मयूर, चकोर, हंस, चक्रवाक, बलाका, बक, क्रौञ्च, सारस, कोकिल, चातक, गरुड़, गृध्र, श्येन, कपोत, हारीत, कुररी, शुक, उलूक, कलविंक, सारिका, काक व कुक्कुट.
शुकंक, कारण्डव व खञ्जन इन तीन पक्षियों के वर्णन बाण ने नहीं किये.

बाण ने हर्ष चरित में सूकर व शाखामृग के अतिरिक्त सभी २० पशुओं के वर्णन किये हैं. कादम्बरी में १६ पशुओं (गज, गण्डक, अश्व, खर, उष्ट्र, धेनु, वृषभ महिष, अज, मृग, सिंह, व्याघ्र, ऋक्ष, शृगाल, वृक, श्वान, शश, सूकर व शाखामृग के वर्णन किये हैं. मेष, मार्जार व तरक्षु इन पशुओं के वर्णन कादम्बरी में नहीं मिलते.

हर्ष चरित में १६ पक्षियों (मयूर, चकोर, हंस, चक्रवाक, सारस, कोकिल, चातक गरुड़, गृध्र श्येन, कपोत, हारीत, कुररी, शुक, उलूक, कलविंक, सारिका, काक व कुक्कुट) के वर्णन मिलते हैं जबकि ६ (बलाका, बक, क्रौञ्च, कंक, कारडण्व व खंजन पक्षियों के वर्णन नहीं मिलते. कादम्बरी में कलविंक, कंक, कारण्डव व खञ्जन इन चार पक्षियों के अतिरिक्त सभी २१ पक्षियों के वर्णन मिलते हैं.

दण्डी—दण्डी की एक मात्र काव्य कृति दशकुमार चरित है. दण्डी के इस काव्य में गज, अश्व, 'महिष, मृग, सिंह, व्याघ्र, शृगाल, वृक व श्वान इन ६ पशुओं के वर्णन मिलते हैं एवं गण्डक, खर, उष्ट्र, धेनु, वृषभ, अज, मेष, मार्जार, ऋक्ष तरक्षु, शश, सूकर व शाखामृग इन १३ पशुओं के वर्णन नहीं मिलते.

पक्षियों में मयूर, चकोर, हंस, चक्रवाक, बक, सारस, कोकिल, गरुड, गृध्र, श्येन, कपोत, कुररी, शुक, काक, कुक्कुट व कारण्डव का वर्णन दण्डी ने किया है. ये सब मिलाकर १६ हैं. बलाका, क्रौञ्च, चातक, हारीत, उलूक, कलविंक, सारिका, कंक व खञ्जन इन ६ पक्षियों के वर्णन नहीं किये.

कालिदासोत्तर काव्यों में पशु-पक्षियों के वर्णन का यह विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में देखा जा सकता है.

कालिदासोत्तर काव्यों के आधार पर पशुओं का विश्लेषण (१७०५)

	कवि का नाम	अश्वघोष		भारवि	माघ	श्रीहर्ष	सुबन्धु	बाणभट्ट		दण्डी	योग
क्र.सं.	पशु का नाम	कु.च.	सौ.न.	किरात	शिशु	नैषध	वासवदत्ता	ह.च.	काद.	द.च.	—
१.	गज	५५	१६	५५	१०३	१३	३१	४५	८९	१०	४१७
२.	गंडक	—	—	—	—	—	१	—	५	—	६
३.	अश्व	४२	८	९	२३	२३	१३	१७	४५	८	१७८
४.	खर	२	—	१	३	२	—	२	३	—	१३
५.	उष्ट्र	—	—	—	६	१	—	११	१	—	१९
६.	धेनु	१०	५	४	३	२	२	१०	१	—	३७
७.	वृषभ	६	२	२	५	—	—	२	३	—	२०
८.	महिष	१	—	१	३	२	—	६	१२	१	२६
९.	अज	—	—	—	—	१	१	—	२	—	४
१०.	मेष	१	१	—	१	१	—	१	—	—	५
११.	मृग	११	५	१५	२०	६३	१६	४२	८९	८	२६९
१२.	सिंह	२०	४	६	१८	५	१०	३३	१२	१८	१२६
१३.	व्याघ्र	१	२	—	—	—	—	५	५	५	१८
१४.	मार्जार	—	—	—	—	—	१	१	—	—	२
१५.	ऋक्ष	१	—	—	—	—	१	२	२	—	६
१६.	तरक्षु	१	—	—	—	—	—	१	—	—	२
१७.	शृगाल	—	—	१	१	—	२	३	२	२	११
१८.	वृक	—	—	२	—	—	—	१	१	१	५
१९.	श्वान	२	—	—	१	—	१	४	६	१	१५
२०.	शश	—	—	२	१	५	—	६	२	—	१६
२१.	सूकर	—	—	३	—	—	—	३	४	—	१०
२२.	शाखामृग	२	—	३	—	१	—	७	८	—	२१

कुल योग १२२६

कालिदास के काव्यों का योग ४७९

वृहद् योग १७०५

कालिदासोत्तर काव्यों के आधार पर पक्षियों के वर्णन का विश्लेषण (९८०)

कवि का नाम	अश्वघोष		भारवि	माघ	श्रीहर्ष	सुबन्धु	बाणभट्ट		दण्डी	योग
क्र.सं. काव्य का नाम पक्षी का नाम	बु.च	सौ.	किरात	शिशु	नैषध	वासव.	ह.च.	काद.	द.च.	
१. मयूर	२	३	८	१३	९	५	१८	३९	१	९८
२. चकोर	—	—	१	१	८	२	४	४	१	२१
३. हंस	३	१	११	१०	८६	११	३९	५४	२०	२४५
४. चक्रवाक	५	४	३	३	११	५	११	२३	४	६९
५. बलाका	—	—	—	—	—	१	—	१	—	२
६. बक	—	—	—	१	१	—	—	१	१	४
७. क्रौंच	—	—	—	१	—	१	—	१	—	३
८. सारस	—	—	३	१	—	३	२	६	२	१७
९. कोकिल	४	२	—	५	२३	७	५	१७	९	७२
१०. चातक	—	—	—	१	—	१	३	४	—	९
११. गरुड़	२	—	६	९	७	१	५	८	२	४०
१२. गृध्र	१	—	—	१	—	१	२	१	१	७
१३. श्येन	—	२	—	—	१	—	१	१	१	६
१४. कपोत	१	१	—	४	५	१	५	९	१	२७
१५. हारीत	—	—	—	—	—	—	१	६	—	७
१६. कुररी	१	—	१	—	—	—	१	३	१	७
१७. शुक	—	—	१	१	६	१	७	२४	१	४१
१८. उलूक	—	—	—	२	४	२	३	२	—	१३
१९. कलविंक	—	—	—	—	—	१	२	—	—	३
२०. सारिका	१	—	—	—	३	३	३	५	—	२५
२१. काक	३	—	—	१	४	७	६	४	३	२८
२२. कुक्कुट	—	—	—	—	१	४	३	५	५	१८
२३. कंक	—	—	—	—	—	२	—	—	—	२
२४. कारुण्डव	१	—	—	—	—	—	—	—	१	२
२५. खंजन	—	—	—	—	३	३	—	—	—	६
								कुल योग		७७२
								कालिदास के काव्यों का योग		२०८
								वृहत् योग		९८०

इस प्रकार यदि हम कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में वर्णित पशु-पक्षियों के संख्यात्मक विवरण पर ध्यान दें, तो निम्नलिखित बातें हमारे सम्मुख आती हैं:—

(क) सभी काव्यकारों ने अल्पाधिक पशु-पक्षियों का वर्णन किया है.

(ख) पशुओं का वर्णन करने वालों में बाणभट्ट, कालिदास, अश्वघोष, भारवि एवं माघ का प्रमुख स्थान रहा है. इन्होंने २२ में से क्रमशः २२, १४, १४, १३ व १३ पशुओं का वर्णन किया है.

(ग) पक्षियों का वर्णन करने वालों में बाणभट्ट, कालिदास एवं सुबन्धु का प्रमुख स्थान है. इन्होंने २५ में से क्रमशः २२, २१, व २० पक्षियों का वर्णन किया है.

(घ) बाणभट्ट ऐसे कवि हैं जिन्होंने सबसे अधिक पशुओं (२२) व पक्षियों (२२) का वर्णन किया है.

(ङ) इस प्रकार पशु-पक्षियों के वर्णन में संख्यात्मक दृष्टि से बाणभट्ट, कालिदास एवं सुबन्धु का क्रमशः प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान रहा है.

(च) वर्णन के आधार पर पशुओं में गज, मृग व अश्व का क्रमशः प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान है

(छ) वर्णन के आधार पर पक्षियों में हंस, मोर व कोकिल का क्रमशः प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान रहा है.

(ज) वर्णन के आधार पर पशु-पक्षियों में गज, मृग व हंस का क्रमशः प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान रहा है.

सम्पूर्ण काव्यों एवं काव्यकारों के आधार पर वर्णित पशु-पक्षी के वर्णन का विश्लेषण प्रस्तुत तालिकाओं में अवलोकनीय है.



काव्यकारों के आधार पर पशुओं के वर्णन का विश्लेषण (१७०५)

क्र. सं.	कवि का नाम / पशु का नाम	कालिदास	अश्वघोष	भारवि	माघ	श्रीहर्ष	सुबन्धु	बाण भट्ट	दण्डी	योग
१.	गज	१६५	७१	५५	१०३	१३	३१	१३४	१०	५८२
२.	गंडक	—	—	—	—	—	१	५	—	६
३.	अश्व	७८	५०	६	२३	२३	३	६२	८	२५६
४.	खर	५	२	१	३	२	—	५	—	१८
५.	उष्ट्र	१	—	—	६	१	—	१२	—	२०
६.	धेनु	४५	१५	४	३	२	२	११	—	८२
७.	वृषभ	१६	८	२	५	—	—	५	—	३६
८.	महिष	४	१	१	३	२	—	१८	१	३०
९.	अज	—	—	—	—	१	१	२	—	४
१०.	मेष	१	२	—	१	१	—	१	—	६
११.	मृग	८१	१६	१५	२०	६३	१६	१३१	८	३५०
१२.	सिंह	६१	२४	६	१८	५	१०	४५	१८	१८७
१३.	व्याघ्र	३	३	—	—	—	—	१०	५	२१
१४.	मार्जार	३	—	—	—	—	१	१	—	५
१५.	ऋक्ष	१	१	—	—	—	१	४	—	७
१६.	तरक्षु	—	१	—	—	—	—	१	—	२
१७.	शृगाल	५	—	१	१	—	२	५	२	१६
१८.	वृक	—	—	२	—	—	—	२	१	५
१९.	श्वान	२	२	—	१	—	१	१०	१	१७
२०.	शश	—	—	२	१	५	—	८	—	१६
२१.	सूकर	५	—	३	—	—	—	७	—	१५
२२.	शाखामृग	३	२	३	—	१	—	१५	—	२४
									कुल योग	१७०५

काव्यकारों के आधार पर पक्षियों के वर्णन का विश्लेषण (९८०)

		कवियों के नाम								
क्र. सं.	पक्षी का नाम	कालिदास	अश्वघोष	भारवि	माघ	श्रीहर्ष	सुबन्धु	बाण भट्ट	दण्डी	योग
१.	मयूर	३८	५	८	१३	९	५	५७	१	१३६
२.	चकोर	२	—	१	१	८	२	८	१	२३
३.	हंस	४२	४	११	१०	८६	११	९३	२०	२७७
४.	चक्रवाक	१७	९	३	३	११	५	४४	४	९६
५.	बलाका	६	—	—	—	—	१	१	—	६
६.	बक	—	—	—	१	१	—	१	१	४
७.	क्रौंच	३	—	—	१	—	१	१	—	६
८	सारस	७	—	३	१	—	३	८	२	२४
९.	कोकिल	३३	६	—	५	२३	७	२२	९	१०५
१०.	चातक	१०	—	—	१	—	१	७	—	२१
११.	गरुड	६	२	६	९	७	१	१३	२	४६
१२.	गृद्ध	१२	१	—	१	—	१	३	१	१९
१३.	श्येन	४	२	—	—	१	—	२	१	१०
१४.	कपोत	१०	२	—	४	५	१	१४	१	३७
१५.	हारित	१	—	—	—	—	—	७	—	८
१६.	कुररी	२	१	१	—	—	—	४	१	९
१७.	शुक	६	—	१	१	६	१	३१	१	४७
१८.	उलूक	१	—	—	२	४	२	५	—	१४
१९.	कलविंक	—	—	—	—	—	१	२	—	३
२०.	सारिका	१	१	—	—	३	३	१८	—	२६
२१.	काक	२	३	—	१	४	७	१०	३	३०
२२.	कुक्कुट	—	—	—	—	१	४	८	५	१८
२३.	कंक	१	—	—	—	—	२	—	—	३
२४.	कारण्डव	२	१	—	—	—	—	—	१	४
२५.	खंजन	—	—	—	—	३	३	—	—	६
								कुल योग		९८०

काव्य व काव्यकारों के आधार पर पशु-पक्षियों के वर्णन का विश्लेषण (2687)

क्र० सं	पशु/पक्षी का नाम	कालिदास							अश्वघोष		भारवि	माघ	श्रीहर्ष	सुबन्धु	बाणभट्ट		दण्डी	योग
		रघु०	कु०	मे०	ऋ०	शा०	मा०	वि० ।	बु०	सौ० ।	कि०	शि०	नै०	वा० ।	ह०	का० ।	द०	
१.	गज (The Elephant)	७६	५०	१२	६	४	४	१३	५५	१६	५५	१०३	१३	३१	४५	८६	१०	५८२
२.	गंडक (The Rhino)	—		—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	१	—	५	—	६
३.	अश्व (The Horse)	५०	१६	१	—	४	३	१	४२	८	६	२३	२३	३	१७	४५	८	२५६
४.	खर (The Ass)	४	१	—	—	—	—	—	२	—	१	३	२	—	२	३	—	१८
५.	उष्ट्र (The Camel)	१	—	—	—	—	—	—	—	—	—	६	१	—	११	१	—	२६
६.	धेनु (The Cow)	४३	१	—	१	—	—	—	१०	५	४	३	२	२	१०	१	—	८२
७.	वृषभ (The Bull)	५	८	१	१	—	१	—	६	२	२	५	—	—	२	३	—	३६
८.	महिष (The Buffalo,	१	१	—	१	१	—	—	१	—	१	३	२	—	६	१२	१	३०
९.	अज (The Goat)	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	१	१	—	२	—	४
१०.	मेष (The Sheep)	—	१	—	—	—	—	—	१	१	—	१	१	—	१	—	—	६
११.	मृग (The Deer)	३१	१४	५	६	१८	२	५	११	५	१५	२६	६३	१६	४२	८६	८	३५०
१२.	सिंह (The Lion)	४४	७	—	२	५	१	२	२०	४	६	१८	५	१०	३३	१२	१८	१८७
१३.	व्याघ्र (The Tiger)	२	१	—	—	—	—	—	१	२	—	—	—	—	५	५	५	२१
१४.	मार्जार (The Cat)	–	–	–	–	१	२	–	–	–	–	–	–	१	१	–	–	५
१५.	ऋक्ष (The Bear)	–	–	–	१	–	–	–	१	–	–	–	–	१	२	२	–	७
१६	तरक्षु (The Hyena)	–	–	–	–	–	–	–	१	–	–	–	–	–	१	–	–	२
१७.	शृगाल (The Jackal)	३	२	–	–	–	–	–	–	–	१	१	–	२	३	२	२	१६

क्र० सं०	पशु/पक्षी का नाम	कवि का नाम / काव्य का नाम	कालिदास रघु०	कु०	मे०	ऋ०	शा०	मा०	वि०	अश्वघोष बु०	सौ०	भारवि कि०	माघ शि०	श्रीहर्ष नै०	सुबन्धु वा०	बाणभट्ट ह०	का०	दण्डी द०	योग
१८.	वृक	(The Wolf)	—	—	—	—	—	—	—	—	—	२	—	—	—	१	१	१	५
१९.	श्वान	The Dog)	—	२	—	—	—	—	—	२	—	—	१	—	१	४	६	१	१७
२०.	शश	(The Rabbit)	—	—	—	—	—	—	—	—	—	२	१	५	—	६	२	—	१६
२१.	सूकर	(The Pig)	२	१	—	१	१	—	—	—	—	३	—	—	—	३	४	—	१५
२२.	शाखामृग	(The Monkey)	१	—	—	१	—	१	—	२	—	३	—	१	—	७	८	—	२४
	पक्षी [The Bird]																		
२३.	मयूर	(The Peacock)	११	१	५	६	३	—	१०	२	३	८	१३	९	५	१८	३९	१	१३६
२४.	चकोर	(The Quail)	२	—	—	—	—	—	—	—	—	१	१	८	२	४	४	१	२३
२५.	हंस	(The Swan)	६	६	५	१	२२	१	१०	३	१	११	१०	८६	११	३९	५४	२९	२२६
२६.	चक्रवाक	(The Ruddygoose)	५	६	१	—	२	१	२	५	४	३	३	११	५	११	२३	४	६६
२७.	बलाका	(The Balaka)	१	१	३	१	—	—	—	—	—	—	—	—	१	—	१	—	[illegible]
२८.	बक	(The Heron)	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	१	१	—	—	१	१	४
२९.	क्रौंच	(The Common Crane)	—	—	—	३	—	—	—	—	—	—	१	—	१	—	१	—	६
३०.	सारस	(The Sarus)	२	—	१	३	—	१	—	—	—	—	१	—	१	—	१	—	२४
३१.	कोकिल	(The Indian Koel)	५	६	—	१०	४	२	६	—	—	३	१	—	३	२	६	२	१०५
३२.	चातक	(The Cuckoo)	२	२	४	१	१	१	१	४	२	—	५	२३	७	५	१७	९	२१
३३.	गरुड	(The Eagle)	५	—	—	—	—	—	१	—	—	—	१	—	१	३	४	—	१६

क्र० सं० पशु/पक्षी का नाम	कवि का नाम	कालिदास							अश्वघोष		भारवि	माघ	श्रीहर्ष	सुबन्धु	बाणभट्ट		दण्डी	योग
	काव्य का नाम	रघु०	कु०	मे०	ऋ०	शा०	मा०	वि०	बु०	सौ०	कि०	शि०	नै०	वा०	ह०	का०	द०	
३४. गृध्र (The Valture)		६	१	–	–	१	१	३	२	–	६	९	७	१	५	८	२	१९
३५. श्येन (The Falcon)		२	२	–	–	–	–	–	–	१	–	–	१	–	१	२	१	१०
३६. कपोत (The Pigeon)		–	७	१	–	–	१	१	–	२	–	–	१	–	१	१	१	३७
३७. हारीत (The Green pigeon)		१	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	१	६	–	८
३८. कुररी (The Tern)		१	–	–	–	–	–	१	१	–	१	–	–	–	१	३	१	९
३९. शुक The (Parrot)		२	–	–	–	२	–	२	–	–	१	१	६	१	७	२४	१	४७
४०. उलूक (The Owl)		–	१	–	–	–	–	–	–	–	–	२	४	२	३	२	–	१४
४१. कलविंक (The Sparrow)		–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	१	२	–	–	३
४२. सारिका (The Myna)		–	–	–	–	–	–	–	१	–	–	–	३	३	४	१५	–	२६
४३. काक (The Crow)		१	–	१	–	–	–	–	३	–	–	१	४	७	६	४	३	३०
४४. कुक्कुट (The Coock)		–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	१	४	३	५	५	१८
४५. कंक (The Kanka)		१	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	२	–	–	–	३
४६. कारण्डव (The Coot)		–	–	–	१	–	–	१	१	–	–	–	–	–	–	१	२	६
४७. खंजन (The Wagtail)		–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	३	३	–	–	–	६

योग २८७

पशु-पक्षियों के वर्णन में—

काव्यकारों की सफलता

प्रस्तुत काव्यकारों द्वारा वर्णित पशु-पक्षियों के वर्णन में कितनी सत्यता है? यह एक विचारणीय प्रश्न है. इस बात को जानने से पूर्व कि काव्यकारों ने पशु-पक्षियों के वर्णन में कितनी सफलता प्राप्त की है यह जानना आवश्यक है कि वे वर्णन कैसे हैं

काव्यकारों के पशु-पक्षी विषयक वर्णनों में यह देखने को मिलता है कि उन्होंने जितने भी पशुओं के वर्णन किये हैं उनके रूप, रङ्ग, खानपान व आकार-प्रकार में कोई मत भेद नहीं है. इसका कारण स्पष्ट है कि पशु-पक्षियों में उप-परिवारों व उप-वर्गों का नितान्त अभाव है. उदाहरण के लिये मृग को ही लें. मृग अनेक प्रकार के होते हैं जैसे—साम्भर, शरभ, कृष्णसार, रुरु इत्यादि. यद्यपि इन पशुओं में नाम भेद व रग भेद है परन्तु इनके खानपान व आकार प्रकार में कोई विशेष विचारात्मक अन्तर नहीं हैं. हां, इसमें कोई शक नहीं कि संस्कृत काव्यकार इनके प्रकारों पर सम्यक् विचार नहीं कर पाये हैं. पशुओं के जितने भी वर्णन काव्यकारों ने किये हैं वे प्राय: वैज्ञानिक सत्य हैं. हाँ एक दो स्थानों पर ऐसी भूलें भी देखने में आती हैं जो अक्षम्य एवं आश्चर्यजनक हैं. बाणभट्ट ने कादम्बरी में गज की पूंछ की तुलना करते हुये लिखा है.—'महाकविभिरिवप्रलम्ब-बाल-पल्लव-स्पृष्ट-भूतलै:'- (कादम्बरी० पृ० ३८७) यहां गज की पूंछ की समता पेड़ की लटकती हुयी उस शाखा से की है जो पृथ्वी को छूती है, परन्तु हाथी की पूंछ इतनी छोटी होती है कि वह पृथ्वी तल को कदापि नहीं छू सकती. यह वर्णन भी ऐसे समय का है जिस समय राजप्रसादाङ्गण में गज खड़े थे एवं ऐसे पारखी एवं अनुभवी काव्यकार का है जिसने अपने जीवन का एक लम्बा भाग भ्रमण एवं राजघरानों की सेवा में व्यतीत किया था. वह वर्णन मूल कादम्बरी का भाग है जो स्वयं बाणभट्ट का लिखा हुआ है. अत: एक ऐसे विद्वान द्वारा इतनी बड़ी भूल किया जाना वास्तव में विस्मय कारक है. इसी प्रकार घोड़ों की लार से अस्तबल का गीला हो जाना, हंस का क्षीर-नीर विवेकी होना, चक्रवाक का "नैश-विरही" होना, चातक द्वारा केवल वर्षा जल ग्रहण करना एवं गिद्ध द्वारा मानवीय व्यवहार

करना—ये सब कल्पनायें सत्य से इतनी परे हैं कि उनको स्वीकार करना सम्भव नहीं. अतः सिद्ध है कि काव्यकारों ने पशु-पक्षियों के वर्णनों में कतिपय **अविस्मरणीय भूलें की हैं जो अक्षम्य हैं.** दूसरी कमी जो काव्यकारों के वर्णन में देखने को मिलती है वह है कि—**अन्धानुकरण या नकल.** हर कवि ने उन्हीं पशु पक्षियों का बारम्बारी वर्णन किया है एवं पुनः पुनः वे ही उपमायें दी हैं जो उनके पूर्ववर्ती काव्यकार दे गये हैं. कालिदास द्वारा की गयी कल्पनायें व उपमायें हमें दण्डी तक के काव्यकारों की कृतियों में सरलता से देखने को मिल जायेंगी. तीसरी कमी हमें जो देखने में आती है. वह है स्वरूप भेद की. पशुओं में तो स्वरूप भेद की बड़ी समस्या नहीं किन्तु पक्षियों में स्वरूप भेद का आधिक्य है. **बक एवं बलाका; क्रौञ्च व सारस, गिद्ध, गरुड़ व श्येन; हंस, कलहंस व कारण्डव का स्वरूप भेद कहीं भी स्पष्ट नहीं है** सामान्यतः इन सभी पक्षियों का एक साथ नामोल्लेख मिलता है और पुनः पुनः मिलता है. इनके स्वरूप भेद पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है अपितु यदा-कदा तो वर्णन भी इस प्रकार के किये गये हैं कि जहां यह भ्रम हो जाता है कि ये वर्णन कौन से पक्षी का है. परन्तु ये भूलें उनके काव्यों में क्यों मिलती हैं, इसके अनेक कारण हैं.

(१) पशु-पक्षियों के जो भी वर्णन काव्यों में मिलते हैं वे प्रासंगिक हैं, आधिकारिक नहीं, अतः काव्यकारों का विशिष्ट ध्यान इन पर नहीं गया

(२) काव्यकार, जिन्होंने ये वर्णन किये हैं, के समय में जीव-विज्ञान इतना विकसित नहीं था एव पशु-पक्षियों का वर्गभेद व परिवार भेद नहीं किया गया था. जो भेद थे वे स्थानीय थे. वासवदत्ता में नारिकेल जाति और बगला जाति के जिन भेदों का उल्लेख है वे भेद प्रान्तीय हैं, सर्वव्यापी या देशव्यापी नहीं अतः अशुद्धियां होना स्वाभाविक है.

(३) पक्षियों में इतनी अधिक जातियां (Species) हैं कि उन सबका ध्यान रखना एक-प्रबुद्ध वैज्ञानिक के लिये भी कठिन है. अतः बेचारे कवि का क्या दोष. एक-एक पक्षी की ५००–६०० उपजातियां होती हैं. आधुनिक वैज्ञानिक भी इन सबका स्पष्ट विभाजन करने में सफल नहीं है फिर परम्परावलम्बी साहित्यकार इनके वर्णनों में अत्यन्त स्पष्ट कैसे हो सकता था.

इन सभी कारणों के अतिरिक्त एक सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि **साहित्यकार, ऐतिहासिक महाकाव्यकार व वैज्ञानिक-लेखक में बहुत अन्तर होता है** जिसे हम द्वितीय अध्याय में स्पष्ट कर आये हैं इस अन्तर के कारण हम काव्यकारों से सदा सत्य को अपेक्षित नहीं कर सकते.

काव्यकारों ने अपने वर्णनों में केवल भूलें ही की हों ऐसी बात नहीं है. उन्होंने कुछ ऐसे भी वर्णन भी किये हैं जो वैज्ञानिक सत्य हैं. इनका सबसे सुन्दर प्रमाण है'–हाथी की जीभ का उल्टा होना'–जो वैज्ञानिक सत्य है एवं बाणभट्ट ने इसका उल्लेख किया है. वानर का चंचल होना, शुक द्वारा फलों को निरन्तर काट-काट कर डालना, हाथियों व सूकरों का पंक्तिबद्ध होकर चलना इत्यादि अनेक ऐसे वर्णन हैं जो वैज्ञानिक स्तर पर सत्य है एवं जिनका काव्यकारों ने बहुत ही सुन्दर एवं प्रामाणिक वर्णन किया है.

काव्यकारों की वैशम्पायन—शुक, कुम्भोदर–सिंह, कालिन्दी–सारिका, जटायु–गिद्ध, नन्दी-वृषभ व इन्द्रायुधाश्व की कल्पना बहुत ही काव्यात्मक एवं दर्शनीय हैं. कवियों ने पशु-पक्षियों के जितने स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत काव्य-साहित्य में किये हैं उतने सुन्दर वर्णन विश्व के किसी भी साहित्य में उपलब्ध नहीं हैं. उपमाओं में हमें जितनी सुन्दर कल्पना मिलती है वह वास्तव में विद्वान् एवं अनुभवी लोगों की देन है. पशु-पक्षियों व मानव के सम्बन्धों को इन काव्यकारों ने बहुत ही सरल एवं भावात्मक प्रवृतियों से युक्त ढग से प्रस्तुत किया है.

हां, एक बात अवश्य है कि काव्यकारों ने अपने वर्णनों में कतिपय पशु-पक्षियों के साथ पक्षपात कर दूसरों को हानि पहुँचायी है. सूकर को सभी ने गन्दा एवं भद्दा पशु कहा है जबकि वह दुनिया के स्वच्छतम पशुओं में से एक है. खर को घृणा की दृष्टि से देखा है एवं उल्लू को बुद्धिहीन कहा है, परन्तु ये सभी वर्णन सामाजिक पक्षपात के परिणाम होने से क्षम्य हैं. हां यदि कोई काव्यकार पक्षपात से तनिक दूर हटकर सत्यता पर प्रकाश डालता तो उसका कार्य अभिनन्दनीय व स्तुत्य होता.

इन सभी वर्णनों को सम्यक् रूप से विचार में लाने के बाद हम यही कहेंगे कि हमारे साहित्यकार किंवा काव्यकार वैज्ञानिक दृष्टि से पशु-पक्षियों के वर्णन में कुछ पिछड़ गये हैं किन्तु साहित्यिक-दृष्टि में वे सफल हैं—पूर्ण सफल.

आधुनिक युग में पशु पक्षीयों का मानव जीवन से सम्बन्ध

आधुनिक युग के पशु-पक्षियों का मानव जीवन के साथ गहरा सम्बन्ध देखने में आता है. इनमें सबसे प्रधान सम्बन्ध है, भोजन का. भूपटल पर अनेक देश ऐसे हैं जिनका सारा भोजन पशु-पक्षियों के मांस पर निर्भर करता है. जिन पशु-पक्षियों का मांस खाया जाता है उनमें से कतिपय के नाम इस प्रकार हैं—गाय, अज, मेष, मृग, खरगोश, सूकर, मोर, कबूतर, मुर्गा. विश्व में शिकागो मांस की सबसे बड़ी मण्डी है, जहां से नित्य हजारों क्विंटल मांस का निर्यात होता है. मांस के अतिरिक्त अण्डे खाने का भी आजकल काफी प्रचलन है. अण्डों में मुर्गी के अण्डे अधिकता से खाये जाते हैं. अण्डे के अलावा दूध पशुओं से प्राप्त होने वाली सबसे आवश्यक वस्तु है, जिस पर सारा विश्व निर्भर है. दूध से अनेक प्रकार की खाद्य-सामग्रियों का निर्माण होता है यथा—मक्खन, घी, छाछ, मावा, पनीर इत्यादि. ये सभी वस्तुयें मानव के दैनिक जीवन की आवश्यकतायें बन गई हैं. पशु-पक्षियों से अनेक ऐसी वस्तुयें भी प्राप्त होती है जो दवाइयों के रूप में हमारे काम आती हैं. जैसे लकवे में लक्का कबूतर का मांस, पीलिया में गधे की लीद का पानी, सर्प-दंश में ऊंट का पेशाब पान, फोड़े पर कबूतर की बीट, लीवर में गौ-मूत्र पान इत्यादि-इत्यादि. पशु-पक्षियों से हमें अनेक उपयोगी वस्तुयें भी मिलती हैं जैसे बाल, कस्तूरी, हाथी-दांत, सरेस, मोरपंख इत्यादि-इत्यादि. ऊंटनी व भेड़ का दूध अनेक दवाइयों के काम आता है. इसके अलावा सभी पशुओं के चर्म पर सींग, एवं खुर अनेक सजावटों के काम आते हैं. चमड़े के हैंडबेग, जूते, बेल्ट, हैट, कोट, वाशर, सूटकेश इत्यादि आजकल सर्वत्र देखे जा सकते हैं. पक्षियों से प्राप्त पंखों से अनेक सजावट की वस्तुओं का निर्माण होता है.

इनके अतिरिक्त मानव व पशु-पक्षियों में नौकर-मालिक का सम्बन्ध आज भी देखा जा सकता है. सवारी के लिए गज, अश्व, ऊंट, बैल, बारहसिंगा, भैंसा, श्वानादि का प्रयोग सामान्य है. बोझ ढोने में खर, उष्ट्र, बैल, महिष व खच्चर

का विशेष प्रयोग होता है. पक्षियों में शुतुर्मुर्ग भी बोझ ढोने के काम आता है. पक्षियों में कबूतर संदेश भेजने का साधन रहा है.

पशु-पक्षियों मनोरञ्जन में भी मानव का सर्वदा साथ देते रहे हैं. घुडदौड़ व कुत्ता दौड़ का आजकल बहुत महत्व है. गाँवों में ऊंट दौड़ व रथदौड़ भी अत्यन्त सामान्य है. सर्कस व सिनेमा में अनेक पशु-पक्षियों के मनोरञ्जन कार्य देखे जा सकते हैं. मुर्गों की लड़ाई व भालू बंदर का नाच भी गांवों में देखने को मिलता है.

इन विशेषताओं के कारण मानव व पशु-पक्षी निकट आते जा रहे हैं. आजकल विश्व के सभी शहरों में चिड़ियाघर देखे जा सकते हैं. जिनमें देश विदेश के अनेकानेक पशु-पक्षियों का संग्रह किया जाता है. साथ ही अजायबघरों में मसाले भर कर मृत पशु-पक्षियों का संग्रह किया जाता है. पशु-पक्षियों के पालन पर आधुनिक युग में विशेष ध्यान दिया जाता है एवं उनकी रक्षा के प्रयत्न किये जाते हैं भारत में भी अनेक पशु-पक्षियों को मारना कानूनी अपराध है. आजकल कुत्ते के पालन का बड़ा प्रचलन है. घर-घर में कुत्ते, मुर्गे, खरगोश, शुक, सारिका, बिल्ली इत्यादि का बड़े प्रेम से पालन किया जाता है एवं उनकी अनेक किस्मों का निर्माण किया जाता है. मनोरञ्जन के अतिरिक्त दूध, मांस, व चमड़े के लिए तो मानव पशु-पक्षियों को पालता ही है. अनुसंधान कार्यों के लिए भी आजकल अनेक पशु-पक्षियों का पालन किया जाता है इस प्रकार मानव व जीवों का आधुनिक युग में बड़ा गहरा एवं नजदीकी सम्बन्ध है और यदि यों कहें कि पशु-पक्षियों के अभाव में मनुष्य का जीवन दुर्भर हो सकता है तो अत्युक्ति न होगी.

साहित्य में पशु-पक्षी राष्ट्र की धरोहर—

साहित्य जगत् में भी पशु-पक्षी का बड़ा महत्व है. विश्वपटल पर अनेक प्रकार के साहित्यों में पशु-पक्षी का वर्णन मिलता है एवं पशु-पक्षियों से सम्बन्धित अनेक साहित्यिक रचनाओं का निर्माण होता है. एक-एक पशु या पक्षी को लेकर भी पुस्तकें लिखी गई हैं. संस्कृत-साहित्य का जहां तक प्रश्न है—संस्कृत-साहित्य में पशु-पक्षी विषयक कतिपय ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं :—पञ्चतन्त्र, हंसदूत, हितोपदेश, कोकिलदूत, शुकसप्तति आदि.

भारतीय साहित्य में हिन्दी साहित्य अपना विशिष्ट स्थान रखता है. हिन्दी साहित्य में पशु-पक्षी विषयक अनेक साहित्यक वर्णन मिलते हैं. हिन्दी कवियों में बिहारी, पद्माकर, तुलसी, सूरदास, कबीर, मैथिलीशरण इत्यादि की रचनाओं में पशु-पक्षियों से सम्बन्धित वर्णन काफी मिलते हैं.

कतिपय उदाहरणों का अवलोकन कीजिये : —

'बन बागन पिक बट परत की विरहिन मत नैन,
कुहो, कुहो कहि-कहि उठत करि-करि राते नैन।

—बिहारी

* * * *

'ऊंजी जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर,
कै जांचै घनस्याम सों, कै दुख सहै सरीर'

—तुलसी

* * * *

ऊंची चितै सराहियत गिरह कबूतर लेत।
दृग पुलकित, पुलकित वदन, तनु पुलकित कहि देत॥

—बिहारी

* * * *

नाचो मयूर नाचो कपोत के जोड़े,
नाचो कुरंग तुम लो उड़ान के तोड़े।
गाओ दिवि, चातक, चटक भृङ्ग भय छोड़े,
वैदेही के वनवास वर्ष है थोड़े॥

—मैथिलीशरण गुप्त

* * * *

सांच कहै तो मारि है, झूठे जग पतियाइ।
ये जग काली कूकरी, जो छैहें तो खाइ॥

—कबीर

* * * *

व्यथित होकर आतप से अति,
तृण नहीं चरते पशु सम्प्रति।
हरिण, सिंह, मतङ्गज, शूकर,
तृषित हैं फिरते वन भीतर॥

—मैथिली.

* * * *

'देसर ऊँट वृषभ बहु जाती,
चले वस्तु भरि अगनित भांति।

गज रथ तुरग दास अरु दासी
धेनु अलंकृत कामदुहा सी ।।
खञ्जन शुक कपोत मृग मीना,
मधुर निकर कोकिला प्रवीणा ।
बरुन पास मनोज धनु हंसा,
गज केसरि निज सुनत प्रशंसा ।।'

—तुलसी

हिन्दी साहित्य की भांति उर्दू-साहित्य भी पशु-पक्षियों के वर्णनों से युक्त हैं. कतिपय उदाहरणों का अवलोकन कीजिये :—

आलम को लुभाती है पियानों की सदाएँ,
बुलबुल के तरानों में अब लय नहीं आती'

....अकबर.

* * * *

तेरा हुस्न इस जहाँ में जो न होता पर तो अफगन,
न ये फूल दिल लुभाते, न ये सब्बाज़ार होता ।
न वह मारी मारी फिरती, न यह बेकरार होता ।।

—बेदिल

* * * *

'सारे जहाँ से अच्छा
हिन्दोस्ताँ हमारा ।
हम बुलबुलें हैं इसकी
यह गुलस्तिां हमारा ।।

—इकबाल

* * * *

भारतीय लोकगीत साहित्य में भी पशु-पक्षियों का वर्णन बहुतायत से विद्यमान हैं :—

'उड़ उड़ रै म्हारा काला रै कागला,
कद म्हारा पीऊजी घर आवै ।
उड़ज्या रे काग, गिगन का बासी,
खबर तो ल्याव म्हारे राजन की ।।

—एक राजस्थानी लोकगीत

अर्थात्—अरे मेरे प्यारे काक ! तू उड़ जा और मेरे प्रियतम के घर आने का संदेश ला. अरे गगन के वासी मेरे प्रिय काक ! तू आकाश का निवासी

है तू प्रिय के घर आने के समाचार सुना.

रुणझुण, पाखरा रे, जा माझ्या माहेरा,
कमाणी दरवाजे रे, त्यारी बैस जा।
घरच्या आईलोर, सागोवा सांरा जा,
दादाला सांरा जा रे, ले भला, माहेरा ।।

—एक महाराष्ट्री लोकगीत

अर्थात्—हे पक्षी ! तू मेरे संदेश को सुन ले और इसे लिखकर तुरन्त मेरी मां के पास पहुंचा दे. मां से कहना कि वह भैया को भेजकर मुझे शीघ्र बुला ले. तू मेरे घर की ठीक से पहचान करके जाना.

आंग्ल-साहित्य में भी पशु-पक्षी विषयक काव्य-साहित्य काफी मिलता है. आंग्ल-साहित्य के कतिपय अंशों का रसास्वादन कीजिये :—

'O BLITHE Newcomer ! I have heard.
I hear thee and rejoice,
O Cuckoo ! shall I call thee Bird,
Or but a wandering voice ?

—William Wordsworth

* * * *

'O hark, O hear ! how thin and clear,
And thinner, clearer, farther going !
O sweet and far from cliff and scar
The horns of Elfland faintly blowing.

—Alfred Lord Tennyson

* * * *

When daisies pied and Violets blue
And lady smocks all silver-white
And Cuckoo-buds of yellow hue
Do paint the meadows with delight,
The Cuckoo then, on every tree,
Mocks married men; for thus sings he, Cuckoo,
Cuckoo, Cuckoo : O, Ward of fear,
Unpleasing to a married ear !

—William Shakespeare

भारतीय साहित्य में अनेकानेक स्थल ऐसे हैं जिनमें पशु-पक्षी के वर्णन की झलक मिलती है. भारत में पशु विषयक ग्रन्थ अत्यन्त विरल हैं परन्तु पशु पक्षियों के बारे में भारतीय साहित्यकार सजग हैं. ऐसा समय आ सकता है कि किसी पक्षी मात्र को उद्देश्य बनाकर काव्य की रचना हो. पाश्चात्य साहित्य में पक्षियों पर आधारित अनेक कवितायें लिखी गई हैं.

पशु–पक्षियों में राष्ट्र की शक्ति निहित हैं. अतः वे राष्ट्र की धरोहर है क्योंकि इनमें राष्ट्र की शक्ति छुपी है और इसी कारण किसी कवि ने कहा भी तो है:—'गो धन गजधन वाजिधन' अर्थात् गौ, हाथी व घोड़े धन हैं.

भारतीय सरकार ने भी इसी कारण पशु-पक्षियों को उच्च स्थान दे रखा है. हमारे देश में मोर को राष्ट्रीय पक्षी का सम्मान दिया गया है एवं मोर को मारना कानूनी अपराध है. सिंह भारत का राष्ट्रीय पशु है. अशोक चक्र को राष्ट्रीय चिन्ह स्वीकार किया गया है जिनमें ऊपर तीन सिंह एवं नीचे बैल एवं अश्व का चित्र अंकित है. सरकार ने स्थान–स्थान पर वन-संरक्षण के साथ-साथ पशु–संरक्षण के भी प्रयास किये हैं. पशु पक्षियों के अभाव में मानव जीवन अधूरा है, सूना है. अतः यह संरक्षणीय है।

वर्णानुक्रमानुसार सहायक-ग्रंथ-सूचि

(Bibliography)

मूलग्रन्थ—

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम्	(कालिदास)	श्री राघवभट्ट
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम्	(,,)	श्री गुरुप्रसाद
3. अभिज्ञान शाकुन्तलम्	,,	श्री सीताराम चतुर्वेदी
4. ऋतु संहारम्	,,	श्री सीताराम चतुर्वेदी
5. कादम्बरी	(बाणभट्ट)	श्री कृष्ण मोहन शास्त्री
6. किरातार्जुनीयम्	(भारवि)	प० आदित्यनारायण पाण्डेय
7. कुमार सम्भवम्	(कालिदास)	डा० सूर्यकान्त
8. कुमार सम्भवम्	,,	श्री सीताराम चतुर्वेदी
9. दशकुमार चरितम्	(दण्डी)	पं० ताराचन्द भट्टाचार्य
10. नैषधीय चरितम्	(श्रीहर्ष)	श्री हरिगोविन्द शास्त्री
11. बुद्ध चरितम् भाग–1	(अश्वघोष)	श्री सूर्यनारायण चौधरी
12. बुद्ध चरितम् भाग–2	,	श्री रामचन्द्र दास शास्त्री
13. नैषधीय चरितम्	(श्री हर्ष)	श्री हरिगोविन्द शास्त्री
14. मालविकाग्निमित्रम्	(कालिदास)	आचार्य रामचन्द्र मिश्र
15. मालविकाग्निमित्रम्	,,	श्री सीताराम चतुर्वेदी
16. मेघदूतम्	,,	श्री सीताराम चतुर्वेदी
17. मेघदूतम्	,,	श्री शेषराज शर्मा
18. रघुवंशम्	,,	श्री एच० डी० वेलणकर
19. रघुवंशम्	,,	श्री सीताराम चतुर्वेदी
20. वासवदत्ता	(सुबन्धु)	श्री शंकर देव शास्त्री
21. विक्रमोर्वशीयम्	(कालिदास)	श्री हरिदामोदर वेलणकर
22. विक्रमोर्वशीयम्	,,	श्री सीताराम चतुर्वेदी
23. शिशुपालवधम्	(माघ)	पं० हरगोविन्द शास्त्री
24. सौन्दरनन्दम्	(अश्वघोष)	श्री सूर्यनारायण चौधरी
25. हर्ष चरितम्	(बाण भट्ट)	पं० जगन्नाथ पाठक

26. Abhijyana Sakuntala (Kalidasa) Monier Williams
27. Abhijyana Sakuntlaa ,, S. Roy
28. Budha Carita (Aswaghosa) Co Well
29. Kadambri (Banabhata) R. D. Karmarkar
30. Meghdoot (Kalidasa) H. H. Wilson
31. Meghdoot ,, R. D. Karmarkar
32. Malvikagnimitra ,, ,, ,,
33. Naishadhiyacarita (Shri Harsha) K. K. Handiqui
34. Ritusambhara (Kalidasa) R. S. Pandit
35. Raghuvamsam ,, H. D. Velankar
36. Shishupal Vadham (Magh) S. Roy
37. Vikramorvashiya (Kalidasa) R. D. Karmarkar
38. Vikramorvashiya ,, Kole
39. ,, ,, H D. Velankar

अन्य ग्रन्थ—

40. अमरकोष (अमर सिंह) श्री पण्डित शिवदत्त
41. अथर्ववेदसंहिता श्री श्रीराम शर्मा आचार्य
42. अलङ्कार शेखर श्री अनन्त राम
43. एकावली श्री विद्याधर
44. एतरेय ब्राह्मण डा० मङ्गलदेव शास्त्री
45. एतरेय आरण्यक डा० मङ्गलदेव शास्त्री
46. ऋग्वेद-संहिता श्री श्री राम शर्मा
47. ऋग्वेद संहिता सातवलेकर
48. कालिदास के पक्षी श्री हरिदत्तवेदालङ्कार
49. कालिदास ग्रन्थावली श्री सीताराम चतुर्वेदी
50. कालिदास श्री वासुदेव विष्णु मिराशी
51. कालिदास का भारत भाग–1 }
52. कालिदास का भारत भाग–2 } श्री भगवत शरण उपाध्याय
53. कालिदास डा० रमाशङ्कर तिवाड़ी
54. कालिदासः एक अनुशीलन पं० देवदत्त शास्त्री
55. काव्य प्रकाश (मम्मट) आचार्य रामचन्द्र मिश्र
56. काव्यमीमांसा (राजशेखर) श्री मधुसूदन मिश्र
57. काव्यादर्श (दण्डी) आचार्य रामचन्द्र मिश्र
58. काव्यानुशासन (हेमचन्द्र) श्री रसिक लाल पारीक
59. काव्यानुशासन (द्वि० वाग्भट्ट) श्री काशीनाथ पाण्डुरंग
60. काव्यालङ्कार (भामह) श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा

61	काव्यालङ्कार	(रुद्रट)	श्री दुर्गाप्रसाद व श्री बासुदेव लक्ष्मण शास्त्री
62.	काव्यालङ्कार सूत्र	(वामन)	आचार्य विश्वेश्वर
63.	गउडवहो		वाक्पतिराज (चौखम्बा)
64.	गद्यकार बाण		श्री सत्यपाल. म. प्र. थापर
65.	चन्द्रालोक	(जयदेव)	श्री नंद किशोर शर्मा
66.	जीवजगत		श्री सुरेशसिंह
67.	जन्तुजगत		श्री ब्रजेश बहादुर
68.	जैमनीय ब्राह्मण		डा० रघुवीर एवं डा० लोकेशचन्द
69.	ढोला मारु रा दूहा		श्री कल्लोल
70.	तैत्तेरीय संहिता		श्री सातवलेकर
71.	ध्वन्यालोक	(आनन्दवर्धन)	आचार्य विश्वेश्वर
72.	नाट्य शास्त्र	(भरतमुनि)	श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री
73.	नीतिशतक	(भर्तृहरि)	श्री विजय शंकर मिश्र
74.	नैषध-परिशीलन		पं० चण्डिका प्रसाद शुक्ल
75.	पंचतन्त्र	(विष्णु शर्मा)	श्री शिवमंगल द्विवेदी
76.	प्रकृति और काव्य		डा० रघुवंश
77.	वृहत् पर्यायवाची कोश		डा० रघुवीर
√78.	भारत के पक्षी		श्री राजेश्वर प्रसाद
79.	भारविकाव्य में अर्थान्तर न्यास		डा० उमेश चन्द रस्तोगी
80.	भारतीय व्यवहार कोश भाग–1		श्री विश्वेश्वर नाथ दीक्षित
81.	भारतीय व्यवहार कोश भाग–2		श्री विश्वेश्वर नाथ दीक्षित
82.	भारतीय व्यवहार कोश भाग–3		श्री विश्वेश्वर नाथ दीक्षित
83.	महाभारत (वेदव्यास)		श्री एच० डी० वेलणकर
84.	महाकवि माघ उनका जीवन तथा कृतियां		डा० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा
85.	महाभारत कोश		डा० राम कुमार राय
86.	मौगली गीतिका/वेन गंगा के किनारे		श्री एस० के० दत्त
87.	मरु-स्कार्उटिग		श्री एस० के० दत्त
88.	रामचरित मानस (तुलसी)		श्री ज्वाला प्रसाद मिश्र
89.	वक्रोक्ति जीवितम् (कुन्तक)		डा० नगेन्द्र
90.	वाग्भटालङ्कार (वाग्भट्ट प्रथम)		श्री मुरलीधर शर्मा

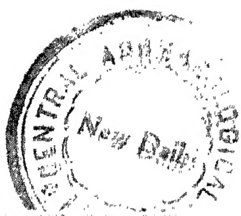
91. वाल्मीकि रामायण (वाल्मीकि)	श्री रामतेजशास्त्री
92. वाल्मीकि रामायण कोश	डा० रामकुमार राय
93. वैदिक कोश	डा० सूर्यकान्त
✓94. वैदिक माइथोलोजी	डा० रामकुमार राय
95. शतपत ब्राह्मण	श्री चिन्ना स्वामी शास्त्री
96. शब्दकल्पद्रुम्	राजा राधाकान्त देव बहादुर
97. शुक्ल यजुर्वेद संहिता	श्री राम शर्मा आचार्य
98. शुकनासोपदेश	श्री शान्ति प्रसाद अग्रवाल
99. शुकसप्तति	मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन
100. श्रीमदभागवत पुराण (वेदव्यास)	गीता प्रेस प्रकाशन
101. सरस्वती कण्ठाभरण (वेदव्यास)	श्री रामा स्वामी शास्त्री
102. सामवेद संहिता	श्री राम शर्मा आचार्य
103. संस्कृत साहित्य का इतिहास	श्री वाचस्पति गैरोला
104. संस्कृत साहित्य का इतिहास	श्री हंसराज अग्रवाल
105. संस्कृत साहित्य का इतिहास	पं० बलदेव उपाध्याय
106. संस्कृत साहित्य का इतिहास भाग १ 107. संस्कृत साहित्य का इतिहास भाग २	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार
108. संस्कृत साहित्य का इतिहास (कीथ)	मंगलदेव शास्त्री
109. संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास	डा० स० क० गुप्त
110. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा	श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय
111. संस्कृत साहित्य प्रवेश	श्री गौरीशंकर
112. संस्कृत आलोचना	पं० बलदेव उपाध्याय
113. संस्कृत कवि चर्चा	पं० बलदेव उपाध्याय
114. हिन्दी साहित्य दर्पण	डा० सत्यव्रत सिंह
115. हिन्दी रस गंगाधर	श्री बदरीनाथ व श्री मदन मोहन
116. हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्	श्री राधेश्याम मिश्र
117. हिन्दी साहित्य कोश भाग 2	ज्ञान मण्डल प्रकाशन
118–125. हिन्दी विश्व कोश भाग 1 से 8	नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन
. हितोपदेश (विष्णुशर्मा)	पं० कन्हैया लाल

English

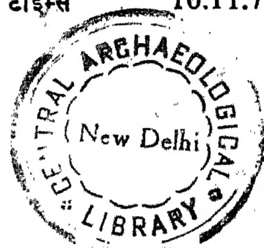
127.	A History of Indian Literature	Weber
128.	A History of Indian Literature	Winternitz
129.	A History of Sanskrit Literature	Vardachari
130.	Animal Kingdom Part I	F. Drimmer
131.	Animal Kingdom Part II	F. Drimmer
132.	Animal Kingdom Part III	F. Drimmer
133.	Birds of Saurashtra	R.S. Dharam Kumar Singhji
134.	Ducks & their allies	Stuart Baker
135.	Encyclopaedia Chambers	M. D, Law & M. Vibart Dixon
136.	Encyclopaedia Britannica	Harry S. Ashmox
137.	English Sanskrit Dictionary	V. S. Apte
138.	Game birds of India, Burma & Ceylon	S. Baker
139.	Goose in Indian literature & art	Vogel J. Phillippe
140.	History of Sanskrit Literature	A. A. Macdonell
141.	History of Sanskrit Literature	A. B. Keith
142.	Kalidasa : his period, personality and poetry	Ramaswami Shastri
143.	Kalidasa his styles & his times	Sabnis
144.	Kalidasa his poetry & mind	Chatterjee
145.	Kalidasa : his genious, ideals and influence	Ramaswami Shastri
146.	Kalidasa and Vikramaditya	S. C. De
147.	Mahabharata	Kamla Subramaniam
148.	Popular Hand Book of India birds	Whistler
149.	Small Game Spooting in Bengal(1899)	Hume & Marshall
150.	Sanskrit Literature	Dr. Raghavan
151.	The Story of Animal Life	Maurice Burton
152.	The Book of Indian Birds	Salim Ali
153.	The Birds	Roger Tory Peterson & The editor of LIFE
154.	Vedic Index Part I	A. A. Macdonell & Keith
155.	Vedic Index Part II	A. A. Macdonell & Keith
156.	Vikrmaditya	Raibali Pandey (1954)
157.	World Book Encyclopaedia (1960)	J. Morris Jones

शोध–प्रबन्ध से सम्बन्धित प्रकाशित लेख

शीर्षक	पत्रिका	दिनांक
1. संस्कृत काव्यों में उपमित गज	विश्वम्भरा, बीकानेर	दिसम्बर 66
2. संस्कृत काव्यों में सारिका	,, ,,	सितम्बर 68
3. कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में हंस	,, ,,	मार्च 69
4. कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों से पन्नगाशन	,, ,,	जून 69
5. कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में अश्व	,, ,,	दिसम्बर 69
6. संस्कृत काव्यों में गौ	शोध पत्रिका, उदयपुर	सितम्बर 67
7. संस्कृत काव्यों में कोकिल	,, ,,	सितम्बर 68
8. कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में सारस	,, ,,	मार्च 69
9. महाकवि बाण भट्ट : उनका समय काव्य व प्रकृति वर्णन	वीणा इन्दौर	मार्च 69
10. कालिदास : उनका समय व काव्य	,,	जनवरी 68
11. कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में मयूर	वरदा, बिसाऊ	जुलाई 69
12. कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में क्रमेलक	,, ,,	जुलाई 70
13. संस्कृत काव्यों में उपमित मयूर	गुरुकुल पत्रिका,	जनवरी–फरवरी 1968
14. कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में कपोत	,, ,,	नवम्बर–दिसम्बर 68
15. संस्कृत काव्यों में शुक	,, ,,	अक्टूबर 69
16. कालिदास एवं कालिदासोत्तर काव्यों में चक्रवाक	,, ,,	जून-जौलाई-अगस्त 1969
17. पशु पक्षियों का मानव जीवन से सम्बन्ध	राष्ट्रदूत जयपुर	13.10.68
18. कालिदास-कालिदासोत्तरवर्ती संस्कृत साहित्य में सिंह	अन्वेषणा, उदयपुर	1/4
19. प्रकृति के अनन्य उपासकः कालिदास	नवभारत टाइम्स	10.11.70



॥ इति शुभम् ॥



22.4.74